बलवन्तसिंहके साथ, सेवाग्राममें

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

६४

(३ नवम्बर, १९३६ से १४ मार्च, १९३७)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

मई, १९७६ (वैशाख १८९८)

~~साढ़े सात रुपये~~

Rs 10.00

निदेशक, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली ११०००१ द्वारा प्रकाशित
और शान्तिलाल हरजीवन शाह, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद ३८००१४ द्वारा मुद्रित

भूमिका

इस खण्डमे ३ नवम्बर, १९३६ से १४ मार्च, १९३७ तककी सामग्री दी गई है। इस अवधिके दौरान राष्ट्रके जीवनमे दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुईं, त्रावणकोरमे हरिजनोके लिए मन्दिरोका खोला जाना और कांग्रेसका फैजपुर अधिवेशन, जो कि किसी गाँवमे होनेवाला पहला अधिवेशन था। पहली घटनाने गाधीजीको बहुत प्रभावित किया। महाराजाकी घोषणाका स्वागत करते हुए उन्होने कहा कि उनके इस कार्यसे "कलम के एक ही झटकेसे युगो-पुराने पाप मिटा दिये गये है" (पृष्ठ २७१)। दूसरी ओर, कांग्रेस अधिवेशनमे गाधीजीकी दिलचस्पी खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शनी तक ही सीमित रही और उन्होने अधिवेशनकी सामान्य कार्रवाईमे बहुत कम भाग लिया। यद्यपि कांग्रेसका यह अधिवेशन राजनीतिक दृष्टिसे काफी महत्त्वका था, क्योंकि इसमे भारत सरकार अधिनियम १९३५ पर विचार किया जाना था जो शीघ्र ही लागू होने जा रहा था। अक्तूबर १९३४से वे उत्तरोत्तर अपनी सारी शक्ति ग्रामपुनर्निर्माणके कार्यमे ही केन्द्रित करते चले गये और अब सेगाँवमे आकर रहने लगे थे जहाँ उनका कहना था, "मै किसीसे मिलता-जुलता नही, अखबार भी बहुत कम पढ़ता हूँ" (पृ० ५९)।

राजनीतिक समस्याओके प्रति गाधीजीकी इस उदासीनताका अर्थ यह नही था कि उन्होने स्वाधीनता-संग्रामसे पीठ मोड ली थी। बल्कि उनका कहना था कि यह "लड़ाई तो अन्ततक" चलनेवाली है। लेकिन यह अहिंसक लडाई थी और "सविनय अवज्ञा ही अहिंसाकी एकमात्र प्रक्रिया नही है।" गाधीजीका कहना था कि "अहिंसाके उपवनमे बहुत सारे पौधे है" और वे उस समय भारतके गाँवोके आर्थिक, नैतिक व सामाजिक पुनरुद्धारके पौधेको सीच रहे थे। गाधीजीके लिए राजनीतिक स्वाधीनताका अर्थ था "शुद्ध नैतिक सत्तापर आधारित जनताकी प्रभुता" और वह जनताकी आर्थिक स्वतन्त्रताके साथ जुडी हुई थी। जनताकी इस आर्थिक स्वतन्त्रताको "प्रत्येक व्यक्तिके अपने ही सचेतन प्रयत्नके बलपर और व्यक्तिशः प्रत्येक स्त्री-पुरुषके आर्थिक उत्थान द्वारा ही हासिल किया जा सकता था" (पृ० २१५-१६) ऐसे पूर्ण स्वराज्का प्रासाद खडा करनेके लिए यह जरूरी था कि उसमे जन-साधारणका विशाल पैमानेपर योगदान हो। कांग्रेसने जो संसदीय कार्यक्रम अपनाया था उससे इस कार्यमें निस्सन्देह मदद मिल सकती थी, लेकिन गाधीजीका विचार था कि इसकी उपयोगिता बहुत सीमित है क्योकि मताधिकार बहुत कम लोगोको, ३५ करोड लोगोंमें से केवल साढे तीन करोडको ही था। इसलिए गाधीजीने अपना ध्यान गाँवोमे बसनेवाले साढे इकत्तीस करोड लोगोकी ओर मोडा। वे उन्हे उनकी आवश्यकताओ और उन आवश्यकताओकी पूर्तिके उपायोके विषयमे शिक्षित करना चाहते थे तथा उन्हे

उनके सख्या-बलकी महत्ताका भान करा देना चाहते थे। उनका कहना था कि अगर गाँवोके साढे इकत्तीस करोड लोग अपनी शक्तिको पहचान लेते है तो सविनय अवज्ञा अथवा हिंसाकी कोई जरूरत ही नही रह जायेगी (पृष्ठ २१६-१७)। उसके विषयमे उनकी कल्पना यह थी कि यह "एक प्रकारकी व्यावहारिक प्रौढ शिक्षा है, जिसे ज्यों-ज्यो इसका विकास हो रहा है त्यो-त्यो हमें अमलमे लाना है" (पृष्ठ ८१)। गाँववालोको "यह सिखाया जायेगा कि सफाई, स्वास्थ्य, भौतिक परिस्थितियो और सामाजिक सम्बन्धोमे सुधारके लिए उन्हे किस चीज़की जरूरत है — और उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है।" (पृष्ठ ८२) गाधीजीके मनम एक आदर्श गाँवकी जो सकल्पना थी, उसका चित्र प्रस्तुत करते हुए गाधीजीने कहा कि अगर ग्रामवासियोमें "परस्पर सहयोग" द्वारा सारे गाँवके भलेके लिए मिल-जुलकर काम करनेकी वृत्ति को जगाया जाये तो वे लोग "बगैर सरकारी सहायताके . . . लगभग पूरा कार्य-क्रम . . . सम्पन्न कर सकते है" (पृष्ठ २४३-४४)।

ग्राम-पुनरुत्थानके इस कार्यमे गाधीजीने समाजके सभी वर्गोसे, और विशेष रूपसे मध्यम वर्गके लोगोसे अपना सहयोग देनेकी अपील की। कारण, इस मध्यम वर्गने ही तो "चन्द टुकडोके बदले विश्वासघात करके भारतकी आर्थिक स्वतन्त्रता बेच दी है" (पृष्ठ २१७)। उन्होने अपने शहरोको "विदेशी मालके बाजार"के रूपमें परिवर्तित कर दिया और इस तरह "विदेशोसे सस्ती व भडकीली चीजे लाकर गाँवोमें उनकी भरमार की जाने लगी और गाँवोका धन चूसा जाने लगा" (पृष्ठ १३३)। गाधीजीने उनसे अनुरोध किया कि वे "गाँव-गाँवमें चरखेका सन्देश ले जायें और जनता को काहिली छोडकर चरखा चलानेके लिए प्रेरित करे।" क्योकि "यदि उद्यमशीलता पर आलस्य और आशापर निराशा हावी हो गयी तो वह देशके लिए सचमुच एक बडी दारुण स्थिति होगी।" गाधीजीको सही प्रकारकी विदेशी सहायता स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति न थी। जो अमेरिकी लोग उनसे मिलने आते उनसे वे कहा करते थे कि "एक बातमे मैं भिखारी बननेकी कोई परवाह नही करता। अपने इंजीनियरो और कृषि-विशेषज्ञोसे हमे सेवा देनेके लिए आप कह सकते है।" (पृष्ठ १११)। गाधीजी केवल यन्त्र-कौशलके रूपमे ही विज्ञानको महत्त्व नही देते थे बल्कि खादी-कार्यकर्ताओसे वह कहा करते थे कि उन्हे अपनी समस्याओके समाधानमें और खादीके कार्यक्रमको आगे बढानेमे वैज्ञानिक दृष्टिकोण और ढगका विकास करना चाहिए। "उसकी शक्तिमें विश्वास रखनेवाला उसे सोच-समझकर, बुद्धिमानीसे और व्यवस्थित ढगपर तथा शास्त्रीय भावनासे अपनायेगा। वह किसी चीजको यो ही मानकर नही चलेगा, हर बातकी परीक्षा करेगा, तथ्यो और आँकडोकी जाँच करेगा। हारसे घबरायेगा नही, छोटी-छोटी सफलताओसे फूलकर कुप्पा नही होगा और जब-तक लक्ष्यकी प्राप्ति नही होगी, चैनकी साँस नही लेगा।" लेकिन विज्ञानकी इस निर्वैयक्तिक पद्धतिके साथ-साथ जो भी व्यक्ति इस कार्यको हाथमे ले, उसे यह कार्य ममतापूर्वक और समर्पणकी भावनासे करना होगा, क्योकि खादी न केवल एक शास्त्र है बल्कि वह एक ऐसा काव्य है जो मगनलाल गांधी और रिचर्ड ग्रेग जैसे कार्य-

कार्ताओंको "किसी भी रसपूर्ण विषयसे जो रस और आनन्द प्राप्त हो सकता है वैसा रस और आनन्द प्रदान करता है। शास्त्र तभी शास्त्र है जब वह शरीर, मन और आत्मा तीनोकी भूखको मिटानेका पूरा मौका दे" और खादीका यह शास्त्र कितना "रसपूर्ण" हो सकता है, इसका निरूपण करते हुए गांधीजीने एक विस्तृत प्रश्नावली भी तैयार की और कहा कि प्रत्येक खादी-कार्यकर्ताको इसका अध्ययन करना चाहिए (पृष्ठ २७८-७९)।

बेशक, गाधीजी यह बात अच्छी तरहसे जानते थे। ग्राम-पुनरुद्धारका उनका कार्य एक "दुष्कर कार्य" है। गाँववालोमें "अपनी दशा सुधारनेकी कोई इच्छा ही दिखाई नही देती।" एक प्रसंगमे उनसे मिलनेके लिए आये लोगोको गाधीजीने कहा कि भारतमे ऐसे अनेक गाँव है जो सेगाँवसे भी छोटे है और जहाँके लोग सेगाँवके लोगोसे अधिक अशिक्षित है। ये गाँव "अज्ञान और गन्दगीसे उसी तरह चिपटे हुए है जैसे कि वे अस्पृश्यतासे चिपटे हुए है" (पृष्ठ ८२)। लेकिन उससे निराश होनेकी कोई बात नही थी। ऐसे ही एक हताश युवकको दिलासा देते हुए उन्होने कहा "धीरजके साथ अपने काममे लगे रहकर देखनेपर पता चलेगा कि गाँववाले शहरवालोसे बहुत भिन्न नही है और अगर उनके साथ प्रेम और कोमलताका व्यवहार किया जाये और उनकी ओर ठीक ध्यान दिया जाये तो वे भी ठीक उत्साह दिखायेंगे और सहयोग करेंगे।" (पृष्ठ ४२९) बल्कि उनका विश्वास था कि कुछ बातोमे गाँववाले शहरवालोंसे ज्यादा अच्छे है, ज्यादा भारतीय है। सेगाँवमे उनसे मिलनेके लिए आये विदेशियोके एक दलसे उन्होने कहा कि अगर वे लोग "भारतके अन्तरंग"को देखना चाहते है तो उन्हे बडे शहरोपर नजर नही डालनी चाहिए। . . . यहाँके बडे शहरोको तो आप अपने यहाँके बडे शहरोकी नकल समझिए।" "आप ऐसी जगह जाइये जहाँ लोगोको तार और डाकका स्पर्श न हुआ हो तो आपको एक ऐसी संस्कृति देखनेको मिलेगी जैसी आपने पश्चिममे नही देखी होगी। एक ऐसी आध्यात्मिकता दिखाई देगी जो उनके (भारतीयोके) जीवनमे इतने सहज ढगसे समाई हुई है कि वे उसकी ओरसे बिलकुल बेखबर है। स्वस्थ आदमी अपने स्वास्थ्यके बारेमे बातचीत नही करता। इसी प्रकार इन लोगोकी आध्यात्मिक वृत्ति अज्ञात रूपसे इनके हृदयमे समाई हुई है। यह पूर्व परम्परासे विरासतमें मिली हुई सस्कृति है।" (पृष्ठ १३२-३३)

गांधीजीका विश्वास था कि भारतीय ग्रामीणमे मानवीयताका जो विशिष्ट गुण है उसे सार्वजनिक सेवाके कार्यमे निरत ऐसे कार्यकर्ता ही जगा सकते है जिनका चरित्र असाधारण रूपसे निष्कलक और पवित्र हो। सार्वजनिक जीवनमे यह जो प्रवृत्ति पाई जाती है कि चरित्र तो हर आदमीका निजी मामला है, इसके गाधीजी कायल नही थे। उनके शब्दोमे "वैसे तो मै जानता हूँ कि ऐसे दृष्टिकोणसे अकसर काम लिया जाता रहा है, लेकिन मै उसे कभी पसन्द नही कर पाया हूँ — उसे अपनाना तो दूरकी बात रही।" (पृष्ठ १२)। जो कार्यकर्ता गाँववालोंकी सेवा करना चाहता है उसे अपने-आपको 'खुदाई खिदमतगार' समझना चाहिए। उसे एक सच्चे

ग्रामवासीकी तरह गाँवमें जाकर रहना चाहिए और गाँववालोके "रोजमर्राके मश-क्कतके कार्योंमें" भाग लेना चाहिए। उसे चाहिए कि शहरोमे उपलब्ध सुख-सुविधाओ और बुद्धिविलासके उपकरणोके प्रति उसके मनमे जो आकर्षण है उसपर काबू पाये तथा "ग़रीव ग्रामवासी" उसे रूखा-सूखा जो दे उसीसे सन्तोष माने और इस तरह अपने मनको "स्थायी महत्वके मूल्योको"—जिन्हे सन्तोंने जन-साधारणके हितार्थ अपनी कृतियोमें लिपिवद्ध किया है—"ग्रहण करने योग्य" वनाये। लोक-सेवकको भगीका काम करनेके लिए भी तत्पर रहना चाहिए, उसे स्वच्छता व सफाईके नियमोमे कुशलता प्राप्त करनी चाहिए, उसे चाहिए कि वह भगीको इन नियमोसे अवगत कराये तथा इस प्रकार किसी आदर्श ब्राह्मणको जो आदर व सम्मान प्राप्त है वह आदर व सम्मान भंगीको दे। ऐसे कार्यकर्ता अपनी उपस्थिति-मात्रसे गाँवोको "अधिक प्रिय और रहने योग्य" वना सकते है।

गाँवोके आर्थिक पुनरुद्धारके प्रयत्नका आरम्भ हुआ तो यह अनिवार्य ही था कि लोगोका ध्यान समाजवादकी ओर जाये और उस समय देशमे इसकी वहुत जोरोसे चर्चा थी। गांधीजीकी स्थिति विलकुल साफ थी "सव भूमि गोपालकी . . . गोपाल का अर्थ है . . . राज्य अर्थात् जनता . . . भूमि और सभी प्रकारकी सम्पत्ति उसी की है जो उसपर काम करता है।" (पृष्ठ २१६)। "दुर्भाग्यकी वात है कि मेहनत-कशोको इस स्पष्ट तथ्यका ज्ञान नही है या उनको अज्ञानमे रखा गया है।" (पृष्ठ २१६)। अहमदावाद मालिक-मजदूर विवादके एक पचके रूपमे अपने पंच-निर्णयमे समाजवादकी इस वुनियादी भूमिकाको दोहराते हुए उन्होने कहा कि शेयर-होल्डरोकी ही भाँति मजदूरोंको भी मिलके मालिक समझा जाना चाहिए।" मजदूरोका दर्जा और उनकी प्रतिष्ठा भी वही होनी चाहिए जो पूजीपतियोकी है, "दस लाख रुपये को दस लाख लोगोसे अधिक महत्व क्यो दिया जाना चाहिए?" उन्होने कहा कि मिलको कम-से-कम मुनाफा अवश्य हो, इसके लिए मजदूरोके वेतनमे कटौती नही की जा सकती। एक मिस्र-निवासीसे अपनी मुलाकातके दौरान उन्होने सुस्पष्ट शब्दोमें कहा, "अगर समाजवाद वगैर किसी हिंसात्मक प्रवृत्तिके आये तो उसका स्वागत होगा, क्योकि तव जनताकी ओरसे जनताके लिए ही कोई सम्पत्ति पर अधिकार कर सकेगा।" (पृष्ठ ३४९)। एक रोमन कैथोलिकसे वातचीत करते हुए उन्होने कहा कि अन्तिम विश्लेषणमे साम्यवादका अर्थ "वर्गरहित समाज" ही होगा और यह तो "ऐसा लक्ष्य है जिसके लिए प्रयत्न करना श्रेयस्कर वात है।" (पृष्ठ ४६७)। आर्थिक नीतिके इस प्रश्नको लेकर गांधीजी और जवाहरलालके मतभेदकी वात सर्वविदित थी। लेकिन गांधीजीके अनुसार यह भेद इस वातपर था कि प्रमुखता किस चीजको दी जाये। जवाहरलाल नेहरूको उद्योगीकरण पर वहुत विश्वास था, लेकिन गांधीजी के मनमें भारतके सन्दर्भमे इसकी उपयोगिताके वारेमें गहरी शंका थी। इसके सिवा, नेहरूजीके विचारमे वर्ग-संघर्ष एक अनिवार्य चीज थी, यद्यपि, जैसा गांधीजीने कहा, यह एक ऐसी वात है जिसे "वे अगर टाल सके तो टालना ही चाहेंगे।"

गांधीजीको वर्ग-संघर्षकी कोई आवश्यकता नही दीख पडती थी। वे अहिंसक साधनोसे जमीदारो और पूजीपतियोको बदलनेकी उम्मीद रखते थे। उनका विश्वास था "यदि जमीन जोतनेवाले समझदारीसे एकजुट हो जाये, तो वे एक ऐसी शक्ति बन जायेंगे जिसका कोई भी प्रतिरोध नही कर सकेगा।" (पृष्ठ ८३)।

गाधीजी और नेहरू तथा समाजवादियोमे जो अन्तर था उसके मूलमे यह बात निहित थी कि गाधीजीके लिए अहिंसा निरपेक्ष महत्वकी वस्तु थी। इस सम्बन्धमे एक काल्पनिक उदाहरण देते हुए उन्होने कहा . . . "हम अपने सगे-सम्बन्धियोको बलात्कारपूर्वक चोरी या खून करने से भी रोक नही सकते।" (पृष्ठ ३६९)। गाधीजी की अहिंसामे मानवेतर जीवोका भी समावेश था। उनके अनुसार हिन्दू-धर्मकी महत्ता इसीलिए है क्योकि हिन्दू-धर्मकी यह मान्यता है कि सृष्टिके सभी प्राणी, न केवल मनुष्य बल्कि अन्य जीव भी, एक है और इसलिए हालाकि अपनी आजकी अज्ञानावस्थाके कारण गाधीजीने चूहो, पिस्सुओ और मच्छरो आदिको मारनेके लिए अपना मूक समर्थन प्रदान किया था लेकिन उनका कहना था "मै यह अवश्य मानता हूँ कि ईश्वरकी सृष्टिके समस्त प्राणियोको जीनेका उतना ही अधिकार है जितना हमे है . . . अपने मानव-बन्धुकी हत्या कर बैठनेकी आदतने मनुष्यके विवेकको ऐसा कुण्ठित कर दिया है कि वह अन्य प्राणियोके साथ भी मनमाना बरताव करता है।" (पृष्ठ २४१)। गाधीजीकी अहिंसा सर्वग्राही थी और एक अमेरिकी सज्जनसे अहिंसा के इस सर्वग्राही स्वरूपको ध्यानमे रखते हुए उन्होने कहा, यदि अहिंसाको "अच्छी तरह समझकर उसका उपयोग" किया जाये तो वह "एक अत्यन्त क्रियाशील शक्ति है। अदृश्य शक्ति होनेके कारण कुछ पलके लिए वह हमे प्रभावहीन दिखाई पड़ती है लेकिन वस्तुत "मनुष्य-जातिके पास जो सबसे बडी शक्ति है वह अहिंसा ही है," "और बुद्धकी जैसी अहिंसाका परिणाम तो चिरकाल कायम रहता है, इतना ही नही बल्कि समयके साथ-साथ बढ़ता जाता है, . . . उस पर जितना अमल होता है वह उतना ही पुरअसर और अक्षय सिद्ध होता है और अन्तमे सारा संसार हक्का-बक्का होकर चिल्ला पडता है कि "अरे, यह तो चमत्कार हो गया।" इस प्रकार यद्यपि गाधीजीने अपने जीवनमे जो प्रयोग किये उनसे अहिंसामें उनका विश्वास उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया फिर भी उन्होने ऐसा कोई दावा नही किया कि उन्होने अहिंसाकी शक्तिको अच्छी तरह समझ लिया है। उसी अमेरिकी सज्जनसे उन्होने कहा "मगर मुझे आपको यह चेतावनी दे देनी चाहिए कि आप कही यह खयाल न कर बैठे कि अहिंसाके बारेमे मै जो-कुछ कह रहा हूँ वही आखिरी बात है। . . . मै तो सत्यका एक विनम्र अन्वेषक मात्र हूँ" (पृष्ठ २४७-५२)।

गाधीजीकी अहिंसा कोरा सिद्धान्त मात्र नही थी बल्कि वह मानव-मात्रके प्रति उनके प्रेमसे प्राणित थी और यही उसकी शक्तिका रहस्य था। अपने इसी प्रेमके कारण वे अस्पृश्योके दु खोको देखकर विशेष रूपसे दु खी होते थे। त्रावणकोरके पुलैया और परिया लोगोको देखकर वे "बहुत शर्मिन्दा" महसूस करते थे और उन्हे यह बात समझमे नही आती थी कि हिन्दुओने जो कि "एक महान धर्मके सरक्षक है"

एक ऐसा अपराध क्यो किया "जो हमारे लिए सबसे बड़ी लज्जाका विषय है।" इस सम्बन्धमें अपना सन्ताप प्रगट करते हुए उन्होने कहा, "अगर मुझे यह विश्वास न होता कि प्रभुकी लीलाको कोई नही जानता तो मुझ-जैसा सवेदनशील आदमी यह सब देखकर बिलकुल पागल हो जाता" (पृष्ठ ४६)। जब डॉ० अम्बेडकरने अस्पृश्योके हिन्दू-धर्म छोड़कर चले जानेकी बात कही तब विभिन्न धर्मावलम्बियोमें अस्पृश्योको अपने-अपने धर्मके प्रति आकर्षित करनेकी जो होड़-सी मच गई, उसे देखकर गाधीजी बहुत दुखी हुए और उन्होने कहा "क्या वे ईंट-पत्थर है कि उन्हे जब चाहा तब जिस-किसी इमारतमे जड़ दिया" (पृष्ठ २१)। उनका कहना था कि "हरिजन अन्य हिन्दुओंसे इतने ज्यादा गुंथे हुए है कि मुसलमानों, सिखो और ईसाई संस्थाओंमें उन्हें अपने-अपने धर्ममे लानेके लिए जो होड दीख पड रही है उसे देखकर हृदयको बहुत चोट पहुँचती है। उनके विचारानुसार ईसाईयोका "यह कार्य बड़ा अशोभन और धर्मका उपहास" था। "आज ईसाई मिशनरी जो काम कर रहे हैं वह आध्यात्मिकताका द्योतक नही है।" गांधीजीने ईसाइयोपर यह आरोप लगाया कि वे लोग उन्हे "भौतिक सुखोका प्रलोभन देते है और उनसे ऐसे-ऐसे वायदे करते है जिन्हें वे कभी पूरा नही कर सकते।" (पृष्ठ २१)। एक मित्रने गांधीजीके इस कथनकी आलोचना करते हुए जब इसे "शब्दोकी हिंसा" कहा, तो उसे उत्तर देते हुए उन्होने कहा "मैं अपने-आपको मिशनरियोका मित्र मानता हूँ। उनमें से अनेकके साथ मेरे अच्छे सम्बन्ध है . . . लेकिन यदि व्यक्तियो, समाजों या राष्ट्रोके स्तर पर लोगोंमें वैचारिक अहिंसाको जगाना और विकसित करना है तो हमें सत्य कहना ही पड़ेगा चाहे वह सत्य कुछ समयके लिए कितना ही कटु या अप्रिय क्यो न लगे।" (पृष्ठ १७३)। और सत्य गाधीजीके अनुसार यह था कि "अमेरिका और इंग्लैंडने मिशनरी संस्थाओको जितना पैसा दिया है उससे लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक हुई है। ईश्वर और धनरूपी असुरको एक साथ नही साधा जा सकता। और मुझे तो ऐसी आशंका है कि भारतकी सेवा करनेके लिए धनासुरको ही भेजा गया है और ईश्वर पीछे रह गया है।" (पृष्ठ ९८)। उनसे मिलने आये कुछ ईसाई सज्जनोसे बात करते हुए गांधीजीने कहा कि मिशनरी "बिलकुल अनजाने ही खुद अपनेको और इस तरह हमे नुकसान पहुचाते है . . .। जिसे वे ईसाइयत समझे हुए है उसी को हमारे सामने पेश करते है, लेकिन जिसे मैं ईसा मसीहका सन्देश समझता हूँ, उसका प्रचार वे नही करते . . . मानव-परिवारमे ऐसी बात हो यह सचमुच बड़े दुःखका विषय है" (पृष्ठ ९८)।

गांधीजीको मिशनरियोके उद्देश्यो और उनके तरीकोंपर ही आपत्ति नही थी बल्कि धर्मपरिवर्तनका विचार मात्र ही उनके लिए कष्टकर था। उनके विचारानुसार "धर्मकी जितनी क्षति इस घातक वस्तुसे हुई है उतनी आजतक किसी बातसे नही हुई है" (पृष्ठ २२९)। "कोई ईसाई किसी हिन्दूको ईसाई बनाना क्यो चाहे या कोई हिन्दू किसी ईसाईको हिन्दू बनाना क्यों चाहे। असली महत्व तो मनुष्यके शीलका है, . . . किसी विशेष पद्धतिपर आग्रह रखना या किसी धार्मिक मान्यताको बार-

बार दोहराना ऐसे उग्र झगडेका एक प्रबल कारण बन सकता है कि अन्तमें भीषण रक्तपात मच जाये और फलत. धर्म अर्थात् ईश्वरसे ही लोगोका विश्वास उठ जाये" (पृष्ठ ३६४)। एक पोलिश प्रोफेसरसे बातचीत करते हुए उन्होने कहा कि कैथोलिक ईसाइयोकी मान्यता "दुरभिमानपूर्ण" है। गाधीजी इस बातको अक्षरश. सत्य माननेके लिए तैयार नही थे कि "ईसा मसीह ईश्वरके एकमात्र पुत्र है।" उनका कहना था — "यदि कोई व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टिसे हमसे बहुत अधिक ऊपर उठा हुआ है तो हम कह सकते है कि वह एक विशेष अर्थमे ईश्वरका पुत्र है, यद्यपि उसकी सन्तान तो हम सब है। हम अपने जीवनके व्यवहारमे उसके साथ अपने सम्बन्धोको त्याग देते है। लेकिन ईसाका जीवन उन सम्बन्धोका प्रत्यक्ष उदाहरण है" (पृष्ठ ४३९–४०)। इसलिए सही स्थिति तो यह है कि "हम सभी धर्मोको समान मानकर चले, क्योकि सबकी जड एक ही है, सबके विकासके नियम एक-से है।" (पृष्ठ २२८)। "मेरी दृष्टिमे सभी धर्म एक बगीचेमे खिले सुन्दर फूलोके समान अथवा एक ही विशाल वृक्षकी विभिन्न शाखाओकी तरह है।" लेकिन "चूँकि वे हमें मानवोके माध्यमसे प्राप्त हुए है और हमारे लिए उनकी व्याख्या भी मानवने ही की है, इसलिए वे सब अपूर्ण भी समान रूपसे है।" (पष्ठ ३६४)। वे यह मानते थे कि "अन्य धर्मोकी पुस्तकोकी आलोचना करना अथवा उनके दोष बताना" उनका काम नही है, लेकिन साथ ही वे यह भी कहते थे कि "उनके गुण बताना और हो सके तो उनका अनुकरण करना मेरा काम है" "जब अहिन्दू लेखक हिन्दू धर्मकी आलोचना करते है या उसके दोष गिनाने बैठते है, तब अकसर उसमे अज्ञान होता है। वे उस चीजको हिन्दूकी आँखसे देख नही सकते, इसलिए सीधी चीज उन्हे टेढी नजर आती है" (पृष्ठ ३७०)। किसी भी धर्मका प्रचार करनेका सही तरीका यह है कि मनुष्यको उसे अपने जीवनमे उतारना चाहिए। "गुलाब हमसे नही कहता कि आओ मुझे सूँघो। वस्तुत. मनुष्यका "सारा जीवन आपके मुखसे कही अधिक मुखर होता है। . . . जीवनमे जिस क्षण भी आध्यात्मिक सत्य अभिव्यक्त होने लगेगा, आसपासका समस्त वातावरण उसी क्षण उससे प्रभावित होकर अनुकूल प्रतिक्रिया करने लगेगा।" "अपनी आध्यात्मिक अनुभूतिके सुन्दर क्षणोका वर्णन करते हुए उन्होने कहा, "मेरे प्रभु और मेरे बीच कोई माध्यम न होनेपर मै उनके प्रभावोको अपने अन्दर ग्रहण करनेके लिए एक खुला पात्र बन जाता हूँ और फिर गगोत्रीपर गगाके जलकी भाँति फूट निकलता हूँ। व्यक्ति जब सत्यको जीता है तब उसकी बोलनेकी-शाब्दिक अभिव्यक्तिकी इच्छा नही होती।"

त्रावणकोरमे जब दीपावलीके दिन महाराजाकी घोषणाके साथ मन्दिरोके द्वार हरिजनोके लिए खोल दिये गये तब उस घटनाको गाधीजीने "एक चमत्कार" बताते हुए उसे "हिन्दू-धर्मकी शुद्धिकी एक प्रक्रिया" कहा और उन्होने त्रावणकोर राज्यकी यात्राके निमन्त्रणको स्वीकार किया। १२ जनवरीसे २१ जनवरी तक अपनी नौ दिनकी यात्राके दौरान वे त्रावणकोरके बहुत-से शहरो और गाँवोमे गये तथा हर स्थानपर उन्होने अवर्णो तथा सवर्णोकी विशाल भीड़के सम्मुख भाषण दिये। अपने भाषणोमे

उन्होंने बार-बार महाराजाकी घोषणाके महत्वको समझाया। त्रावणकोरकी सभामे उपस्थित जनसमूहके सम्मुख भाषण देते हुए उन्होने कहा "मैंने तो इस घोषणाको विशुद्ध धर्म-कार्य माना है। अपनी इस त्रावणकोर यात्राको मैंने एक तीर्थयात्रा माना है और इन मन्दिरोमे मैं एक ऐसे अस्पृश्यके रूपमे जा रहा हूँ. जिसे अचानक स्पृश्यका दर्जा मिल गया है। . . . आप तवतक सन्तुष्ट नही होंगे जवतक कि अपने उन भाई-बहनोको, जिन्हे सवसे दीन हीन और दलित माना जाता है, उस ऊँचाईपर लाकर प्रतिष्ठित नही कर देंगे जिसपर आप स्वय आसीन है। सच्चे आध्यात्मिक पुनरुत्थानमे तो आर्थिक उत्थान भी आ जाता है तथा अज्ञानके अन्धकार और उन सभी बातोके विनाशका समावेश है जो मानवताकी प्रगतिमे बाधक है।" (पृष्ठ २६७)।

इस यात्राके दौरान गाधीजी अनेक मन्दिरोमे दर्शनके लिए गये, और जब-जब उन्होने किसी मन्दिरमे प्रवेश किया, उनका मन सचमुच भाव-विभोर हो उठा, क्योकि, "मानसिक रूपसे अपनी इच्छासे अस्पृश्य बन जानेके कारण मैं उन मन्दिरोको अपने लिए वर्जित मानता रहा हूँ जिनके द्वार हरिजनोके लिए बन्द थे" (पृष्ठ २७–७६)। किन्तु अब चूँकि वह प्रतिबन्ध हट गया था और वे मन्दिरोमे जानेके लिए स्वतन्त्र थे, उन मन्दिरोके दर्शन कर, उनके भव्य सौन्दर्यको देखकर वे "मन्त्र मुग्ध" हो उठे। यात्राके पहले मन्दिर, त्रिवेन्द्रमके विशाल पद्मनाभ मन्दिरमें प्रवेश करनेपर उन्हें जो अनुभव हुआ, बादमे उसका वर्णन करते हुए उन्होने लिखा, "मनमे भक्ति, भीरुता और यथोचित श्रद्धाके भाव लेकर मैंने मन्दिरमे प्रवेश किया। कौतूहलका भाव मिट चुका था और उसका स्थान वर्षोंकी रिक्तताको भरनेके लिए जो-कुछ होने जा रहा था, उसके बोधने ले लिया था।" और जैसे ही वे लोग "विशाल मुख्य प्रतिमाके निकट पहुँचे" उन्हे वह सब "दिवास्वप्न-सा" जान पड़ा। उनके साथ मन्दिरके दर्शनार्थ जो लोग गये थे उनके मुस्कराते हुए चेहरोको और एक-के-बाद एक मन्दिरमें जाकर असख्य स्त्री-पुरुषोको आपसमे बिना किसी भेदभावके मिलते देखकर उनके हर्षका पारावार न रहा। गाधीजी मन्दिरोमें पाये जानेवाले दोषोसे परिचित तो जरूर थे लेकिन इस नये अनुभवने उन्हे इतना विनम्र बना दिया था कि वे उसकी ओर "आलोचककी दृष्टिसे देखनेके लिए" तैयार नही थे।" उन्होंने कहा, "धर्म-निन्दक" और "शकालु लोग" इस तरह प्रतिमाओमे ईश्वरके दर्शन करनेकी बातको "भ्रमकी कल्पना मात्र" कह सकते है, लेकिन "कल्पनाका जीवनमें एक बहुत बडा स्थान है।" अत भक्तोके लिए तो वे उनके "जीवनके अभिन्न अग है . . . ईश्वरकी सत्ता और शक्तिके प्रत्यक्ष प्रतीक है— जहाँ उसके प्रति अपनी श्रद्धाकी प्रतिज्ञाको प्रतिदिन दोहराना, त्याग और समर्पणका कार्य हर दिन सम्पन्न करना हमारे लिए जरूरी हो जाता है" (पृष्ठ ३३९)। पद्मनाभ मन्दिरके मुख्य पुजारीसे सहमत होते हुए उन्होने स्वीकार किया कि "इनमे से प्रत्येक मन्दिर उस अदृश्य, अलख और वर्णनातीत शक्ति ईश्वरसे इस अगाध सृष्टि-सागरमें तुच्छ बूँदोके समान पड़े हम मानवोका सम्बन्ध जोड़नेवाला महासेतु है।" उन्होने कहा कि हम सभी लोग तत्वचिन्तक नही है और इसलिए "अदृश्य ईश्वरके विषयमे चिन्तन-भर

करनेसे" हमे सन्तोष नही मिलता। चाहे जिस कारणसे भी हो, हम कोई ऐसी वस्तु चाहते है जिसका हम स्पर्श कर सकें, जिसे देख सकें और जिसके समक्ष श्रद्धापूर्वक विनत हो सके" (पृष्ठ २६६–६७)।

जैसा कि त्रावणकोरमे अपने एक भाषणमे उन्होने बताया, अस्पृश्यताके प्रति उनके विरोधका आधार "हिन्दू शास्त्रके अतिरिक्त और कुछ नही" था और उनका दावा था कि मैंने हिन्दू-धर्मकी मुख्य प्रवृत्तियोको अच्छी तरह समझ लिया है और "पिछले ५० वर्षोसे, मुझ-जैसे अपूर्ण प्राणीके लिए जहाँतक सम्भव है वहाँतक, मैं उनके अनुरूप आचरण कर रहा हूँ" (पृष्ठ ३०९)। उन्होने कहा कि अस्पृश्यता "हिन्दू-धर्मके उपवनमे उग आये अवाछनीय घास-पातकी तरह थी जो इस तरह फैलती जा रही थी कि उससे इस उपवनके सुन्दरतम पुष्पोके कुम्हला जानेका खतरा पैदा हो गया था।" (पृष्ठ २७३)। इन पुष्पोमे भी गाधीजीने जो सबसे सुन्दर और अमूल्य पुष्प खोज निकाला था और जिसके सत्य और सौन्दर्यकी उन्होंने अपने हर भाषणमे चर्चा की वह था 'ईशोपनिषद्'का प्रथम श्लोक। गाधीजी इसका अनुवाद इस प्रकार करते थे: "विश्वमे हम जो-कुछ देखते हैं, सबमे ईश्वरकी सत्ता व्याप्त है। . . . तेन त्यक्तेन भुंजीथा: इसका त्याग करो और भोग करो (वह तुम्हे जो कुछ दे उसका भोग करो)। किसीकी सम्पदाको लोभकी दृष्टिसे मत देखो" (पृष्ठ २८९)। गाधीजीके विचारानुसार 'ईशोपनिषद्'का यह श्लोक समस्त "ऋषि-मुनियोकी ज्ञान-राशिका" निचोड़ था और उनका कहना था कि "इस मंत्रको मैं हिन्दू-धर्मका मूलाधार मानता हूँ। इसके बिना हिन्दू-धर्म कुछ नही है" और इसके रहते हुए "उसे किसी और चीजकी जरूरत नही है" (पृष्ठ ३०९)। इतना ही नहीं, गांधीजी इससे भी आगे जाकर कहते है कि इस मंत्रमे जो बात कही गई है "संसारके किसी भी धर्मग्रथमे इतनी सन्तोष देनेवाली, इतनी सुन्दर बात कही नही मिलती" (पृष्ठ ३४२)। उनके ही शब्दोमें "'गीता' भी इसी मंत्र का भाष्य है" (पृष्ठ २८९)। यदि "सारे उपनिषद् तथा हमारे अन्य सारे धर्मग्रंथ अचानक नष्ट हो जाये और यदि 'ईशोपनिषद्'का केवल पहला श्लोक हिन्दुओंकी स्मृतिमे कायम रहे तो भी हिन्दू-धर्म सदा जीवित रहेगा" (पृष्ठ २८९)। 'स्मृतियो' और 'पुराणों'का "सृजन युगोकी माँगपर हुआ है" और उनमे सदा शाश्वत सत्योका प्रतिपादन नही हुआ है। किन्तु 'ईशोपनिषद्'के इस एक मन्त्रमे शाश्वत सत्योका ही प्रतिपादन हुआ है। इसका अर्थ यह हुआ कि "सच्चे अर्थोमे तथा विचार और विवेकपूर्वक हिन्दू होनेके लिए हमें सम्पूर्ण उपनिषदो और सम्पूर्ण हिन्दू-धर्मके इस मूल मंत्रके अनुसार आचरण करना है और वह आचरण यह है कि हम सब-कुछका, अपने शरीर और अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तुका भी त्याग करके उसे प्रभुके चरणोंमे रख दे" (पृष्ठ ३३०)। मंत्रमे किसी की सम्पदाको लोभकी दृष्टिसे न देखनकी जो बात कही गई है उसका तात्पर्य केवल "धन और सम्पत्ति" ही नही है। इसके बारेमे एक पत्र-लेखकको समझाते हुए गांधीजीने कहा, किसी व्यक्तिकी सम्पदा उसकी विद्वत्ता होती है तो किसीकी स्वास्थ्य तो किसी अन्यकी त्याग हो सकती है। मनुष्यको किसीसे द्वेषभाव नही रखना

चाहिए। समाजवाद यहाँतक कि साम्यवाद भी इस मन्त्रमे "स्पष्ट" है। "यह मन्त्र समाजवादियो और साम्यवादियो, तत्त्व-चिन्तको और अर्थशास्त्रियो सबका समाधान कर देता है", क्योकि जहाँ एक ओर यह त्यागके लिए एक भव्य आध्यात्मिक आधार प्रस्तुत करता है वही आचरणका एक नैतिक तथा आर्थिक सिद्धान्त भी पेश करता है और इस शिक्षाको अपने जीवनमे उतारते ही आप ससारके सभी प्राणियोंके साथ शान्ति और सौहार्दके साथ रहनेवाले समझदार विश्व नागरिक बन जाते है" (पृष्ठ २९०)।

'गीता'मे जिस अनासक्तिका विधान किया गया है वह गाधीजीके जीवनका आदर्श था। वे मानते थे कि "पूर्ण शान्ति प्राप्त करने और स्वात्मा तथा परमात्मा का साक्षात्कार करनेके लिए वह नितान्त आवश्यक है"। तथापि उनका कहना था, "उसे सिद्ध करना सबसे कठिन कार्य है" (पृष्ठ ३८६)। इस खण्डमे अनेकों ऐसे उदाहरण मिलते है जिनसे पता चलता है कि गाधीजीने इस आदर्शको सचमुच कितना कठिन पाया। मीराबहनको, जिन्होने, लगता है, सेगाँव आश्रममें रहनेवाले कुछ लोगोंके आचरणके विरुद्ध उनसे शिकायत की थी, सलाह देते हुए उन्होने लिखा "पागलोंका प्रलाप सुनकर तो हम अधीर नही होते क्योकि उसे रोग मानते हैं और जबतक उसका इलाज नही हो जाता तबतक उसे बरदाश्त करना अपना फर्ज समझते है" (पृष्ठ २५६) लेकिन उन्ही कार्यकर्ताओमे से एकका पत्र मिलनेपर उनकी प्रतिक्रिया यह थी: "कल मै तुम्हारा पत्र पढकर हँसा था लेकिन उसमें तुमने जो लिखा उसे मै भूल नही सका और अब दुख होता है।" एक अन्य प्रसंगमे 'हरिजन'मे एक भूतपूर्व कार्यकर्ताके पत्रकी आलोचना करते हुए उन्होने दुःखी मनसे लिखा, "मैने जो लिखा है ईश्वर करे वे इसमे गहरे उतरकर ऐसे पिता की वेदनाको जरा देख सकें जिसने अचानक अपना एक आज्ञाकारी पुत्र खो दिया है और मेरे हृदयमे उन्होने जो घाव कर दिया है उसपर वे पश्चात्ताप कर सके" (पृष्ठ १६७)। अपने पुत्र हरिलालके प्रति तो 'गीता'के अनासक्ति योग को साधना उनके लिए और भी दुष्कर सिद्ध हुआ। हरिलालने पिछले वर्ष मई मासमें इस्लाम धर्म अगीकार कर लिया था (देखिए खण्ड ५२ और ५३)। लेकिन अब फिर हिन्दू धर्ममे वापस आ गया था। इसपर गाधीजीने केवल यही कहा "मुझे हरिलालके बारेमें कुछ याद नही है . . . हरिलालके धर्म-परिवर्तनका मेरी नजरमे कोई महत्व नही है" (पृष्ठ ३१)। तथापि उसके बारेमे ज्यादाकुछ जाननेकी अपनी इच्छाको वे रोक नही सके और उन्होंने एक साथी कार्यकर्ताको लिखा "वह क्या बोला, कहाँ क्या हुआ वगैरह जाननेकी इच्छा होती ही है" (पृष्ठ ६१)। और जब उन्होंने यह सुना कि हरिलालका पुत्र कान्तिलाल अपने पितासे मिलने गया था और उसने ऐसा करुण दृश्य देखा कि "अपने आँसू न रोक सका और रोकर लौट आया" तो उन्होने उसे लिखा, "मुझसे दुःख छिपाकर तू मुझे कैसे बचा सकेगा? मुझे तो दु.खको सहन करना सीखना है और उसका होना है" (पृष्ठ ६२)। अपने इस दुखको वे हरिलालके 'पापोमे अपने हिस्सेकी 'सजा' मानते थे। यह सजा किसी अन्य की दी हुई नही थी, बल्कि उनके ही शब्दोंमे "मेरा

अन्त.करण मुझे सजा दे रहा है।" (पृष्ठ ९१)। उनका यह दावा बिलकुल सही था कि "आत्मवत्सर्वभूतेषु," यह मेरे लिए मात्र शास्त्रवचन नही है, मेरे जीवनकी बुनावटमे बुना गया सूत्र है" (पृष्ठ ६६)।

गाधीजीका विश्वास था कि भूल होनेपर "आत्मशुद्धिकी दिशामे लिया गया पहला कदम" उस भूलको सार्वजनिक रूपसे स्वीकार कर लेना है। उनका कहना था—"ईश्वर जिन दोषोको देखता है उन्हे उसकी सृष्टि क्यो न देखे?" इतना ही नही, "जिसके दोष प्रगट हो जाते है उसपर ईश्वरकी कृपा समझनी चाहिए" (पृष्ठ १४९)। व्यावहारिक दृष्टिसे भी देखा जाये तो व्यक्ति द्वारा सार्वजनिक रूपसे अपनी भूल स्वीकार करनेका परिणाम यह होता है कि वह दुबारा भूल नही करता, इससे उसकी रक्षा होती है और "इसीका नाम ईश्वर द्वारा की गई रक्षा है" तथा "निर्बलके बल रामका भी यही अर्थ है" (पृष्ठ १४८)। धार्मिक विषयोके सम्बन्धमे गाधीजीकी दृष्टि, बुद्धि और विश्वासमे सामजस्य स्थापित करनेकी थी। वे विश्वासका आधार केवल ऐसी चीजोमे लेते थे "जिनमे तर्कके लिए कोई स्थान नही है, जैसे कि ईश्वरकी सत्तामे," उनका कहना था, "कोई भी तर्क मुझे उस आस्थासे डिगा नही सकता। और उस बच्चीकी तरह जो सारे तर्कके प्रतिकूल बार-बार यही कहती रही" फिर भी हम सात है "मै किसी बहुत अधिक बुद्धिमान व्यक्तिसे तर्कमे परास्त होकर भी बार-बार यही कहना चाहूँगा कि "फिर भी ईश्वर है," (पृष्ठ ८६)। एक पत्र-लेखकको चेतावनी देते हुए गाधीजी कहते है कि "जिस व्यक्तिकी ईश्वरमें आस्था है उसे उन प्रेतात्माओसे दूर रहना चाहिए जिनके साथ प्रेतात्मावादी सम्पर्क स्थापित करनेकी कोशिश करते है। क्योकि इन प्रेतात्माओकी स्थिति कुछ ऐसी है जैसे कि अन्धे अन्धोको रास्ता दिखा रहे हो" और इनके साथ सम्पर्क रखनेसे "हमारे और ईश्वरके बीच रुकावट पैदा होती है।" (पृष्ठ ६)।

गाधीजी कर्मकी दृष्टिसे अपनेको शब्दशः और आध्यात्मिक रूपसे भगी मानते थे। उनका कहना था कि मुझे गलियो, कमोड और पाखानाघरोकी सफाई करनेकी बाहरी कला आती है और मै . . . अपने अन्तरगको भी साफ रखनेका प्रयत्न कर रहा हूँ, जिससे कि मै सत्यकी सही व्याख्या करनेमे समर्थ बन सकूँ। अपने इस प्रयत्नमे गाधीजीका सबसे बड़ा अवलम्ब 'रामनाम' ही था। उनसे मिलने आये एक सज्जनसे उन्होने कहा, "बचपनकी इस सीख ने मेरे अन्तर्मनमे एक विराट रूप ले लिया है। यह एक ऐसा सूर्य है जिसने गहनतम अन्धकारकी मेरी घड़ियोको आलोकित किया है।" (पृष्ठ ८५)। एक अन्य व्यक्ति द्वारा यह पूछे जानेपर कि "आपको सबसे अधिक आशा और सन्तोष किस चीजसे मिलता है।" उन्होने कहा "ईश्वरमे आस्था होनेके परिणामस्वरूप स्वय अपनेमे विश्वाससे" मिलता है (पृष्ठ ३९)।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम निम्नलिखित सस्थाओ, व्यक्तियो, पुस्तकोके प्रकाशको तथा पत्र-पत्रिकाओके आभारी हैं।

संस्थाएँ· गाधी स्मारक निधि और सग्रहालय, नेहरू स्मारक सग्रहालय और पुस्तकालय, नई दिल्ली, राष्ट्रीय अभिलेखागार, साबरमती आश्रम सरक्षक तथा स्मारक न्यास और सग्रहालय, अहमदाबाद।

व्यक्ति: श्री आनन्द तो० हिंगोरानी, इलाहाबाद, श्रीमती एफ० मेरी बार, कोट्टागिरि; श्री कनुभाई एन० मशरूवाला, अकोला; श्री कान्तिलाल गाधी, बम्बई; श्री जी० डी० बिडला, कलकत्ता, श्री डाह्याभाई एम० पटेल, अहमदाबाद, श्री तहमीना खम्भाता, बम्बई, श्री नारायण जे० सम्पत; अहमदाबाद; श्री नारायण देसाई, बारडोली; श्री परीक्षितलाल मजमूदार, सुरेन्द्रनगर, श्रीमती प्रेमाबहन कटक, सासवड; श्री भगवानजी ए० मेहता, राजकोट; श्री भगवानजी पु० पण्ड्या, वढवान, श्रीमती मनुबहन एस० मशरूवाला, बम्बई; श्रीमती मीराबहन, आस्ट्रिया, श्री मुन्नालाल जी० शाह, सेवाग्राम, श्री मूलशकर नौतमलाल, वाकानेर, मैडेलिन रोलाँ, स्विट्जरलैंड; श्री रामनारायण एन० पाठक, भावनगर, श्रीमती लीलावती आसर, बम्बई; श्रीमती विजयाबहन एम० पंचोली, सणोसरा; श्रीमती शारदाबहन गो० चोखावाला, अहमदाबाद और श्रीमती शारदाबहन शाह, सुरेन्द्रनगर।

पुस्तकें: 'इसिडेन्ट्स ऑफ गाधीजीज लाइफ,' 'ए बच ऑफ ओल्ड लेटर्स', 'कान्टेम्परेरी इंडियन फिलॉसफी', 'द एपिक ऑफ त्रावणकोर', 'द रिलीजन्स ऑफ द वर्ल्ड', 'पाँचवे पुत्रको बापूके आशीर्वाद', 'बापुना पत्रो–२ : सरदार वल्लभभाईने', 'बापुना पत्रो–६ : ग० स्व० गगाबहनने', 'बापुनी प्रसादी', 'महात्मा : द लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गाधी', भाग – ४, 'मैमोरीज़ एण्ड रिफलैक्शस', 'मोटाना मन और हिस्ट्री ऑफ वेज एडजस्टमेंट्स इन द अहमदाबाद इडस्ट्रीज', भाग–४।

पत्र-पत्रिकाएँ· 'गुजराती', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'हरिजन', 'हरिजनबन्धु', 'हरिजन-सेवक', 'हिन्दुस्तान टाइम्स', और 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ-सम्बन्धी सुविधाओके लिए सूचना एव प्रसारण मन्त्रालयके अनुसन्धान तथा सन्दर्भ विभाग, नई दिल्ली, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली और श्री प्यारेलाल नय्यर, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र हैं। प्रलेखोकी फोटोनकल तैयार करनेमें मदद देनेके लिए हम सूचना एवं प्रसारण मत्रालयके फोटो-विभाग, नई दिल्लीके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमे गाधीजीके स्वाक्षरोमें-मिली है, उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरो द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमे हिज्जोकी स्पष्ट भूले सुधार दी गई है।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय उसे यथासम्भव मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद हमें प्राप्त हो सके है, उनका हमने मूलसे मिलान और सशोधन करनेके बाद उपयोग किया है। नामोको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोके उच्चारणमे संशय था, उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गाधीजीने अपने गुजराती लेखोमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोमे दिये गये अंश सम्पादकीय है। गाधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अश मूल रूपमे उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमे छापा गया है। लेकिन यदि ऐसा कोई अश उन्होने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोडकर साधारण टाइपमे छापा गया है। भाषणोकी परोक्ष रिपोर्टे तथा वे शब्द जो गाधीजीके कहे हुए नही है, बिना हाशिया छोडे गहरी स्याहीमे छापे गये है। भाषणो और भेटकी रिपोर्टोके उन अशोमे जो गाधीजीके नही है, कुछ परिवर्तन किया गया है और कही-कही कुछ छोड भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दाये कोनेमे ऊपर दे दी गई है, जहाँ वह उपलब्ध नही है, वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोमे दी गई है और आवश्यक होने पर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोमे केवल मास या वर्षका उल्लेख है, उन्हे आवश्यकतानुसार मास तथा वर्षके अन्तमे रखा गया है। शीर्षकके अन्तमे साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गाधीजीकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ़ आधार पर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नही हुआ है, वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये है।

साधन-सूत्रोमें 'एस० एन०' सकेत साबरमती सग्रहालय, अहमदाबादमे उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गाधी स्मारक निधि और सग्रहालय, नई दिल्लीमे उपलब्ध कागज-पत्रोंका, 'एम० एम० यू०' गाधी स्मारक निधि और सग्रहालयकी मोबाइल माइक्रोफिल्म यूनिट द्वारा तैयार कराई गई रीलोका, 'एस० जी०' सेवाग्राममें उपलब्ध सामग्रीका और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाधी) द्वारा सगृहीत पत्रोका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये है। अन्तमे साधन-सूत्रोकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई है।

विषय-सूची

अवशिष्टांश

परिशिष्ट

१. पत्र : अमृतकौरको

भुसावल जाते हुए ट्रेनसे
३ नवम्बर, १९३६

मूर्खा रानी,

यह तुमने बडा अच्छा किया कि मेरी ओरसे कोई भी पत्र न मिलनेके बावजूद मुझे पत्र भेजती रही। सेगाँव छोडनेके बाद मुझे बिलकुल समय नही मिल पाया और अहमदाबादमे तो मै बहुत ही क्लान्त हो गया था। पिछली रात मुझे बड़ौदामे तैयबजी और उनके परिवारके लोगोसे मिलनेके लिए रातके १२ बजे गाड़ीसे उतरना पडा और फिर सूरतके लिए रात ढाई बजे ट्रेन पकडनी पडी, इसलिए मुश्किलसे तीन घण्टे ही सो पाया। बडौदा जाते हुए मुझे गाडी मे महादेवकी टिप्पणियाँ जाँचनी थी, इसलिए गाडीमे भी सोनेके लिए समय नही मिला। ईश्वरकी कृपासे अब वह सब निबट गया है और मैंने विश्रामकी यह कमी पूरी कर ली है। मै साढ़े आठ बजे सुबहसे बीच-बीचमे सोता ही रहा हूँ। मैंने बस अभी-अभी (४ बजे शामको) पत्रोको निबटाना शुरू किया है।

लेडी विद्यागौरी, हसा[1] तथा अन्य लोगोके साथ काफी देरतक मेरी गपशप चली। भेटके बाद मुझे मृदुला[2]से बात करनेका समय नही मिल पाया और कान्फरेसके विषयमें तो बिलकुल ही नही। अब मैने उसे पत्र[3] लिख दिया है।

मुझे खुशी हुई कि श[म्मी][4] तुम्हे मेरे पास दो महीनेके लिए छोड़नेको तैयार हो गया है। हमे आशा रखनी और ईश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिए कि मेरे साथ रहनेसे तुम्हें स्वास्थ्य-लाभ होगा। बा की कुटिया बन रही है। वह मेरे साथ दिल्ली से गई थी। वह आज अहमदाबादसे बम्बईके लिए चल देगी और लगभग हफ्ते-भर रामदासके साथ रहेगी। रामदासकी तबीयत बहुत ठीक नही रहती। वह वहाँ करीब एक हफ्ते रहेगी। आज रात महादेव भी बम्बई जा रहा है। उसे हल्का-सा बुखार हो गया था। मै इतना अधिक कार्य-व्यस्त रहने पर भी काफी चुस्त-दुरुस्त बना रहा हूँ। बडा अच्छा होता, अगर तुम कुछ समारोहोमे मेरे साथ होती। समारोह दिलचस्प थे।

१. हंसा मेहता।
२. मृदुला साराभाई।
३. पत्र उपलब्ध नही है।
४. अमृतकौरके भाई, कर्नल शमशेर सिंह।

मैं राजकोट अपनी बहनसे मिलने नही गया था। वैसे वह भी वही है। मैं विशेषकर अपने वृद्ध चचेरे भाई[1] और उनकी पत्नी[2] — कनु[3] के दादा-दादीसे मिलने गया था जिन्होंने अपने सारे बच्चे देशके कामके लिए समर्पित कर दिये हैं।

बेशक, फैजपुरमे तुम मेरे साथ ही ठहरोगी।

सेगाँवमे दोनो मरीज[4] ठीक चल रहे हैं। उनको अब परिचर्याकी जरूरत नही है। अब वे अपने ज्यादातर काम खुद ही करने लगे हैं। हम सबको कैसे कठिन समयसे गुजरना पड़ा। अन्त भला तो सब भला।

सस्नेह,

अत्याचारी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७५०) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६९०६ से भी।

२. पत्र : कस्तूरभाई लालभाईको

ट्रेनसे
३ नवम्बर, १९३६

भाई कस्तूरभाई,

गोरधनभाईकी माँगसे सम्बन्धित कागज मैंने पढ लिये। उन्हे पैसा माँगनेका कोई अधिकार नही है। वे नडियादकी मजदूर-शालाके लिए मददकी माँग कर सकते हैं, लेकिन उसके हिसाब-किताबका निरीक्षण होना चाहिए और उस शालाका सारा काम मजूर महाजन और तुम्हारे मण्डलकी देखरेखमें होना चाहिए। यह मेरी दृढ राय है। इस पत्र-व्यवहारसे प्रकट होता है कि प्रस्तावके अनुसार इस बारेमे तुरन्त न्यास-पत्र तैयार होना चाहिए।

कागजात वापस भेज रहा हूँ।

बापू

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य : प्यारेलाल।

१ और २. खुशालचन्द गांधी और देवकुँवर।

३. नारणदास गांधीके द्वितीय पुत्र।

४. मीराबहन और अमृतलाल टी० नानावटी; देखिए खण्ड ६३, पृ० ३८१, ३८३, ३८९, ३९६ और ३९९।

३. पत्र : कनु गांधीको

सेगाँव
४ नवम्बर, १९३६

चि० कनैयो,

मेरी तकली और कुछ पुस्तकें—'रामायण' आदि—जो वहाँ है, भेज देना। 'मेघदूत' आदि और छोटी पेन्सिल भी सामानमें नहीं मिली। ये ऐसी चीजें नहीं है, जिन्हें खोजना पड़े। जब लीलावती यहाँ आये, तब पेटी न लाये। बस, कामके कपड़े वगैरह ही लाये।

मेरे कपड़ोंमें अगर वहाँ कुछ गरम कपड़े हो तो वे मुझे चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

४. पत्र : परीक्षितलाल एल० मजमूदारको

४ नवम्बर, १९३६

भाई परीक्षितलाल,

हरिजन-आश्रमोंकी आर्थिक स्थितिके सम्बन्धमें मैंने जो उत्तर दिया है, उसके अनुसार काम करना शुरू कर देना। इस मामलेमें हार माननेसे बात नहीं बनेगी। मेरी बताई दिशामें तुरन्त काम होना चाहिए। और फिर श्रीजीके मन्दिरकी पेटीकी तरह वह चलता ही रहना चाहिए। श्रीजीकी पेटीकी बात जानते हो न?

तुमने जो प्रश्न पूछा है, 'हरिजनबन्धु'में ऐसे प्रश्नोंकी चर्चा करनेकी बहुत इच्छा होती है। लेकिन क्या करूँ, कर नहीं पाता।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०२९) से। सी० डब्ल्यू० १४० से. भी, सौजन्य : परीक्षितलाल एल० मजमूदार।

५. पत्र : नरहरि द्वा० परीखको

४ नवम्बर, १९३६

चि० नरहरि,

इस बारकी भागदौड़ और भीड़ तो गजबकी थी। दुर्घटनाएँ भी उसी प्रमाणमे हुईं।

आश्रम तो देख ही नही सका। कैसे देख सकता था, मन तो सेगाँवमे पड़ा था।

राजाजीकी शिकायते आती ही रहती है। साथका पत्र उन्हे देना। भावनगरके जोशीसे तुम्हारे साथ अपनी योजनाकी चर्चा करनेको कहा है। उसमे कुछ सार हो तो बहुत अच्छा। मुझे लिखना।

साथके पत्र यथास्थान पहुँचा देना।

लड़कियोके साथ न बैठ पानेकी बात अभी तक अखर रही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९०९९)से।

६. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव

५ नवम्बर, १९३६

मूर्खा रानी,

हाँ, मै कल भला-चगा लौट आया और दोनो मरीजो को मैने स्वस्थ हालतमे पाया।

आशा है, तुमको मेरा वह पत्र[1] मिल गया होगा जो मैने ट्रेनसे लिखा और भुसावलमे डाकमे डाला था।

अधिक लिखनेका बिलकुल समय नही है।

सस्नेह,

अत्याचारी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७५१) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६९०७ से भी।

1. देखिए पृ० १।

७. पत्र : अमतुस्सलामको

सेगाँव,
५ नवम्बर, १९३६

चि० अमतुलसलाम,

मैं उत्सुकतापूर्वक तेरे पत्रकी राह देख रहा था; आज मिला। मैंने उसे स्वय ही पढ़ा। एकाध शब्द ही न पढ़ा गया होगा। बारी[1] से कहना कि शहद मिल गया था, लेकिन मैं समझा नही था कि उसने भेजा था। आशा है, वह अच्छा होगा।

मै तेरी तबीयतके बारेमे समझ गया। मैंने कहा था कि जब तू अच्छी हो जाये, तब सेगाँव आ सकती है। इसका यह अर्थ कैसे हुआ कि तुझे खुर्शेदबहनका काम नही करना चाहिए? यदि तू वह काम करे तो मुझे अच्छा लगेगा। मै तुझे आनेकी इजाजत तो देता हूँ, लेकिन यदि तू खुर्शेदबहनके काममे लग जाये तो मुझे अच्छा लगेगा। लेकिन मुझे सबसे अच्छा तो यह लगेगा कि तेरी तबीयत पूरी तरह ठीक हो जाये। नाखून तक ठीक हो जाना चाहिए। यदि तू अच्छी हो जायेगी तो औरोके दु:खमे भाग ले सकेगी। और यदि अच्छी नही होगी तो दूसरोको भी दु.खी करेगी।

वा वहाँ हो आयेगी। दिल्ली से अच्छा समाचार मिला है। मनु वही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३६०) से।

८. पत्र : जे० पी० भणसालीको

५ नवम्बर, १९३६

चि० भणसाली,

तुम्हारा पत्र मिला। पढ़कर बहुत खुशी हुई। मै तुम्हारा एक भी व्रत-भग नही कराना चाहता। किन्तु व्रतका अर्थ ही होता है सुव्रत, अर्थात् ऐसा व्रत जो लेनेके योग्य हो। तुम्हारा कच्चे और श्वेतसारयुक्त पदार्थ ही खानेका व्रत कुव्रत है। जो कच्चे केले खाये, उसे राक्षस समझना चाहिए। यही बात कच्चे गेहूँके बारेमे भी है। जब सब-कुछ मुझे सौप दिया है, तो फिर कुछ बचा रखनेका क्या मतलब? जब इतना विश्वास है कि अपना भविष्य मुझे सौप सकते हो, तो वर्तमान क्यो नही सौप सकते? तुमसे ही क्यो, मैं तो सबसे तपश्चर्याकी आशा करता हूँ। अत मैं बेखटके तुम्हारी खुराकमे जो आवश्यक परिवर्तन करना चाहता हूँ, वे तुम्हारी जीभको

१. अब्दुल बारी, अमतुस्सलामके भाई।

सुख देनेके लिए नही, बल्कि इसलिए कि तुम्हारे शरीरको मजबूत बनाकर मुझे तुमसे कठिन काम लेना है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

९. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

५ नवम्बर, १९३६

भाई बापा,

गुजराती पत्र तो नही मिला, अग्रेजीका आज मिला। तार कल जायेगा। यह डाक भी कल ही जायेगी।

मुझे लगता है, गोपनीय पत्र लिखना भी बहुत जोखिमका काम है। हमे जो करना हो, वह हम घोषणा[1] हो जानेके बाद ही कर सकते है। घोषणा होनेके बाद भी उचित यही होगा कि उत्सव त्रावणकोरमे ही किया जाये। त्रावणकोरके बाहर उसे बडा रूप देना ज्यादती होगी। हाँ, घोषणा हमारी धारणाके अनुरूप हो, तो पूरे हिन्दुस्तानमे एक अच्छा आन्दोलन किया जा सकता है। जो हो, हम अधीर होकर उतावलीमें कुछ न करे। सब मन्दिर खुल जायेगे, ऐसा तो मैं समझता नही। किन्तु यदि मुख्य मन्दिर न खुले तो वह धर्म नही, कोरी व्यवहार-कुशलता होगी। धर्ममें बनियागिरी नही चलती। जरूरी है कि हम मर्यादा बनाये रखे।

बापू

[पुनश्च.]

तार[2]की नकल सलग्न है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११७१) से।

१०. पत्र : वकीलको

सेगाँव, वर्धा
६ नवम्बर, १९३६

प्रिय वकील,

तुम्हारा पत्र अभी-अभी मिला; ऐसा निर्मल पत्र लिखनेके लिए मेरा धन्यवाद लीजिए। मै वर्षोसे प्रेतात्मावादियोके सम्पर्कमे आता रहा हूँ और मेरा खयाल है ऋषिके भी। उनके अनुभवो पर मैं अविश्वास नही करता। लेकिन मुझे मालूम है

१. त्रावणकोरके महाराजा हरिजनोंके लिए मन्दिरोंके द्वार खोलनेकी घोषणा करनेवाले थे। देखिए "हिन्दू नरेशों और उनके सलाहकारोंके लिए एक अनुकरणीय उदाहरण", १७-११-१९३६।

२. तार उपलब्ध नहीं है।

कि जो प्रेतात्माएँ उनके साथ बातचीत करती है, वे खुद भी गलती कर सकती है। एक प्रकारसे अन्धे अन्धोको रास्ता दिखा रहे हो, ऐसी उनकी स्थिति है। इन प्रेतात्मावादियोके इस कथनकी कि ऐसी बातचीतसे उन्हे कोई नुकसान नही होता, कोई कीमत नही है। मै ऐसे किस्से रोज ही देखता हूँ जिनमे ऐसे लोगोको नुकसान हुआ है। मै अपने दु खद अनुभवसे जानता हूँ कि कुछ लोग तो पागल तक हो गये है। और जिन लोगोका दिमाग दुरुस्त रह गया दिखाई पड़ता है, उन्हे भी निश्चित रूपसे मानसिक क्षति उठानी पड़ी है।

यदि ईश्वरमे आस्था हो तो प्रेतात्माओसे दूर रहना चाहिए, क्योकि नि सन्देह भूत-प्रेतोसे उच्चतर स्तरकी आत्माएँ भी है ही। प्रेतात्माओके साथ सम्पर्क रखनेसे हमारे और ईश्वरके बीच रुकावट पैदा होती है। अब इस विषय पर और अधिक बहसमे मै नही पड़ना चाहूँगा।

मै जानना चाहूँगा कि तुम्हारे मार्गदर्शकने तुम्हें गुमराह क्यों किया और दूसरोके लिए इतनी परेशानीका कारण क्यो बना।

तुम जैसा चाहो, तुम्हारे पत्रोको वैसा ही समझा जायेगा। क्या तुम चाहते हो कि उसे महादेव, प्यारेलाल आदि को न दिखाया जाये? तुम्हारी इच्छा पूरी तरह मान्य होगी।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल-पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल।

११. पत्र : नरहरि द्वा० परीखको

६ नवम्बर, १९३६

चि० नरहरि,

इस पत्रके साथ लालजीके पत्र है, उनपर विचार करना। पहले तो लालजीको उस लडकी[1] को तलाक देना चाहिए। हमे उसके माता-पितासे मिलना चाहिए। उस लड़कीसे भी बात करनी चाहिए। लालजीके पितासे मिलना चाहिए। लक्ष्मीने सीधे लालजीसे बात की, यह भी मुझे अजीब लगा। मुझे नही लगता कि इस प्रस्तावसे अनायास सहमत हुआ जा सकता है। यदि सब काम सही ढगसे हो जाये तो यह सम्बन्ध होनेसे मुझे कोई दु.ख नही होगा। मामा[2] कैसे राजी हो गये, समझमे नही आता। जरा बारीकीसे पूछताछ करके मुझे लिखना। लक्ष्मीदास, परीक्षितलाल वगैरह से तो तुम विचार-विमर्श करोगे ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९१००) से।

१. लालजी की पहली पत्नी।
२. वी० एल० फड़के।

१२. पत्र : लालजीभाईको

६ नवम्बर, १९३६

चि० लालजी,

मैंने तेरा पत्र नरहरिभाईको भेज दिया है। उनसे सब-कुछ कह देना। जितना तू समझता है, काम उतना सरल नही है। तुझे उस लडकीके पूरे-पूरे हितका विचार करना है। साथ ही उसके माता-पिता तथा अपने माता-पिताकी भावनाका भी विचार करना चाहिए। उस लड़कीसे तुझे सन्तोष क्यो नही है? उसके प्रति तुझे क्या आपत्ति है? तूने तो मर्यादा-धर्म सीखा है। मर्यादामे रहते हुए यह सम्बन्ध होता हो, तो मैं भला आपत्ति क्यो करूँगा?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२९७) से।

१३. तार : आर० श्रीनिवासन्को

[६ नवम्बर, १९३६
के पश्चात्][1]

मेरी सलाहको ठीकसे नही समझा गया। हरिजनोको दी गई सलाह तो मैं फिर दोहराता हूँ, लेकिन हरिजन लोग चुनावके दौरान जिन राजनीतिक सस्थाओके पास मार्ग-दर्शनके लिए जायें, उनके कार्योमें हस्तक्षेप करनेका साहस मैं नही कर सकता। विश्वासका ऐसा वातावरण तैयार करना तो आपका काम है जिससे पैनलके लिए चार योग्यतम सदस्योके अलावा कोई सामने ही न आये।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २०-११-१९३६

१. यह आर० श्रीनिवासन्के ६ नवम्बरके तारके उत्तरमें भेजा गया था, जो अनुसूचित जातियोंके चुनावोंमें कांग्रेसके हस्तक्षेपके बारेमें था।

१४. रेशम और कपास

इन दिनो हाथसे कते-बुने रेशमी कपडे और रुईसे हाथसे कात-बुनकर तैयार की गई खादीके बीच एक सूक्ष्म ढंगकी होड चल रही है। जहाँतक अ० भा० च० संघका सम्बन्ध है, इस मामलेका निबटारा बहुत पहले हो चुका है। सघके प्रमाण-पत्र-प्राप्त खादी-भण्डारोको अपने यहाँ देशी रेशमी कपड़े रखनेकी इजाजत दे दी गई थी। लेकिन खादीके और अधिक ग्राहक आकर्षित करने तथा रेशमी कपडोपर ऊँची कीमते वसूल करके खादीके व्यापारमे होनेवाले घाटेको पूरा कर सकनेकी सीमा तक ही यह अनुमति दी गई थी। खादी-भण्डारोके अत्युत्साही प्रबन्धकोने अकसर इस मर्यादाका उल्लघन किया, किन्तु उनके इस व्यवहारको कभी भी अ० भा० च० सघका अनुमोदन प्राप्त नही हुआ। अब रेशमी कपडोके निर्माताओने देखा कि आन्ध्र-खादीको तो वे बडी आसानीसे अपदस्थ कर सकते है, क्योकि आन्ध्र-साडियाँ वे दूसरोके मुकाबले कम कीमतपर बेच सकते है। फिर अब तो रेशमी कपडेके व्यापारी अपने मालको खपानेमे अ० भा० च० सघको एक तरहसे ललकारते हुए भी पाये जाते है। यहाँतक तो इन व्यापारियोके खिलाफ कुछ नही कहा जा सकता, क्योकि कोई संघकी नीतिकी खूबियोको पहचानकर माने तो बात और है, वैसे उस नीतिसे कोई बँधा हुआ नही है। लेकिन बम्बईमे और इसी तरह शायद अन्य स्थानोमे भी रेशमी कपडेके व्यापारियोको इस ढगसे व्यापार करते देखा गया है जिससे भोली-भाली जनताको यह भ्रम हो जाता है कि ये व्यापारी अपना व्यापार अ० भा० च० सघकी सहमतिसे और खादीके हकमे कर रहे है।

इसलिए लोगोको इस बातके लिए सावधान कर देना जरूरी है कि वे ऐसे कूट उपायोसे धोखा न खाये। उन्हे मालूम होना चाहिए कि अ० भा० च० सघने कोई मनमानी नीति नही अपनाई है। जब खादीका पुनरुद्धार आरम्भ किया गया, उस समय भी देशी रेशमी कपड़ेका कारोबार मिट नही गया था। जहाँ खादी करोड़ो लोगोको रोजगार दे सकती है, वहाँ रेशमी कपड़ा मुश्किलसे चन्द हजार लोगोको ही रोजगार दे सकता है। खादी गरीब और अमीर दोनोके लिए एक आवश्यकता है। रेशमी कपडा उन बहुत थोड़े-से लोगोकी ही आवश्यकता है जो एक धार्मिक भावनाका निर्वाह करनेके लिए कुछ विशेष अवसरोपर ही रेशमी कपडे पहननेका आग्रह रखते है। इसलिए जब रेशमी और खादीके कपडोमें से किसी एकको चुननेका प्रश्न उठता हो तो जो लोग हृदयसे करोड़ो क्षुधार्त्त लोगोके कल्याणकामी है, वे स्वभावत: हमेशा खादीको ही चुनेगे। अखिल भारतीय चरखा सघके उद्देश्यका ही यह तकाजा है कि वह रुईसे बनी खादीको प्रथम स्थान दे। यहाँ मैंने 'रुईसे बनी खादी' शब्दोका प्रयोग इसलिए किया है कि उन लोगोके मनमे कोई उलझन पैदा न हो

जिन्होने खादीकी यह व्यापकतर परिभाषा देखी है कि रुई, रेशम या ऊनको हाथसे कात-बुनकर तैयार किया गया कपडा खादी है। यह व्यापक परिभाषा इसलिए आवश्यक थी और है कि हाथसे कते-बुने ऊनी और रेशमी कपडेको भी उस हदतक खादीकी श्रेणीमें रखनेका निश्चय किया गया था जिस हदतक कि वह रुई के हाथसे कते-बुने कपडेको उसके समुचित स्थानसे हटानेके बजाय उसके पूरकका काम करता है। उदाहरणके लिए, सर्दीके मौसममें बहुत-से खादीधारी लोग ऊनी या रेशमी कपडेका प्रयोग करना चाहते है, क्योकि यह कपड़ा ज्यादा गर्म होता है।

इन पक्तियोमे मैंने जिस नीतिकी हिमायत की है उसमे रेशम कातनेवालो और रेशमके सूतसे कपड़ा बुननेवालोके कल्याणकी उपेक्षा की गई है, कोई भी अपने मनमे यह धारणा न बनाये। ऐसी बात तो मेरे मनमें कभी आ ही नही सकती। कारण, मैं जानता हूँ कि अगर खादी मिट जायेगी तो देशी रेशमी कपडा भी अपने-आप मिट जायेगा। खादीके मिट जानेपर जापानी रेशमी कपडे और पश्चिमी देशोके कृत्रिम और नकली रेशमी कपडेकी ऐसी भरमार होगी कि देशी कपड़ेका नामोनिशान नही रह जायेगा। जिस चीजने कश्मीरके ऊनी वस्त्रो और असम व बगाल के रेशमी कपडेको अपने-अपने उचित स्थानपर प्रतिष्ठित होने योग्य बनाया वह खादी-भावना ही है। अ० भा० च० सघकी दूरदर्शितापूर्ण नीति ही आज रुईसे तैयार खादीकी तमाम विघ्न-बाधाओसे रक्षा करते हुए, हाथसे कते-बुने देशी-ऊनी और रेशमी कपड़ेकी सहज ही रक्षा कर रही है। इन तीनोको पारस्परिक होडमे लानेका मतलब तीनोंकी कब्र खोदना है। और अन्तमें, यह याद रखिए कि अगर रुईकी खादी जीवित रहती है लेकिन रेशमी खादी मिट जाती है, तो रेशमी खादीके मिटनेसे जो लोग बेकार होगे वे रुईकी कताई-बुनाईका काम आसानीसे अपना सकते है। लेकिन अगर रुईका स्थान रेशम ले ले तो रुईकी खादीके मिटनेसे जो लोग बेरोजगार होगे या जिनके बेरोजगार हो जानेकी सम्भावना उपस्थित हो जायेगी उन करोड़ो लोगोको रेशमकी खादी रोजगार नही दे सकती। इसलिए मुझे तो दरिद्रनारायणसे प्रेम करनेवाले सभी लोगोका यह स्पष्ट कर्त्तव्य जान पडता है कि जहाँ-कही उनके सामने चुनावका प्रश्न आये, वे रुईकी खादीको ही चुनें। अभी कुछ दिनोतक रुईकी नफीस खादीपर वैसे ही नफीस रेशमी वस्त्रोकी तुलनामे अधिक कीमत देना आगे चलकर आर्थिक दृष्टिसे लाभप्रद ही साबित होगा।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, ७-११-१९३६

१५. एक अनिवार्य आवश्यकता

हरिजनोंकी कारगर ढगसे सेवा करनेके लिए — वल्कि सच तो यह है कि दीनो, अनाथो, असहायोकी किसी भी तरहसे सेवा करनेके लिए — जो एक बात बेहद जरूरी है, वह है, सेवकके चरित्रकी शुद्धता। यदि उसमे चारित्रिक शुद्धता नही है, तो उसकी ऊँची-से-ऊँची बौद्धिक तथा प्रबन्धकीय योग्यता भी किसी कामकी नही। उलटे, वह योग्यता शायद बाधक ही साबित हो। किन्तु यदि किसीका चरित्र शुद्ध है और साथ ही सेवाकी लगन भी है, तो उसमे अपेक्षित बौद्धिक तथा व्यवस्थाविषयक क्षमताका भी विकास होना या उसे ऐसी क्षमता प्राप्त हो जाना निश्चित है। दो विख्यात हरिजन-सेवकोके गम्भीर चारित्रिक दोषोके अत्यन्त दु खद उदाहरण मेरे सामने आये है, और इसीसे मेरे मनमे ऐसे विचार उठ रहे है। जो लोग इन दोनोको जानते थे, वे सब इन्हे सभी तरहके सन्देहोसे परे और निष्कलक चरित्रके व्यक्ति मानते थे। इन दोनोने ऐसा आचरण किया जो इनके समान उच्च-पदस्थ लोगोके लिए सर्वथा अशोभनीय था। निस्सन्देह ये हृदयके अँधेरे कोनेमे किसी घातक सर्पकी तरह छिपी बैठी वासनाके शिकार थे। लेकिन हम तो तुच्छ मरणशील प्राणी है, सो किसीके हृदयमे क्या है, यह जानना हमारे बसकी बात नही है। हम तो अपने मानव बन्धुओके बारेमे केवल उनके आचरणके आधारपर ही कोई धारणा बना सकते है, वल्कि हमे इसी आधारपर अपनी धारणा बनानी है, क्योकि हम केवल उनके आचरणको ही तो देख सकते है और उसीके सम्बन्धमे कुछ कर सकते है। इन दो व्यक्तियोका आचरण ऐसा है कि अब इनका हरिजन सेवक सघमे सेवकोकी हैसियतसे रहना असम्भव हो गया है। इनका सघसे हट जाना कोई सजा नही होगी। इनका हट जाना स्वयं इनकी सुरक्षाके लिए भी आवश्यक होगा और अगर इस दृष्टिसे आवश्यक न भी हो तो भी सघ तथा उसके उद्देश्यको सुरक्षित रखनेके लिए तो आवश्यक होगा ही। यह बात मै निरापद रूपसे कह सकता हूँ कि इनके खिलाफ कोई कारंवाई करना सघके लिए अनावश्यक होगा। आशा करता हूँ कि ये सेवक स्वय ही सघ और सारी सार्वजनिक प्रवृत्तियोसे अलग हो जायेगे। सेवाके कर्त्तव्यसे किसीको वचित नही किया जाता। जिस व्यक्तिका भारी नैतिक पतन हुआ हो लेकिन बादमे जिसका विवेक जाग गया हो उसे चाहे कही रखा जाये, वह सेवा करेगा ही। उसके अपने चरित्रका सुधार ही समाजकी एक सेवा होगी। लेकिन स्वत और लगभग गुप्त रूपसे सेवा करना किसी सगठनमे रहने और उसकी तमाम सुविधाओका उपभोग करनेसे बिलकुल अलग बात है। सार्वजनिक जीवनमे इस तरह पुन प्रवेश करनेके लिए फिरसे जनताका पूर्ण विश्वास प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है।

आधुनिक सार्वजनिक जीवनमें यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि जबतक कोई लोक-सेवक किसी व्यवस्था-तन्त्रकी एक इकाईकी तरह कुशलतापूर्वक अपना काम करता है, तबतक उसके चरित्रकी ओर कोई भी ध्यान न दिया जाये। कहते हैं कि चरित्र तो हर आदमीका एक निजी मामला है। यद्यपि मैं जानता हूँ कि ऐसे दृष्टिकोणसे अकसर काम लिया जाता रहा है, लेकिन मैं उसे कभी पसन्द नही कर पाया हूँ — उसे अपनाना तो दूरकी बात रही। व्यक्तिगत चरित्रको कोई महत्त्व न देनेवाली सस्थाओको मैंने बहुत गम्भीर कठिनाइयोमे पड़ते देखा है। फिर भी, पाठकोने यह बात लक्ष्य की होगी कि अभी मेरा जो प्रयोजन है उसकी दृष्टिसे मैंने अपनी इस मान्यताके प्रयोगको हरिजन सेवक सघ-जैसी उन संस्थाओतक ही सीमित रखा है जो करोड़ो मूक मानवोके हितोंकी संरक्षक बनी हुई हैं। मुझे इस बातमें किसी प्रकारका कोई सन्देह नही है कि ऐसी सेवा करनेके लिए सेवकके चरित्रका सर्वथा निष्कलक होना एक अनिवार्य आवश्यकता है। हरिजन-कार्य अथवा खादीके काम या ग्रामोद्योगके कार्यमे लगे सेवक निश्चय ही ऐसे सीधे-सादे, भोले-भाले और नादान स्त्री-पुरुषोके निकटतम सम्पर्कमें आयेंगे जिन्हे समझदारीमें बच्चोके बराबर ही कहा जा सकता है। यदि उनमें चरित्र-बल नही होगा तो अन्तत. वे विफल जरूर होंगे और इसका परिणाम यह होगा कि वे जिस उद्देश्यके लिए काम कर रहे हैं, वह उस हलकेमें जिसमे लोग उन्हे जानते हैं, सदाके लिए अभिशप्त होकर रह जायेगा। यह बात मैं ऐसे मामलोके अपने अनुभवके आधारपर लिख रहा हूँ। सौभाग्यकी बात है कि ऐसी सेवाओमे लगे लोगोकी सख्याको देखते हुए ऐसे मामले बहुत कम ही सामने आते हैं। फिर भी इतने तो आते ही है कि ऐसी सेवाओमें लगी सस्थाओ और कार्यकर्त्ताओको सार्वजनिक रूपसे सचेत-सावधान कर देनेकी जरूरत है। कार्यकर्त्ता इस सम्बन्धमें जितने भी सतर्क या सन्नद्ध रहे, उतना ही कम है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ७-११-१९३६

१६. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
७ नवम्बर, १९३६

मूर्खा रानी,

तुम्हारा पत्र मिला। आशा है, यह पत्र तुम्हे शिमलामे मिल जायेगा।

यह तो बहुत बडी खुशखबरी है कि शम्मीने पूरे सप्ताह-भर एस्पिरिन नही ली और तुमने इतनी बडी कृपा की कि शिमलाके पूरे मौसमके दौरान सिर्फ दो टिकियाँ ही ली। हमे आशा करनी चाहिए कि अब तुम्हे पूरी आयुमे, जो सौ साल होनी चाहिए, उन दो टिकियाओकी भी जरूरत नही पडेगी।

तुम्हारी खादीकी बिक्री तो निश्चय ही मेरी अपेक्षाओसे भी अधिक रही। और यह सब सिर्फ एक स्त्रीके प्रयत्नसे हुआ — ऐसी स्त्रीके प्रयत्नसे जो शरीरसे दुर्बल और मस्तिष्कसे मूर्ख है ! ! ! फिर कोई आश्चर्य नही कि शिमलाकी अगली बहार [सीजन] के दिनोमे तुम्हारे वहाँ न रहनेकी सम्भावनाको लेकर वहाँके बेचारे खादी-सेवक परेशान हो रहे हो। लेकिन भविष्यकी चिन्ता क्या करना! वह तो ईश्वरके हाथमे है। तुम जहाँ कही भी रहोगी, अपना जौहर दिखाओगी ही।

नानावटी अब इतना अच्छा हो गया है कि आज वह यहाँसे अपने परिवार-वालोके पास कुछ दिनोके लिए जा रहा है। पूरी तरह तन्दुरुस्त होनेतक वह उन्हीके बीच रहेगा। मीरा प्रफुल्ल है। बलवन्तसिंह कमजोर है। जब उसे बहुत ज्यादा मेहनत न करनी चाहिए तब भी वह करता ही है और जब चपाती बिलकुल नही खानी चाहिए तब भी खानेसे बाज नही आता।

थर्मस और वे शानदार सेव खरीदकर तुमने फिजूलखर्ची की। लेकिन अगर फिजूलखर्ची न करो तो फिर राजकुमारी कैसे रहोगी। तुम दूसरोपर खर्च करती हो, इसीसे फिजूलखर्च न मानी जाओ — ऐसा नही है। यदि तुम स्वयको, अपने शरीर-सहित, अपनी सारी सम्पत्तिकी न्यासी मानो — और तुम्हे यही मानना चाहिए — तो तुम अपने न्यासके हितमे भी उसका व्यय करनेमे सन्तुलन रखोगी। इस सीधे सरल सत्यको तुम्हे दार्शनिक भावसे हँसकर नही टाल देना चाहए। गरीबोका का ध्यान रखते हुए उस पैसेकी कीमत याद करो। उसका मतलब है ६४ बारका पेट-भर आहार और यह आहार करोडो लोगोको नही मिलता। सेगाँवमे बहुत-से लोग महीना-भर केवल एक ही रुपयेपर, अर्थात् प्रति-दिन एक-एक पैसेका भोजन केवल दो ही बार करके जीते है, लेकिन करोडोको इतना भी नही मिलता। तब तुम और मैं, जिन्हे यह बात उतनी ही अच्छी तरह मालूम है जितनी अच्छी तरह

यह मालूम है कि मैं यह पत्र लिख रहा हूँ, एक पैसेका भी अपव्यय कैसे कर सकते हैं? यदि तुम मेरी कल्पनाकी आदर्श महिला या आदर्श महिलाओंमें से एक बनना चाहती हो तो तुम्हें अपनी सभी क्षमताओंका विकास करना होगा और इन क्षमताओंमें हिसाब-किताब रखना भी शामिल है। और तुम्हारी हिन्दीका क्या हाल है?

क्या तुम हिन्दीमें 'ग्रन्थ साहिब'की कोई ऐसी अच्छी प्रति मुझे भेजोगी जिसके साथ अनुवाद भी हो और जो साथ लेकर चलनेकी दृष्टिसे सुविधाजनक हो? जल्दी करने और कोई महँगी प्रति भेजनेकी जरूरत नहीं है। अगर कोई सस्ती प्रति प्राप्त करना तुम्हारी राजकुमारीवाली शानके खिलाफ हो या तुम्हारी क्षमतासे बाहर हो, तो यह काम मत करना।

कुमारप्पाकी पाण्डुलिपि मैंने समीक्षार्थ मीराको दे दी। उसने उसे ध्यानपूर्वक पढ़कर मुझे अपनी टिप्पणियाँ दी हैं। उसके विचारसे पुस्तक सुबोध नहीं है, लेकिन काफी सुगठित शैलीमें लिखी हुई है, अलबत्ता, कुछ हिस्से गले नहीं उतरते। तुमने उसका संशोधन कर दिया, यह जानकर खुशी हुई। मीराकी टिप्पणियाँ मैं कुमारप्पाको भेजना चाहता था, लेकिन समय नहीं मिला। अगर वह मुद्रकोंको नहीं दी जा चुकी होगी और मुझे समय मिला तो उसे खुद ही देख जाऊँगा।

आजके लिए तो इतना ही।

सस्नेह,

डाकू

[पुनश्च:]

एन्ड्रयूज जल्द ही यहाँ आ रहे हैं।

यह कागज अच्छा है न?

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५९८) से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ६४०७ से भी।

१७. पत्र : अमतुस्सलामको

७ नवम्बर, १९३६

प्यारी वेटी अमतुलसलाम,[1]

भाई वारीके जरिये या और किसी तरह उर्दू तरजुमेवाली 'कुरानशरीफ' मुझे लौटती डाकसे भेज देना। यदि दूसरी तुरन्त न मिल सके, तो तेरे पास जो तरजुमे-वाली है सो भेज देना।

अव तेरी तवीयत अच्छी होगी। नानावटी आज वम्बई जा रहा है। बा वहाँ पहुँच गई होगी। तुझे उसके पास नही जाना है। मैंने बा को लिखा है कि वह तुझसे मिल ले।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३६१) से।

१८. पत्र : शंकरलाल बैंकरको

७ नवम्बर, १९३६

चि० शकरलाल,

मजूर महाजनकी ओरसे जो नोटिस दिया गया है, वह मैं पढ गया। ठीक है। फूंक-फूंककर कदम बढ़ाना चाहिए और बढानेके वाद फिर पीछे नही हटाना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य : नारायण देसाई।

१. सम्बोधन उर्दूमें है।

१९. पत्र : भारतन् कुमारप्पाको

सेगाँव
८ नवम्बर, १९३६

प्रिय भारतन्,

कनु वगैरहको अपना भोजन पकानेके लिए दी गई इजाजतके बारेमें मैं तुम्हें लिखने ही वाला था। पर तुमने उससे जो बात कही, वह उसने मुझे आज बताई। इसीलिए अब यह पत्र लिख रहा हूँ। तुमने जो बात कही, वह बिलकुल ठीक थी। मेरे बनारस जानेसे पहले ही मुझसे इजाजत माँगी गई थी। उस वक्त मैंने उसे हँसकर टाल दिया था। वहाँसे वापस आया तो फिर इजाजत माँगी गई, और इस बार ज्यादा आग्रहके साथ। वजह खराब सेहत बताई गई। मैंने इसपर विश्वास कर लिया और बात मान ली। इसे अलग रसोईघर नहीं कहा जायेगा। वे कोई ऐसी सुविधा नहीं माँगते जिसपर अतिरिक्त खर्च बैठे। उन्हें रसोईके लिए कोई अलग कमरा नहीं चाहिए, और मेहमानोंको तो उन्हें कदापि स्वीकार नहीं करना है। साथ ही मैंने झवेरभाईसे कह दिया है कि अपने रसोईघरसे इन नवयुवकोंके अलग हो जानेसे वह सन्तोष न मान ले। उसे ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए जिससे वह उन लोगोंको स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उनके योग्य भोजन दे सके।

मेरी बात साफ और सही है न?

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५९४) से।

२०. पत्र : प्रभावतीको

८ नवम्बर, १९३६

चि० प्रभावती,

तूने तो मेरी मुसाफिरीके कारण पत्र लिखना ही बन्द कर दिया। मैं ४ को लौट आया। तेरे पत्रकी राह देखता रहा; अब यह लिख रहा हूँ। दोनों मरीज अच्छे हैं। नानावटी कल अपने परिवारसे मिलने बम्बई गये, वा बम्बईमें है। नीमू[1] बहुत कमजोर हो गई है। वसुमती कुछ दिनके लिए सेगाँव आई है। खानसाहब

१. निर्मला गांधी, रामदास गांधीकी धर्मपत्नी।

और मेहरताज मेरे साथ ही हैं। लीलावती मगनवाड़ीमे है। सात-आठ दिनमे सेगाँव आ जायेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४८५) से।

२१. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
९ नवम्बर, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

तुम बहुत खराब हो और तुममे विश्वासकी बहुत कमी है। तुम्हारे पत्र पाकर खुशी होती है, यह बात तुम बार-बार क्यो जानना चाहती हो? तर्ककी दृष्टिसे तुम्हारे इस आग्रहका यही अर्थ होगा कि तुम्हे हर बार तार करके पहले यह पूछना होगा कि तुम्हारा पत्र मुझे भायेगा या नही। तुम यह मानकर क्यो नही चल सकती कि यह भायेगा ही?

तो तुमने किसी-न-किसी तरह औजारोका बक्स मुझे भेज ही दिया। मिलने पर उसे प्यारसे सहेज कर रखूँगा और सूत भेजनेमे जो खर्च बैठेगा उसे मैं नजरअन्दाज कर दूँगा। सूतकी देख-रेख, जैसा तुम चाहती हो, उसी तरह की जायेगी।

एन्ड्रयूजको आज वर्धामे होना चाहिए।

कितना अच्छा होता अगर तुम्हारी पैकिंगकी देखभालके लिए मैं तुम्हारे साथ होता। उस हालतमे तुम्हारी अधिकाश चीजे मैं फेक देता और इस तरह शेष जीवनके लिए तुम्हारा बोझ हलका कर देता। लेकिन अब तो तुम जालन्धर पहुँचकर अपना बोरिया-बिस्तर खोल रही होगी।

मेहरताज मेरे साथ है। वह खूब तगड़ी होती दिख रही है। उसे पत्र अवश्य लिखना और मेरे पत्रके साथ ही भेज देना।

सस्नेह,

अत्याचारी

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७५२) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६९०८ से भी।

२२. पत्र : नन्दलाल बोसको

९ नवम्बर, १९३६

प्रिय नन्दबाबू,

साथमें अम्बालालका तार भेज रहा हूँ। क्या करना है? बायें हाथसे लिख रहा हूँ, इसके लिए क्षमा करेंगे। दाहिनेको आरामकी जरूरत है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९७९६) से।

२३. पत्र : विट्ठलदासको

९ नवम्बर, १९३५

चि० विट्ठल,

रेंटिया बारस[1] के निमित्त जो कताई-यज्ञ हुआ, उसमें तेरा भाग इतना ज्यादा और अच्छा था कि देखकर सबको आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। तू दीर्घायु हो, इस कलामें तेरी उत्तरोत्तर प्रगति हो और तू गरीबोंका सच्चा सेवक बने।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. भादों बदी द्वादशी, विक्रम सम्वत्के अनुसार गांधीजीका जन्मदिन।

२४. पत्र : नारणदास गांधीको

९ नवम्बर, १९३६

चि० नारणदास,

तुमने पत्र लिखकर अच्छा किया। विट्ठलके लिए पत्र[1] इसके साथ है। उसे पाँच रुपये तकका चरखा अथवा उतनेकी खादी या पुस्तके, वह जो लेना पसन्द करे, दे देना। यदि तुम्हे पाँच रुपये अधिक जान पडे तो कम कर देना।

बालकृष्णको जामनगर ले जानेका सुझाव वल्लभका था। किन्तु मैंने उक्त सुझावको जान-बूझकर स्वीकार किया था, क्योंकि सूर्य-स्नानका उपचार मुझे प्रिय है। मैं समझता हूँ कि जामनगरमे सबका इस पद्धतिसे उपचार किया जाता है। बालकृष्णको इजेक्शन देनेके बजाय यदि खानेकी दवा दी जाये तो इसे मैं ज्यादा पसन्द करूँगा। बालकृष्णकी अपनी कोई पसन्द नही है, उसका सारा बोझ मुझपर ही है। इसलिए जब जामनगर जानेका सुझाव सामने आ गया तो उसे स्वीकार कर लेना मुझे उचित जान पडा। जो उतावली मचाये रहते है, ऐसे अन्य लोगोके लिए जब मुझे इससे कही अधिक करना पडा है तो बालकृष्णके लिए इतना करना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा। अन्तमे झोपडी तो है ही। तलवलकर आग्रह करे और तबतक अच्छा न हो पाये तो उसका इलाज जरूर आजमाना होगा।

मैंने 'हरिजनबन्धु' मे थैलीके बारेमे स्पष्टीकरण भेज दिया है।[2]

काठियावाड़का खादी-कार्य यदि तुम ले लो तो मुझे अच्छा लगेगा। मगनलाल पटेलको तो "मामा न होनेसे नामका मामा ही भला" के अनुसार ही रखा होगा। यदि तुम काठियावाड़का काम अपने जिम्मे ले लो और सघके केन्द्रीय कार्यालयसे किसी तरहकी सहायता न माँगो तो तुम कामको अपनी इच्छानुसार व्यवस्थित कर सकते हो। हाँ, तुममे उसके लिए उत्साह होना चाहिए और तुम्हे अपना मार्ग स्पष्ट दिखाई देना चाहिए। यदि तुम इस कामको हाथमे ले लो तो शायद उस मामलेमे रियासतोसे अधिक सहायता ले सको। सम्भव है, रामजीभाईको भी इसमे दिलचस्पी लेनेके लिए प्रेरित कर सको। मैं तो सब-कुछ तुमपर छोडता हूँ।

ताराको मैं पहचान नही पाया। किन्तु पत्र तो लिखूँगा।

बापूके आशीर्वाद

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. देखिए "दरिद्रनारायणके लिए काठियावाड़की थैली", २९-११-१९३६।

[पुनश्च]

क्या तुम लक्ष्मीप्रसाद वैद्यके पास किसीको उनसे औषधियोका ज्ञान प्राप्त करने नही भेजोगे?

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५१० से भी; सौजन्य: नारणदास गाधी

२५. पत्र: अमृतलाल टी० नानावटीको

९ नवम्बर, १९३६

चि० अमृतलाल,

तुम्हारा कार्ड अभी-अभी सवा-सात वजे मिला। मगनवाड़ीसे लिखी चिट्ठी भी मिली था। शहद और बोतलके बारेमें क्या करना चाहिए, देखूंगा। मुझे तुम्हारे साथ कुछ खाखरे[1] रख देने थे। धीरे-धीरे खुराक बढ़ाना। तुम्हारा वजन मैं ठीक मानता हूँ, अभी तो हर हफ्ते कम-से-कम दो पौंड बढ़ना चाहिए। वहाँ फल तो अच्छे मिल जाते होंगे।

यहाँ सब ठीक चल रहा है। मीराबहनको आज शामको चार खाखरे दिये।

बापूके आशीर्वाद

श्री अमृतलाल नानावटी
भादरण भवन
मलाड
बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७२२) से।

१. गेहूँके आटेकी अच्छी सिकी हुई पापड़-जैसी पतली रोटी।

२६. चर्चा : सी० एफ० एन्ड्रयूजके साथ[1]

[९ नवम्बर, १९३६ या उसके पश्चात्][2]

गाधीजी उनका रवैया भी अपने-अपने धर्मानुयायियोकी सख्या बढानेके लिए इस क्षेत्रमे काम करनेवाले अन्य लोगोकी ही तरह खराब है। दु खका विषय यह है कि वे हरिजनोकी कमजोरीका नाजायज फायदा उठानेमे जी-जानसे लगे हुए है। अगर वे यह कहे कि 'हिन्दू-धर्म एक आसुरी धर्म है और इसलिए आप हमारे धर्ममे आ जाइए' तो यह बात मै समझ सकता हूँ। लेकिन वे तो उन्हे भौतिक सुखोका प्रलोभन देते है और उनसे ऐसे-ऐसे वायदे करते है जिन्हे वे कभी पूरा नही कर सकते। जब मै बगलौरमे था,[3] भारतीय ईसाइयोका एक शिष्टमण्डल मुझसे मिलने आया। उनके पास कई प्रस्ताव थे और उनका ऐसा खयाल था कि उन प्रस्तावोको देखकर मुझे खुशी होगी। मगर मैने उनसे कहा, 'यह कोई सौदेबाजीकी चीज नही है। आपको स्पष्ट शब्दोमे ऐसा कहना चाहिए कि यह तो ऐसा मामला है जिसका निबटारा हिन्दुओको आपसमे ही करना है। अस्पृश्योमे एकाएक आध्यात्मिक भूख जग जानेकी बात करना और फिर एक विशेष परिस्थितिका नाजायज फायदा उठानेकी कोशिश करना बिलकुल बेतुका है। बेचारे हरिजनोके पास इतनी बुद्धि और समझदारी ही कहाँ है। वे तो ईश्वर-अनीश्वरका भेद भी नही समझते। किसी एक व्यक्तिका सभी हरिजनोका नेतृत्व करनेका दावा करना अनर्गल बात है। क्या वे ईंट-पत्थर है कि उन्हे जब चाहा तब जिस किसी इमारतमे जड दिया? अगर यहाँके ईसाई मिशन —और केवल वे ही नही, मुसलमान तथा अन्यान्य लोग भी – ईमानदारीका व्यवहार करना चाहते है तो इस समय, जबकि हिन्दू-धर्ममे एक महान् सुधारकी प्रवृत्ति चल रही है, उन्हे अपने स्वधर्मियोकी सख्या बढानेका कोई विचार मनमे नही रखना चाहिए।'

सी० एफ० ए० : आपसे एक सवाल पूछना चाहता हूँ। आस्ट्रेलियामें मैंने कहा कि डॉ० अम्बेडकर और उनके अनुगामियोंकी बातोंका सम्बन्ध धर्मसे नहीं है और यह भी कहा कि भारतके अधिकांश हिस्सोके हरिजन जैसे भोले-भाले हैं वैसे लोगोंसे सौदेबाजी करना निष्ठुरता है। तभी लन्दन मिशनरी सोसाइटीका यह वक्तव्य प्रकाशित

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। एन्ड्रयूज इन्हीं दिनों न्यूजीलैड, फीजी और आस्ट्रेलियाका भ्रमण करके लौटे थे और लौटनेके बाद अनेक मिशनरियोंके साथ पत्राचार कर रहे थे। मिशनरियोंके रवैयेके प्रति वे गांधीजीके विचार जानना चाहते थे।

२. गांधीजीकी दिनवारीके अनुसार एन्ड्रयूज ९ नवम्बरको सेगाँव पहुँचे थे।

३. गाधीजी ३१-५-१९३६ से १३-६-१९३६ तक बगलौरमें थे।

हुआ कि त्रावणकोरके इलवोने ईसाई-धर्मकी दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की है। इस पर मैंने कहा कि इलवा लोग काफी समझदार और सजग है और अगर उन्होंने यह मॉग की है कि उन्हें ईसाई-धर्मकी दीक्षा दी जाये तो यह बात बिलकुल अलग ढंगकी होगी। क्या मेरा यह कहना सही था?

गा० मै नही समझता कि सही था। वैसे इक्के-दुक्के इलवा डॉक्टर, वकील आदि भी है, लेकिन उनमे से अधिकाश तो वैसे ही है जैसे और कहीके हरिजन। मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इलवोकी किसी खास वडी सख्याका कोई भी प्रतिनिधि ईसाई धर्मकी दीक्षाकी माँग नही कर सकता था। आपको वहाँके हमारे मुख्य कार्यकर्त्ताओसे सही तथ्योकी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

सी० एफ० ए० : आपकी बात मै समझता हूँ। मै तो यह कहना चाहता था कि लन्दन मिशनरी सोसाइटी एक उदार संस्था है और वह कोई गैरजिम्मेदाराना बयान जारी नही करेगी।

गा० लेकिन इसके मुख्य कर्ता-धर्ता तो वहाँ केन्द्रमे बैठे हुए है इसलिए जिस प्रकार इग्लैण्डकी पार्लियामेंटको यह नही मालूम होता कि भारतमे सचमुच क्या हो रहा है। उसी तरह उन्हे भी यहाँकी असली स्थितिकी जानकारी नही मिल सकती।

सी० एफ० ए० : खैर, इस बातको अलग रहने दीजिए; मगर इस विषयमें मै आपसे बुनियादी स्थितिकी चर्चा करना चाहता हूँ। मान लीजिए कोई खूब सोचने-विचारने और मार्ग-दर्शनके लिए प्रभुसे प्रार्थना करनेके बाद कहता है कि ईसाई बने बिना मेरी शान्ति और मुक्ति नहीं है तो आप उससे क्या कहेंगे?

गा० अगर कोई गैर-ईसाई या, मान लीजिए, हिन्दू किसी ईसाईके पास जाकर ऐसी बात कहता है तो मै कहूँगा कि उसे उससे अपना कल्याण धर्म-परिवर्तनमे खोजनेके बजाय एक अच्छा हिन्दू बननेको कहना चाहिए।

सी० एफ० ए० : इस बातमे मै आपसे पूरी तरह सहमत नही हो सकता, हालांकि आप मेरी स्थिति जानते ही है। इस बातको तो मै कब-का छोड़ चुका हूँ कि ईसाकी शरण लिए बिना मनुष्यकी मुक्ति नहीं है। लेकिन मान लीजिए, आक्सफोर्ड ग्रुप मूवमेंटके सदस्य आपके पुत्रका जीवन बदल देते है और वह यह महसूस करता है कि उसे ईसाई बन जाना चाहिए तो इस विषयमें आप क्या कहेंगे?

गा० मै तो यह कहूँगा कि आक्सफोर्ड ग्रुप जीवन चाहे जितनोका बदल दें, लेकिन उन्हे किसीका धर्म नही बदलना चाहिए। वे उन लोगोके अपने-अपने धर्मोके सर्वोत्तम तत्त्वोकी ओर उनका ध्यान आकृष्ट करके उनसे उनके अनुसार जीनेको कह सकते है। एक दिन एक आदमी मेरे पास आया। उसके मातापिता ब्राह्मण थे। उसने मुझसे कहा कि आपकी [एन्ड्रयूजकी] पुस्तक पढकर वह ईसाई धर्म स्वीकार करनेको प्रेरित हुआ। मैने उससे पूछा कि क्या वह अपने पूर्वजोके धर्मको गलत मानता है।

उत्तरमे उसने कहा, 'नही'। तब मैंने कहा : 'बाइबिलको ससारका एक श्रेष्ठ धर्मग्रन्थ और ईसा मसीहको एक महान् धर्मगुरु माननेमे क्या तुम्हे कोई अड़चन है?' मैंने उसे बताया कि आपने [एन्ड्र्यूजने] अपनी पुस्तकोमे भारतीयोसे बाइबिलको अपनाने और ईसाई धर्मको अगीकार करनेके लिए कही नही कहा है, और उसने आपकी पुस्तकका गलत अर्थ लगाया है। हाँ, अगर आपका विचार बुरे-से-बुरा जीवन जीनेवाले मुसलमानको भी अच्छे-से-अच्छे हिन्दूसे बेहतर माननेवाले स्वर्गीय मौलाना मुहम्मद अलीके समान हो तो बात और है।

सी० एफ० ए० : मैं मौलाना मुहम्मद अलीकी रायको कतई स्वीकार नहीं करता। लेकिन यह जरूर कहता हूँ कि अगर किसीको अपना धर्म बदलनेकी जरूरत सचमुच महसूस होती है तो मुझे उसके रास्तेमें बाधा नहीं डालनी चाहिए।

गा० लेकिन आप यह नही देखते कि आप उसे अपनी स्थितिपर दोबारा सोचनेका मौका नही देते? आप उससे कुछ सवाल-जवाब तक नही करते। मान लीजिए कोई ईसाई मेरे पास आकर कहता है कि 'भागवत' पढकर तो वह मुग्ध हो गया है और इसलिए हिन्दू बन जाना चाहता है। उस हालतमे मै तो उससे यही कहूँगा, 'नही, भाई नही, जो-कुछ 'भागवत' मे है वह सब बाइबिलमे भी है। बस अबतक तुमने उसे उसमे खोजनेकी कोशिश नही की है। कोशिश करो और अच्छे ईसाई बनो।'

सी० एफ० ए० : आपने जो कहा उसके विषयमें मैं कोई राय नहीं दे सकता। मगर मुझसे तो कोई कहे कि वह अच्छा ईसाई बनना चाहता है तो मैं उससे यही कहूँगा कि 'तुम्हारी इच्छा है तो बन जाओ'; वैसे आप यह जानते ही हैं कि मैंने अपने पास धर्मान्तरणकी तीव्र इच्छा लेकर आये लोगोंको भी वैसा करनेसे मना किया है। मैंने उनसे कहा है, 'ठीक है, मगर मैं आपके ऐसा-कुछ करनेमें कारण-रूप नहीं बनूँगा।' लेकिन मानव स्वभाव ऐसा है कि मनुष्यको मनको पकड़नेवाले किसी ठोस धर्मकी जरूरत होती है।

गा० . अगर कोई बाइबिलमे विश्वास करना चाहता है तो करे, लेकिन वह अपना धर्म क्यो बदले? धर्म-प्रचारकी इस प्रवृत्तिसे ससारमे शान्ति नही कायम होगी। धर्म बहुत ही निजी मामला है। हमे तो अपनी-अपनी समझके अनुसार, जैसा ठीक लगे वैसा जीवन जीते हुए, एक-दूसरेके धर्मोकी अच्छाइयोका परस्पर आदान-प्रदान करना चाहिए और इस प्रकार ईश्वरके निकट पहुँचनेके मनुष्यके प्रयत्नमे अपनी-अपनी सामर्थ्य-भर योग देना चाहिए।

सोचकर देख लीजिए आप दो मे से कौन-सी स्थिति स्वीकार करेगे — यह कि सभी धर्मोके अनुयायी एक-दूसरेके धर्मके प्रति सहिष्णुताका रुख अपनाकर चले अथवा यह कि वे सभी धर्मोको समान माने? मेरी अपनी स्थिति तो यह है कि ससारके सभी धर्म तत्त्वतः समान है। हममे अपने ही धर्मकी तरह दूसरोके धर्मोके

प्रति भी सहज सम्मानका भाव होना चाहिए। ध्यान रखिए — पारस्परिक सहिष्णुता नही, बल्कि बराबर सम्मानका भाव।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-११-१९३६

२७. पत्र : जे० पी० भणसालीको

११ नवम्बर, १९३६
सेगाँव, वर्धा

चि० भणसाली,

तुम्हे लिखनेमें मुझे मजा आता है। यदि तुम्हारा शरीर इतना काम करने योग्य हो तो जरूर कातो। अभी तो मूँगकी दाल और भात खाते रहो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

२८. पत्र : मगनभाई पी० देसाईको

११ नवम्बर, १९३६

चि० मगनभाई,

तुम्हारे पत्रका मैंने भरपूर उपयोग किया। कहींसे हरभाईका मासिक पत्र प्राप्त करके भेजना।

सौभाग्यसे जब मै रवाना हो रहा था, उसी समय जीवणजीने मेरे हाथमें तुम्हारी पुस्तक 'सुखमनी' और काकाकी 'जीवननो आनद' रख दी। 'सुखमनी' ने जो मुझे पकडा, तो पकड़ ही लिया। 'अष्टपदियो' के सिवा बाकी सब पूरा करके यह पत्र लिख रहा हूँ। "लाइब्रेरी" मे पूरा किया। क्या करता? 'अष्टपदी' को भी शुरू तो कर ही दिया है, किन्तु उसे आरामसे पढ़ूँगा। मुझे तुम्हारी व्याख्या बहुत अच्छी लगी। . . .[1] का अनुवाद सुन्दर और मधुर है। तुम्हारे निबन्धोकी भाषामें मुझे कुछ कमी मालूम हुई। वह कमी क्या है, कह नही सकता; क्योकि मुझे मालूम नही है। किन्तु पूर्णसिंह और वासवानीके निबन्धोका तुम्हारा अनुवाद मुझे मधुर लगा है। ऐसा क्यो है, यह तो शायद तुम्ही खोज सकोगे। हो सकता है कि यह मेरा खयाल ही हो, किन्तु इस बातका कोई महत्त्व नही है। तुम्हारी पुस्तक विद्यार्थियो तथा औरोके लिए भी उपयोगी है।

१. साधन-सूत्रमें नाम अस्पष्ट है।

शास्त्रोंके विषयमें गुरु अर्जुनके मुँहसे जो शब्द मैकालिफने कहलाये हैं, उनके बारेमें तुमने ठीक शंका उठाई है। मैकालिफने परिश्रम खूब किया है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु मैंने जब उसके सब प्रकरण १९२२ में जेलमें पढ़े, तभी मुझे इस बारेमें सन्देह हुआ था। बादमें मैंने सुना कि उसीकी कृपासे सिख हिन्दुओंसे अलग हो गये। तुम्हें समय हो और तुम आवश्यक अध्ययन कर सको, तो तुम्हें सिखोंका इतिहास लिख डालना चाहिए। उसके लिए तुम्हें बहुत-सा साहित्य पढ़ना पड़ेगा, सिखोंमें घूमना-फिरना चाहिए, खालसा कौमका पुस्तकालय छानना चाहिए और सर जोगेन्द्रसिंहसे मिलना चाहिए। वे महान् लेखक हैं, यह तो जानते होगे। अच्छा इतिहास लिखना मामूली काम नहीं है। किन्तु 'सुखमनी' का तुम्हारा अध्ययन मुझे बहुत अच्छा लगा। देखता हूँ तुम इसमें रस लेते हो, इसलिए शायद यह काम तुम कर सकते हो। सतही पुस्तकोंसे मुझे सन्तोष नहीं होता। हो सकता है अगले कई वर्षोंतक तुम्हारे लिए यह काम निर्धारित हो गया हो। यदि ऐसा हो, तो 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः।'[1]

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९०६६) से।

२९. पत्र : कनु गांधीको

११ नवम्बर, १९३६

चि० कनैयो,

तू मुझे कब लिखेगा। रोज तेरे पत्रकी राह देखता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. भगवद्गीता, ३-३५।

३०. पत्र : अमृत कौरको

सेगाँव, वर्धा
१२ नवम्बर, १९३६

मूर्खा रानी,

तुम्हारा पत्र मिला।

मुझे शाल भेजनेकी तुम्हे इतनी जल्दी क्यो है? वह जब भी आयेगी, भरोसा रखो कि मै उसे ओढूँगा अवश्य। इसलिए जब तुम्हारा आना हो तो अपने ही हाथो मुझे देना या किसी आनेवालेके हाथ भिजवा देना और इस तरह डाक-खर्चकी बचत करके उसे किसी अच्छे कार्यके लिए सुरक्षित रखना।

तुम मेरी वजहसे कजूस बनो, ऐसा तो मै नही होने दूँगा, लेकिन साथ ही यह भी बर्दाश्त न करूँगा कि तुम गरीबोको नुकसान पहुँचाकर अपराधकी कोटिकी फिजूलखर्ची बरतो। लेकिन इस सबके बारेमे तो जब हम मिलेगे तब ज्यादा विस्तारसे बाते करेगे।

तुम्हारे सुन्दर और उपयोगी बक्सेसे एक-दो चीजे गायब है। खद्दरके एक टुकडेका उपयोग एन्ड्रयूजकी हर्नियाकी पट्टीमे अस्तर लगवानेमे किया गया। बा आज आ गई, वह खुश है। उसकी कुटियाके निर्माणमे बराबर प्रगति हो रही है। एन्ड्रयूज नागपुर गये है और शनिवारको या उसके आसपास लौटनेवाले है।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७५३) से, सौजन्य. अमृतकौर। जी० एन० ६९०९ से भी।

३१. पत्र : मनु गांधीको

१२ नवम्बर, १९३६

चि० मनुडी,[1]

लगता है तू आलसी हो गई है। तेरे पत्र क्यो नही आते? राजकोटमे मै कुछ घंटे ही रुक सका। सवेरे पहुँचा और रातको चल पडा। वली[2] और कुमी[3]से खूब लम्बी मुलाकात हुई। बुआजी[4] भी आ गई थी। अहमदाबादमे तू बहुत याद आई। बा आज काना[5]को लेकर आ गई। लीलावती भी आयेगी। अपने भाईकी वजहसे शायद उसे जाना पडे। वसुमती यही है। दो-तीन दिनमे बोचासण जायेगी।

यदि अब तेरी वहाँ खास जरूरत न हो, और तेरी आनेकी इच्छा हो रही हो, तो आ जाना। साथके लिए तो कोई मिल ही जायेगा।

खानसाहब और मेहरताज तो यहाँ है ही।

मीराबहन अच्छी है। नानावटी अपने भाईके यहाँ मलाड गये है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १५६०) से; सौजन्य: मनुबहन एस० मशरूवाला।

३२. पत्र : देवदास गांधीको

१२ नवम्बर, १९३६

चि० देवदास,

साथका पत्र मनुडीके लिए है। वहाँ उसकी खास जरूरत न हो तो उसे यहाँ भेज देना। मेरा पत्र उसे पढकर सुना देना।[6]

हरिलालका आखिरी करिश्मा न मालूम हो तो साथके पत्रसे जान लेना। मै उसके पत्रको कोई महत्त्व नही देता। किन्तु लगता है, अब उसे वहाँसे भी पैसे नही मिलते। हो सकता है, वह थक भी गया हो। पत्र फाड डालनेके बाद लगा कि शायद तूने नही देखा होगा, अत टुकडे भेजना तय किया।

१. हरिलाल गाधीकी पुत्री।

२ और ३. वलीबहन एम० अडालजा, और कुमीबहन टी० मनियार, मनु गाधीकी मौसियाँ।

४ रलियातबहन, गाधीजी की बहन।

५. कानम गाधी, गाधीजी के पौत्र, रामदास गाधीके पुत्र।

६. आशय हरिलाल गाधी के १० नवम्बर, १९३६ के इस सार्वजनिक वक्तव्य से है कि वह फिरसे हिन्दू हो जानेके विषयमें गभीरतासे सोच रहे है।

अपनी और लक्ष्मी[1] की तबीयतकी खबर देना। बच्चे मजेमें होंगे। बम्बईमें नीमू काफी बीमार हो गई है।

तू घूमने जाता है या नहीं? भोजन समयसे करता है न? ये दो काम जरूर करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०३४) से।

३३. पत्र : जयसुखलाल गांधीको

१२ नवम्बर, १९३६

चि० जयसुखलाल,[2]

तुम्हारे दोनो पत्र मिले। रामजीभाईकी नयी प्रवृत्तिका विवरण आरम्भसे अन्ततक पढ गया। वे परिश्रमी है, इसलिए मुझे उम्मीद है कि इसका कुछ शुभ परिणाम तो अवश्य निकलेगा। लेकिन खादीके बारेमे उनका विश्वास कुछ कुण्ठित तो नही हो गया? मुझे ऐसा लगा कि वे कुछ थक-से गये है। यह पत्र उन्हे पढनेको दे देना और उनसे कहना कि मुझे लिखें। उमिया[3] की क्या खबर है?

बापूके आशीर्वाद

श्री जयसुखलाल गांधी
रामबाग, धारी
काठियावाड

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से।

१. देवदास गांधी की पत्नी।
२. गांधीजीके भतीजे और मनु गांधी—जो गांधीजी के अन्तिम दो वर्षोंमें उनके साथ रही थीं—के पिता।
३. जयसुखलालकी पुत्री।

३४. पत्र : अमृतलाल टी० नानावटीको

१२ नवम्बर, १९३६

चि० अमृतलाल,

तुम्हारा पत्र उत्तम है। मेरा दाहिना हाथ आराम चाहता है। . . .[1] का दोष मै बडा मानता हूँ। खानेकी चीजोके बारेमे अनुमानको स्थान ही नही है। प्रत्येक वस्तुको निश्चयपूर्वक जानना चाहिए।

अगर वहाँ सुभीता हो, तो सबेरे तडके कटिस्नान करके घूमने निकलना और उसके बाद कुछ खाना। मीराबहन पौने छ. बजे स्नान करती है, फिर दो-तीन मील चलती है, और तब दूध वगैरह लेती है।

तुम अब रोटी, घी, साग वगैरहका परिमाण स्थिर करके धीरे-धीरे दूध-दही बढाकर तीन पौंडतक दूध लेने लगना। लहसुन मत छोड़ना। वहाँ मिलता हो तो शहद लेना। खादी-भण्डारमे पूछना। यदि ताजे अंगूर मिले तो शहदकी उतनी जरूरत नही रहेगी। मै तो अभी, जैसा तुमने देखा है, पानीके साथ गुड ही लेता हूँ। लगभग दो तोले लेता होऊँगा। गुड़ मुझे अच्छा लगता है। किन्तु तुमको तो जो अनुकूल पड़े उसके अनुसार करना।

गजाननके बारेमे देख लूँगा। अब यहाँ रस आ रहा है। प्रयोग चल रहे है। तुम भी अपनी खोज-बीन जारी रखना।

हरिलालके पत्रका मुझ पर कोई असर नही हुआ। उसके पीछे भी उसकी नीयत मुझसे पैसे ऐंठनेकी है। किन्तु इसी तरह करते-कराते किसी दिन उसे होश आ जाये, तो मुझे आश्चर्य नही होगा। तुम्हारा पत्र मिलनेसे पहले मुझे कुछ मालूम नही था, इसलिए तुमने पत्र लिखकर अच्छा ही किया।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७२३) से।

१. नाम छोड़ दिया गया है।

३५. तार : सी० पी० रामस्वामी अय्यरको

वर्धा
[१२ नवम्बर, १९३६ या उसके पश्चात्][1]

महामहिम महाराजाको हरिजनोंकी स्वतन्त्रताकी महान घोषणा[2] जारी करनेके लिए मैं हृदयसे बधाई देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १७-११-१९३६

३६. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

[१२ नवम्बर, १९३६ या उसके पश्चात्]

जिसे मैं सदासे हिन्दू राजाका कर्त्तव्य मानता आया हूँ उसे — देरसे ही सही — पूरा करनेके लिए त्रावणकोर दरबार और उनके सलाहकारोंको मैं बधाई देता हूँ। मुझे उम्मीद है कि इस शुभ घोषणाका शब्दोंमें और भावनासे भी पालन किया जायेगा, ताकि हरिजनोंको स्वतंत्रताकी आभाका अनुभव हो और अपने सवर्ण भाइयोंके साथ वे वास्तविक एकता महसूस कर सकें। मुझे आशा है कि इस सुदूर प्राचीन हिन्दू-राज्यने जो उदाहरण पेश किया है, दूसरे सभी हिन्दू राजा उसका अनुकरण करेंगे।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १४-११-१९३६

१. यह घोषणा त्रावणकोर दरबारसे १२ नवम्बरको जारी हुई थी।
२. घोषणाके पाठके लिए देखिए पृ० ५८-५।

३७. पत्र : अमतुस्सलामको

[१२ नवम्बर, १९३६ के पश्चात्][1]

चि० अमतुस्सलाम,

मैं क्या करूँ? मुझे हरिलालके बारेमे कुछ याद नही है। तू छोटे खत क्यो नही लिखती?

१. तू हरिलालसे मिल। रामदासको या जिसे चाहे साथ ले जा सकती है। मुझे उम्मीद है कि तुझे कोई नही रोकेगा। हरिलालके धर्म-परिवर्तनका मेरी नजरमे कोई महत्त्व नही है।

२. कान्ति तुझसे मिलने आया होगा। तू खराब है, इस खयालसे मैंने मनाही नही की है। कान्ति खुद तुझसे मिलना नही चाहता, न तेरे साथ बहसमे पडना चाहता है। फिर भी तू उससे मिलना चाहती है, इसका क्या मतलब? कान्तिके कल्याणकी कामना कर और शान्त रह।

३. यदि मैं तुझे अपने पास रखकर तेरी तबीयत सुधार सकूँ, तो तुझे आज ही बुला लूँ। लेकिन मुझे ऐसा विश्वास नही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६०२) से।

३८. एक भेंट-वार्ता[2]

[१२ नवम्बर, १९३६ के पश्चात्][3]

त्रावणकोरमे आज जो चमत्कार दिखाई देता है वह मुख्यतया वहाँकी महिलाओके प्रभाव या यो कह सकते है कि एक ही महिला, महारानी त्रावणकोरके प्रभावका परिणाम है। कुछ साल पहले[4] जब मैं त्रावणकोर गया था, तो महारानी साहिबासे मिला था। वे उस कार्यको करनेके लिए कृतसकल्प थी जो वास्तवमे विशुद्धतम

१. हरिलालके धर्म-परिवर्तनके उल्लेखके आधारपर। गांधीजीनी दिनवारीके अनुसार हरिलाल इस तारीखके आसपास धर्म-परिवर्तन करके फिर हिन्दू हो गये थे।

२. भेंटकर्त्ता एक अमेरिकी महिला थी। उनका ज्यादा परिचय साधन-सूत्रमें नहीं दिया गया है।

३. राज्यके सभी मन्दिरोको हरिजनोंके लिए खोल देनेके लिए यह घोषणा १२-११-१९३६ को की गई थी।

४. सन् १९२७ में, देखिए खण्ड ३५, पृष्ठ १०५-६।

न्यायका कार्य था। और सच पूछिए तो महाराजाके निर्णयके पीछे इन्हींका हाथ है। घोषणा जारी करना एक महान् साहसका कार्य था और उसे अक्षरशः कार्यरूप देना तो और भी अधिक साहसका काम है। अपनी माताकी सहायताके बिना महाराजा यह कार्य नहीं कर सकते थे। इसलिए इस चमत्कारके पीछे महिलाका हाथ मुझे साफ दीखता है।

सवर्ण हिन्दुओंके व्यापक सहयोगके बिना हरिजनोंके लिए मन्दिरोंके द्वार खुलना असम्भव होता। अहिंसाकी शक्तिका यह अपनी तरहका अकेला प्रदर्शन है। मैंने सोचा था कि राज्यको कम-से-कम मुख्य मंदिरोंके द्वारोंपर पुलिसके मजबूत दस्ते तैनात करने पड़ेंगे और यह भी कि कुछ लोगोंके सिर तो जरूर फूटेंगे। मन्दिरोंके द्वार खोले जानेका सिलसिला राज्यके सबसे बड़े मन्दिरसे आरम्भ हुआ, जहाँ स्वयं महाराजा दर्शन करने जाते हैं। इसमें राजनीतिक दबाव बिलकुल नहीं था। लाखों लोगोंके ऊपर इसे थोपा भी नहीं जा सकता था। मुझे इसका बिलकुल अन्दाज नहीं था कि त्रावणकोरमें लगभग २००० मन्दिर होंगे। मुझे तो बस इतना ही मालूम था कि दस साल पहले हमारे स्वयंसेवक वाइकोम मन्दिरके निकटकी एक वर्जित सड़कको लाँघनेपर ही बुरी तरह पीटे गये थे। आज स्थिति यह है कि छोटे-से-छोटे लोग भी बिना किसी रुकावटके वाइकोम मन्दिरमें प्रवेश पा गये। उक्त घोषणा यद्यपि एक ठोस चीज थी, फिर भी वह मेरे अन्दर कोई उत्साह नहीं भर पाई थी। कारण, कि मुझे भय था कि कहीं इसके पीछे कोई राजनीतिक उद्देश्य न हो। लेकिन अब मेरा सारा भय दूर हो गया है। कट्टरपंथी लोग जो कर्मकाण्डके प्रति इतनी अधिक निष्ठा व्यक्त करते थे और जो यह शोर मचाते थे कि किसी परिया की छाया लग जानेसे भी मन्दिरमें पूजा करना व्यर्थ हो जाता है, वे इस घोषणा को स्वीकार कर लेंगे, यह मैंने कभी नहीं सोचा था — कम-से-कम यह तो नहीं ही कि इतनी जल्दी स्वीकार कर लेंगे। लेकिन जो कार्य मनुष्य नहीं कर सकता था, उसे ईश्वरने सम्भव बना दिया।

[अंग्रेजीसे]
महात्मा, खण्ड-४, पृष्ठ १०३-४

३९. पत्र : अमतुस्सलामको

सेगाँव, वर्धा
१३ नवम्बर, १९३६

चि० अमतुलसलाम,

तेरा लम्बा पत्र मिला। बारीकी तबीयतके बारेमें मुझे बहुत दु:ख होता है। वह बीमार क्यो रहता है? शहद और अन्य फल तथा 'कुरान शरीफ' मिल गये है। तूने फल क्यो भेजे? यदि तेरे पास इतने ज्यादा पैसे है तो मुझे क्यो नही भेज देती?

यदि तू दोनो भाइयोका झगडा मिटा सके तब तो बहुत अच्छा हो। कोशिश करना। ईश्वर तुझे सफलता दे।

तू कितनी बेवकूफ है! कान्तिको लिखने और उससे मिलनेकी मनाही करनेमे तू खराब है ऐसा किसने कहा? इधर मैंने कान्तिको लिखा नही है और उसका पत्र भी मुझे नही मिला है। दीवालीको तो मैं पहचानता ही नही। बम्बईमे जब होली जल रही हो तो दिवाली कैसी? मुझे तो त्योहार भाते ही नही। और त्योहारोके लायक हम है भी कहाँ?

तेरे बारेमे मेरा विचार यह है। तू वहाँ रह कर अपनी तबीयत सुधार ले और फिर यहाँ मेरे पास आ जा। तेरी दवा और कहाँ हो सकती है। यदि तू बगलोर जानेको तैयार हो तो उसका इन्तजाम कर सकता हूँ। वहाँ डॉक्टरकी मदद तो मिल ही सकती है। लेकिन बम्बई-जैसी सुविधा कही भी नही मिलेगी। रमजानके रोजे रखनेकी बात मत कर। पहले अच्छी हो जा फिर तबीयत-भर रोजे रखना। अगर तू अच्छी हो गई होती तो मैं तुझे सेगाँवमे रोजे रखने देता। अगर तू दिनशाको दिखाना चाहे तो मैं उनके नाम पत्र भेजूं। पहले मक्का शरीफ जानेका विचार क्यो किया था और फिर छोड़ क्यो दिया? मुझे लगता है कि अब तेरे सब सवालोका जवाब मिल गया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३६३) से।

४०. अश्लील विज्ञापन

एक बहन[1] ने मुझे एक जानी-मानी पत्रिकामें से एक विज्ञापनकी कतरन भेजी है। यह विज्ञापन एक अत्यन्त आपत्तिजनक पुस्तकके बारेमें है। कतरनके साथ उन्होंने निम्नलिखित पत्र भी भेजा है :

> . . . के पृष्ठोंको उलट-पलटकर देखते समय इस विज्ञापनपर मेरी नजर पड़ी। पता नहीं यह पत्रिका आपके पास आती है या नहीं; भेजी भी जाती होगी तो भी मैं नहीं समझती कि आपको इसे देखनेका समय मिल पाता होगा। एकबार पहले भी अश्लील विज्ञापनोंके बारेमें मैं आपसे बात कर चुकी हूँ। मेरी बड़ी इच्छा है कि आप उनके बारेमें कभी लिखें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस तरहकी पुस्तकोंकी आजकल बाजारमें भरमार हो रही है। लेकिन क्या . . . जैसी महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओंको भी ऐसी पुस्तकोंकी बिक्रीको बढ़ावा देना चाहिए? ऐसी बातोंसे मेरे नारी-मनको इतनी जुगुप्सा महसूस होती है कि इसके सम्बन्धमें मैं आपके अतिरिक्त किसीको लिख नहीं सकती। जो चीज ईश्वरने स्त्रीको एक विशेष और स्पष्ट उद्देश्यसे दी है उसका विज्ञापन लम्पटता को उत्तेजन देनेके लिए किया जाये, यह बात इतनी गर्हित है कि शब्दोंमें व्यक्त नहीं की जा सकती। . . . . मैं चाहती हूँ कि आप इस विषयमें प्रमुख भारतीय पत्र-पत्रिकाओंके दायित्वके बारेमें कुछ लिखें। यह जान लीजिए कि ऐसे और भी बहुत-से विज्ञापन मेरे ध्यानमें आये हैं जिन्हें मैं आपके पास आलोचनाके लिए भेज सकती थी।

विज्ञापनका कोई अंश मैं यहाँ उद्धृत नहीं कर रहा हूँ। पाठकोंको सिर्फ इतना ही बता देता हूँ कि इस विज्ञापनमें विज्ञापित पुस्तककी उद्दीपक विषय-वस्तुका अधिक-से-अधिक अश्लील ढंगसे वर्णन किया गया है। इसका शीर्षक है 'नारी-शरीरका रमणीय सौन्दर्य" (सेक्सुअल ब्यूटी ऑफ फीमेल फॉर्म)। विज्ञापन देनेवाली फर्मने कहा है कि इस पुस्तकके खरीदारको वह दो पुस्तकें मुफ्त देगी, जिनके नाम हैं — 'नववधूके लिए नया ज्ञान' ('न्यू नॉलेज फॉर द ब्राइड') और 'कामालिंगन या संभोग-सहचरको तृप्त करनेकी विधि' ('द सेक्सुअल एब्रेस ऑर हाउ टु प्लीज योर पार्टनर')।

यदि इस बहनको ऐसी आशा है कि मैं इस प्रकारकी पुस्तकोंके विज्ञापन-कर्ताओंका रवैया बदल सकता हूँ या सम्पादकों अथवा प्रकाशकोंको अपनी पत्र-पत्रिकाओंसे इस तरह से लाभ कमानेसे विमुख कर सकता हूँ, तो मुझे लगता है वह

१. अमृतकौर; देखिए खण्ड ६३, पृ० ४१३।

व्यर्थ ही है। इन आपत्तिजनक पुस्तको या विज्ञापनोके प्रकाशकोसे मै चाहे जितनी आरजू-मिन्नत करूँ, उसका कोई असर होनेवाला नही है। लेकिन यह पत्र लिखनेवाली बहन और उसीकी जैसी अन्य सुशिक्षित बहनोसे मै यह जरूर कहूँगा कि वे सकोच छोड़कर बाहर आये और उस कामको अपने हाथोमे ले जो खास तौरसे उनका ही काम है। बहुधा ऐसा होता है कि किसी व्यक्तिको बुरा बताया जाने लगता है तो अन्तमे वह अपनेको सचमुच बुरा मानने लग जाता है। स्त्रीको 'अबला' कहना उसे लांछित करना है। मुझे नही मालूम कि वह 'अबला' कैसे है। अगर इसका मतलब यह हो कि उसमे पुरुषवाली पाशविक वृत्ति नही होती या कम होती है, तो इस आरोपको स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु यदि बात ऐसी है तो इसका मतलब तो यह है कि पुरुषोकी तुलनामें स्त्री अधिक उदात्त है और वास्तवमे वह है भी ऐसी ही। यदि वह चोट करनेमे कमजोर है तो चोट सहनेमे अवश्य ही अधिक सक्षम है। मैने स्त्रीको त्याग और अहिंसाकी प्रतिमूर्ति कहा है। उसे अपने शीलकी, अपने सम्मानकी रक्षाके लिए पुरुषपर निर्भर न रहना सीखना है। मुझे तो कोई ऐसा प्रसग मालूम नही जब पुरुषने नारीके शीलकी रक्षा की हो। वह चाहे भी तो कर नही सकता। रामने सीताके शीलकी रक्षा नही की और न पाँच पाण्डवोने द्रौपदीके शीलकी ही। इन दोनो देवियोने अपने शीलकी रक्षा स्वयं की और इसमे इनका सहायक इनका सतीत्व ही था। कोई भी आदमी अपना मान-सम्मान अपनी इच्छाके बिना नही गँवाता। यदि कोई कुलटा स्त्री किसी पुरुषको कोई औषधि खिलाकर ऐसा मतिशून्य बना दे कि फिर वह वही सब करे जो वह चाहती हो, तो इससे क्या उस पुरुषका चारित्र्य भग हुआ मान लिया जायेगा? इसी प्रकार यदि कोई मानव-पशु किसी स्त्रीको सज्ञाशून्य करके उसके साथ बलात्कार करता है, तो इससे उस स्त्रीका शील-सम्मान भग हो गया मानना बिलकुल गलत है।

ध्यान देनेकी बात है कि पुरुष-शरीरके सौन्दर्यपर कोई पुस्तक नही लिखी गई है। लेकिन पुरुषकी पाशविक वासनाको भड़कानेवाला साहित्य सदा क्यो लिखा जाता है? क्या इसका कारण यह है कि पुरुषने स्त्रियोको जिन विशेषणोसे विभूषित किया है उन्हे चरितार्थ करना स्त्रियोको अच्छा लगता है? क्या उसे यह अच्छा लगता है कि पुरुष उसके शरीरके सौन्दर्यका उपभोग करे? क्या उसे पुरुषके सामने शरीरसे सुन्दर दिखना रुचता है और रुचता है तो क्यो? मै चाहता हूँ कि शिक्षित बहने अपने-आपसे ये प्रश्न पूछकर देखे। यदि ऐसे विज्ञापन और ऐसा साहित्य उन्हे बुरा लगता है तो उनको इनके विरुद्ध अविराम सघर्ष चलाना चाहिए। फिर तो ये चीजे पल-भरमे बन्द हो जायेगी। स्त्रीमे यदि विनाशकी शक्ति है तो कल्याणकी भी शक्ति उसके अन्दर छिपी हुई है। मेरी यही कामना है कि वह अपनी उस कल्याण-कारी शक्तिको पहचाने। यदि वह ऐसा सोचना बन्द कर दे कि वह कमजोर और पुरुषोके खेलनेकी गुडिया बननेके ही योग्य है, तो वह अपने लिए और पुरुषके लिए भी—चाहे पुरुष उसका पिता हो या पुत्र अथवा पति—संसारको अधिक सुखमय

बना सकती है। यदि समाजको राष्ट्रोंकी पागलपन-भरी आपसी लड़ाइयों, और समाजकी नैतिक बुनियादोंपर किये जा रहे नासमझी-भरे प्रहारोंसे नष्ट होनेसे बचाना है, तो उसमें नारीको यथेष्ट योगदान करना होगा—लेकिन जैसा कि कुछ बहनें प्रयत्न कर रही हैं वैसे पुरुषोचित ढंगसे नहीं, बल्कि नारीको शोभा देनेवाले ढंगसे। पुरुष जीवोंका नाश करने और अधिकांशतः निष्प्रयोजन ही नाश करनेकी जो क्षमता दिखा रहा है, उसकी होड़में उतरकर नारी मानवताका कल्याण नहीं कर सकती। उसे तो भूलकर रहे पुरुषको उस भूलसे विमुख करना अपना कर्तव्य मानना चाहिए जो अन्ततः उसके और नारीके भी विनाशका कारण होगी। यह घृणित विज्ञापन तो हवाका रुख बतानेवाला एक तिनका-भर है। इसमें बड़े ही शर्मनाक ढंगसे नारीको पुरुषकी वासना-लोलुपताका शिकार बनाया गया है। और इसमें 'संसारकी वनवासी जातियोंकी स्त्रियोंके शारीरिक सौन्दर्य' को भी बख्शा नहीं गया है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १४-११-१९३६

४१. मन्दिर-प्रवेश

एक साथी लिखते हैं:

हरिजन-सेवाका काम करनेवाला एक सेवक अभी उस दिन आया और फगवाड़ा (जिला जालंधर) में हरिजन-मन्दिर तथा हरिजन-पाठशाला बनवानेके लिए सहायता माँगने लगा। मैंने मन्दिरके लिए पैसे देनेसे साफ इनकार कर दिया। मन्दिर बनवाने और खास तौरपर केवल हरिजनोंके लिए मन्दिर बनवानेके मैं सख्त खिलाफ हूँ, क्योंकि यह तो एक तरहसे उनकी अस्पृश्यताको सदा बनाये रखना है। वह मुझसे जोरोंसे बहस कर रहा था कि डाकिया 'हरिजन' लेकर आया, जिसमें इसी विषयपर आपका लेख[1] था। यह एक शुभ संयोग ही था। मुझे मालूम हुआ है कि कुछ सनातनी हरिजनोंको अपने लिए अलग मन्दिर बनवानेका प्रलोभन दे रहे हैं, जिससे मौजूदा मन्दिरोंमें जानेका हक माँगनेकी उन्हें कोई जरूरत ही न रहे। इस विषयमें सचमुच हरिजनोंके पक्षकी हिमायतकी बहुत जरूरत है और आपका लेख बिलकुल ठीक समयपर निकला है।

एक दिन एक परिचित सज्जनसे, जिन्हें आप भी जानते हैं, आपके 'मन्दिर-प्रवेश' की हिमायत करनेके विषयमें मेरी खूब लम्बी-चौड़ी बहस हुई। उक्त मित्रका विचार था:

(क) खुद महात्माजी तो कभी मन्दिरोंमें पूजाके लिए जाते नहीं, तब 'मन्दिर-प्रवेश' की वे हरिजनोंको ऐसा करनेके लिए क्यों प्रोत्साहन देते हैं?

१. "हरिजन-सेवकोंका कर्तव्य", देखिए खण्ड ६३, पृष्ठ ३९१-९२।

हिमायत करना तो अप्रत्यक्ष रूपसे मन्दिरोंमें जाकर पूजा करनेका प्रचार करनेके ही बराबर है।

(ख) हमारे मन्दिर प्रायः उन पुजारियोंकी आजीविकाका एक साधन-मात्र हैं जो और किसी प्रकार ईमानदारीके साथ पेट भरनेकी योग्यता नहीं रखते। हम उन्हें क्यों प्रोत्साहन दें?

(ग) मन्दिरोंमें हरिजनोंको प्रवेश मिलनेसे उन मन्दिरोंके पुजारियोंकी आमदनी बढ़ेगी; क्योंकि मन्दिरोंमें कोई भी खाली हाथ तो जा नहीं सकता। कम-से-कम एक पैसा तो ले ही जाना पड़ता है।

(घ) हरिजनोंकी गरीबीको इस तरह क्यों बढ़ाया जाये?

(ङ) जिस प्रकार खुद महात्माजी बाहर मैदानमें ही प्रार्थना करते हैं, वे हरिजनोंको भी वैसा ही करनेको क्यों नहीं कहते?'

मुझे पता नहीं कि पहले कभी किसीने आपसे ये सवाल साफ-साफ पूछे हैं या नहीं, और आपने कभी उनके उत्तर दिये हैं या नहीं और आज उत्तर देना उचित समझते हैं या नहीं। पर मुझे तो यही लगता है कि हरिजनोंको अपने लिए अलग मन्दिर नहीं बनाने देना चाहिए, और मन्दिरोंमें हरिजनोंके प्रवेश पर जो बन्दिश है उसके उठ जानेसे केवल सवर्णोंकी ही शुद्धि होगी। हरिजनोंको अपने बलपर तथा हमारी सहायतासे और बातोंमें ऊपर उठना चाहिए।

इस पत्रमे उठाये गये प्रश्नोका जवाब भी इसीमे आ गया है। फिर भी, पत्र ऐसा है जिसे जनताके सामने लाना और उसपर चर्चा करना जरूरी है। ये सवाल कई बार उठाये जा चुके है और इन स्तम्भोमे किसी-न-किसी रूपमे उतनी ही बार इनके जवाब भी दिये जा चुके है।

सहायता माँगनेवाले कार्यकर्त्ता और जिन सज्जनने पत्र-लेखकके सामने बहुत-से सवाल खडे कर दिये वे भी मन्दिर-प्रवेशका प्रधान हेतु भूल रहे है। हरिजनोके लिए मन्दिरोके द्वार खोलनेकी मॉग इसलिए नही की जा रही है कि खुद वे ऐसा चाहते है, या कि मन्दिरोमे प्रवेश मिल जानेपर उनमें एकाएक कोई कायापलट हो जायेगा। यह माँग तो सवर्णोकी शुद्धिकी दृष्टिसे की जा रही है। यह इसलिए भी पेश की जा रही है कि हरिजनोको अन्यायपूर्वक एक ऐसे अधिकारसे वचित रखा जा रहा है जो तमाम हिन्दुओको प्राप्त होना चाहिए। अपने हरिजन भाइयोके लिए मन्दिरोके दरवाजे खोल देना सवर्णोका धर्म है, चाहे एक भी हरिजन मन्दिरोमे न जाये। सवर्ण हिन्दुओ के हृदयसे अस्पृश्यताकी भावना मिट जानेका वह सबसे सच्चा लक्षण है। निस्सन्देह दूसरी रुकावटे भी दूर होनी चाहिए। लेकिन जबतक यह बनी रहेगी, अस्पृश्यता नही मिट सकती। सवर्ण हिन्दू चाहे या न चाहे, हरिजनोके नागरिक हको पर

जो रुकावटें हैं वे तो कालान्तरमे दूर हो ही जायेंगी। परन्तु मन्दिर तो उनकी स्वत.स्फूर्त अनुमतिके बिना नही खोले जा सकते। अगर हरिजन कहे कि हम सार्वजनिक कुएँसे पानी भरेंगे, या यदि वे यह चाहे कि सार्वजनिक स्कूलोंमे उनके बच्चोके साथ भी वैसा ही व्यवहार हो जैसा कि अन्य बच्चोके साथ होता है, तो उन्हे इससे कोई रोक नही सकता। आज जो वे इन माँगोंको आम तौरपर पेश नही कर रहे है, उसकी वजह यह है कि अपने कानूनी अधिकार माँगनेका साहस उनमे अभी नही आया है। आज उन्हे यह डर है कि अगर वे ऐसी कोई बात करेंगे तो शायद सवर्ण-हिन्दू उन्हें मारे-पीटेंगे या उनके साथ इससे भी बुरा व्यवहार करेंगे। उनका यह डर आज ठीक भी है। पर ज्यो-ज्यो उनका बल बढता जायेगा वे जरूर अपने हक माँगने लगेंगे और उन अधिकारों पर अमल भी करने लगेंगे जिन पर वे अपनी दुर्बलतावश अबतक अमल नही कर सके है। पर मन्दिर-प्रवेशके विषयमें यह बात नही है। अगर हरिजन एक जुलूस बनाकर किसी मन्दिरमें जाये और कहे कि हम अन्दर जाना चाहते हैं तो कानून ही उन्हे उस मन्दिरमे घुसनेसे रोकेगा। इसीलिए सवर्ण-सुधारकोके लिए यह जरूरी है कि वे हरिजनोके लिए मन्दिरके द्वार खोलनेके लिए आन्दोलन करे।

केवल हरिजनोके लिए मन्दिर बनवानेकी बातका मैंने हमेशा विरोध किया है। पर इस विषयमें भी मैंने अपने मनमे कुछ मर्यादाएँ तो तय कर ही रखी हैं। अगर खुद हरिजनोमे ही अपने बूतेपर ऐसे मन्दिर बनवानेकी कोई हलचल शुरू हो जो उनके तथा सवर्णोंके लिए भी खुले हो, तो मै उसका विरोध नही करूँगा। इसी प्रकार अगर सवर्ण भी इस तरह के मन्दिर बनवाना चाहे तो भी मै उनका विरोध नही करूँगा। दूसरे शब्दोमे मन्दिर बनवाना अपने-आपमे ऐसी बात नही है जिसका मैं हमेशा विरोध करता हूँ। मेरा खयाल है कि करोडों लोगोके जीवनमे उनका एक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी स्थान है।

यहाँ मेरे सनातनी मन्दिरोमे न जानेका प्रश्न उठाना अप्रासगिक है। मन्दिरोमे मेरा विश्वास है, यह सिद्ध करनेके लिए कोई जरूरी नही कि मैं मन्दिरोमे जाऊँ ही। इतना काफी है कि ईश्वरमे मेरा विश्वास है और मैं प्रति-दिन उसकी पूजा करता हूँ। और यह पूजा मात्र एक आडम्बर नही होती, बल्कि मेरे आध्यात्मिक आहार का एक अनिवार्य अग होती है। हाँ, मै प्रति-दिन खुले मैदानमे होनेवाली प्रार्थनामे शामिल होनेके लिए हरिजनोंको खास तौरसे जरूर आमन्त्रित करता हूँ। लेकिन ऐसा उन्हे सनातनी-मन्दिरोमे जानेकी इच्छासे विमुख करनेके लिए नही करता।

मन्दिरोमे भ्रष्टाचार जरूर है। बड़े दु.खकी बात है कि बहुत-से मन्दिरोके पुजारी अनपढ़ है और बुरी तरह अज्ञानी है। पर इससे तो यही प्रकट होता है कि उनमे सुधारकी जरूरत है, न कि उन्हे नष्ट करनेकी। और मन्दिरोमें जानेवाले हरिजनोके लिए यह कोई जरूरी नही कि वे वहाँ कुछ चढायें ही। ऐसे हजारो लोग हैं जो मन्दिरोमे जाकर भी एक पाई नही चढ़ाते। मैं तो सचमुच ऐसा मानता हूँ कि हरिजनोंके लिए मन्दिरोके दरवाजे खुलवानेका यह आन्दोलन अगर सफल

हुआ — और निस्सन्देह यह जल्द ही सफल होगा — तो यह मन्दिरोंकी बहुत-सी बड़ी-बड़ी बुराइयोंको दूर करनेमें सहायक होगा।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, 14-11-1936

42. चर्चा : जॉन आर० मॉटके साथ[1]

[13/14 नवम्बर, 1936][2]

जॉन मॉट : आपने इस आन्दोलनको बहुत बड़ा नेतृत्व प्रदान किया है, इसमें आपने अपने जीवन-रक्तका हवि दिया है। आपने इसके लिए कष्ट उठाया है और विजय पाई है। सो मैं चाहता हूँ, आप मुझे अच्छी तरहसे समझायें कि आखिर असली सवाल क्या है और यह भी बतायें कि इसमें मैं कैसे सहायक हो सकता हूँ, क्योंकि [सच मानिए] मैं इसमें बाधक नहीं बनना चाहता। जो-कुछ भारतमें हो रहा है, उसका संसारपर बहुत गहरा असर होनेवाला है। इस आन्दोलनके रूपमें हम ऐसी शक्तियोंको प्रवर्तित होते देख रहे हैं जिनके जबरदस्त प्रभावके बारेमें कोई भविष्यवाणी करना या अनुमान लगाना कठिन होगा। इस समस्याका अपना निदान मुझे बताइए।

गांधीजी : अस्पृश्यताकी समस्यासे जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैं इसे हिन्दू-धर्मके लिए जीवन-मरणका प्रश्न मानता हूँ। जैसा कि मैंने बार-बार कहा है, अगर अस्पृश्यता कायम रहती है तो हिन्दू-धर्म, बल्कि स्वयं हिन्दुस्तान भी नष्ट हो जायेगा। लेकिन अगर अस्पृश्यता हिन्दुओंके हृदयसे समूल मिट जाती है तो हिन्दू-धर्मके पास विश्वको देनेके लिए एक निश्चित सन्देश होगा। पहली बात तो मैंने सैकड़ों सभाओंमें कही है, लेकिन यह दूसरी बात नहीं। और याद रखिए यह एक ऐसे आदमीके मुँहसे निकली बात है जो सत्यको ही ईश्वर मानता है। इसलिए इस बातमें कोई अतिरंजना नहीं है। अगर अस्पृश्यता हिन्दू-धर्मका अनिवार्य अंग है, तो कहना होगा कि

1. महादेव देसाईकी रिपोर्ट "जॉन मॉटका आगमन" ("जॉन मॉट्स विज़िट") से उद्धृत। अमेरिका-निवासी जॉन मॉट युवा ईसाई संघके एक प्रमुख नेता और अन्तर्राष्ट्रीय मिशनरी परिषद्के अध्यक्ष थे।

2. साधन-सूत्रमें कोई तिथि नहीं दी गई है। देखिए "पत्र : अमृतकौरको", पृष्ठ 49 जिसमें गांधीजीने बताया है कि "कल और आज मिला कर मैंने एन्ड्रयूज़के साथ आये श्री मॉटको चार घंटेसे अधिक समय दिया"। महादेव देसाईके साक्ष्यसे यह तिथि मेल नहीं खाती। उनके अनुसार यह मुलाकात ठीक उसी समय हुई थी जब त्रावणकोर-घोषणा जारी की जा रही थी। त्रावणकोर-घोषणा 12 नवम्बरको जारी की गई थी। किन्तु हम गांधीजीके साक्ष्यको ही अधिक विश्वसनीय मानते हैं, क्योंकि महादेव देसाईने अपनी रिपोर्ट बातचीतके 15 दिन बाद लिखी थी।

इस धर्ममे कोई दम नही रह गया है। लेकिन अस्पृश्यता एक जघन्य असत्य है। अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलन छेड़नेमे मेरा मन्तव्य बिलकुल स्पष्ट है। मै जिस लक्ष्य को लेकर चल रहा हूँ वह यह नही है कि हर हिन्दू अस्पृश्यका स्पर्श करे, वह तो यह है कि हर सवर्ण हिन्दू अपने हृदयसे अस्पृश्यताकी भावनाको निकाल दे और इस तरह अपना पूर्ण हृदय-परिवर्तन करे। रोटी-बेटी व्यवहार कोई मुद्देकी बात नही है। कोई जरूरी नही कि मै आपके साथ बैठकर खाऊँ ही, लेकिन मुझे अपने मनमें ऐसी भावना नही रखनी चाहिए कि अगर मै आपके साथ खाऊँगा तो अशुद्ध हो जाऊँगा। अगर मै विवाह-योग्य स्त्री होऊँ तो मुझे यह नही कहना चाहिए कि 'अमुक व्यक्ति से विवाह करना मुझे इसलिये मजूर नही, क्योकि वह अस्पृश्य है।' यह बात मै आपके सामने इसलिए स्पष्ट कर रहा हूँ कि हरिजन सेवक सघके कार्यक्रममें हमने यह कहा है कि हम किसी भी सनातनी हिन्दूसे अस्पृश्योके साथ रोटी-बेटी व्यवहार रखनेको नही कहते। हममें से बहुत-से लोगोके मनमे रोटी-बेटी व्यवहारके बारेमें कोई दुविधा नही है। मै यह स्वीकार करता हूँ कि अस्पृश्यता एक प्राचीन प्रथा है। हिन्दू-धर्म चूँकि एक प्राचीन, बल्कि कह सकते है कि प्रागैतिहासिक धर्म है, इसलिए इस तरहकी बहुत-सी प्रथाएँ इससे जुडी हुई है। आज जो इसके एक जड-धर्म बन जानेका खतरा दिखाई देता है, उसके बजाय मै यह चाहता हूँ कि यह एक जीवन्त धर्म बने, ताकि ससारके दूसरे धर्मोंके साथ यह भी अपना अस्तित्व कायम रख सके।

इतना सब कहनेके बाद उन्होने बताया कि हरिजन सेवक संघका गठन कैसे और किन परिस्थितियोंमें किया गया, किस प्रकार वे स्वयं संघके सदस्य न बन सके, लेकिन तब भी उसकी नीतिका निर्धारण और निर्देशन करते रहे हैं।

जॉ० मॉ०: संसार आपको प्रथम पंक्तिके नबी, महात्मा, युग-प्रवर्तक और योद्धाके रूपमें देखता है और हम सब प्रभुसे प्रार्थना करते हैं कि वह आपको दीर्घायु बनाये, ताकि विश्व-इतिहासके इस सबसे नाजुक दौरमें आप उसका मार्ग-दर्शन कर सकें।

फिर यरवदा-समझौते[1] की पृष्ठभूमिकी चर्चा छिड़ गई, जिसकी शुरूआत गोलमेज परिषद्में गांधीजी द्वारा की गई इस घोषणाके साथ हुई थी कि हिन्दू-समाजके विभाजनको रोकनेके लिए मैं अपने प्राणोकी बलि चढ़ा दूंगा।[2]

गा० लेकिन इसमें मेरा कोई राजनीतिक स्वार्थ नही था, न आज ही है। इसी तरह इसमे अन्य हिन्दुओका भी कोई राजनीतिक उद्देश्य नही है। उदाहरणके लिए यह समझौता बगालियोके लिए तो ऐसा ही है मानो उनके बीच बम-विस्फोट हुआ हो। उनकी अपनी हिन्दू-मुस्लिम समस्या है, जो यरवदा-समझौतेके कारण और भी

१. सितम्बर, १९३२ में हिन्दू नेताओं और हरिजनोंके बीच, देखिए खण्ड ५१ परिशिष्ट २।
२. देखिए खण्ड ४८, पृ० ३३१।

उलझ गई है। तथाकथित प्रधान मन्त्रीके निर्णय[1] मे हरिजनोंको इस समझौतेकी अपेक्षा कम स्थान दिये गये थे। इस समझौतेमे तो उन्हे इतने स्थान दिये गये है कि वे लगभग सबपर हावी हो जानेकी स्थितिमे पहुँच गये है। लेकिन मैंने तो कहा कि अगर सभी स्थान हरिजनोको ही मिल जाते है तब भी हिन्दू-धर्मकी कोई हानि नही होनेवाली है। जबतक स्वय हरिजन ही न चाहे तबतक मै समझौतेमे रच-मात्र भी परिवर्तन करनेके लिए तैयार नही हूँ।

जॉ० मॉ० : आपका तो सारा जीवन ही अस्पृश्यता-निवारणके लिए समर्पित है। इस आन्दोलनका महत्त्व भारतकी सीमाओंसे बँधा हुआ नहीं है, फिर भी विचारोंकी जैसी उलझन इसके सम्बन्धमें फैली हुई है वैसी शायद ही किसी अन्य विषयके बारेमें हो। उदाहरणके लिए, मिशनरियों और उनकी संस्थाओको ही लीजिए। इस विषयपर उनमें मतैक्य नहीं है। यह बात बहुत ही वांछनीय है कि इस सम्बन्धमें हमारे बीच मतैक्य हो और हम पता करें कि हम इसमें कहाँतक— बाधक नहीं — सहायक हो सकते हैं। मै अन्तर्राष्ट्रीय मिशनरी परिषद्का अध्यक्ष हूँ। इस परिषद्में संसार-भरकी ३०० मिशनरी संस्थाएँ शामिल हैं। मेरी मेजपर इन संस्थाओंकी रिपोर्टें पड़ी हुई है, और उन्हें देखकर मै कह सकता हूँ कि अस्पृश्योंमें उनकी दिलचस्पी अधिकाधिक गहरी होती जा रही है। अगर आप संकोच छोड़कर मुझे यह बतायें कि मिशनरियोंने यदि इस सम्बन्धमें कहीं कोई गलत रवैया अपनाया है तो कहाँ अपनाया है। यह सुनकर मुझे खुशी होगी। उनकी इच्छा बाधा डालनेकी नहीं, बल्कि सहायता करनेकी है।

गा० मुझे कहना पडेगा कि इस मामलेमे मिशनरियोके कार्योसे मेरे मनको चोट पहुँची है। ज्योही डॉ० अम्बेडकरने वह विस्फोट किया, मुसलमानो और सिखोके साथ वे भी आगे बढ आये, और उन्होने इस चीजको इतना महत्त्व दे दिया जितनेके लायक यह बिलकुल नही थी। फिर तो इन सगठनोमे आपसमे होड ही चल पडी। हिन्दू और मुसलमान आपसमे झगड रहे है, इसलिए अगर मुस्लिम सस्थाएँ ऐसा करती तो उसका कोई औचित्य मै समझ सकता था। इसमे सिखोका कूद पडना मेरी समझमे नही आया। लेकिन ईसाई मिशनरी सस्थाओका तो दावा है कि उनके सारे प्रयत्नोका एक ही लक्ष्य है—आत्माका उत्थान। सो ईसाइयोको अपने धर्मावलम्बियोकी सख्या बढ़ानेके लिए मुसलमानो और सिखोसे होड़ करते देखकर मेरे मनको बडी चोट पहुँची। मुझे तो उनका ऐसा करना बडा अशोभन मालूम हुआ, मुझे लगा कि यह तो धर्मका उपहास है। यहाँतक कि उन्होने डॉ० अम्बेडकरके साथ गुप्त वार्त्ताएँ चलाई। हरिजनोके कल्याणके लिए आप प्रभुसे प्रार्थना करते तो वह बात मै समझ सकता था, लेकिन उसके बजाय आपने उन लोगोसे — जिनमे आपकी बातको समझने

१. इस निर्णयके अनुसार, अंग्रेज सरकारने हरिजनोंके लिए पृथक् निर्वाचन-पद्धतिकी घोषणा की थी। देखिए खण्ड ५० पृ० ३९३-४ भी।

जितनी भी बुद्धि नही है — ईसाई धर्ममें चले आनेकी अपील की। निश्चय ही उनमे ईसा और मुहम्मद, नानक और ऐसे ही अन्य धर्म-प्रणेताओके बीच अन्तर करने लायक समझ नही है।

डॉ० मॉटने कैण्टरबरीके आर्कबिशपके भाषण[1] और उनके तथा इंग्लैंडके अन्य बिशपों और मिशनरी नेताओंके साथ हुई अपनी बातचीतका उल्लेख करते हुए जोर देकर कहा कि ईसाइयोंको ऐसा आचरण नहीं करना चाहिए जिससे लगे कि भारतीयोंकी 'आत्माओंको खरीदनेके लिए' वे भी दूसरोंके साथ बोली लगा रहे हैं। उन्होंने कहा कि इस सम्बन्धमें फ्री चर्च संगठन तथा राजकीय चर्च संगठन दोनोंके नेताओंने उन्हें आश्वस्त किया है। लेकिन धर्म-निरपेक्ष अखबारोंमें यह बात प्रकाशित हो गई थी कि जो भी सम्प्रदाय उन्हें स्वीकार करनेको तैयार हो उसे डॉ० अम्बेडकर ५ करोड़ अनुयायी दे सकते हैं। डॉ० मॉटने कहा, मुझे तभी ऐसा आभास हो गया था कि इससे तो सम्बन्धित लोगोंका भारी अहित हो सकता है।

डॉ० मॉ० : प्रोटेस्टेंट मिशनरियोंकी संस्थाके सबसे विश्वस्त नेता आपकी बातपर पूरा ध्यान देंगे। अस्पृश्योके लिए अधिकाधिक काम करनेकी आवश्यकतामें उनका विश्वास है। तो हमें बताइए कि हमारे लिए क्या करना और क्या न करना समझदारीकी बात होगी।

गा० : जहाँतक डॉ० अम्बेडकरकी उपर्युक्त इच्छाका सम्बन्ध है, आप इस समग्र आन्दोलनके प्रति प्रशान्त तटस्थता और उदासीनताका रवैया अपना सकते हैं। अगर डॉ० अम्बेडकरकी अपीलका लोगो पर कोई असर होता है और हरिजन तथा स्वयं डॉ० अम्बेडकर वह निर्णायक कदम उठाते है और आपके पास आते हैं तो आपकी अन्तरात्मा आपसे जैसा कहे, आप वैसा कर सकते हैं। लेकिन डॉ० अम्बेडकर और हरिजन जो-कुछ करने जा रहे है उसके बारेमें अटकल लगाकर अभी कुछ करना तो अशोभन और जल्दबाजी करके बातको बिगाड़ने-जैसा लगता है।

दीनबन्धु एन्ड्रयूजने लखनऊ कान्फ्रेंसकी चर्चा करते हुए उसकी निन्दा की, जिस पर डॉ० मॉटने कहा कि कान्फ्रेंसने जो-कुछ किया वह कोई आधिकारिक रूपसे नहीं किया।

गां० : ईसाई संस्थाओकी चुप्पीके कारण कान्फ्रेसकी कार्रवाई आधिकारिक ही हो जाती है। अगर उन्होने यह साफ कर दिया होता कि लखनऊमें जो-कुछ हुआ उससे उनका कोई सरोकार नही है तो बडा अच्छा होता। लेकिन लखनऊ कान्फ्रेंसमें भाग लेनेवालोको शायद ऐसा लगा कि वे उन मिशनरी सस्थाओके ही विचारोंको स्वर दे रहे है जो उनकी रायमें पर्याप्त गतिसे काम नही कर रही हैं।

डॉ० मॉ० : लेकिन इस कान्फ्रेंसमें जो-कुछ हुआ, उससे असहमति तो व्यक्त की गई थी।

१. देखिए "चमत्कार कैसा होता है", १९-१२-१९३६।

गा० : की गई होगी तो वह इंग्लिश चैनलके पार नहीं पहुँच पाई।

जॉ० मॉ० : लेकिन इस विषयपर तो मित्रोंके बीच भी विचारोंकी ऐसी उलझन मौजूद है कि देखकर दुःख होता है; क्या उचित है, इसके बारेमें उनकी रायें भी अलग-अलग हैं। शैतानके लिए इससे अच्छी स्थिति और कोई नहीं हो सकती। मेरे जीवनका अधिकांश बौद्धिक वर्गोंके बीच बीता है और मेरी अन्तरात्मा इस आन्दोलनमें सहायता करनेके लिए मुझे तीव्र रूपसे प्रेरित कर रही है।

इसपर गांधीजीने उन नेक ईसाइयोंके उदाहरण दिये जो हिन्दू झण्डेके नीचे रहकर काम करते हुए इस आन्दोलनमें मदद दे रहे हैं। [उन्होंने बताया] श्री कैथान[1] अस्पृश्योंका मार्ग सुगम बनानेके लिए जी-जानसे कोशिश कर रहे हैं। कुमारी बार और कुमारी मैडेन ग्रामोद्धार आन्दोलनमें कूद पड़ी हैं। इसके बाद गांधीजीने त्रावणकोरकी समस्याका उल्लेख किया और बताया कि वहाँ इलवा जातिके लोगोंको हिन्दू-धर्मका त्याग करनेके लिए प्रलोभन दिया जा रहा है और इस बातमें सम्बन्धित पक्षोंके बीच बड़े ही अशोभन ढंगकी होड़ चल रही है।

गां० : त्रावणकोरके इलवा लोग मन्दिरोमें प्रवेश चाहते हैं। लेकिन आपका यह पूछना बेमानी होगा कि वे मन्दिर-प्रवेश चाहते हैं या नहीं। वे न चाहते हों तो भी मुझे तो ऐसी स्थिति लानी ही है कि जिन अधिकारोंका उपभोग मैं करता हूँ उनका उपभोग वे भी करें। इसीलिए सुधारक लोग मन्दिरोंके द्वार खुलवानेके लिए जी-जानसे कोशिश कर रहे हैं।

जॉ० मॉ० : लेकिन क्या हमें उनकी सेवा करनी ही नहीं चाहिए?

गा० सेवा जरूर कीजिए, लेकिन धर्मान्तरणके रूपमें उसकी कीमत न वसूल कीजिए।

जॉ० मॉ० : मैं यह स्वीकार करता हूँ कि वे ईसाई बनें या न बनें, हमें उनकी सेवा करनी ही चाहिए। ईसा मसीहने किसीको कोई प्रलोभन नहीं दिया। उन्होंने तो बस सेवा और त्याग ही किया।

गा०. अगर ईसाई लोग इस सुधार आन्दोलनमें शरीक होना चाहते हैं तो उन्हें मनमें धर्मान्तरणका कोई विचार रखे बिना शरीक होना चाहिए।

जॉ० मॉ० : लेकिन अगर इस अशोभन होड़की बात अलग रखें तो क्या उन्हें लोगोंके स्वीकारार्थ ईसाई-धर्मके सिद्धान्तोंकी शिक्षा नहीं देनी चाहिए?

गां० लेकिन, डॉ० मॉट, क्या आप किसी गायको ईसाई-धर्मके सिद्धान्तोंकी शिक्षा देंगे? और सच मानिए कि सोचने-समझनेकी शक्तिकी दृष्टिसे कुछ अस्पृश्य तो गायोंसे भी गये-बीते हैं। मेरे कहनेका मतलब यह है कि इस्लाम, हिन्दू-धर्म और ईसाई-धर्ममें एक-दूसरेकी तुलनामें क्या गुण-दोष है, यह बात जिस तरह किसी गायकी समझमें नहीं आ सकती उसी तरह उनकी समझमें भी नहीं आयेगी। उन

१. डॉ० आर० आर० कैथान, एक अमेरिकी मिशनरी।

लोगोंको ईसाई-धर्मके सिद्धान्तोकी शिक्षा तो आप उन सिद्धान्तोको अपने जीवनमें उतार कर ही दे सकते है। गुलाबका फूल किसीसे यह नही कहता कि 'आओ, जरा मुझे सूँघकर देखो।'

जॉ० मॉ० : लेकिन ईसा मसीहने तो कहा था : "उपदेश करो, शिक्षा दो।" उन्होंने यह भी कहा था कि श्रद्धा श्रवणसे जागती है और श्रवणकी शक्ति प्रभुके वचन सुननेसे। किसी समय मैं स्वयं नास्तिक था। तभी एक दिन प्रसिद्ध क्रिकेट-खिलाड़ी, कैम्ब्रिजके जे० ई० के० स्टड धर्मोपदेशके लिए हमारे विश्वविद्यालयमें आये और उनकी बातें सुनकर मेरा भ्रम तत्काल दूर हो गया। केवल उनका जीवन और उनका श्रेष्ठ व्यक्तिगत उदाहरण मेरी शंकाका समाधान नहीं कर सकता था, मेरे हृदयकी प्यास नहीं बुझा सकता था। पर उनकी बातें सुनकर मैं धर्मोन्मुख हो गया। यह तो सबसे पहली और सबसे बड़ी आवश्यकता है ही कि हम धर्ममय जीवन जियें। लेकिन इसके बाद यह भी जरूरी है कि समझदारी और संवेदनशीलताके साथ हम धर्मका जो मूल सत्य है उसकी शब्दोंमें व्याख्या करे, विभिन्न प्रक्रियाओं और कार्यो आदिपर प्रकाश डालें और इस तरह लोगोंकी बौद्धिक शंकाओंका निवारण करें, ताकि हम उस मुक्तिको प्राप्त कर सकें जो वास्तवमें मुक्ति है। आप यह तो नहीं चाहते कि ईसाई लोग कलसे ही यहाँसे हट जायें?

गा० नही, यह तो नही चाहता, लेकिन यह जरूर चाहता हूँ कि अगर आप हमारी सहायता नही कर सकते तो बीचमें न पड़ें।

जॉ० मॉ० : लेकिन ईसाई-धर्म समग्रतः इस बातपर जोर देता है कि अपने जीवनको बाँटो — जो-कुछ तुम्हारे पास है उसे दूसरोंको दो। और जबतक हम अपने जीवनमें शब्दोंका सहारा नहीं लेते, तबतक ऐसा कर कैसे सकते है?

गा० . तब तो त्रावणकोरमे ईसाई मिशनरी जो-कुछ कर रहे है, ठीक ही है? आपके कथन और उनके आचरणके बीच परिमाणका भेद हो सकता है, लेकिन गुणात्मक कोई अन्तर नही है। अगर आपको अपने जीवनमे हरिजनोको हिस्सेदार बनाना आवश्यक मालूम होता है तो आप ठक्कर बापा और महादेवको क्यो नही बनाते? आप हरिजनोके पास जाकर इस उथल-पुथलका लाभ उठानेकी कोशिश क्यो करते है? उनके बदले आप हमारे पास क्यो नही आते?

जॉ० मॉ० : डॉ० अम्बेडकरकी घोषणाके बादसे इस विषयपर जो चर्चा हो रही है उसमें अनेक ऐसे लोग घुस पड़े हैं जिनके उद्देश्य शुद्ध नहीं है, जिससे यह सारी चर्चा बुरी तरह उलझ गई है। उद्देश्योंकी — जो लोग इसमें भाग लेना चाहते हैं उनके प्रेरक हेतुओंकी सफाई हो जाना जरूरी है। ईसा मसीहने कहा था : 'तुम्हारा जीवन ऐसा होना चाहिए जिससे लोगोको मेरा परिचय मिले।' अच्छे ईसाईको इसकी साक्षी भरनी पड़ती है कि स्वयं अपने जीवनमें या दुनियाको देखने-सुननेके फलस्वरूप उसके क्या-क्या अनुभव रहे हैं। यदि हम ईसा मसीहके 'सच्चे साथियों' की

तरह नहीं जीते तो माना जायेगा कि हम उनके सच्चे अनुयायी नहीं हैं। उन्होंने कहा था: 'उनके पास जाओ और उन्हें सद्शिक्षा देकर [अज्ञानकी] कुहेलिकामें से निकालो और प्रकाशमें ले जाओ।'

यहाँ दीनबन्धु एन्ड्रयूजने चर्चाको सहमतिकी दिशामें मोड़ते हुए कहा: "आपके और मिशनरियोंके बीच कुछ बुनियादी अन्तर है, फिर भी आप उनके मित्र हैं। लेकिन आपको लगता है कि वे पूरी ईमानदारीसे काम नहीं ले रहे हैं। आप चर्च-संगठनके नेताओंसे शायद यह कहलवाना चाहते हैं कि 'हम दूसरोंको परेशानीमें फँसा देखकर अपना मतलब नहीं साधना चाहते। हम ऐसा कुछ नहीं करेंगे जिसका मतलब यह लगाया जाये कि यह जो एक विशेष स्थिति उत्पन्न हो गई है इससे हम लाभ उठाना चाहते हैं।"

गां० मैं नही समझता कि यह कोई ऐसी बात है जिसके सम्बन्धमे अपनी स्थितिसे तनिक भी डिगा जा सके। यह एक अतिशय धार्मिक प्रश्न है और इसलिए इसके विषयमे जिसको जैसा उचित जान पडे वैसा ही करना चाहिए। यदि आपकी अन्तरात्मा आपसे यह कहे कि आप लोग जो प्रयत्न कर रहे हैं वह आपका धार्मिक कर्त्तव्य है, तो आपको हिन्दू-सुधारकोका कोई खयाल नही करना चाहिए। मै तो अपने विश्वासका ही इजहार कर सकता हूँ और वह यह है कि आज मिशनरी लोग जो-कुछ कर रहे है, उसमे मुझे कोई आध्यात्मिकता नही दीखती।[1]

जॉ० मॉ०: भारतीय ग्रामोद्योग आन्दोलन किन आदर्शोंसे प्रेरित है और किन लक्ष्योंको लेकर चलाया जा रहा है? इस छोटे-से गाँवमें आ बसनेमें आपका उद्देश्य क्या है?

गा० मेरे सेगाँवमे आ बसनेका तात्कालिक उद्देश्य तो यह है कि मै अपनी सामर्थ्य-भर भारतीय गाँवोमे व्याप्त भयकर अज्ञान तथा दरिद्रताको और उससे भी भयकर बाहरी गन्दगीको दूर कर सकूँ। सच तो यह है कि ये तीनों बुराइयाँ एक-दूसरीसे जुडी हुई है। हम गाँवोमे फैले इस अज्ञानको मुँहसे अक्षर-ज्ञान कराकर नही, बल्कि लोगोके समक्ष सफाईका पदार्थ-पाठ प्रस्तुत करके, उन्हे दुनियामे क्या-कुछ हो रहा है, इसकी जानकारी देकर और इसी तरहके दूसरे उपायोसे दूर करना चाहते हैं।

जॉ० मॉ०: आप यहाँ जो-कुछ कर रहे है उसका बड़ा भारी औद्योगिक महत्त्व है। जापानमें शिक्षितोंका जो अनुपात है उससे बड़ा अनुपात और किसी देशका नहीं होगा। इसके बावजूद जापान भी उद्योगवादके अभिशापोंसे मुक्त नहीं है।

गां० लेकिन मै गाँवोका उद्योगीकरण नही करना चाहता। मै तो प्राचीन पद्धतिपर उनका नव-सस्कार करना चाहता हूँ, अर्थात् गाँवोमे हाथ-कताई, हाथ-पिजाई और अन्य महत्वपूर्ण दस्तकारियोका फिरसे चलन करवाना चाहता हूँ।

१. यहाँ तककी बातचीत १३ तारीखको हुई। इसके आगेका विवरण १४ तारीखकी बातचीतका है।

ग्रामोद्धार-आन्दोलन कताई-आन्दोलनसे ही फूटकर निकली एक शाखा है। सन् १९०८में इस विषयमे मै इतना अज्ञानी था कि उस समय लिखी हुई अपनी छोटी-सी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' मे मुझे जहाँ चरखा लिखना चाहिए था वहाँ मैंने करघा लिख दिया था?[1]

जॉ० मॉ०: आपको सबसे अधिक चिन्ता किस बातकी है, आपके मनपर सबसे बड़ा बोझ किस चीजका है?

गा० मुझे सबसे अधिक चिन्ता भारतकी आम जनताके अज्ञान और गरीबीकी है। साथ ही उच्च वर्गोंके लोगो द्वारा उसकी—और विशेष रूपसे सवर्ण हिन्दुओ द्वारा हरिजनोकी—जैसी घोर उपेक्षा की गई है उसको लेकर मै परेशान हूँ। यह उपेक्षा एक जघन्य अपराध है और किसी भी धर्मग्रन्थमें इसका कोई औचित्य नही है। हम एक महान् धर्मके सरक्षक है, फिर भी हमने ऐसा अपराध किया है जो हमारे लिए सबसे बड़ी लज्जाका विषय है। अगर मुझे यह विश्वास न होता कि प्रभुकी लीलाको कोई नही जानता तो मुझ-जैसा सवेदनशील आदमी यह-सब देखकर बिलकुल पागल हो जाता।

जॉ० मॉ०: आपको सबसे अधिक आशा और सन्तोष किस चीजसे मिलता है?

गा०: ईश्वरमे आस्था होनेके परिणामस्वरूप स्वय अपनेमें विश्वास से।

जॉ० मॉ०: तो ऐसे क्षणोंमें, जब आपका दिल बैठने लगता है, आप ईश्वरमें अपनी आस्थाका सहारा लेते हैं?

गां० · हाँ, और इसी कारण मैंने हमेशा कहा है कि मै हर स्थितिमे आशावान रहनेवाला व्यक्ति हूँ।

जॉ० मॉ०: यही बात मेरे साथ भी है। हमारी कठिनाइयाँ ही हमारी मुक्तिके द्वार खोलती है। वे हमें जीवन्त ईश्वरकी ओर उन्मुख करती हैं।

गा०: हाँ। मेरी कठिनाइयोने भी मेरी आस्थाको बल दिया है। मेरी यह आस्था हमेशा हर तरहकी कठिनाईसे बीस ही साबित होती है। उसकी ज्योति कभी मन्द नही पडती। मेरे जीवनकी सबसे भयकर घडी जब मैं कुछ महीने पूर्व बम्बईमें था, उस समय आई थी,[2] वह मेरे प्रलोभन मे पडनेकी घडी थी। मै सोया हुआ था कि अचानक मुझे लगा कि मै किसी स्त्रीकी निकटता चाहता हूँ। जिस व्यक्तिने कामेच्छासे ऊपर उठनेकी लगभग ४० सालतक कोशिश की हो, उसको ऐसे भयकर अनुभवसे गहरी मानसिक पीड़ा तो होनी ही थी। अन्तत. मैंने अपनी उस इच्छाको वशमे कर लिया। लेकिन यह तो है ही कि उस समय अपने जीवनके सबसे भयकर क्षणसे मेरा सामना हो गया था और यदि मैंने उस समय पराजय स्वीकार कर ली

१. "हिन्द स्वराज्य" १९०९ में लिखा गया न कि १९०८में। देखिए खण्ड १०।

२. जनवरी, १९३६ में; देखिए खण्ड ६२, पृ० २२४-६ और ४६१-२ ।

होती, तो उसका मतलब मेरा सम्पूर्ण विनाश ही होता। मेरे समस्त मन-प्राणमे एक प्रकार की खलबली मच गई, क्योकि शक्ति और शान्ति तो संयममय जीवनसे प्राप्त होती है। जिस शान्तिका उपभोग मै करता हूँ, वह अनेक ईसाई मित्रोके लिए भी स्पृहाका विषय है। वह शान्ति मुझे ईश्वरसे प्राप्त होती है, जिसने मुझे प्रलोभनोसे जूझनेकी शक्ति दी है।

जॉ० मॉ० : मै इससे सहमत हूँ। 'जो हृदयसे शुद्ध है, वे परम सौभाग्यशाली है, क्योकि उन्हें ही प्रभुके दर्शन होंगे।'

अब चर्चा इससे बिलकुल भिन्न विषयोंपर आ गई — वर्तमान राजनीति और अन्य विषयोपर। लेकिन गांधीजी 'हरिजन' में वर्तमान राजनीतिकी चर्चाको स्थान नहीं देंगे। इसलिए चर्चाके इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हिस्सेको मै अनिच्छापूर्वक छोड़ रहा हूँ।

जॉ० मॉ० : अगर भारतको पैसा देना हो तो किस तरहसे दिया जाये, जिससे उसका कोई नुकसान न हो? पैसेसे क्या कोई लाभ होगा?

गा० · नही, जब पैसा 'दिया' जाता है तो उससे केवल हानि ही तो सकती है। पैसा तो, जब उसकी जरूरत हो, उपार्जित किया जाना चाहिए। मेरा निश्चित मत है कि अमेरिका और इग्लैडने मिशनरी सस्थाओके निमित्त जितना पैसा दिया है उससे लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक हुई है। ईश्वर और 'धनासुर' (मेमन) को एक साथ नही साधा जा सकता। मुझे तो ऐसी आशका है कि भारतकी सेवा करनेके लिए धनासुरको ही भेजा गया है, ईश्वर पीछे रह गया है। परिणामत: वह एक-न-एक दिन इसका प्रतिशोध अवश्य लेगा। जब मै किसी अमेरिकीको यह कहते सुनता हूँ कि 'मै पैसेसे तुम्हारी सेवा करूँगा' तो मुझे डर लगता है। मै तो उससे इतना ही कहता हूँ, 'आप अपने इजीनियरोको पैसा कमाने नही, बल्कि हमे अपनी वैज्ञानिक जानकारीका लाभ देनेके लिए भेजिए।'

जॉ० मॉ० : लेकिन पैसा संचित व्यक्तित्व ही तो है। इसका दुरुपयोग भी हो सकता है और सदुपयोग भी। पैसेसे आप किसी अच्छे इंजीनियरकी सेवा प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन मानव-व्यक्तित्व उससे बहुत अधिक खतरनाक है। वही पैसेके सदुपयोगको भी सम्भव बनाता है और दुरुपयोगको भी। जापान-निवासी कागवा यह स्वीकार करते हैं कि पैसे और यन्त्रोंसे बहुत अधिक खतरा सम्भावित है, लेकिन वे इस बातपर भी जोर देते हैं — और मै इससे सहमत हूँ — कि ईसा पैसे और यन्त्र दोनोंको अपने बसमें रख सकते हैं।

गां० : लेकिन मैने किसीसे यो ही मिले और अर्जित किये पैसेमे तो फर्क बताया है न? यदि कोई अमेरिकी कहे कि वह भारतकी सेवा करना चाहता है और आप उसे अपने खर्चेसे यहाँ भेज दे तो मै कहूँगा कि हमने उसकी सेवाएँ अपनी खूबियोके बलपर अर्जित नही की है। लेकिन दूसरी ओर आप पियरे सेरेसोलको ले। वे हमारी सहमतिसे खुद अपने खर्चेपर भूकम्प-पीडित बिहारकी सेवा करने आये थे।

उनके-जैसे जितने भी लोग हमारी सहायताके लिए आ सके, हम खुशीसे उन्हे स्वीकार करेगे। आप साफ सुन लीजिए — अनुभवोपर आधारित मेरा यह निश्चित मत है कि आध्यात्मिक मामलोमे पैसेका कोई महत्त्व नहीं है।

डॉ० मॉ०: अगर पैसा बुराईकी जड़ है तो आज हम ऐसे युगमें जी रहे हैं जिसमें पैसा इतना अधिक है जितना पहले कभी नहीं था।

गा०: जिसका मतलब यह हुआ कि आज दुनियामें बुराई भी पहले सभी युगोसे अधिक है।

डॉ० मॉ०: और इसीलिए यह बात आज और भी जरूरी हो जाती है कि इस शक्तिको अमीर-गरीब दोनोंमें किस प्रकार आध्यात्मिक प्रयोजन और उद्देश्य तथा आध्यात्मिक अभिलाषाकी सिद्धिकी दिशामें प्रवृत्त किया जाये। इस विषयका अधिक गहन अध्ययन होना चाहिए। . . .

आपने अपने जीवनमें जो सबसे बड़ा काम किया है वह है सोमवारको मौन-व्रतका पालन करना। इस तरह आप यह शिक्षा दे रहे हैं कि किस प्रकार शक्ति संचित की जाती है और आवश्यकता पड़नेपर उसका उपयोग कैसे किया जाता है। आपको आध्यात्मिक प्रवृत्तियोके लिए तैयार करनेमें इसका कितना हाथ रहा है?

गा०. यह मेरे जीवनका सबसे बड़ा कार्य नही है। हाँ, मेरे लिए इसका महत्त्व बहुत अधिक अवश्य है। अब तो लगभग प्रति-दिन अधिकतर मैं मौन रखता हूँ। यदि मैं सप्ताहमे एकसे अधिक दिन मौन रख सकूँ तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। यरवदा जेलमे एक बार मैंने १५ दिनोका मौन रखा था। उस अवधिमें मैंने परमानन्दकी स्थितिका उपभोग किया। लेकिन अब इस मौनका उपयोग मैं पिछडे हुए कामको पूरा करनेके लिए कर रहा हूँ। मगर यह तो आखिर इसका एक सतही लाभ ही है। सच्चे मौनमें तो दूसरोको पुर्जे लिखकर या पुर्जोंके माध्यमसे बातचीत करके भी व्यवधान नही डालना चाहिए। मौन रखते समय तो बस केवल शून्यके सगीतका रसास्वादन करना चाहिए। पुर्जे लिखनेसे मौनकी पवित्रतामें व्याघात पड़ता है। इसीलिए मैंने अकसर कहा है कि मेरा मौन तो पाखण्ड है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १९-१२-१९३६ और २६-१२-१९३६

४३. पत्र: अमृतकौरको

१४ नवम्बर[1], १९३६

मूर्खा रानी,

तुम्हारे द्वारा सशोधित कु०[2] की पुस्तक मैं प्राप्त करने और पढनेकी कोशिश करूँगा।

अगर तुम्हारे मनको इससे शान्ति मिले तो जब डाकसे 'ग्रथ साहिब' भेजने लगो तो वह बहुमूल्य शाल भी उसीके साथ पैक कर सकती हो। मुझे पता चला है कि 'ग्रथ साहिब' हिन्दी अनुवादके साथ हिन्दी लिपिमे भी प्राप्य है। जो प्रति तुम भेज रही हो वह अगर गुरुमुखी सस्करण है तो तुम्हे गुरुमुखीकी कोई ऐसी पहली पुस्तक भी भेजनी होगी जिसमे हिन्दी लिपिके समानाक्षर भी दिये गये हो। बड़ा ही अच्छा होता अगर तुम प्रबुद्ध सिखोको गुरुमुखीकी जगह देवनागरी लिपिका प्रयोग करनेको मना सकती।

कल और आज मिलाकर मैंने एन्ड्रयूजके साथ डा० या श्री मॉटको चार घटेसे अधिक समय दिया।[3]

सस्नेह,

लुटेरा

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५९९) से, सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६४०८ से भी।

१. साधन-सूत्रमें यहाँ दोबारा लिखा गया है, २४ को १४ बनाया गया लगता है। लैटर्स टु अमृतकौर नामक पुस्तकमें भी तारीख १४-११-१९३६ ही दी गई है।

२. जे० सी० कुमारप्पा।

३. देखिए पिछला शीर्षक।

४४. एक पत्र

वर्धा
१४ नवम्बर, १९३६

प्रिय मित्र,

चार्ली एन्ड्रयूजने आपका पत्र मेरे पास भेज दिया है। मैं उस मामलेमें कार्रवाई कर रहा हूँ। मुझे याद नही आ रहा कि आपका कोई पत्र मुझे पहले कभी मिला हो।

आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्मसे : प्यारेलाल-पेपर्स, सौजन्य . प्यारेलाल।

४५. पत्र : मोतीलाल रायको

१४ नवम्बर, १९३६

प्रिय मोती बाबू,

शकरलाल बेकरने मुझे अखिल भारतीय चरखा सघके एक पत्रके साथ, उसीके विषयमे अपनी टिप्पणी लिखते हुए एक दु ख-भरा पत्र भेजा है। मै चाहूँगा कि जो भी प्रश्न उठाये गये हैं उनके विषयमे तुम उन्हे उतना सन्तोष तो अवश्य दो जितना कोई सामान्य व्यापारी साधारणत देता है और जितनेकी उससे आशा भी की जाती है। प्रसिद्ध अग्रेजी कहावतके अनुसार, मेरा और आपका व्यवहार सीजरकी पत्नीकी तरह शकाओसे परे होना चाहिए। तुम्हारी खादीकी कीमत बाजारके चालू भावसे ज्यादा नही लगाई जा सकती। यदि उससे जो पैसा तुम्हे पहले दे दिया गया है उसकी भरपाई[1] न हो तो आवश्यक होनेपर शेष रकम उचित एव आसान किस्तोमे चुका देना।

सस्नेह,

तुम्हारा
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११०५१) से।

१. साधन-सूत्रमें पत्र पर यहाँ धब्बे पड़े हैं।

४६. पत्र : एस० अम्बुजम्मालको

१४ नवम्बर, १९३६

चि० अम्बुजम,

जैसा पहले होता रहा है, मैं तुम्हे पत्र लिखने ही वाला था कि तुम्हारा पत्र आ गया। सेगाँव लौट आनेके बाद तुम्हे लिखनेका मेरा पूरा इरादा था, परन्तु मुझे इतने सारे पत्र लिखने थे कि तुम्हारा रह गया।

मुझे खुशी है कि तुम तुलसीदासका अनुवाद करती जा रही हो। इससे तुम्हें भी लाभ होगा और तमिल लोग भी लाभान्वित होगे।

अगर किची[1] बैंकके काममें लगा रहे और ठीक-ठाक रहे तो इससे तुम सबकी एक बड़ी चिन्ता दूर हो जायेगी। यह अच्छा है कि वह अपने कामसे सन्तुष्ट है।

फल मेरे पास नियमित रूपसे पहुँचते है। सप्ताहमे एक दिन यथेष्ट है। यदि खट्टे नीबू सस्ते हो तो तुम दो दर्जन नीबू भी जोड़ सकती हो। परन्तु मेरे सन्तोषके लिए तुम उनकी कीमत मुझे बताना।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजीसे अम्बुजम्माल-पेपर्स; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय।

४७. पत्र : शिवाभाई जी० पटेलको

१४ नवम्बर, १९३६

चि० शिवाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। निराश होनेकी जरूरत नही है। प्रयत्नशीलको सफलता मिलती ही है। जो निश्चय कर लिया है, उसपर डटे रहना। निश्चय सोच-विचारकर करना चाहिए; किन्तु एक बार निश्चय कर लेनेपर उसे छोड़ना नही चाहिए। वसुमतीने तो बारह बातोका निश्चय किया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९५१७) से।

१. कृष्णास्वामी, अम्बुजम्मालका पुत्र।

४८. पत्र : श्रीलालको

१४ नवम्बर, १९३६

चि० श्रीलाल,

तुम्हारा पत्र मैं ध्यानपूर्वक पढ गया। प्रकाशित पुस्तिका अभीतक मेरे हाथ नही आई है। कदाचित् उसकी जरूरत भी नही है। तुम्हारा लिखना मुझे तो अच्छा लगता है। तुम्हारे विचार कुछ व्यवस्थित हो गये है . . .[1] रास्ता सूझ पड़ता है। अभी तुम नौकरके बिना काम चलानेकी बातका आग्रह मत करो। नौकरको यदि हम नौकर न समझे, बल्कि साथी मानकर चले तो उससे हमें आसानी होती है, और हमे जो मदद चाहिए वह भी तुरन्त मिल जाती है। हमारे-जैसे अधकचरे, भारग्रस्त और अशक्त लोगोको साथी ढूंढनेमें समय लगता है और अनावश्यक खर्च भी होता है। मैं खुद अपने आसपास ऐसे व्यक्तियोका जमघट बढाता जाता हूँ और यदि मेरे पास ऐसे लोग न हो तो फिर मेरे प्रयोगोके लिए . . .[2]

अब स्त्रियोके बारेमे। यदि वे पति-पत्नी हो तो मुझे अच्छा लगेगा। मैं यह भी मानता हूँ कि स्त्रियाँ पूरा-पूरा योगदान दे सकती है। लेकिन मेरे खयालमे यदि स्त्री सिर्फ बच्चे ही पैदा करती रही तो अन्य कुछ नही कर सकती। इन्ही बाधाओ को देखते हुए मेरे मनमें विवाहित ब्रह्मचर्यका विचार आया। यदि तुम्हारा समाज सन्तति-नियमनके प्रचलित तरीकोमें विश्वास रखता है, तो उससे मैं स्पष्ट ही तुम्हारा नाश देखता हूँ। इसके अतिरिक्त, स्त्री अपने पतिके समान पढ़ी-लिखी नही होती। ऐसा होनेसे स्त्री लगभग . . .[3] और संस्थाको भुगतना पड़ता है।

गुजरातीकी नकलसे · प्यारेलाल-पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल।

१. २ व ३. यहाँ कुछ शब्द अस्पष्ट हैं।

४९. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

१४ नवम्बर, १९३६

चि० गंगाबहन,

तुम्हारा पत्र मिला। जो पता मिला है, उसपर चौधरीको तत्काल लिख रहा हूँ।

पारसी बहनकी पुस्तक अभीतक तो नही मिली। गाय ले ली, यह तो अच्छा ही किया। तुम्हारा मन वहाँ रम गया, यह बड़ी खुशीकी बात है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ६ गं० स्व० गंगाबहनने, पृ० १४५

५०. पत्र : वियोगी हरिको

१४ नवम्बर, १९३६

भाई वियोगी हरि,

घी के बारे में जबतक विश्वास न हो तबतक उसे त्याज्य समजो। जो हजम कर सकते है वे तेल लेवे। घी के बदले दूध की मात्रा अवश्य बढ़ाई जाय। प्रयत्न से घी शुध्य प्राप्य होना चाहीये।

मसाले के बारे मे उदारता रखी जाय। विद्यार्थी जहातक जा सके वहातक ही जाना उचित है। काली मरीच आवश्यक माने तो देना, हरी भी अगर उनको आदत है तो दी जाय। लेकिन उनको सात्विक भोजन का अर्थ समझाया जाय और जहा तक वे जा सके जाय।

आटा तो विद्यार्थी हाथो से पीसे तो अच्छा होगा; अंत मे सस्ता भी।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९१) से।

५१. पत्र : महादेव देसाईको

१५ नवम्बर, १९३६

चि० महादेव,

गणपतके साथ फल भेजना। फलोमे सेव तो होगे ही। सेव खत्म हो गये है। सतरोके लिए कनुसे कहा तो है। वह सत्यनारायण हमको उधेडे डालता है। उसका बिल शाही है, जो मैंने चुका दिया है। क्या संतरे ४ रुपयेके १०० और केले ८ आनेके ५० मिलते हैं? मना कर देनेपर आज भी उसने फल भेजे; उन्हे वापस कर दिया। यह तुम्हारी जानकारीके लिए ही लिखा है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५०३) से।

५२. हिन्दू नरेशों और उनके सलाहकारोंके लिए एक अनुकरणीय उदाहरण[1]

[१६ नवम्बर, १९३६, से पूर्व][1]

नीचे लिखी घोषणा करके त्रावणकोर दरबार समूचे हिन्दू समाज और सभी विचारशील लोगोकी बधाईके पात्र बन गये है:

> अपने धर्मकी सचाई और सार्थकतामें हमारा विश्वास है और हम मानते है कि उसकी रचना ईश्वरके बताये मार्गपर और सर्वग्राही सहिष्णुताके आधार पर हुई है। हम यह जानते है कि सदियोंसे जैसे-जैसे समय बदलता गया वह व्यवहारमें भी अपने-आपको उसके अनुकूल बनाता रहा है। साथ ही, हमें इस बातकी चिन्ता है कि हमारे हिन्दू प्रजाजनोंमें से एक भी व्यक्ति महज किसी खास जाति या समाजमें जन्म लेनेके कारण या उसमें रहनेके कारण हिन्दू-धर्मसे मिलनेवाली सान्त्वना और शान्तिसे वंचित न रहने पाये। अतः हमने यह निश्चय किया है और इस घोषणा द्वारा हम यह कानून बनाते और आज्ञा देते हैं कि आजसे हमारे और हमारी सरकारके

१. यद्यपि यह सबसे पहले बॉम्बे क्रॉनिकल, १७-११-१९३६ में प्रकाशित हुआ था, पर अगले शीर्षक से स्पष्ट है कि यह १६ तारीखको तैयार था।

अधीन किसी भी मन्दिरमें प्रवेश या पूजनके सिलसिलेमें किसी भी हिन्दू पर महज जन्म या धर्मके कारण कोई प्रतिबन्ध नहीं रहेगा। इस सुविधा पर इतनी मर्यादा जरूर रहेगी कि मन्दिरोंके अन्दर समुचित वातावरण बनाये रखने, धार्मिक विधियों और पूजा-कृत्य वगैरहको ठीक-ठीक चलानेकी गरजसे हमारे द्वारा बताये और लागू किये गये नियमों या शर्तोंका पालन आवश्यक होगा।

इसकी बहुत दिनोसे जरूरत थी। पर देरसे होना कभी न होनेसे तो अच्छा ही है। यह कोई गर्वोक्ति नही होगी कि इस महान कार्यके लिए हरिजन सेवक सघकी त्रावणकोर-शाखाके विनम्र किन्तु सतत प्रयत्नोने मार्ग तैयार कर दिया था। उसके अध्यक्ष श्री के० परमेश्वरन् पिल्लै है। सघके कार्यकर्त्ताओने सवर्ण हिन्दुओका विवेक जागृत कर दिया और उन्होंने सवर्णोकी तरह हरिजनोके लिए भी राज्यके तमाम मन्दिर खोलनेके लिए दरबारको अनेकानेक याचिकाएँ भेजी। अस्पृश्यता है तो एक व्याधि ही, पर हिन्दू ससारपर वह कुछ इस तरह हावी हो गई है कि जब भी कोई हिन्दू उसे तोड़ता या उसके खिलाफ कोई घोषणा करता है, तो सुधारकोमे उसकी प्रशसा होने लगती है और वह कट्टरपथी लोगोकी कटुतम आलोचनाका पात्र बन जाता है। और जब त्रावणकोरके महामहिम महाराज-जैसे सत्ताधीश व्यक्ति — जो एक प्राचीन कट्टर हिन्दू-राज्यके शासक है — ऐसा करे, तब तो कहना ही क्या। पर धर्मनिष्ठा और न्यायप्रियताका यह कार्य खूब विचारपूर्वक और सोच-समझकर किया गया है और हमे आशा करनी चाहिए कि इसके सामने सभी आलोचकोके मुँह बन्द हो जायेंगे।

साथ ही, हम यह भी आशा करे कि हरिजनोको बड़ी मुश्किलसे यह जो स्वतन्त्रता मिली है, इसे हिन्दू-हिन्दूके बीच छोटे-से-छोटे भेद-भावकी भी बाड़ लगाकर नष्ट करनेका यत्न नही किया जायेगा। इस घोषणाका अगर कोई अर्थ है तो यही कि राज्यकी सरक्षकतामे जितने भी मन्दिर चल रहे है, उनमे ऊँचे माने जानेवाले सवर्ण हिन्दूको पूजा-अर्चना करनेकी जो सुविधाएँ और अधिकार प्राप्त है वे सभी हरिजनोको भी प्राप्त होगे। दूसरे शब्दोमें, त्रावणकोरमे अब आगेसे ईश्वरके घरमे मनुष्य-मनुष्यके बीच कोई भेद-भाव नही किया जायेगा। न कोई हरिजन होगा, न कोई सवर्ण; सभी हरिजन — परमात्माकी सन्तान — होगे। अगर इस महान घोषणासे ये परिणाम नही निकलते तो यह एक रद्दी कागजका टुकडा-भर है। पर ऐसा कोई कारण नही है कि हम इसकी सचाईमे शक करे या सोचे कि इसके पीछे कोई दुराव है।

त्रावणकोरमे ईसाई समाज भी काफी बड़ा है और वहाँ उसका अपना एक स्थान है। ईसाइयोके मिशन हरिजनोको लुभाने-ललचानेकी कोशिशे करते रहते है। नि सन्देह, उनके दृष्टिकोणसे यह ठीक भी है। वे उनपर पैसा भी खर्च करते है और उन्हे सच्ची स्वतन्त्रताकी और समाजमे बराबरीके दर्जेकी आशाएँ भी दिलाते है। यह बात वर्तमान चर्चासे कोई ताल्लुक नही रखती कि हरिजनोंको हिन्दू-धर्मसे

बाहर सामाजिक समानता और सच्ची स्वतन्त्रता तभी मिल सकती है जब वे इनको पहले हिन्दू-धर्ममे हासिल कर ले। मै व्यक्तियोकी बात नही कर रहा हूँ। मै तो उनके पूरे समाजको ध्यानमे रखकर यह कह रहा हूँ। वे अन्य हिन्दुओसे इस तरह परस्पर गुँथे हुए है कि जबतक वे अपनी अर्ध-दासताकी वर्तमान दशासे उबरकर सवर्ण हिन्दुओके साथ परस्पर भाई-भाईकी तरह नही रहने लग जाते, तबतक महज नाम बदल लेनेसे उन्हे रत्ती-भर भी फायदा नही हो सकता। पर इसे न देखें तो भी, हमे यह तो समझ लेना चाहिए कि अन्य समुदायोके लोग इस घोषणाकी कार्यान्विति पर बड़ी बारीकीसे नजर रखेंगे और इसपर टीकाएँ करेगे। इसलिए राज्याधिकारियो और सवर्ण जातियोका भी यह कर्त्तव्य है कि इस घोषणाके शब्दोका और इसकी भावनाका पूरी तरह पालन करे।

पर इस घोषणापर अमल करनेकी खास जिम्मेदारी तो एक तरहसे हरिजनो और सुधारकोपर ही आती है। उन्हे धार्मिक भावसे, विनम्रता और शोभाके साथ इस स्वतन्त्रताका उपयोग करना चाहिए। सुधारक इस बातका खास तौरपर ध्यान रखें कि हरिजन नहा-धोकर और स्वच्छ होकर ही इन मन्दिरोमें प्रवेश करे। मै जानता हूँ कि मन्दिरोमें जानेवाले सवर्ण हिन्दुओमेसे अधिकाश इस प्राथमिक नियमका पालन उतना नही करते जितना कि उल्लघन करते है। पर हरिजनोको सवर्णोकी बुरी आदतोकी नकल नही करनी चाहिए, बल्कि उनको सवर्णोके सामने शरीर और हृदयकी स्वच्छताका एक सुन्दर नमूना पेश करनेमें गर्व महसूस करना चाहिए।

इस घोषणाका कोई राजनीतिक महत्त्व नही होना चाहिए, और वास्तवमे है भी नही। मै तो समझता हूँ कि इस घोषणाके द्वारा राज्य विशुद्ध रूपसे अपने धार्मिक कर्त्तव्यका ही पालन कर रहा है। राज्यके तमाम हिन्दुओको चाहिए कि वे भी यही समझे और इसी भावसे इसपर अमल करे। इस घोषणाको कोई और रग देनेसे इसका सारा आध्यात्मिक हेतु और परिणाम मिट्टीमें मिल जायेगा।

हमे अब आशा करनी चाहिए कि त्रावणकोरका यह सत्कार्य अन्यत्र भी यही सद्भावना पैदा करेगा और दूसरे हिन्दू राज्य भी इसका अनुकरण करेगे, और कोई वजह नही कि वे ऐसा न करे। हिन्दू-नरेशोका यह कर्त्तव्य है और उन्हे यह विशेषाधिकार भी प्राप्त है कि वे ऐसी धार्मिक सहिता, ऐसे धार्मिक नियम बनायें और लागू करे जो वेदविहित हिन्दू-धर्मके मूलभूत सिद्धान्तोके विरुद्ध न हो और साथ ही युगकी आवश्यकताओके अनुकूल भी हो। सभी प्रगतिशील और जीवन्त धर्मोपर यह बात लागू होती है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न 'स्मृतियो' मे एक-दूसरेसे असंगत बातें पाई जाती है, और एक ही 'स्मृति' में पहले प्रतिपादित नियमोके अपवादरूप ऐसे दूसरे नियम या विधि-निषेध मिलते है जो कि मामूली-से-मामूली पाठककी नजरसे भी छूट नही सकते। अगर हिन्दू-नरेश अपने इस प्राथमिक कर्त्तव्यका पालन नही कर रहे है, तो इसमे उनका इतना दोष नही है, बल्कि मुख्य कारण यह है कि हम अपना ब्राह्मणत्व खो चुके है। अगर वह ब्राह्मणत्व फिर लौट आये, तो राजागण ऋषि बन जायें, और वे

ईमानदारीके साथ राज्यकी आयसे अपनी गुजर-बसर-भरके लायक कम-से-कम राशि लेने लग जायें। तब वे समझेंगे कि वे प्रजाकी जो सेवा करते है उसका प्रजाकी तरफसे यह पुरस्कार है, और प्रजाकी ओरसे एक न्यासीकी भाँति राज्यके कोषको सुरक्षित रखने लगेगे। फिर, वे आजकी तरह निजी सम्पत्ति नही रखेंगे और न अपने-आपको प्रजा और उसकी आकाक्षाओसे स्वतन्त्र रखेंगे।

इस आदर्श राज्यकी स्थितितक हम इसी जन्ममे या आगे भी कभी पहुँचे या न पहुँचे, पर त्रावणकोर दरबारका अनुकरण करनेसे तो हिन्दू-नरेशोको निश्चय ही कोई रोक नही सकता। इस कार्यके द्वारा वे न सिर्फ हिन्दू-धर्मसे अस्पृश्यताको जल्दी दूर करनेमे सहायक होगे, बल्कि स्वय हिन्दू-धर्मको भी निश्चित नाशसे बचा सकेंगे। प्रत्येक हिन्दू राज्यमे बसनेवाले जिम्मेदार हिन्दुओको मेरी सलाह है कि वे अपने राज्यके नरेशो और उनके सलाहकारोसे प्रार्थना करे कि वे भी इस निहायत जरूरी सुधारको अपने राज्यमे फौरन जारी कर दे।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २१-११-१९३६

५३. तार : घनश्यामदास बिड़लाको

वर्धागंज

१६ नवम्बर, १९३६

घनश्यामदास बिड़ला
मार्फत लकी
कलकत्ता

अखिल भारत दिवस मनाने की कोई जरूरत नही। आपको अपने पद की हैसियतसे दरबार को बधाई देनी चाहिए। 'हरिजन' के लिए लिखा अपना लेख[1] जिस में राजाओ से त्रावणकोर के उदाहरण का अनुसरण करने की अपील की गई है, विभिन्न पत्रो को प्रकाशन के लिए दे रहा हूँ।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ७९८१) से; सौजन्य . घनश्यामदास बिड़ला।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

५४. पत्र: नारणदास गांधीको

सेगाँव, वर्धा
१६ नवम्बर, १९३६

चि० नारणदास,

इसके साथ प्रेमाका पत्र भेज रहा हूँ। केशूने उसे लिखा तुम्हारा पत्र मुझे भेजा है। क्या तुम यह मानते हो कि लक्ष्मीदास उसके प्रति अन्याय कर रहा है? क्या केशू निजी तौरपर पेटेन्ट ले सकता है? अर्जुनके बारेमें लक्ष्मीदास जो-कुछ लिखता है, क्या वह सही नहीं है? क्या लक्ष्मीदास तुमसे या केशूसे ईर्ष्या करता है? क्या वह पक्षपाती है? केशूके यन्त्रमे कौन-कौन-सी विशेषताएँ है? लक्ष्मीदासने जो यन्त्र बनाया है, उसकी खूबियोसे उसने क्या-कुछ चुराया है? यह ठीक है कि मै इस निश्चयपर पहुँचा हूँ कि केशूके मनमे लक्ष्मीदासके प्रति भ्रम है।

यदि इस सम्बन्धमे तुम कुछ प्रकाश डाल सको, तो डालना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५११ से भी, सौजन्य नारणदास गाधी।

५५. पत्र: नारणदास गांधीको

१६ नवम्बर, १९३६

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। इसे तो तुम लीलावतीके पत्रकी पाद-टिप्पणी समझना। कनैयो आनन्दपूर्वक है। उसने एक बडा काम अपने जिम्मे ले लिया है। यदि वह उसमें जुटा रहे तो उसका जीवन सफल ही होगा। जमना उसे वहाँ आनेके लिए परेशान न करे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५१२ से भी; सौजन्य नारणदास गाधी

५६. पत्र : प्रभावतीको

१६ नवम्बर, १९३६

चि० प्रभा,

मेरे पास समय तो बिलकुल नही है। तेरा पत्र मिला। तुझे अपनी तबीयत ठीक करनेके लिए छुट्टी लेकर यहाँ आना चाहिए। यदि दे सके, तो साथका पत्र जयप्रकाशको दे देना। बा और लीलावती आ गई है। कनु बम्बईसे आया है। मनु दिल्लीमे है, अब आयेगी। वसुमती आज चली गई।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४८६) से।

५७. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

१६ नवम्बर, १९३६

किसी भी निमित्त तेरा पत्र क्यों न आये, मुझे अच्छा लगता है। सच बात यह है कि मुझे राय देनेका कोई अधिकार नही है। मै किसीसे मिलता-जुलता नही, अखबार भी बहुत कम पढता हूँ। किन्तु मुझसे पूछा जाता है तो जो मुझे सूझता है, वह कह देता हूँ। . . . . . .[1] मेरा किसीके बारेमे आग्रह नही है। जवाहरलालका नाम सूझानेमे भी मैने देशका हित ही सोचा था। देखे क्या होता है। आशा है, बच्चे मजेमे होगे।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी, पृ० १६२

१. यह अंश साधन-सूत्रमें छूटा हुआ है।

५८. पत्र : क० मा० मुंशीको

वर्धा
[१७][1] नवम्बर, १९३६

भाई मुन्शी,

तुम्हारा दीवालीका कार्ड मिला। किन्तु दीवाली किसके लिए? वहाँ तो होली जल रही है, उसकी आग किसे नही जला रही होगी?

जीजीमाँ कैसी है? उनकी बीमारी बहुत लम्बी खिच गई। अब हम लोग वह सविधान-समिति नियुक्त कर दे, तो अच्छा हो। काम आरम्भ हो जाना अच्छा रहेगा।

बापुके आशोर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७६१०) से; सौजन्य. क० मा० मुशी।

५९. पत्र : अमृतलाल टी० नानावटीको

सेगाँव
१७ नवम्बर, १९३६

चि० अमृतलाल,

तुम्हारा पत्र वसुमतीके जानेके बाद मिला। इसलिए सम्बन्धियोकी जानकारीके लिए पता नही दिया जा सका। तुम्हारा पता कनुको भेज रहा हूँ।

दूसरे फलोमे है अनार, चीकू, अनन्नास, जामुन, मीठे अमरूद, आम, बिलकुल पकी हुई खिरनी, मीठे वगैरह। एकाध दिन तो केले खानेमे भी कोई हर्ज नही, लेकिन केलोको रोटीके बदले खाओ तो अच्छा हो। केलोको काटकर उनमें मक्खन या घी मिलाया जा सकता है। इनमे से सेवके समान कोई फल तुम्हे माफिक न आये, यह हो सकता है। माफिक न आनेवाला फल छोड़ देना चाहिए।

साबुनकी बात समझ गया। छोटेलालका कहना है कि मगनवाडीमे जो साबुन बनता है, उसकी तुलनामे तो चूरा भी महँगा पडता है। क्या तुम इस सम्बन्धमें

1. साधन-सूत्रमें २७ तारीख दी हुई है। यह ठीक नहीं मालूम होती, क्योंकि जीजीमाँ उससे पहले नहीं रही थीं; देखिए "पत्र : क० मा० मुंशीको", २०-११-१९३६। इसके अतिरिक्त, दीवाली भी १४ नवम्बरको थी।

कुछ बता सकते हो? तुम्हारा वजन ठीक बढ रहा है। ऐसा होना ही चाहिए। बदहजमी बिलकुल मत होने देना। मीराबहन भी तन्दुरुस्त होती जा रही है, चलनेमे थकती नही है। कुछ काम भी करती है। हाँ, खुराकमे कुछ ज्यादती कर जाती है। एक दिन तो बुखार ही आ गया। मै तो घबरा गया, वह भी घबराई। उस रोज भोजन लगभग नही किया। नीबू, पानी और शहदपर रही और अच्छी हो गई।

अमतुस्सलाम सान्ताक्रूजमे रहती है। वहाँ जरूर जाना। पता है—ईस्टर विला, सैंवन्थ रोड।

कान्तिसे मिल सको तो मिलना। लपसी बनानेकी तुम्हारी रीति ठीक है। यदि आटा पहले थोडे-से ठडे पानीमे घोल लो और फिर वह घुला हुआ आटा उबलते पानीमे डालो तो गाँठे कभी नही बनेगी। मैंने तो इस प्रकार ७५ कैदियोके लिए लपसी बनाई है। यह तुरन्त पक जाती है। ठडे पानीमे घोलकर चूल्हेपर रख देनेसे समय बहुत लगता है, और उसे चलाना भी बहुत पड़ता है। मै जो लिख रहा हूँ, उसका मतलब समझ रहे हो न? आटेका एकदिल हुआ घोल खौलते पानीमें डालना चाहिए, और डालते समय उसे बराबर चलाते रहना चाहिए। दूध १२० तोलातक लेना चाहिए। खट्टे नीबू खानेकी आदत बनाये रखना।

हरिलालके बारेमे अखबारोमे कुछ नही है। वह क्या बोला, कहाँ क्या हुआ वगैरह जाननेकी इच्छा तो होती ही है।[1]

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७२४) से।

६०. कान्तिलाल गांधीको

सेगाँव, वर्धा
१७/१९ नवम्बर, १९३६

चि० कान्ति,

तू हर हफ्ते एक कार्ड भी लिखनेका नियम बना ले, तो मुझे सचमुच अच्छा लगे। तेरे अध्ययनमे बाधा डालनेकी मेरी बिलकुल इच्छा नही है। इतना परसो लिख पाया था कि विघ्न उपस्थित हुआ। ना, मैं तेरा एक क्षण भी खराब नही करना चाहता। किन्तु मेरे लिए खर्च किये ५ मिनटोको मै समयका अपव्यय नही मानता। कई बार तुझे लिखनेकी इच्छा होती है, किन्तु समय ही नही मिलता।

१. अभिप्राय आर्यसमाजी विधिके अनुसार 'शुद्धि' द्वारा हरिलालके पुनः हिन्दू-धर्म स्वीकार कर लेनेसे है।

अमतुस्सलाम तेरे बारेमें बहुत लिखती है, सदेसे भेजती है। किन्तु मै उस सबमें से कुछ भी तुझे नही लिखता।

यह पत्र लिखनेका एक विशेष प्रयोजन है। तू हरिलालके पास गया था, और वहाँ ऐसा करुण दृश्य देखा कि अपने आँसू न रोक सका और रोकर लौट आया। यह सब मुझसे सरदारने कहा। मुझसे दु ख छिपाकर तू मुझे कैसे बचायेगा? मुझे तो दु.खको सहन करना सीखना है और उसका अभ्यस्त होना है। अत जो हुआ हो, मुझे लिख। और हाँ, वह आर्यसमाजवाली बात क्या है? उसमें कुछ सचाई है क्या? क्या कोई उसकी देखभाल करता है? तुझसे यह सब पूछ रहा हूँ, क्योकि तू अभीतक हरिलालके बारेमे सोचता रहता है। तेरे क्या हाल है?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७३०८) से, सौजन्य. कान्तिलाल गाधी

६१. पत्र: अमृत कौरको

१९ नवम्बर, १९३६

मूर्खा रानी,

मै कभी भी तुम्हे रुलानेके लिए नही, हमेशा हँसानेके लिए ही लिखता हूँ। पहले पत्रमे तुम्हारा आशय क्या था, यह तो मुझे पत्र पढकर ही मालूम हो पाया है। लेकिन साथ ही तुम्हारे उस अनुच्छेदका वह मतलब भी निकलता है जो मैने लगाया है। मगर मेरे विनोदसे तुम रोओ क्यो? मै तो तुम्हारे लिए चुन-चुनकर तरह-तरहके विशेषणोका प्रयोग करता हूँ, उनपर तुम्हे रुलाई क्यो नही आती? अगर तुम शरीर और मन दोनो तरहसे दुरुस्त रहना चाहती हो, और जिस कामके लिए तुम उपयुक्त जान पडती हो उसे करना चाहती हो, तो तुम्हे अपने अन्दर सहन-शक्तिका विकास करना होगा।

मै पहली दिसम्बरको फैजपुर नही जा रहा हूँ। १० या ११ तारीखको जा सकता हूँ, २० के आसपास तो अवश्य ही। २७ के बाद आओगी तो बहुत देर हो चुकेगी। पहले ही आकर वहीसे अहमदाबाद क्यो नही जाती। फिर तुम चाहो तो कुछ देर भी कर सकती हो। खैर, तुम खुद ही देखना कि क्या सम्भव है। काग्रेस अधिवेशनके बाद कोई दौरा नही करूँगा। उसके बाद तो मुझे सेगाँव ही जाना है। मार्च या अप्रैलमें जब भी गाधी सेवक संघका सम्मेलन होगा, मुझे बेलगाँव जाना होगा। तुम्हें जितनी भी जानकारी चाहिए और जितनी तुमने माँगी थी, सब अब मैने दे दी। अधिवेशन २७को शुरू होगा और २९को समाप्त।

तुम्हारा लेख मेरे सुझावोके लिए समयसे मेरे पास भेज दिया गया तो मै उसे जरूर पढ़ूंगा।

सस्नेह,

जालिम

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७५४) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६९१० से भी।

६२. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१९ नवम्बर, १९३६

चि० प्रेमा,

तेरे पिछले पत्रमे उत्तर देने लायक कुछ नही था। तुझे लिखनेका कोई भी निमित्त मुझे अच्छा लगता है। समय ही नही था। परन्तु तेरे अन्तिम पत्रका उत्तर तो देना ही पड़ेगा। काकाने तेरी बीमारीका समाचार एक मिनटकी बातचीतमे दिया था, परन्तु जैसा तूने लिखा है वैसी बीमारीका नही था। किन्तु तू इस प्रकार बीमार क्यो पड़ती है? इसमे मुझे तेरी लापरवाही नजर आती है। यदि तू शरीरको ईश्वर की दी हुई सम्पत्ति मानकर उसका उपयोग करे तो इस तरह बीमार न पड़े। शरीरसे जितना हो सके उतना ही काम करके तू सतोष क्यो नही मानती?

मेरे वहाँ पहली दिसम्बरको आकर रहने अथवा जनवरीमे दौरेपर निकलनेकी कोई बात नही है। हाँ, प्रदर्शनीसे पहले मुझे फैंजपुर जरूर जाना है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च.]

लीलावती सेगाँव लौट आई है। उसके विषयमे कुछ भी नही कहा जा सकता। उसका हेतु तो ऊँचा है ही। वह मेहनत भी करती है, परन्तु जबतक अधीरता न मिटे, तबतक वह सच्ची प्रगति नही कर सकती। फिर यदि मैं स्वराज्यकी आशा नही छोड़ सकता तो लीलावतीकी आशा कैसे छोड़ूं? मेरे-जैसा आशावादी तुझे मुश्किलसे मिलेगा।

हरिलाल तो खड्डेमे पड़ा है न? मै उसकी भी आशा नही छोड़ता। इससे अधिक और क्या कह सकता हूँ? आर्यसमाजी बननेमे तो कुछ नही है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३८६) से। सी० डब्ल्यू० ६८२५ से भी; सौजन्य . प्रेमाबहन कंटक।

६३. पत्र : डाह्याभाई म० पटेलको

१९ नवम्बर, १९३६

भाई डाह्याभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम मेरे सामने बैठे थे, उसका चित्र तो आज भी मेरी आँखोके सामने है। किन्तु क्या करता? ऐसा घिरा हुआ था कि 'कैसे हो' पूछनेकी भी हिम्मत नही पडी। समयका प्रत्येक क्षण और शक्तिका प्रत्येक कण बचानेकी पडी हुई थी।

बापूके आशीर्वाद

श्री डाह्याभाई मनोरदास
धोलका धंधूका रेलवे

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २७०९) से, सौजन्य : डाह्याभाई म० पटेल।

६४. पत्र : रावजीभाई ना० पटेलको

१९ नवम्बर, १९३६

चि० रावजीभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी परिषद् सफल हो। सफलताका माप बडे-बड़े प्रस्ताव नही, प्रस्तावके अनुसार युवकोका दृढतापूर्वक किया गया आचरण होता है। जिनपर अमल करनेको युवक तैयार न हो, ऐसे प्रस्ताव कदापि पास न किये जायें।

बापूके आशीर्वाद

श्री रावजीभाई नाथाभाई पटेल
पाटीदार युवक मंडल
सेवा मन्दिर
नडियाद, बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९००९) से।

६५. पत्र : रामनारायण एन० पाठकको

१९ नवम्बर, १९३६

भाई रामनारायण,

तुम्हारा पहला वक्तव्य सत्यका सूचक नही है। उसमे बहुत-सी बाते जो आनी चाहिए थी, नही आई। मेरा अभिप्राय भी ठीक उद्धृत नही हुआ। आसपासके कारणो को न जाननेवाला मेरा अभिप्राय समझ भी कैसे सकता है? और जब तुम मेरा अभि-प्राय स्वीकार नही करते, साथ ही उसे प्रकाशित भी करते हो तो मुझे बाध्य होकर तुम्हारे साथ विवादमे उतरना पडता है। तुम चाहो तो अपना दूसरा वक्तव्य प्रकाशित कर सकते हो। किन्तु मेरे दबावमे आकर कुछ भी करनेकी जरूरत नही है। तुम्हारी बुद्धि और तुम्हारा हृदय जो स्वीकार करे, वही लिखना, वही करना। मेरे-जैसे व्यक्ति के शब्दोको तुम शान्तिपूर्वक तोलो, इससे अधिक मै तुमसे कोई आशा नही करता।

तुम्हे छोड़ देना अथवा तुम्हारी उपेक्षा करना मुझसे होगा ही नही। मै तो अन्ततक तुम्हारे सुधारकी आशा बनाये रखूंगा, जैसी कि हरिलालके बारेमे रखता हूँ।

नर्मदाका ज्योति संघमे रहना, उसका साध्वी माना जाना, तुम्हारा उसके निकट रहना, यह सब जलेपर नमक छिड़कनेके समान है। मै नही जानता, तुम कौन-सी नीतिको मानते हो। किन्तु हो सकता है कि तुम्हे अपने काममे अनीति न लगती हो, और इसलिए मेरी उपमा तुम्हे कष्ट पहुँचाये, जैसे मेरा प्रत्येक वचन हरिलालको कष्ट पहुँचाता है। किन्तु उसे अथवा तुम्हे जाग्रत करनेका मेरे पास दूसरा उपाय नही है। तुम्हे मै नही जानता, किन्तु नर्मदाको तो थोडा-बहुत जानता हूँ। वह मूर्ख लड़की है। उसमे समझनेकी बहुत कम शक्ति है। उसे सत्यासत्यका भान नही है। उसे कोई भी युवक भुलावेमें डाल सकता है। तुम उसके भाई अथवा पिता बननेके बदले पति बन बैठे और गंगाके प्रति स्पष्ट अन्याय किया। नर्मदा मेरे साथ जो अन्तिम बात कर गई थी, उसपर भी कायम नही रह सकी। तुम्हारे भाईका, गगाका, हेमूभाईका आर्तनाद मुझतक पहुँचता ही रहता है। वे जो लिखते है, यदि वह सब सच हो तो भयानक है। यदि वह सच हो और तुम्हारे ही लिखे अनुसार यदि तुम उन्हे खूब डटकर धोखा दे रहे हो तो कोई आश्चर्यकी बात नही होगी। मै ऐसे युवकोंको जानता हूँ जो अपने पापको थोड़ा-सा स्वीकार करके अपनेको कृतार्थ मानते है और जब किसीको उनकी स्वीकृतिसे सन्तोष नही होता, तो नाराज होते है। वे समझते है समाज अकृतज्ञ है। यह भूल तुमसे न हो तो अच्छा हो। इसमे जो-कुछ लिखा है, वह केवल तुम्हारे हितके लिए, तुम्हारे मार्गदर्शनके लिए लिखा है, ऐसा समझना। तुम मेरा त्याग कर सकते हो। मै स्वय अपना त्याग नही करता,

तो फिर तुम्हारा अथवा और किसीका कैसे कर सकूँगा। 'आत्मवत्सवभूतै[1] यह मेरे लिए मात्र शास्त्र-वचन नही है, मेरे जीवनकी बुनावटमें बुन गया सूत्र है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २७८६) से; सौजन्य: रामनारायण एन० पाठक।

६६. पत्र: एफ० मेरी बारको

'दुबारा नहीं पढ़ा

सेगाँव, वर्धा
२० नवम्बर, १९३६

चि० मेरी,

मेरा पत्र-व्यवहारका काम बहुत पिछड़ गया है। जितनी देर काम करनेकी इजाजत है, जबतक उससे ज्यादा देरतक काम न करूँ तबतक उसको निबटानेका समय नही मिल सकता। मगर मै करूँगा नही। अब यह देखना है कि यह 'नही' कबतक चल पाती है।

मैं नही समझता कि मारियावाली बात तुमपर कब लागू होगी। मगर भविष्य क्या होगा, यह कौन कह सकता है।

वापसी यात्राके बारेमे मै कोशिश करूँगा। मै नही चाहता कि तुम लन्दनमें अ० भा० ग्रामोद्योग सघके लिए चन्दा करो। मेरा खयाल है, तुम्हारे मनमें वहाँ रहनेवाले भारतीयोसे चन्दा लेनेकी बात है, मगर दरिद्रनारायणके लिए भी उनके सामने तुम्हारा झोली फैलाना बेकार है।

वह सौ रुपये और चाहो तो और भी, जैसा तुमने बताया है, उस ढगसे बेशक खर्च कर सकती हो।

मै नही समझता कि मुझ-जैसे लोगोकी मार्फत दान देनेवाले लोगोको तुम्हे धन्यवाद देनेकी कोई जरूरत है।

तुम तकलीकी शिक्षा देकर कुछ कमाई करो, यह बात मुझे बिलकुल पसन्द नही है। हाँ, अगर शिक्षा पानेवाले लोग अमीर हो और तकली चलाना एक शौक की तरह सीखना चाहते हो तो बात और है। तुम इस तरह कमाई करो, इसके बजाय मै दूसरे स्रोतोसे तुम्हारी सीमित आवश्यकताओको पूरा करना ज्यादा अच्छा समझता हूँ।

पश्चिमके मित्रोसे किसी भी सविनय अवज्ञा आन्दोलनमे शरीक होनेको न कहने या उनसे ऐसी कोई उम्मीद न रखनेकी मेरी नीति अब भी कायम है। यदि वे

१. 'आत्मवत्सर्वभूतेषु य. पश्यति स पण्डितः', सब प्राणियोंको अपने समान समझनेवाला ही ज्ञानी है।

अ० भा० च० स० तथा अ० भा० ग्रामोद्योग सघकी ओरसे वह कार्य करे जिसे मै रचनात्मक कार्य कहता हूँ, तो यही काफी बड़ी मदद होगी।

मै समझता हूँ, अब मैंने तुम्हारे सारे प्रश्नोके उत्तर दे दिये है।

तुमको बहुत-बहुत प्यार और मोतीबहनको भी, जिससे मेरी बहुत छोटी-सी मुलाकात हुई थी, लेकिन मिलकर बहुत खुशी हुई थी।

बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी०एन०६०६९) से। सी० डब्ल्यू० ३३९९ से भी; सौजन्य. एफ० मेरी बार।

६७. पत्र : जॉन आर० मॉटको

२० नवम्बर, १९३६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। मुझे इस बातकी खुशी है कि हमारी जान-पहचान फिर ताजी हुई और हम लोग आपसमे विचार-विनिमय कर सके। मैपिल चीनीके दो पैकेट भेजनेके लिए श्रीमती मॉटको कृपया मेरी ओरसे धन्यवाद कहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

डॉ० जॉन आर० मॉट
नागपुर

अग्रेजीकी नकलसे. प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल।

६८. पत्र : मनु गांधीको

२० नवम्बर, १९३६

चि० मनुडी,

तेरा पत्र मिला था। अब तो तुझे जल्दी-से-जल्दी यहाँ पहुँच जाना चाहिए। जल्दी ही आकर भजन सुनाना शुरू कर। जो सीखना चाहे, उसे सीखनेकी तो यहाँ अपार गुंजाइश है ही। किशोरलाल और गोमती इस समय गुजरातमें घूम रहे है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १५६१) से; सौजन्य : मनुबहन एस० मशरूवाला।

६९. पत्र : क० मा० मुंशीको

२० नवम्बर, १९३६

भाई मुन्शी,

यह शोक-पत्र नही है। जीजीमाँ तो तुम्हारी सेवा करके तथा तुम दोनोकी सेवा प्राप्त करके कृतार्थ हो गई। अमरपट्टा लिखाकर तो कोई आता नही। उनका तुम्हारे प्रति प्रेम और तुम्हारी उनके प्रति भक्ति मुझे सदा बहुत सुहावने लगे है। उनकी भगवद्‌भक्ति तुम्हारे लिए हमेशा रक्षा-कवच बनी रहेगी।

चाहो तो इसके बाद वाले शनिवार या रविवारको आ सकते हो। तब निर्णय कर लेंगे, और उसके अनुसार प्रस्ताव पास करा लेना। सबको यहाँ लाना अनावश्यक होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७६०९) से; सौजन्य : क० मा० मुंशी।

७०. पत्र : रामेश्वरी नेहरूको

२० नवम्बर, १९३६

प्रिय भगिनि,

तुमारा तार मिला था। हम सबके लिए त्रावणकोरका किस्सा अधिक पवित्रता, अधिक त्याग और अधिक तन्मयताका निमंत्रण है। मेरा अटल विश्वास है कि यदि हम सच्ची निष्ठासे अपने कर्त्तव्यका पालन करते रहेंगे तो अस्पृश्यता जडमूलसे नष्ट हो जायगी।

तुमारा सब काम अच्छी तरह चलता होगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७९८४)से। सी० डब्ल्यू० ३०७७से भी, सौजन्य : रामेश्वरी नेहरू।

७१. काम-विज्ञानकी शिक्षा[1]

गुजरात विद्यापीठसे हाल ही मे 'पारगत' की पदवी प्राप्त करनेवाले श्री मगन-भाई देसाईके ७ अक्तूबरके पत्रका अश यहाँ देता हूँ[2]

> इस बारके 'हरिजन' में आपका लेख पढ़कर मेरे मनमें विचार आया कि मैं भी एक प्रश्न चर्चाके लिए आपके सामने पेश करूँ। इस प्रश्नपर आपने अबतक शायद ही कुछ कहा या लिखा है। प्रश्न है: बालकों और खास करके विद्यार्थियोंको काम-विज्ञान सिखाना चाहिए या नहीं। . . .
>
> क्या शिक्षामें काम-विज्ञानके शिक्षणकी आवश्यकता है? उसकी शिक्षा कौन दे? उसका अधिकारी कौन है? क्या सामान्य भूगोल, गणित आदि विषयोंकी तरह सबको उसकी शिक्षा दी जानी चाहिए? उसमें क्या सिखाया जाए? उसकी क्या मर्यादा है और वह मर्यादा कौन बनाए? काम-विज्ञानकी शिक्षाका उद्देश्य हमारी नस-नसमें पैठी हुई काम-प्रवृत्तिसे संघर्ष करना है या उस प्रवृत्तिको प्रकृतिकी एक अनिवार्य वास्तविकता मानकर उसके सामने घुटने टेक देना है? ऐसे अनेक तरहके सवाल मनमें उठते हैं।
>
> आप इस प्रश्नपर अंग्रेजीमें लिखें, यह तो ठीक ही है पर साथ ही गुजरातीमें भी लिखिए। आप सीधे 'हरिजनबन्धु' में कुछ नहीं लिखते, ऐसी हमारी एक शिकायत तो है ही।

इस पत्रको मैंने इतने समयतक इस आशासे रख छोडा था कि किसी दिन मै इसमे उठाये गये प्रश्नपर कुछ लिखूंगा। इसी बीच मै बारहवी गुजराती साहित्य परिषद्‌का अध्यक्षपद स्वीकार करके अहमदाबाद जा पहुँचा। वहाँ जब गुजरात विद्या-पीठमे चार दिन ठहरा और गुजराती भाई-बहनोसे मिलनेका अवसर आया तो अनेक पुरानी स्मृतियाँ ताजी हुईं। उपर्युक्त पत्रमे जिस भाईने मुझे मीठा उलाहना दिया है उनसे भी मिला। मगनभाईने मुझसे यह पूछा भी कि "मेरे उस पत्रका क्या हुआ?" और मैंने यह कहकर उन्हे संतोष दिया कि "वह मेरे साथ घूम रहा है और मै उसपर अवश्य कुछ लिखूंगा।" उस समय मेरे मनमे खयाल यह था कि अंग्रेजीमे लिखूंगा। लेकिन सेगाँव पहुँचनेपर मगनभाईके तानेका असर महसूस होने लगा। 'नवजीवन' के दिनोमे स्वामी आनन्द मेरे साथ इसी सवालको लेकर जो मीठा और तीखा झगड़ा करते रहते थे, वह याद आया। मै अपने मौलिक विचार 'यंग

१. प्यारेलालजीने इसका अंग्रेजीमें अनुवाद किया था, जो **हरिजन** २१-११-१९३६ में प्रकाशित हुआ था।

२. पत्रके कुछ अंश ही यहाँ दिये गये हैं।

३. देखिए खण्ड ६३, पृष्ठ ४४१-५० और ४५१-५४।

इडिया' मे लिखता हूँ और 'नवजीवन' में वे अपने बासी रूपमे ही छपते है, यह बात उन्हे असह्य मालूम होती थी। मुझे भी यही लगता था, किन्तु 'यंग इडिया'मे लिखनेका अपना आग्रह भी मुझे अनुचित नही लगता था। अन्तमें, मेरा खयाल है, स्वामी आनन्दने थककर मुझे हैरान करना छोड दिया। इतने वर्षों बाद भी मै निश्चयपूर्वक यह नही कह सकता कि हम दोनोमे से किसकी बात सही थी। जो भी हो, इतनी प्रस्तावनाके बाद मै 'हरिजनबन्धु' के पाठकोसे यह कह देना चाहता हूँ कि मगनभाईकी शिकायतकी सचाईको मै स्वीकार करता हूँ और अब मै प्रति सप्ताह गुजराती पाठकोके- लिए, कुछ-न-कुछ ताजा परोसनेका प्रयत्न करूँगा। मै उनसे अनुरोध करता हूँ कि वे मुझे मेरे इस प्रयत्नमें प्रोत्साहन दें।

अब मगनभाईने जो प्रश्न उठाया है उसके सम्बन्धमें

क्या गुजरातमें और क्या दूसरे प्रान्तोमे, सब जगह कामदेव लगातार विजय प्राप्त कर रहे है। आजकलकी उनकी विजयमे एक विशेषता यह है कि उनके शरणागत नर-नारीगण अपने इस कार्यको धर्म मानते दिखाई देते हैं। जब कोई गुलाम अपनी बेडीको शृगार समझकर पुलकित हो, तब कहना चाहिए कि उसके मालिककी पूरी विजय हो गई। इस तरह कामदेवकी विजय होते देखकर भी मेरा यह अटल विश्वास है कि यह विजय क्षणिक है, तुच्छ है और अन्तमे डक-कटे बिच्छूकी तरह निस्तेज हो जानेवाली है। किन्तु ऐसा होनेके पहले पुरुषार्थकी तो आवश्यकता रहेगी ही। अन्तमें कामदेवकी हार होनेवाली है, इसलिए हम गाफिल बनकर बैठे रहे, यह मेरा आशय नही है। कामपर विजय प्राप्त करना स्त्री-पुरुषोका एक परम कर्त्तव्य है। उसपर विजय प्राप्त किये बिना स्व-राज्य प्राप्त करना असम्भव है। स्व-राज्यके बिना स्वराज्य अथवा रामराज्य होगा ही कहाँसे? स्व-राज्य-विहीन स्व-राज्यको खिलौनेके आमकी तरह समझना चाहिए। देखनेमें बडा सुन्दर, परन्तु खोला तो अन्दर पोल ही पोल। कामपर विजय प्राप्त किये बिना कोई सेवक हरिजनोकी, कौमी एकताकी, खादीकी, गोमाताकी, ग्रामवासीकी सेवा कभी नही कर सकता। इस सेवाके लिए बौद्धिक सम्पत्ति काफी नही होगी। आत्मबलके बिना ऐसी महान सेवा असम्भव है। और आत्मबल प्रभुके प्रसादके बिना असम्भव है। कामी मनुष्यको प्रभुका प्रसाद मिला हो, ऐसा अबतक जाना नही गया।

मगनभाईका प्रश्न है: काम-विज्ञानकी शिक्षाका हमारी शिक्षा-प्रणालीमे क्या कोई स्थान है, अथवा है तो कहाँ है? काम-विज्ञान दो प्रकारका है। एक वह जो काम-विकार को अकुशमे रखने या जीतनेके काम आता है, और दूसरा वह जो उसे उत्तेजन और पोषण देनेके काम आता है। पहलेको शिक्षाक्रममे स्थान मिलना ही चाहिए, किन्तु दूसरा सर्वथा त्याज्य है। सभी बडे धर्मोने कामको मनुष्यका घोर शत्रु माना है, क्रोधका स्थान दूसरा रखा गया है। 'गीता' के अनुसार तो क्रोध कामकी ही सन्तान है। बेशक, 'गीता' ने काम शब्दका प्रयोग व्यापक अर्थमें किया है। परन्तु जिस सकुचित अर्थमें उसका यहाँ उपयोग किया गया है, उस अर्थमें भी यह बात लागू होती है।

परन्तु फिर भी इस प्रश्नका उत्तर देना रह ही जाता है कि छोटी आयुके विद्यार्थियोको 'गुह्येन्द्रियोके कार्य और उपयोगके बारेमे ज्ञान देना वाछनीय है या नही। मेरे खयालसे एक हदतक इस प्रकारका ज्ञान देना जरूरी है। आज तो वे शुद्ध ज्ञानके अभावमे इधर-उधरसे अशुद्ध ज्ञान प्राप्त कर लेते है और इन इन्द्रियोका दुरुपयोग करते देखे जाते है। हम काम-विकारपर उसकी ओरसे आँखे बन्द कर लेनेसे नियन्त्रण प्राप्त नही कर सकते। इसलिए मेरा यह दृढ़ मत है कि नौजवान लडके-लड़कियोको इन इन्द्रियोका महत्त्व और उचित उपयोग सिखाया जाये। और अपने ढगसे मैने उन अल्पायु बालक-बालिकाओको, जिनकी तालीमकी जिम्मेदारी मुझपर थी, यह ज्ञान देनेकी कोशिश की है।

परन्तु यह शिक्षा दूसरी ही दृष्टिसे दी जाती है। इस तरह इन्द्रियोका ज्ञान देते समय सयम सिखाया जाता है, यह सिखाया जाता है कि कामको कैसे जीता जाये। यह ज्ञान देते हुए ही मनुष्य और पशुके बीचका भेद समझाना जरूरी हो जाता है। मनुष्य वह है जिसमे हृदय और बुद्धि है। यह 'मनुष्य' शब्दका धात्वर्थ है। हृदयको जाग्रत करनेका अर्थ है, आत्माको जाग्रत करना। बुद्धिको जाग्रत करनेका अर्थ है, सार और असारका भेद सिखाना। यह सिखाते हुए ही यह भी सिखाया जाता है कि कामपर विजय कैसे पाई जाये।

यह उत्तम शास्त्र कौन सिखाये? जैसे—खगोल या ज्योतिष शास्त्र वही सिखा सकता है जो उसमे पारगत हो, वैसे ही कामशास्त्र वही सिखा सकता है जिसने कामको जीत लिया हो। उसकी भाषामे सस्कार होगा, बल होगा और जीवन होगा। जिसके कथनके पीछे अनुभव-ज्ञान नही, उसका कथन जडवत् होता है, वह किसीपर असर नही डाल सकता। जिसे अनुभव-ज्ञान है, उसकी बातका फल निकलता है।

आजकलका हमारा बाहरी व्यवहार, हमारा वाचन, हमारा विचार-क्षेत्र सब कामकी जीत बतानेवाले है। इसके फदेसे निकलनेका प्रयत्न करना है। यह कार्य अवश्य विकट है। किन्तु जिन्हे शिक्षण-शास्त्रका अनुभव है और जिन्होने कामको जीतनेका धर्म अंगीकार कर लिया है, ऐसे गुजराती भले ही मुठ्ठी-भर ही हों, परन्तु यदि उनकी श्रद्धा अटल रहेगी, वे सदा जाग्रत रहेगे और सतत प्रयत्न करेगे तो गुजरातके लडके-लडकियोंको शुद्ध ज्ञान मिलेगा। वे कामके जालसे छूट जायेंगे, और जो न फसे होगे वे उससे बच जायेंगे।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २२-११-१९३६

७२. तूफान-पीड़ित हरिजनोंकी सहायता

श्रीयुत जी० सीताराम शास्त्रीने श्रीयुत ठक्कर बापाको निम्नलिखित पत्र[1] लिखा है :

> आन्ध्रके तटीय जिलोंमें, खासकर गुंटूर जिलेमें, आये भयंकर तूफानसे जो विनाश हुआ है, उसका पूरा-पूरा अन्दाजा पैसोंमें नहीं लगाया जा सकता। सरकारी तौरपर उसे एक करोड़ आँका गया है। . . . यह पत्र मैं खास तौरसे हरिजनोंकी ओरसे लिख रहा हूँ। क्योंकि इससे उनकी भयंकर बरबादी हुई है। उनकी दशा अत्यन्त दयनीय है और उन्हें शीघ्रातिशीघ्र पर्याप्त सहायताकी जरूरत है। ३,००० से अधिक बुनकरोंको अपने घरों तथा करघोंसे हाथ धोना पड़ा है। तटीय क्षेत्रोंमें रहनेवाले मछुओं, आदिम जातिके लोगों, हरिजनों तथा दूसरी दलित जातियोंके लोगोंके पास न खानेको कुछ रहा है, न पहननेको और न रहनेको। उनकी तात्कालिक जरूरतें पूरी करनेके लिए कम-से-कम २५,००० रु० की जरूरत है। . . . चन्देकी रकम गुंटूरमें देशभक्त कोण्डा वेंकटप्पैयाके पास भेजी जाये।

मैं बाखुशी इस पत्रको प्रकाशित करता हूँ। जैसी विपत्ति गुटूरपर आई है, वैसी विपत्तियाँ हमारे जीवनका अग बन गई है। इसमे सन्देह नही कि दानवीर लोग गुंटूरमें तूफान-पीड़ित लोगोंकी सहायता करेगे, लेकिन तूफानके मारे हरिजनोकी पुकारपर ज्यादा जोर देनेकी जरूरत थी। मैं आशा करता हूँ कि जिनकी हरिजनोमें रुचि है, वे इस पुकारका उत्तर देनेमें चूकेंगे नही।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २१-११-१९३६

१ पत्रके कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

७३. चन्दा मांगनेवालोंसे सावधान

मुझे अभी पता चला है कि श्रीयुत गोविन्द चन्द्र मिश्र, जो कभी साबरमती आश्रममें थे और जो इन दिनो कटकके पास हरिजन-कार्य करते रहे हैं, नियमित चन्दा उगाहनेके लिए बम्बई आ गये है। चन्दा एकत्र करनेके लिए कही बाहर जानेसे पहले वे सामान्यत मुझसे सलाह-मशविरा कर लेते है। इस बार उन्होने ऐसा नही किया और उन्हे यह भी मालूम है कि उनके खिलाफ गम्भीर आरोप लगाये गये हैं, जिनकी मै जाँच कर रहा हूँ। इसलिए जो लोग यह मानकर उनकी मदद कर रहे हैं कि वे मेरी अनुमतिसे चन्दा एकत्र करते है, उन्हे मै सावधान कर देना चाहूँगा कि वे उन्हे किसी तरहकी मदद न दे।[१]

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २१-११-१९३६

७४. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

सेगाँव, वर्धा

२१ नवम्बर, १९३६

प्रिय सी० आर०,

साथमें एस०[२] का पत्र है, उसे पढकर अपना निर्णय मुझे बताइए। यह बतानेकी जरूरत नही कि सरदारकी यह उत्कट इच्छा है कि [इस बार] काँटोका ताज आप पहनें। अगर आप ऐसा करे तो मुझे बडी खुशी होगी, लेकिन इसे स्वीकार करनेके लिए आपपर दबाव डालनेकी हिम्मत मुझमे नही है। अगर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे आपकी ओरसे कुछ आभास पाकर सत्यमूर्ति ऐसा सोचते हो कि आपको यह दायित्व अपने सिर लेनेको राजी किया जा सकता है, तो आपको बेहिचक 'हाँ' कह देनी चाहिए और सरदार-जैसे लोगोकी परेशानी मिटा देनी चाहिए जो उत्सुकतासे आपके आगे आनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०५९) से।

१. बादमें गोविन्द चन्द्र मिश्रने गांधीजी को पत्र लिखते हुए उनके वक्तव्यको "झूठ" बताया। गांधीजी द्वारा दिये गये उसके उत्तरके लिए देखिए "एक कष्टप्रद कर्तव्य", १९-१२-१९३६।

२. सत्यमूर्ति।

७५. पत्र : जेठालाल जी० सम्पतको

२१ नवम्बर, १९३६

चि० जेठालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। उस चमड़ेके मामलेमे मैंने काम शुरू कर दिया है। ऊपरसे पूछताछ शुरू हो गई है। अधिक मालूम होनेपर तुम्हे खबर दूंगा। वहाँ कोई नई बात हो, तो मुझे बताते रहना।

प्रदर्शनीके समय तुम्हे आना तो अवश्य चाहिए ही। उसमे कुछ दोगे तो कुछ लोगे भी। इस बहाने हम मिल भी लेगे। किन्तु अपने आनेका खर्च तुम्ही उठाओ तो मुझे ठीक लगे। इसके लिए कुछ माल ले आओ तो उसे बेच सकते हो। किन्तु यदि यह सम्भव न हो, तो वह खर्च — २५ रु० तकका — मैं कहीसे निकाल दूंगा। बहुत करके वहाँसे कारीगर लानेकी जरूरत तो नही पडेगी। यदि होगी तो बताऊँगा। तुम आओ तो जरा फुरसत निकालकर आना, और प्रदर्शनी खुलनेसे कम-से-कम दस दिन पहले मेरे पास रहकर जानेका कार्यक्रम बनाना। थोडे दिन मेरे ही पास बिताओ तो ठीक होगा। दिसम्बरके पहले हफ्तेमे आ जाओ तो अच्छा हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९८५८) से; सौजन्य नारायण जेठालाल सम्पत।

७६. पत्र : फूलचन्द के० शाहको

२१ नवम्बर, १९३६

भाई फूलचन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे तुम्हारे सम्बन्धमें तो कुछ कहना नही है। दूधका जला छाँछ फूंककर पिये, ऐसी मेरी गति है। रामनारायणके कृत्यने मुझे बहुत दुखी कर दिया है।[1] ऐसी और भी घटनाएँ घटी ही होगी; लेकिन इस घटनाने तो हद कर दी। प्रश्न यह है कि ऐसी घटनाके प्रति हमारे मनकी क्या प्रतिक्रिया होती है।

१. देखिए पृष्ठ ६५-६।

यह हो सकता है कि मेरे विचार आजकी हवाके अनुसार न हो। तो मै अकेला ही अपने विचारोंसे चिपका रहूँगा। तुम्हे अपनी तबीयत ठीक कर लेनी चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० २८६३) से, सौजन्य शारदाबहन शाह।

७७. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

सेगाँव, वर्धा
२१ नवम्बर, १९३६

भाई बापा,

तुम्हारे पत्रकी बात महादेव मुझे क्यो नही बतायेगा? इससे तो हरिजनोके प्रति तुम्हारा प्रेम ही टपकता है। यही बात है न? मुझमे भी इतना ही प्रेम है, किन्तु हम दोनोमे भेद है। तुममे अतिशयता है, तो मुझमे मर्यादा है। किसको अच्छा माना जायेगा, कौन जाने? अभी तो इतना ही कहना काफी होगा कि मैने जो-कुछ किया है बहुत विचारपूर्वक किया है और उससे हमारी कोई हानि नही होगी। जिसे कुछ विशेष कहना या करना हो उसे हम कहाँ रोकते है? सच्चा उत्सव तो हम अपने पवित्रता आदि गुणोको बढाकर ही मना सकते है। गायकी उपमा उस समय तो ठीक ही थी।[1] उसमे हरिजनोका कोई अपमान नही था। हरिजनो तथा पुलैया और कनुके समान बालकोको मिशनरियोके हाथमे नही पडने देना चाहिए। किन्तु तुम्हे अपने विचार भेजते ही रहने चाहिए।

बापूके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११६७) से।

७८. पत्र : बाबूजी गौरीशंकर व्यासको

२१ नवम्बर, १९३६

चि० बाबूजी,

तूने ब्योरेवार पत्र लिखा, यह बहुत अच्छा किया। तू जो लिखता है, वह सब दुःखद है। तुझे पुरुषार्थ करना चाहिए। शास्त्रीजी को मै खूब जानता हूँ। तुझे अपने ससुरकी सहायतापर निर्भर नही रहना चाहिए। तेरा कर्त्तव्य स्पष्ट है। या तो तू कमानेके किसी शुद्ध धन्धेमे पड, या फिर स्वेच्छापूर्वक निश्चयात्मक बुद्धिसे सेवाके क्षेत्रमे पड। सेवाके क्षेत्रमें पडे तो कमाईकी आशा छोड देनी चाहिए। सेवाके क्षेत्रमे

१. देखिए "चर्चा: जॉन मॉटके साथ", पृष्ठ ३९।

तुझे सेवामे ही रुचि लेनी चाहिए। ऐसी रुचि न हो तो सेवामें मिथ्याचारका प्रवेश हो जायेगा; और इससे बुरी दूसरी क्या बात होगी? हमारे धर्ममें ससुरको पिताके समान माना गया है। इसलिए शास्त्रीजी से परामर्श करके जैसा वे कहें वैसा करना। तूने मुझे लिखना शुरू किया है तो अब लिखते रहना। तेरा लिखना ठीक है, तू मेरे लिए पुत्रके समान ही है।

श्री बाबूजी गौरीशकर व्यास
हाटकेश्वर चौक
राजकोट सिटी
काठियावाड़

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २५१०) से।

७९. पत्र : अमतुस्सलामको

सेगाँव, वर्धा
२२ नवम्बर, १९३६

चि० अमतुल सलाम,

तेरे दो पत्र मेरे पास पड़े है। मुझे तो दीवाली-होली समान लगती है। जब हमारे सामने ही आग लगी हुई हो तो दीवाली मनाना पाप लगता है। तूने भाइयो का झगड़ा मिटाया, इसके लिए तू जरूर शाबाशीके काबिल है। तेरा बम्बईका चक्कर तो मै इतनेसे ही सफल हुआ मानता हूँ। डाक्टरोसे मिलना हुआ यह भी ठीक ही हुआ। अपनी माँकी सेवा करनेमे क्या बुराई है? अबकी सेवा ज्ञानपूर्वक की जाने-वाली सेवा होगी। वह भी देशकी बड़ी सेवाका अग बन सकती है।

यदि त्रिवेन्द्रम जानेसे अच्छी हो सकती हो, तो जरूर जा। वहाँकी आबोहवा यदि तुझे माफिक आ जायेगी तो अच्छी भी हो जायेगी। रामचन्द्रनकी इजाजत मिलने पर ही तू वहाँ जा सकती है। मुझे तो इन्दौर ज्यादा पसन्द है। लेकिन तुझे जो ठीक लगे सो कर। आशा है, बारी अच्छा होता जा रहा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३६२) से।

८०. पत्र : भगवानजी अनूपचन्द मेहताको

२२ नवम्बर, १९३६

भाई भगवानजी,

तुम्हारा शिकायतनामा पहुँचा। अब तुम मजाक न समझो तो इसका क्या उपाय है? अपने कामका मुझे कोई पश्चात्ताप नही है। महात्मा माननेके बदले यदि तुम मुझे बिना सीग-पूँछका, दो पाँव और काले सिरवाला आदमी मान लो तो फिर तुम्हे कोई शिकायत नही करनी पड़ेगी। शायद एक सुधार करना पडेगा। मेरा सिर अब काला न रहकर सफेद हो गया है। किन्तु यह बात तो मेरे पक्षमे पडी, ठीक है न? तुम्हारे पत्रसे यदि मुझे कष्ट हुआ हो तो क्या तुम मुझसे माफी माँगोगे?

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

श्री भगवानजी अनूपचन्द वकील
राजकोट सी० एस०
काठियावाड़

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५८३०)से। सी० डब्ल्यू० ३०५३ से भी, सौजन्य: भगवानजी अनूपचन्द मेहता।

८१. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

२३ नवम्बर, १९३६

प्रिय सी० आर०,

नाराज न होइएगा। त्रावणकोर-अधिनियमके बारेमे आपने जो टिप्पणी लिखी है, मैने उसमे कुछ छूट ली है—ऐसी छूट जैसी पहले कभी आपके लेखोके बारेमे मैने नही ली। उसमे किये गये संशोधनो और परिवर्धनोका कारण आप आसानीसे समझ जायेगे, बल्कि मै तो यह भी आशा करता हूँ कि आप उन्हे उतनी ही आसानीसे ठीक भी मान लेगे। जो भी हो, इस उद्देश्यके हितमे ये सशोधन करना मुझे अपना कर्त्तव्य जान पडा है।

बापू

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य नारायण देसाई।

८२. पत्र : अमृतलाल टी० नानावटीको

सेगाँव, वर्धा
२३ नवम्बर, १९३६

चि० अमृतलाल,

तुम्हारे दो पत्र मिले। तुम ठीक खबर देनेवाले मालूम होते हो। तुम्हारी प्रगति ठीक मानी जा सकती है। हर हफ्ते ५ पौंड वजन तो किसीका नही बढ़ता। इसके बाद हर हफ्ते यदि दो-दो पौण्ड बढ़े तो मुझे सन्तोष होगा।

मीराबहनकी खुराक अभी तो जैसी तुमने लिखी वैसी ही हैं। सेबसे बहुतोंकी कोष्ठबद्धता मिट जाती है। किन्तु विभिन्न शरीरोंकी कुछ अपनी-अपनी विचित्रताएँ होती ही है। पहले भी मीराबहनको कोष्ठबद्धता-जैसी कोई शिकायत नही थी। इसकी बीमारीका मुख्य कारण तो मैं हूँ न। लेकिन अभी तो सब ठीक चल रहा है।

खजूरके रससे गुड़ बनानेका प्रयोग अब पूरी तरह सफल हो गया। पहलेकी असफलताका कारण यह मालूम हुआ है कि मिट्टीके घड़ेमें चूना पोतनेमें लापरवाही बरती गई थी।

यहाँ इन दिनो घीका अकाल चल रहा है। कुँआरोंकी संख्या बढ़ गई है। उनमें अब बालकृष्ण भी शामिल हो गये हैं। किन्तु मैं तुम्हे घी भेजनेका प्रबन्ध तो करूँगा ही।

काँजी बनानेमें मेरी रीतिसे समय तो बचता ही है, पकनेमें भी कोई अड़चन नही होती। कुछ चीजोंको अदहनमें डालना जरूरी होता है; कुछ को ठंडे पानीमें डालकर चढ़ा देना चाहिए; जैसे-आलू वगैरह।

हरिलालके बारेमें तुम जो खबर दे सके हो, वह कोई नही दे सका। लेकिन अब मुझे विशेष खबर मिल चुकी है। उसकी स्थिति दयनीय है। कोई परिवर्तन हुआ ही नही। उसे तो बस शराबके लिए पैसे चाहिए।

कानाकी बात समझ गया। तुम यहाँ आओ, तब उसे गढ़ना। अब तुम्हारा कोई पत्र अनुत्तरित नही रहा। लीलावतीने रसोईघर और हिसाब-किताबकी देखभालका काम हाथमें ले लिया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७२५) से।

८३. पत्र : जेठालाल जी० सम्पतको

२३ नवम्बर, १९३६

चि० जेठालाल,

मुझे तो लगता है तुम्हारे सब पत्र मुझे मिले हैं और जहाँतक मुझे याद है, मैंने सबके जवाब दिये हैं। लेकिन अब तो तुम जल्दी ही यहाँ आओगे, इसलिए और पत्र लिखनेकी जरूरत नही होगी। हो, तो बताना।

चमड़ेके बारेमें मैं धुआँधार पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। नतीजा चाहे कुछ न निकले तो भी पत्र-व्यवहार तो तुम देखोगे ही। अपीलकी खबर मुझे कल तारसे मिलनेकी आशा है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

मैंने कुछ देहाती औजार इकट्ठे किये है, जिन्हे तुम देखोगे। अब ये गाँवोमे नही मिलते। लेकिन यह सब बादमें।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९८५९) से; सौजन्य: नारायण जेठालाल सम्पत।

८४. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
२४ नवम्बर, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

मेरी यह स्पष्ट राय है कि महिलाओको पुरुषोसे अनुग्रहकी माँग नही करनी चाहिए। इसलिए जिनमे बहुत अधिक योग्यता हो, उन महिलाओको भी अपने निर्वाचनके लिए इसी बातपर निर्भर रहना चाहिए कि यदि ससदीय कार्यके लिए उनकी जरूरत होगी तो उन्हे वहाँ बुलाया ही जायेगा। मुझे यह बात बहुत अच्छी लगी कि कम-से-कम कुछ महिलाएँ महिलाओके लिए सुरक्षित स्थानोसे चुनाव लड़नेसे इनकार कर दे। काग्रेसके टिकटपर चुनाव लड़नेवाली महिलाओको काग्रेसके प्रतिज्ञापत्रपर तो हस्ताक्षर करने ही पडेगे। अभी क्या-कुछ किया जा सकता है, मैं नही कह सकता। डॉ० एम० अगर प्रतिज्ञापत्रपर हस्ताक्षर करनेको तैयार हो और उनके लिए गुंजाइश हो तो उन्हे कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। लेकिन क्या हो रहा है, मुझे कुछ पता नही। जे० एन०को पत्र लिखकर तुमने अच्छा किया है। मेरा खयाल है कि

इतनेमें इस विषयसे सम्बन्धित तुम्हारे सभी सवालोंके जवाब आ गये हैं। अगर नही, तो फिर पूछना।

भुसावलसे फैजपुर मोटरसे २५ मीलका रास्ता है और भुसावलसे पहले पड़नेवाले एक स्टेशनसे ७ मीलका। उस स्टेशनका नाम मुझे याद नही है। अगर तुम जालन्धरसे दो दिन पहले चल सको तो आसानीसे फैजपुर उतर सकती हो। अगर जालन्धरसे कुछ और पहले चल सको तो तुम वहाँ दो या तीन दिन ठहर भी सकती हो। १२ दिसम्बरके बाद जालन्धरमें कोई कार्यक्रम मुझे स्वीकार नही करना चाहिए। तुम उसके आसपासके मेरे कार्यक्रमको देखती रहना और उसीके अनुसार जैसा करना ठीक लगे, वैसा करना। श्रीमती एस० से अपना नाम वापस लेनेको मैंने कहा था, लेकिन उन्होने मेरी सलाहपर अमल किया या नही, मुझे याद नही है। डॉ० एम०को इसकी जानकारी होनी चाहिए।

सस्नेह,

अत्याचारी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७५५) से, सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६९११ से भी।

८५. पत्र: माधवदास जी० कापड़ियाको

२४ नवम्बर, १९३६

चि० माधवदास,[1]

तुम्हारी बात मैं बिलकुल भूल गया। जमनालालजी तो जो बनेगा देंगे ही। यदि वे लिखित माँगे, तो देनेमें हर्ज नही है। लेकिन उनसे कहना कि इस सम्बन्धमें मुझसे पूछे। तुम्हारा खाता तो मैंने खुलवा ही दिया था, लेकिन यह कह दिया था कि तुम्हें तग न करे।

दीवालीका तो मुझे भान भी नही रहा। उसकी भावना ही गायब हो गई है। जहाँ चारो-ओर होली जल रही हो, वहाँ दीवाली कैसी? जबतक हरिलालका व्यसन न छूटे, तबतक उसके धर्म-परिवर्तनका कोई महत्त्व नही है।

बापू

[पुनश्च:]

पत्रमे अपना पता हमेशा लिखना चाहिए।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२) से।

१. कस्तूरबा गांधीके भाई।

८६. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

२४ नवम्बर, १९३६

भाई वल्लभभाई,

यहाँ तो किसीकी राय तुम्हारी रायसे नही मिलती। मुझे तो जवाहरलालका वक्तव्य पसन्द आया है। इससे कम वह क्या कहता? इससे ज्यादाकी भी हम क्या आशा करे? इस बार मन्त्रिमण्डलमे रहनेका तो प्रश्न ही नही है। समय आनेपर देखा जायेगा। मै तो मसविदा नही भेजना चाहता था, किन्तु मथुरादासको मना करनेवाला मै कौन होता हूँ? आखिर भानजा है, इसलिए मुझसे बहुत-से काम निकाल ले गया। यह मसविदा तुम्हे पसन्द न हो तो दूसरा तैयार करना, और चुनाव लडना अपना कर्त्तव्य समझो तो लडना। मसविदेमे कोई परिवर्तन करना आवश्यक समझो तो जरूर करना। जो करो यह विश्वासपूर्वक करना, क्योकि अभी तो हमे बहुत-से रेगिस्तान पार करने है। अपना स्वास्थ्य सुधारना।

सीमा-प्रान्तसे लौटते हुए वर्धा आ सको तो आना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने, पृष्ठ १९७-९८

८७. बातचीत : बेसिल मैथ्यूज आदिके साथ[1]

[२४ नवम्बर, १९३६][2]

मै स्तालिन या हिटलरकी तरह बिलकुल निश्चितता या पूर्ण विश्वासके साथ तो कुछ कह नही सकता, क्योकि मेरे पास कोई ऐसा बना-बनाया कार्यक्रम नही है जिसे मै गाँवोके लोगोपर लाद सकूँ। यह कहनेकी जरूरत नही कि मेरा तरीका दूसरा है। मै धैर्यके साथ समझा-बुझाकर परिवर्तन लाना चाहता हूँ। यह एक प्रकारकी व्यावहारिक प्रौढ़-शिक्षा है, जिसे ज्यो-ज्यो इसका विकास हो त्यो-त्यो हमे अमलमे लाना है। इससे गतिविधिका केन्द्र अपने-आप शहरोसे हटकर गाँवोमे आ जाता

१. महादेव देसाईके "वीकली लैटर" (साप्ताहिक पत्र) से लिया गया है।
२. तारीख महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे निश्चित की गई है।

है। लोगोको यह सिखाया जायेगा कि सफाई, स्वास्थ्य, भौतिक परिस्थितियो और सामाजिक सम्बन्धोमे सुधारके लिए उन्हे किस चीजकी जरूरत है और उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है। यदि यह प्राथमिक शिक्षा वे पूर्णतया प्राप्त कर लेते है तो बाकी सब चीजे तो फिर हो ही जायेगी। लेकिन आदर्शकी ओर इशारा करते हुए मैंने आपको इस दुष्कर कार्यकी कठिनाइयाँ भी बता दी है। क्योकि आपको यह मालूम होना चाहिए कि हमारे यहाँ सेगाँवसे भी छोटे और जाहिल गाँव है, जहाँ लोग अज्ञान और गन्दगीसे उसी तरह चिपटे हुए है जैसे कि वे अस्पृश्यतासे चिपटे हुए हैं।

इस तरह उन्होंने श्री मैथ्यूजके आगे गाँव और उसके निवासियो तथा परिवेश का एक स्पष्ट चित्र रखा और वहाँ लोग जो समय बरबाद करते है, पैदा होनेवाली जो चीजें बरबाद की जाती है या बरबाद हो रही है, उनके उपयोगकी समस्याकी चर्चा की। उन्होने बताया कि ताड़के पेड़ोंसे रस चुआ कर उसका गुड़ बनानेका एक सफल प्रयोग इन दिनो चल रहा है। पहले इन पेड़ोसे या तो ताड़ी बनाई जाती थी या फिर इनका कोई उपयोग ही नहीं होता था। श्री मैथ्यूज, श्री हॉज और वहाँ उपस्थित अन्य लोगोको उन्होंने उसी दिन सुबह बनाये गये गुड़के नमूने दिये। ताड़से रस चुआनेवालेको मजदूरीपर रखना होता है। वह अपनी शर्त रखता है। गांधीजीने कहा :

मै चाहता हूँ कि वे अपनी शर्ते रखे। २५ पेड़ोको चुआनेके लिए वह दस रुपये महीना लेता है। लेकिन जब ज्यादा लोग यह काम करने लगेंगे और बेकार समयको कैसे काममे लाया जाये, यह जब वे सीख लेगे तो अपने-आप ठीक व्यवस्था हो जायेगी।

इसके बाद उन्होंने सफाईकी चर्चा की . . . उन्होने कहा :

लॉयनेल कर्टिस[1]ने जब यह लिखा था कि भारतीय गाँवमे गोबरके ढेरोपर बनी बस टूटी-फूटी झापडियाँ होती है, तो उन्होने कोई अतिशयोक्ति नही की थी। हमें गोबरके ढेरोको हटाना होगा, उनका सदुपयोग करना होगा और ग्रामीण दृश्यको एक मुस्कुराते बगीचेका रूप देना होगा।

श्री बेसिल मैथ्यूज . . .ने ग्रामीण अर्थ-व्यवस्थामें साहूकार और जमींदारके स्थानकी चर्चा की। गांधीजीने कहा :

साहूकार, जो आज अनिवार्य है, धीरे-धीरे खुद खत्म हो जायेगा। सहकारी बैंकोकी भी जरूरत नही होगी, क्योकि मैं हरिजनोको जो कला सिखाना चाहता हूँ, वह जब वे सीख लेगे तो उन्हे नकद पूंजीकी कोई खास जरूरत नही रहेगी। इसके अलावा, जो लोग आज दलदलमे गहरे धँसे है वे सहकारी बैंकोसे लाभ नही उठा सकते। उन्हे कर्ज दिलाने या खेतीके लिए जमीन दिलानेकी मुझे उतनी चिन्ता नही है जितनी कि उन्हे दाल-रोटी और थोडा घी दिलानेकी है। जब लोग अपने

१. देखिए खण्ड ८, पृष्ठ १०।

बेकार समयको धनमे परिवर्तित करनेकी कला सीख लेगे तो जैसी चाहिए वैसी ठीक व्यवस्था हो जायेगी।

लेकिन जमींदारका क्या होगा? क्या आप उसे खत्म करेंगे? क्या उसे नष्ट करेंगे?

मै जमीदारको नष्ट करना नही चाहता, लेकिन जमीदार जरूरी हो मुझे ऐसा भी नही लगता। मै आपको दिखाता हूँ कि न्यासके अपने सिद्धान्तको मै यहाँ किस तरह लागू करता हूँ। इस गाँवमे जमनालालजीका हिस्सा ७५ प्रतिशत है। बेशक, मै यहाँ कोई योजना बनाकर नही, बल्कि सयोगवश ही आया था। जब मै जमनालालजीके पास सहायताके लिए पहुँचा तो उन्होने मेरे लिए आवश्यक झोपडी और कोठरियाँ बनवा दी और कहा, "सेगाँवसे जो भी लाभ हो वह आप गाँवके कल्याणके लिए ले सकते है। यदि मै अन्य जमीदारोको भी ऐसा ही करनेके लिए समझा सकूँ तो ग्राम-सुधार आसान हो जाता है। बेशक, अगला सवाल भूमि-व्यवस्था और सरकारी शोषणका उठता है। सवालके उस पहलूको लेकर जो कठिनाइयाँ है, फिलहाल मै उन्हे आवश्यक बुराइयाँ मानता हूँ। यदि मौजूदा कार्यक्रम पूरा हो जाता है तो सम्भवत मै यह जान सकूंगा कि सरकारी शोषणसे कैसे निपटा जाए।

आपकी वास्तविक अर्थनीति श्री नेहरूकी अर्थनीतिसे भिन्न होगी? जहाँतक मै उन्हें समझता हूँ, वे तो जमींदारको खत्म करना चाहेंगे।

हाँ, गाँवोकी उन्नति और पुर्निर्माणके हमारे विचारोमे भेद लगता है। यह भेद प्रमुखताका है। गाँवोकी उन्नतिका आन्दोलन उन्हे बुरा नही लगता। उनका विश्वास औद्योगीकरणमे है; भारतके लिए उसकी उपयोगिताके बारेमे मेरे मनमे गहरा सन्देह है। उनका विश्वास है कि वर्ग-सघर्ष आखिर अनिवार्य है, यद्यपि वे यदि उसे टाल सके तो टालना ही चाहेगे। मै जमीदारो और पूँजीपतियोको अहिसात्मक तरीकेसे बदलनेकी आशा रखता हूँ। अत मेरे लिए वर्ग-सघर्ष अनिवार्य हो ऐसी कोई बात नही है। कम-से-कम प्रतिरोधकी राहपर चलना अहिंसाका एक आवश्यक अग है। जमीन जोतनेवाले अपनी शक्तिको जैसे ही समझ लेगे जमीदारीकी बुराई वैसे ही निर्जीव हो जायेगी। जब वे लोग यह कह देगे कि ज़बतक उन्हे और उनके बच्चोको ठीक ढगका खाना, कपडा और शिक्षा लायक मजदूरी नही मिलेगी, तबतक वे जमीनपर काम नही करेगे, तो जमीदार बेचारे कर ही क्या सकेंगे? असलमे तो जमीन जोतनेवाला ही उपजका मालिक' है। यदि जमीन जोतनेवाले समझदारीसे एकजुट हो जायें, तो वे एक ऐसी शक्ति बन जायेगे जिसका कोई भी प्रतिरोध नही कर सकेगा। इस तरह मुझे वर्ग-सघर्ष आवश्यक नही लगता। यदि मै उसे अनिवार्य समझता तो उसके प्रचार और उपदेशमे मुझे कोई हिचक न होती।

श्री मैथ्यूजने कैण्टरबरीके आर्कबिशपके उस भाषणका जिक्र किया जो उन्होंने वैस्टमिन्स्टरके केन्द्रीय हॉलमें दिया था। गांधीजीने कहा:

वह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर मैने बहुत सोचा है, और मुझे विश्वास है कि यदि ईसाई मिशन ईमानदारीसे अपना काम करे तो सामान्य परिस्थितियोमे उनकी

नीति चाहे कुछ भी क्यो न हो, वे हरिजनोका धर्म-परिवर्तन करनेकी अशोभनीय होड़से अपनेको अलग कर लेगे। कैण्टरबरीके आर्कबिशप और अन्य लोग चाहे कुछ भी कहे, पर ईसाइयतके नामपर यहाँ भारतमे जो-कुछ किया जा रहा है, वह वे जो कहते है उससे सर्वथा भिन्न है। इस क्षेत्रमें और भी लोग हैं, पर सत्यका उपासक होनेके नाते मै यह कहता हूँ कि उनके तरीकोमे यदि कोई अन्तर है तो वह केवल मात्राका है, प्रकारका नही है। विभिन्न धर्मोके ऐसे प्रतिनिधियोको मै जानता हूँ जो एक ही मचसे बोलते हुए भी हरिजनोको आकर्षित करनेके लिए एक-दूसरेसे होड करते है। इस आन्दोलनको आध्यात्मिक भूखके नामसे मण्डित करना सचाईका मजाक उडाना है। उच्चतम स्तरपर तर्क करते हुए मैने डॉ० मॉटसे कहा था, यदि वे हरिजनोका धर्म-परिवर्तन करना चाहते है तो क्या यह ज्यादा अच्छा न होगा कि वे उसकी शुरूआत मेरे धर्म-परिवर्तनसे करे? मै उन लोगोसे थोडा अधिक बुद्धिमान हूँ और इसलिए तर्कसे जो प्रभाव मुझपर डाला जायेगा उसे मै ज्यादा अच्छी तरह ग्रहण कर सकूँगा। लेकिन पुलैयाओ और परयाओके पास, जो हाथोसे लुज और बुद्धिसे कुण्ठित है, इस उद्देश्यसे जाना तो कोई ईसाइयत नही है। जी नही, हमारे सुधार-आंदोलनके चलते तो सभी धार्मिक लोगोको यह कहना चाहिए कि इनके कार्यमे बाधा डालनेके बजाय हमें इनका समर्थन करना चाहिए।

मै० : इस सुधार-आन्दोलनकी जड़ें क्या मिशनरियोंके आन्दोलनमें नहीं हैं। क्या मिशनरियोंने सुधारकोंको नहीं जगाया और अछूतोंमें कुछ हलचल पैदा नहीं की?

गा० : मिशनरी आन्दोलनने कोई सही ढगकी हलचल पैदा की, मै ऐसा नही मानता। मै यह मानता हूँ कि इसने सुधारकोको बुरी तरह झकझोरा है और अपने कर्त्तव्यके प्रति सचेत किया है। वे कहते है. 'ये मिशनरी यहाँ कुछ अच्छा काम कर रहे है। ये स्कूल और अस्पताल खोलते है। नर्सोको प्रशिक्षित करते है। यही काम हम अपने लोगोके लिए खुद क्यो न करे?' और वे उनकी देखादेखी कुछ करनेकी कोशिश करते है।

मै० : यह तो आपने ही कहा कि मिशनरी कुछ अच्छा काम कर रहे हैं। क्या हमें वह काम जारी नहीं रखना चाहिए?

गा० : हाँ, जरूर जारी रखिए। पर वह सब छोड़ दीजिए जिससे हमें आप पर शक होने लगता है और जिससे हमारा नैतिक पतन भी होता है। हम आपके अस्पतालोमे इस आर्थिक उद्देश्यसे जाते है कि वहाँ ऑपरेशन हो जायेगा। आपके मनमें जो आशय रहता है उसे पूरा करनेके लिए तो जाते नही है। हमारे बच्चे भी आपके कॉलिजोके अन्दर जब बाइबिल क्लासमे जाते है तो ऐसा ही करते है, और वहाँ वे जो-कुछ पढते है उसपर बादमें हँसते है। मै आपको बताऊँ कि इन मिशनरी कॉलेजोके बारेमें हम घरपर जिस तरहकी बाते करते है वे कतई ज्ञानवर्धक नही होती। फिर अपने अच्छे कामको आप अन्य आशयोसे बरबाद क्यो करते है?

श्री मैथ्यूज यह जाननेको उत्सुक थे कि क्या गांधीजी कोई आध्यात्मिक साधना करते है और किस तरहके अध्ययनको उन्होंने विशेष रूपसे सहायक पाया है।

गा० योग-साधनाएँ मुझे नही आती। मै जो साधना करता हूँ वह मैने बचपनमे अपनी धायसे सीखी थी। मुझे भूत-प्रेतसे डर लगता था। वह मुझसे कहा करती थी 'भूत-प्रेत नही होते, पर यदि तुम्हे डर लगता है तो रामनाम जपो। बचपनकी इस सीखने मेरे अन्तर्मनमे एक विराट रूप ले लिया। यह एक ऐसा सूर्य है जिसने गहनतम अधकारकी मेरी घडियोको आलोकित किया है। इसी तरहकी सान्त्वना ईसाई ईसाका नाम और मुसलमान अल्लाहका नाम जपकर पा सकता है। इन सब चीजोके एक-से फलितार्थ है और एक-जैसी परिस्थितियोमे इनके एक-जैसे परिणाम होते हैं। शर्त सिर्फ यही है कि जप केवल ओठोसे नही, बल्कि आपके अतरसे होना चाहिए। सहायक अध्ययनका जहाँतक सवाल है, हम भगवद्गीताका नियमित रूपसे पाठ करते है और अब तो यह स्थिति हो गई है कि प्रतिदिन प्रात कुछ अध्यायोका पाठ करते हुए हम एक सप्ताहमे पूरी गीताका पाठ कर लेते है। फिर भारतके विभिन्न सन्तोके भजन होते है और उनमे हम ईसाई भजनोको भी सम्मिलित करते हैं। खानसाहब क्योकि हमारे साथ है, इसलिए हम कुरानकी भी आयते पढते है। हम सभी धर्मोंकी समानतामे विश्वास रखते है। तुलसीकृत रामायणके पाठसे मुझे सबसे अधिक शान्ति मिलती है। न्यू टेस्टामेंट और कुरानके पाठसे भी मुझे शान्ति मिली है। मै उन्हे आलोचककी दृष्टिसे नही देखता। वे मेरे लिए भगवद्गीताकी तरह ही महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि उनकी हर बात, उदाहरणके लिए पॉलके धर्म-पत्रोकी हर बात — मुझे अपील नही करती। तुलसीदासकी भी हर बात मुझे अपील नही करती। 'गीता' ऐसा विशुद्ध धर्मोपदेश है जिसमे कोई दोष नही है। वह तो परमात्माकी ओर जीवात्माकी यात्राका वर्णन है। अत उसमे चयनका प्रश्न ही नही उठता।

मै० : आप वस्तुतः प्रोटेस्टेण्ट है।

गा० मुझे नही मालूम कि मै क्या हूँ या क्या नही हूँ। श्री हॉज मुझे प्रेसबीटेरियन कहेगे।

मै० : सत्यके अन्तिम प्रमाणका आधार आपको कहाँ मिलता है?

गा० : वह यहाँ है (अपने हृदयकी ओर इशारा करते हुए)। हर धार्मिक ग्रन्थके बारेमे, गीताके बारेमे भी, मै अपना विवेक इस्तेमाल करता हूँ। धार्मिक ग्रन्थके किसी भी वचनको मै अपने विवेकपर हावी नही होने दे सकता। मै यह तो मानता हूँ कि प्रमुख धर्मग्रन्थ ईश्वरप्रेरित है, किन्तु उसके साथ ही मै यह भी जानता हूँ कि वे दो माध्यमोसे छनकर आते है। पहले तो वे किसी मानव सन्देशवाहकके माध्यमसे आते है, और फिर व्याख्याकारोकी टीकाओसे गुजरते है। उनमे कुछ भी ऐसा नही होता जो सीधे ईश्वरसे आता हो। मैथ्यूज एक ही पाटका एक रूप और जॉन दूसरा रूप रख सकते हैं। दिव्य ज्ञानमे विश्वास रखते हुए भी मै अपने विवेकको तिलाजलि नही दे सकता। और सबसे बडी बात तो यह है कि 'शब्द मारता है, पर उसका निहितार्थ तारता है।' परन्तु आप मुझे गलत न समझे। मेरी आस्थामे ऐसी चीजोमे

भी विश्वास है जिनमें तर्कके लिए कोई स्थान नही, जैसे कि ईश्वरकी सत्तामें। कोई भी तर्क मुझे उस आस्थासे डिगा नही सकता। और उस वच्चीकी तरह जो सारे तर्कके प्रतिकूल वार-वार यही कहती रही 'फिर भी हम सात है,' मै किसी वहुत अधिक बुद्धिमान व्यक्तिसे तर्कमे परास्त होकर भी वार-वार यही कहना चाहूँगा कि 'फिर भी ईश्वर है।'

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ५-१२-१९३६

८८. पत्र : एल० ए० हॉगको

वर्धा
२५ नवम्वर, १९३६

प्रिय श्री हॉग,

आपके २१ ता०के पत्रके लिए धन्यवाद।

मुझे खेद है कि कागज वनानेके काममें हम अधिक प्रगति नही कर पाये हैं। जिस जानकारकी मदद हमे पहले मिला करती थी, वह तीन-चार महीने पहले यहाँसे काम छोड़कर चले गये, और अव हमारा काम दुर्भाग्यवश जहाँ-का-तहाँ रुका पड़ा है। हमारे छात्र एक तरहका कागज वना तो रहे है, लेकिन वह अच्छी किस्मका नही है। मै आपको यहाँ इस्तेमाल किये जानेवाले विभिन्न प्रकारके कागजके नमूने भेज सकता हूँ, लेकिन वे कैसे और किन चीजोसे वनाये जाते है, इसकी जानकारी मुझे नही है। हम तो स्थानीय छापाखानेसे मिलनेवाली कतरनसे काम चलाते है। इस समय एक कैमिस्ट हमारे यहाँ है, जो रद्दी वोरो, विनौलोकी रद्दी, सफेद चिथडो और गाँवोमें मिलनेवाली ऐसी ही अन्य चीजोंसे कागज वनाना जानता है। लेकिन वह भी नौसिखिया ही है। मुझे खेद है कि आपको वताने-योग्य मेरे पास ऐसी कोई जानकारी नही है जिसे पाकर मिस्र के आपके मित्र लाभ उठा सके। इस वारेमे विशेष जानकारीके लिए हम चीनका मुँह ताकते है। यह पत्र जिस कागजपर टाइप किया गया है, वह पूनाके पासके एक गाँवका वना हुआ है। मेरे पास यही सवमे अच्छा कागज है। हमारा अपना कागज जो पहले, जव हमारे पास हमारा विशेषज्ञ था, अच्छी किस्मका वना करता था, आजकल खास अच्छा नही रह गया है। इस पत्रके साथ नेपाली कागजका एक पन्ना सलग्न है, जो वाँसके गूदेसे वनाया गया है। साथका दूसरा पन्ना जुन्नार कागजका है, जो मेरे खयालसे दर्जियोसे प्राप्त कतरनसे वनाया गया है, और वही मेरे इस पत्रका कागज है। निजामके राज्यमें हाथकागज उत्तम किस्मका वनता है। यदि आप उद्योग-निर्देशक, हैदरावाद (दक्षिण) को पत्र लिखे तो वे शायद आपको हाथ-कागज कुटीर-उद्योगके विषयमें कोई विवरणात्मक रिपोर्ट भेज सके।

'हरिजन'के बारेमे आपने जो लिखा उसका मुझे खेद है। मैं व्यवस्थापकको कह रहा हूँ कि आपको पत्रकी अपनी प्रति नियमित रूपसे मिलती रहे, इस बातका वे ध्यान रखे।

हृदयसे आपका,

संलग्न : कागजके पन्नोके नमूने

एल० ए० हॉग, महोदय
वाई० एम० सी० ए०
५ रसेल स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य . प्यारेलाल।

८९. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

२५ नवम्बर, १९३६

चि० अमला,

अपना पता तुमने नही दिया है। इसलिए अगर यह पत्र तुम्हे विलम्बसे मिले तो मुझे दोष न देना। तुम्हारा पिछला पत्र मुझे मिला गया था, पर मेरे पास जवाब देनेको वक्त नही था।

तुम्हारी माताजी और तुम्हारा वह 'लाड़ला,' दोनो आ गये होगे। मुझे पूरी उम्मीद है कि तुम्हे अपना घर बदलनेकी जरूरत नही पडेगी।

तुम्हारी आमदनी अच्छी है। इसलिए तुम्हे स्वयको अभावमे रखनेकी जरूरत नही है। ज्यादा मात्रामे दूध, फल और हरी सब्जियाँ लो।

यहाँ सब ठीक-ठीक चल रहा है।

सस्नेह,

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स, सौजन्य· नेहरू स्मारक सग्रहालय व पुस्तकालय।

९०. पत्र : सेम हिगिनबॉटमको

सेगाँव, वर्धा
[२६ नवम्बर, १९३६][1]

प्रिय मित्र,

उस बार एक फार्म-व्यवस्थापकको आपके संस्थान[2] में चन्द महीने रहकर यथाशक्ति ज्ञान अर्जित करनेका मौका मिला था। अब इस बार, अगर आप इजाजत दें तो, श्री मीराबाई स्लेड वह मौका हासिल करना चाहती हैं। गाँवोमे हम जो कार्य कर रहे है, वह सहज ही हममें सेवाके लिए अपेक्षित जानकारी हासिल करनेकी भूख जगाता है। मीराबाईको पशु-पालन और कृषि दोनो कार्य बड़े प्रिय हैं। ऐसे कामके लिए उनमे सहज वृत्ति है। अगर आप इजाजत दे सके तो वे यथासम्भव जल्दी-से-जल्दी वहाँ आनेको उत्सुक हैं। कहनेकी जरूरत नही कि उनके ऊपर होनेवाले जरूरी खर्चके लिए वे पैसा देंगी ही। उनके आवासकी व्यवस्था करनेमें कठिनाई हो सकती है। अगर किसी प्राध्यापकके घर उनको एक कमरा मिल जाए तो इतना ही उनके लिए काफी होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८९३७) से।

९१. पत्र : आनन्द तो० हिंगोरानीको

२६ नवम्बर, १९३६

प्रिय आनन्द,

तुम्हारे दो पत्र मेरे लिए रुके है। तुम विद्याके प्रति इतने निर्दयी कैसे हो सकते हो या वह तुम्हारे और अपने प्रति तथा अपनी सन्तानके प्रति निर्दयी कैसे हो सकती है? प्रेमकी ऐसी अप्रिय अभिव्यक्ति! या गर्भ-निरोधकोके समर्थको द्वारा उनके पक्षमे की गई उग्र वकालत सही है? क्या प्रेम आत्मत्याग नही कर सकता? क्या उसमें ऐसी शक्ति नही है? या जहाँ आत्म-सयमका अभाव होता है वहाँ

१. जी० एन० रजिस्टरके अनुसार।

२. इलाहाबाद कृषि संस्थान, इलाहाबाद।

प्रेमका भी अभाव होता है? या पाशविक वासनाकी माँगके आगे प्रेम कमजोर पड जाता है? तुम और विद्या दोनो ही भावावेगकी मूर्ति हो। क्या भावनाओको ऐसे अवांछित मोड़ लेने चाहिए? जो हो गया, उसे अन-हुआ नही किया जा सकता। अब तुम्हे बच्चेको पाल-पोस कर बड़ा करना है और विद्याकी इतनी देख-रेख करनी है कि जितनी स्वस्थ अभी वह हो सकती है, उतनी स्वस्थ तो हो ही जाए। कम-से-कम इतना तो तुम्हे करना ही है। परन्तु मै चाहता हूँ कि जो प्रश्न मैने तुम्हारे सामने रखे है उनपर तुम शान्तिपूर्वक विचार करो। यदि विद्याको इसमे कोई रस नही था लेकिन वह इसीलिए राजी हो गई कि तुम्हारे आग्रहका निवारण नही कर सकती थी, तो मै यह चाहूँगा कि एक असहाय संगिनीके माध्यमसे अपनी पाशविक वासनाकी उद्दाम तृप्तिके बजाय तुम दूसरा विवाह कर लो।

इससे अधिक या कुछ कम कहनेमे मै असमर्थ हूँ। तुम यह पत्र जयरामदासको भी पढा देना। मै उसको अलगसे नही लिख रहा हूँ।

तुम दोनोको प्यार।

बापू

श्री आनन्द हिंगोरानी
मार्फत श्री के० वी० केवलरामानी
डाकखाना केनाल कॉलोनी
फिरोजपुर
पंजाब

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्मसे, सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार और आनन्द तो० हिंगोरानी।

९२. पत्र : डॉ० हरिलाल अंडालजाको

२६ नवम्बर, १९३६

भाई हरिलाल,

अब तो आपकी तबीयत बिलकुल ठीक हो गई होगी। प्रभुको पानेका सर्वोत्तम और सरलतम उपाय है, प्रभुके प्राणियोकी अनन्य भावसे सेवा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३) से।

९३. पत्र : भगवानजी पु० पण्ड्याको

२६ नवम्बर, १९३६

चि० भगवानजी,

तुमने तो बहुत दिन बाद पत्र लिखा। अपने कामके बारेमें तुमने जो लिखा सो समझा। जो काम हाथमे लिया है, उसमे अब लगे रहना। अपना स्वास्थ्य सुधारना। उसके लिए मानसिक चिंतासे मुक्त हो जाना चाहिए।

बलरामके लिए पत्र इसके साथ है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३९१) से; सौजन्य. भगवानजी पु० पण्ड्या।

९४. पत्र : प्रभावतीको

२६ नवम्बर, १९३६

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिला। मैं चाहे जितना व्यस्त क्यो न होऊँ, तेरे पत्रका उत्तर देना मुझे बोझ नही लगेगा। यहाँ भीड़ है, यह ठीक है; लेकिन तेरे आनेसे भीड़ कितनी बढ़ जायेगी? फिर भी तू चाहे तो दिसम्बरके बाद आना। मुझे शायद दिसम्बरकी १० तारीखके आसपास फैजपुर जाना पडे। तब भी तू तो आ ही सकती है। सेगाँवमे रहकर स्वास्थ्य तो सुधार सकेगी न? जनवरीमे तो मैं सेगाँवमें ही रहूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४८७) से।

९५. पत्र : मानशंकर जे० त्रिवेदीको

२६ नवम्बर, १९३६

भाई मानशंकर,

आपके निष्कर्ष अधिकांशत ठीक ही है। हरिलाल जैसा है, उसके वैसा होनेमे मै सदा अपना उत्तरदायित्व मानता आया हूँ। उसके पापोमे मेरा हिस्सा है ही। उनकी सजा मै भोग रहा हूँ और आगे भी भोगनी पडेगी। दूसरे लोग जो सजा देते है, उसे मै सजा नही मानता। मेरा अन्त करण मुझे सजा दे रहा है। आपके पत्रमे मेरे विचारसे गोपनीय कुछ नही है, फिर भी आपके पत्रका उत्तर देनेके लिए मै 'हरिजन' के पृष्ठोका उपयोग नही करूँगा। आपके और आप-जैसे सज्जनोके लिए मेरा यह उत्तर काफी होना चाहिए।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

श्री मानशंकर जे० त्रिवेदी
१०६, विट्ठलभाई पटेल रोड
बम्बई

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४७५३) से।

९६. पत्र : मिर्जा इस्माइलको

२७ नवम्बर, १९३६

प्रिय मित्र,

आपके ९ ता०के पत्रके लिए धन्यवाद। आपके अगले पत्रका इन्तजार रहेगा, साथ ही मूर्तियोके बारेमे भी सूचित कीजिए।

आपने मुझे मेरे शोध-कार्यके लिए और जो आसानीसे मिल सकती हो ऐसी सब सहायता प्राप्त करनेके लिए अपने राज्यकी शिल्पशालाओका स्वेच्छानुसार उपयोग करनेकी अनुमति देनेकी कृपा की थी। मै आपके बिजली-विभागके श्री फ्राइडमैन[1] को जानता हूँ। वे ग्रामप्रेमी है और ग्रामाभिमुखी दृष्टि भी रखते है। कुछ वर्षोसे उनकी जानकारीकी मदद मुझे मिलती रही है और हाल ही मे उन्होने मेरे लिए कुछ ग्रामोपयोगी औजार भी बनाकर दिये है। फिर भी मै चाहता हूँ कि यदि उचित हो तो

१. मॉरिस फ्राइडमैन, जिन्हें गाधीजी भारतानन्द कहते थे।

आप उन्हे और राज्यके उद्योग-निर्देशकको यह कह दे कि वे मुझे और ग्रामोद्योग सघको जितनी मदद समुचित रूपसे दे सके देते रहे। चूंकि मै स्वय गाँवमें रह रहा हूँ, इसलिए मुझे ऐसी मददकी जरूरत अकसर पडती रहती है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

सर मिर्जा इस्माइल
दीवान, मैसूर

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल-पेपर्स; सौजन्य . प्यारेलाल।

९७. पत्र : मार्गरेट सैंगरको

वर्धा
२७ नवम्बर, १९३६

प्रिय बहन,

अपनी पसन्दके बढ़िया और विविध प्रकारके मेवे भेजकर तुमने बड़ी सहृदयता दिखाई है। अगाथा हैरीसन इस समय यही है। मैंने उनसे कहा कि "श्रीमती सैंगर मुझसे बिना कुछ पाये चली गई, लेकिन उनके मीलो दूर होनेपर भी मै उनसे कितना-कुछ ले रहा हूँ।" अब तुम ही निर्णय करो कि हम दोनोमे कौन बेहतर है, — हाँ, नारी होनेकी स्वाभाविक श्रेष्ठता तो तुम्हे प्राप्त है ही। तुमने 'एशिया' में मेरे साथ अपनी भेंटका जो विवरण दिया है, उसे मै पढ गया हूँ।[1] सरसरी तौरसे पढनेपर मुझे लगा कि बातचीतका विवरण प्रामाणिक है।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

श्रीमती मार्गरेट सैंगर
बर्थ कंट्रोल क्लीनिकल रिसर्च ब्यूरो
१७ वैस्ट १६वी स्ट्रीट
न्यूयार्क सिटी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल-पेपर्स; सौजन्य . प्यारेलाल।

१. देखिए खण्ड ६२, पृष्ठ १६५-७०।

९८. पत्र: पी० जी० वेंकटदेसिकनको

सेगाँव, वर्धा
२७ नवम्बर, १९३६

प्रिय वेंकटदेसिकन,

तुम्हारा पत्र पाकर खुशी हुई।

आशा है, तुम कताई और खादी-प्रचारका कार्य डटकर करते रहोगे और मेहनतसे हिन्दी सीखते रहोगे।

तुम्हारा,
बापू

श्री पी० जी० वेंकटदेसिकन
३ चक्रपाणि नायडू गार्डन
पेपर मिल्स रोड
पेराम्बूर
मद्रास

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०८४५) से।

९९. पत्र: नरहरि द्वा० परीखको

२७ नवम्बर, १९३६

चि० नरहरि,

तुम्हारा पत्र मिला। लालजी[1] सम्बन्धी बात समझ गया। उसकी पत्नीको आश्रम मे लानेके प्रयत्नमे सफलता मिलनी चाहिए। साथके पत्र पढकर लालजी-लक्ष्मीको दे देना। लगता है, मणिके लिए भी हमें वर खोजना पड़ेगा। यह सुघड बन जाए और सफाईसे रहने लगे तो कोई अड़चन नही आयेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९१०१) से।

१. देखिए पृ० ८।

१००. और अधिक आत्म-शुद्धिकी प्रेरणा

हरिजनोको धार्मिक स्वतन्त्रता देनेवाली त्रावणकोर दरबारकी घोषणा बड़े हर्षका विषय है। पर साथ ही वह एक ऐसी घटना है जिससे हमें और भी विनम्र तथा पवित्र और प्रयत्नशील बननेकी प्रेरणा लेनी चाहिए। इस घोषणासे छुआछूतका अन्त थोडे ही हो गया है। जैसा कि चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने कहा है, निश्चय ही यह "इस बातका प्रमाण है कि अगर हम सचमुच परमात्माकी सहायता ले तो हम कितना-कुछ कर सकते है।" यह हमारे अन्दर अपने कर्त्तव्यके प्रति आशा और आस्था उत्पन्न करती है। पर इस घोषणाका मतलब किसी भी हालतमे यह नही लगाया जा सकता कि हम अपने प्रयत्नोमें और स्वयके प्रति अपनी सतर्कतामे कोई ढिलाई आने दे। अगर यह घोषणा प्रार्थना और आत्म-शुद्धिका परिणाम है, अगर यह सच है कि बहु-विज्ञापित सभाओ और उनमें पास किये गये प्रस्तावोसे प्रभावित होकर नही, बल्कि त्रावणकोरके नि स्वार्थ कार्यकर्त्ताओ और उनके साथ-साथ हिन्दुस्तानके इसी प्रकारके अन्य धर्मात्माओंकी मूक प्रार्थनासे ही प्रेरित होकर (इससे कोई फर्क नही पडता कि उन्हे इसकी खबर थी या नही) त्रावणकोरके महाराज तथा उनके सलाहकारोने यह घोषणा की है, तो यह भी निश्चित है कि कार्यकर्त्ताओ द्वारा भविष्यमें किया जानेवाला और अधिक आत्म-त्याग तथा उनकी निष्ठा शेष कार्यको सम्पन्न कर ही डालेगी।

शेष कार्य क्या है, अब जरा यह सोच ले। हमें अभी पता नही है कि त्रावणकोरके कट्टर सनातनियो तथा हरिजन लोगोकी इस घोषणापर क्या प्रतिक्रिया होगी। अगर जनताने इसके प्रति समुचित उत्साह नही दिखाया, तो यह घोषणा बड़ी आसानीसे केवल कागजी बनकर रह जायेगी। अगर इसके साथ ही लोगो और पुजारियोकी आवश्यक आत्म-शुद्धि न हो, तो महज मन्दिरोके खुल जानेके कुछ भी मानी न होगे।

त्रावणकोरके मन्दिर खुले, तो अब इसके पडोसी राज्य कोचीनके मन्दिरो और गुरुवायूरके मन्दिरके दरवाजे भी खुल जाने चाहिए। क्योकि ये सब लगभग एक-से ही है; इन सबकी परम्परा, पूजा-विधि वगैरह एक ही है। इसके बाद भारतके तमिल, तेलुगु और कन्नड क्षेत्रोंके महान् मन्दिरोका नम्बर आता है। उत्तरमे काशी-विश्वनाथ, पश्चिममें द्वारिकाधीश और पूर्वमे जगन्नाथजीके मन्दिरोके दरवाजे अभीतक हरिजनोके लिए बन्द है। भारतके दामनमें बहुत-से बड़े-बड़े काले धब्बे लगे हुए है। हालाँकि अलगसे देखा जाए तो त्रावणकोर भी एक बडा धब्बा था, पर तुलनामे वह छोटा ही बैठता है। ईश्वरकी दयासे, जो त्रावणकोरके महाराजाकी घोषणाके रूपमें प्रगट हुई है, यह धब्बा अब एक प्रकाश-बिन्दुमें परिणत हो गया है और अब वह

अपना प्रकाश भारत-भरमे फैला रहा है। क्या इसका प्रकाश इतना प्रभावशाली सिद्ध होगा कि ऊपर गिनाये हुए बड़े-बड़े धब्बोको भी प्रकाशित कर सके?

और अगर यह धार्मिक स्वतन्त्रता इस अर्थमें सच्ची है कि यह कट्टर पंथियोके एक गढ़से आविर्भूत हुई है, तो इसके फलस्वरूप देश-भरमे हरिजनोकी आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति भी होनी चाहिए।

इन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बातोका उल्लेख-मात्र हमे संयत बनानेके लिए काफी होना चाहिए। पर अगर हमारे हृदयमे अपने महान उद्देश्य और ईश्वरके प्रति जीवन्त श्रद्धा हो, तो इससे भय खानेकी कोई बात नही।

इस महान और गौरवशाली कार्यके लिए हमे जरूरत है अधिक कार्यकर्ताओकी, जिनमे स्त्री-पुरुष, लडके-लड़कियाँ सब हो सकते है। हमे और अधिक धन चाहिए — नोट, सोने, चाँदी ताँबेकी शक्लमें; यहाँतक कि मुट्ठी-भर अनाज भी। पर ये सब तभी मिलेगे, और जरूर मिलेगे, जब हमारे वर्तमान कार्यकर्त्ता सीजरकी पत्नीकी तरह सन्देहसे परे होगे। क्या हम सब हृदयसे शुद्ध है? हमारे जिम्मे जो कार्य है उसके प्रति हम क्या वफादार है? क्या हमे अपने लक्ष्यके शुद्ध आध्यात्मिक स्वरूप पर श्रद्धा है? अगर इन सबका उत्तर हमे 'हाँ' मे मिलता है, तब तो सब ठीक है। पर जिन मामलोका मैंने इन पृष्ठोमे थोड़ा-बहुत जिक्र[1] किया है और जिनकी मैं अभी खोज-बीन कर रहा हूँ, उनको देखते हुए मुझे सावधानी बरतनेकी जरूरत महसूस होती है। अगर हमारे अन्दर और भी कुछ खोटे लोग हो तो फिर क्या हाल होगा? हममें से कोई बिलकुल निष्पाप नही है। पर यदि हमारे अन्दर इतना भी साहस न हो कि हम अपराधको सार्वजनिक रूपसे और उसकी गम्भीरताको कम करके दिखानेकी कोई चेष्टा किये बिना स्वीकार कर सके, तो मैं फिर पूछता हूँ कि हमारा और उस महान् उद्देश्यका क्या बनेगा जिसे हाथमे लेनेकी हमने धृष्टता की है? इस प्रकार इस घोषणासे मुझे हर्ष तो हो रहा है, पर हमारे बीच जो-कुछ चल रहा है उसकी स्पष्ट जानकारीके कारण मेरा मन दुःखी होता ही है और इससे मेरा हर्ष कम हो जाता है। पर इससे निराश होनेकी कोई बात नही और न ही हर्ष-विभोर हो उठनेकी कोई बात है। हाँ, अगर कोई बात है तो यही कि इस घोषणाके कारण हमारी जो जिम्मेदारी बढ गई है उसे हम खूब अच्छी तरह समझे, महसूस करे और खूब सावधानीके साथ आत्म-निरीक्षण करे।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २८-११-१९३६

१. देखिए, "एक अनिवार्य आवश्यकता", पृष्ठ ११-१२।

१०१. 'स्मृतियों' में नारीका स्थान

एक पत्र-लेखकने मुझे बैजवाड़ासे प्रकाशित होनेवाले 'इडियन स्वराज्य' का एक अंक भेजा है। उसमे 'स्मृतियो' मे नारीके स्थानके बारेमे एक लेख है। उससे निम्न अश अविकल रूपमे उद्धृत कर रहा हूँ:

> पति भले ही चरित्रहीन, लम्पट और सभी सद्गुणोंसे रहित हो, पत्नीको उसे भगवान ही मानना चाहिए। (मनु ५-१५४)
>
> स्त्रियोंको अपने पतियोंकी आदेशानुगामिनी होना चाहिए। यह उनका सर्वोपरि कर्त्तव्य है। (याज्ञवल्क्य १-१८)
>
> स्त्रीके लिए अलगसे कोई यज्ञ या उपवास करना व्यर्थ है। पति-सेवासे ही उसे स्वर्गमें उच्च पद प्राप्त होता है। (मनु ५-१४५)
>
> पतिके रहते जो स्त्री उपवास तथा अन्य कोई धार्मिक अनुष्ठान करती है वह अपने पतिकी आयु क्षीण करती है। वह नरकमें जाती है। जिस स्त्रीको पवित्र जलकी तलाश हो उसे अपने पतिके चरण या सम्पूर्ण शरीरको धोकर उस जलका पान करना चाहिए। इस तरह उसे परम पदकी प्राप्ति होगी। (अत्रि १३६-१३७)
>
> पत्नीके लिए पति-लोकसे बढ़कर कोई लोक नहीं है। जो पत्नी पतिको रुष्ट करती है वह मृत्युके उपरान्त अपने पतिके लोकमें नहीं जा सकती। इसलिए उसे अपने पतिको रुष्ट नहीं करना चाहिए। (वशिष्ठ २१-१४)
>
> जो स्त्री अपने पितृ-परिवारपर गर्व करे और पतिकी अवज्ञा करे, राजाको चाहिए कि उसे जनसमूहकी उपस्थितिमें कुत्तोसे नुचवाये। (मनु ८-३७१)
>
> जो स्त्री अपने पतिकी अवज्ञा करे उसका दिया भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए। ऐसी स्त्रीको व्यभिचारिणी समझना चाहिए। (अंगिरस ६९)
>
> अपने पतिके दुर्व्यसनोंमें पड़ जाने या मद्यप बन जाने अथवा किसी शारीरिक रोगसे रुग्ण हो जानेपर यदि कोई पत्नी अपने पतिकी अवज्ञा करे तो तीन मासतक उसे उसके बहुमूल्य वस्त्रों एवं आभूषणोसे वंचित और घरसे निष्कासित रखा जाये। (मनु १०-७८)

जिन्हे नारीकी स्वतन्त्रता स्वय अपनी स्वतन्त्रताके समान प्रिय है और जो नारीको अपनी जातिकी जननी मानते हैं वे इन वचनोको कदापि आदरकी दृष्टिसे नही देख सकते। तथापि 'स्मृतियो' मे ऐसे वचन है, यह बडे दु खका विषय है। किन्तु इससे भी अधिक दुःखकी बात तो यह है कि सनातनियोंकी ओरसे प्रकाशित

होनेवाले किसी पत्रमे ऐसे वचन इस तरह प्रकाशित किये जाये, मानो वे धर्मका अग हो। कहनेकी जरूरत नही कि 'स्मृतियो' मे ऐसे वचन भी है जिनमे नारीको उसका उचित स्थान दिया गया है और उसके प्रति गहरी श्रद्धा व्यक्त की गई है। अब प्रश्न यह उठता है कि जिस 'स्मृति' मे ऐसे वचन हो जो उसीके दूसरे वचनोसे असगत हो और हमारी नैतिक भावनाके विरुद्ध हो, उसका और वैसी ही दूसरी 'स्मृतियो' का क्या किया जाये। इन स्तम्भोमे मै अकसर कहता रहा हूँ कि धर्म-ग्रन्थोके नामपर छपी सभी बातोको ब्रह्म-वाक्य मान लेनेकी जरूरत नही है। लेकिन हर आदमी यह तय नही कर सकता कि क्या अच्छा और प्रामाणिक है और क्या बुरा और अप्रामाणिक। इसलिए कोई ऐसी आधिकारिक सस्था होनी चाहिए जो धर्म-ग्रन्थोके नामसे जाने जानेवाले समस्त साहित्यका पुनरीक्षण करके नैतिक मूल्यसे रहित या धर्म तथा आचारनीतिके विरुद्ध पडनेवाले सभी वचनोको निकाल फेके और उसके बाद जो शेष रहे उसका एक सस्करण हिन्दुओके मार्ग-दर्शनके लिए प्रस्तुत करे। यह तो निश्चित है कि समस्त हिन्दू-समाज और धार्मिक नेता माने जानेवाले सभी लोग उस कार्यकी प्रामाणिकताको स्वीकार नही करेगे, लेकिन यह बात इस पवित्र कार्यको आरम्भ करनेके मार्गमे बाधक नही होनी चाहिए। ईमानदारी तथा सेवा-भावसे किये गये कार्यका प्रभाव अन्तत. सबपर होगा ही, और इतना तो सर्वथा निश्चित है कि उससे उन लोगोको बहुत सहारा मिलेगा जिन्हे ऐसे सहारेकी सख्त जरूरत है।

[अग्रेजीसे]
हरिजन, २८-११-१९३६

१०२. आदर्श भंगी[1]

मेरा आदर्श भगी तो वह है जो आदर्श ब्राह्मण अथवा उससे भी बढकर हो। ब्राह्मणके बिना भगी सम्भव है, पर भगी न हो तो ब्राह्मणका अस्तित्व हो ही नही सकता। भगी होनेसे ही सारा समाज टिक सकता है। माता जो काम अपने बालकके लिए करती है, वह काम भगी सारे समाजके लिए करता है। माता बच्चोका मैला धोती है और उन्हे स्वच्छ रखकर उनके शरीरकी रक्षा करती है, इसी तरह भगी समाजका मैला साफ करके उसे स्वच्छ रखकर उसके शरीरकी रक्षा करता है। ब्राह्मणका धर्म जैसे समाजकी आत्माको स्वच्छ रखना है, आत्माका मल दूर करना है, उसी तरह भगीका धर्म समाजके शरीरको साफ रखना, उसका मल दूर करना है। फर्क सिर्फ इतना है कि भगी तो अपने धर्मका पालन इच्छा या अनिच्छासे करता ही है, पर ब्राह्मण ऐसा करता हुआ देखनेमे नही आता। यहाँ अपवादोकी गिनती

१. लेखका प्यारेलालजी कृत अंग्रेजी अनुवाद २८-११-१९३६ के हरिजनमें प्रकाशित हुआ था।

नही की गई है। समाजके आधार-स्तम्भ बहुत-से है। पर भंगी उनके मूलमे है और वह बड़े-से-बड़ा आधार है।

ऐसा होते हुए भी अभागे भारतवर्षके समाजने भगीको कनिष्ठ माना है। हरि-जनोमें भी वह सबसे नीच माना गया है, गाली और लात खाने लायक। वह समाजकी बची-खुची जूठन खाता है, कचरेके बीचमे रहता है, उसका कोई सहायक ही नही है। भगी गालीका शब्द हो गया है। ऐसा क्यो हुआ? इसका जवाब खोजना शायद व्यर्थ है। व्यर्थ न हो, तो भी मैं उसे जानता नही। पर इतना जरूर जानता हूँ कि भगीका घोर तिरस्कार करके भारतका समाज — अर्थात् हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी दुनियाके तिरस्कारके पात्र बन गये हैं। भगीकी अवगणना करके हमारे गाँव घूरेकी तरह बन गये है, और हम बेमौत मर रहे हैं। भंगीका पद यदि ब्राह्मणके जितना ही होता तो आज हमारे गाँव, हमारे शरीर स्वच्छ होते और हम ज्यादा नीरोग होते। बहुत-से रोग केवल अस्वच्छतासे पैदा होते है। उन रोगोसे तो हम मुक्त होते।

जब भगीका धन्धा सम्मानके लायक समझा जायेगा, जब भगी और ब्राह्मणके बीचका भेद दूर हो जायेगा, तब और केवल तभी समाज तन, मन और धनसे सुखी होगा, इस विषयमे शकाके लिए स्थान ही नही है।

तो समाजका ऐसा माननीय सेवक कैसा होना चाहिए? मेरी दृष्टिमे आदर्श भगीको स्वच्छताके नियमोका उत्तम ज्ञान होना चाहिए। पाखाने कैसे हो, उन्हे किस तरह साफ रखा जाये, मलके साथ किन चीजोको मिलानेसे उसकी बदबू दूर की जा सकती है, मल-मूत्रका खाद किस तरह बनाया जा सकता है — यह सब उसे जानना चाहिए। इतना ही ज्ञान काफी न होगा। भगीको मल-मूत्रका भी ज्ञान होना चाहिए। मलकी जाँच-पडताल करके आदर्श भगी सम्बन्धित व्यक्तियोको यह चेतावनी देगा, आपके मलमें आज अमुक द्रव्य थे, इसलिए आप होशियार हो जायें; आपके पेशाबमे शक्कर थी, आपके मैलेमें आज अत्यन्त बदबू थी, आपके मलमे कृमि थे। इस प्रकारकी ज्ञान-प्राप्तिका अर्थ है, शौच-शास्त्रका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना। ऐसा आदर्श भगी छोटे-छोटे गाँवो और बड़े-बडे शहरोमें मल-मूत्रकी व्यवस्थाके सम्बन्धमे विशेष ज्ञान रखकर वहाँके समाजका सलाहकार और पथ-प्रदर्शक होगा। इससे इतना स्पष्ट होना चाहिए कि आदर्श भगीको ठीक पढना-लिखना आना चाहिए, क्योकि उसमे शास्त्रोको पढनेकी शक्ति होनी चाहिए। ऐसा भंगी अपनी आजीविका प्राप्त करते हुए भी अपना काम धर्म समझकर करेगा, वह धनिक होनेके स्वप्न नही देखेगा। वह तो जिस समाजके शौचका ठेकेदार होगा, उस समाजके आरोग्यकी रक्षामे ही अपनी सफलता और सार्थकता समझेगा।

ऐसा आदर्श भगी कैसे पैदा हो? अनेक अप्पा पटवर्धन[1] पैदा हो तब। भगीका मान बढाना शिक्षित समाजका काम है। खुद शौच-शास्त्र सीखकर, उसमे पारगत होकर भगीको सिखायें, भगीकी स्थिति समझें, उनमें जो बुराइयाँ पैदा हो गई है उन्हे धीरजके साथ दूर करायें, उनको शुद्धता सिखायें। उनके पास आज तो अच्छी

१. सीताराम पुरुषोत्तम पटवर्धन।

झाड़ू नही है, मैला उठानेके साधन ठीक नही हैं। पाखाने कितने गन्दे है, और उनमे प्रवेश करना नरकमे प्रवेश करने जैसा ही है। भगीके घरके इर्दगिर्द मल-मूत्रके तालाब भरे होते है। इस स्थितिमे फेरफार करानेके लिए शिक्षित वर्ग यत्न करे और इसी काममे अपने कार्यकी पूर्णता समझकर सतोष करे।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २९-११-१९३६

१०३. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

सेगाँव, वर्धा
२८ नवम्बर, १९३६

प्रिय चार्ली,

यह जानकर खुशी हुई कि ईसुदासको तुम किस हदतक अपने दृष्टिकोणसे सहमत कर सके। शुद्धिका तो सवाल ही नही उठता।

तुम्हे इस थकानसे छुटकारा पाना ही है। इसका मतलब यह है कि तुम्हे मानसिक और शारीरिक दोनो तरहके आरामकी जरूरत है। अगर तुम अपने प्रस्थानमे सप्ताह-भरकी देर करके वर्धा या अहमदाबादमे आराम कर सको तो अवश्य करो, बशर्ते कि इसकी वजहसे तुम्हे वहाँ [इग्लैंड] पहुँचनेमे इतनी देर न हो कि तुम्हारे पहले व्याख्यान[1]की तिथि ही निकल जाए।

तुम्हे अपने सिर इतना बोझ नही लेना है जो तुम्हारी शक्तिसे बाहर हो। गुरुदेवको स्नेह-वन्दना।

सस्नेह,

मोहन

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९९२) से।

१०४. पत्र : विनोबा भावेको

२८ नवम्बर, १९३६

चि० विनोबा,

बालकृष्ण आनन्दपूर्वक है। आशा है कि खजूर मिल गये होगे। यह ज्यादा अच्छी किस्मका हो तो लिखना। मेरे वहाँ जल्द आनेकी क्या जरूरत है? मैंने देव और दास्तानेको यह वचन तो जरूर दिया है कि मै दिसम्बरके प्रथम सप्ताहके बाद वहाँ आऊँगा, लेकिन उसी हालतमे जब तुम स्वय वहाँ मेरी उपस्थिति आवश्यक समझो। मेरे आनेसे बेकार ही शोर मच जाता है। तुम्हारे विचारमें क्या मुझे आना चाहिए? मै तो नही समझता। मेरे आनेपर सम्भव है कि कुछ अच्छे कार्यकर्ताओको मेरी

१. श्री एन्ड्रयूज इंग्लैंड में कैम्ब्रिजमें व्यवहार-धर्म विज्ञान पर व्याख्यान देने जा रहे थे।

सेवाके लिए रोक लिया जाये। यदि मैं आया तो खान साहब भी मेरे साथ होंगे, प्यारेलाल भी होंगे। सहस्रबुद्धे और वैकुण्ठलालका कहना है कि मुझे २१ तारीखसे पहले कदापि नही आना चाहिए। इन सब बातोंपर विचार करके मुझे लिखना और देव तथा दास्तानेको भी इसके लिए राजी करना।

बापू

गुजरातीकी नकल से. प्यारेलाल-पेपर्स, सौजन्य प्यारेलाल।

१०५. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२८ नवम्बर, १९३६

भाई घनश्यामदास,

त्रावणकोर[के] बारेमे तुमारा दुख समजता हूँ। राजाजीको भी ऐसे ही हूआ है। यद्यपि मेरा मन दूसरी ओर जाता ही नही। जो मेरे दिलमें है उसे मैं कैसे छुपाउं।[1] जब कुछ भी कहना आवश्यक हो जाता है तब मेरे धन्यवाद तो ऐसे हार्दिक है कि इस हुकमके पालनका उत्तरदायित्व अपने सरपे रखकर चल रहा हू। अब तो कानून मदिर प्रवेशकोके लिये निकले है उसे पढकर बताओ कि मेरी सावधानी उचित थी या अनुचित। हुक्म एक उसके पालनके कानून उसे टालनेवाले, इसी नीतिको हम कहा नही जानते है? दरबारकी मुसीबत मैं नही जानता हू, ऐसा कुछ नही है। लेकिन इस ज्ञानका अर्थ यह हुआ कि हम सावधान रहे।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्र सी० डब्ल्यू० ८०२५ से, सौजन्य घनश्यामदास बिडला।

१०६. आत्मसंयम द्वारा सन्तति-निरोध

निम्नलिखित पत्र मेरे पास बहुत दिनोसे पडा है.[2]

इस बीच मैं अहमदाबाद हो आया हूँ। उपर्युक्त विषयपर मुझे वहाँ अपने विचार प्रगट करनेका अवसर नही मिला। परन्तु लेखकके इस कथनको मैं अवश्य मानता हूँ कि सन्तति-निरोध केवल सयमसे ही सिद्ध किया जा सकता है। दूसरी

१. यहाँ आशय त्रावणकोर-घोषणाके सम्बन्धमें दी गई गांधीजीकी भेंटवार्ता तथा उनके लेखसे है। देखिए पृष्ठ ३१ और ६४-६५।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने गांधीजीको सूचित किया था कि अहमदाबादमें एक सन्तति-निरोध मण्डलकी स्थापना हुई है, जो गर्भनिरोधके कृत्रिम उपायोंका प्रचार करता है। उनका कहना था कि इससे समाजमें व्यभिचारको बढ़ावा मिलेगा।

रीतिसे सन्तति-निरोध करनेमे अनेक दोष उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। जहाँ कृत्रिम साधनो द्वारा किये जानेवाले सन्तति-निरोधने घर कर लिया है, वहाँ इसके दोष साफ दिखाई दे रहे हैं। इसमे कोई आश्चर्य नही कि सयम-रहित सन्तति-निरोधके समर्थक इन दोषोको नही देख सकते, क्योकि सयम-रहित सन्तति-निरोधने समाजमे नैतिकताके नामसे प्रवेश किया है।

अहमदाबादमे जो मण्डल बनाया गया है उसका हेतु लेखकने जैसा लिखा वैसा ही है, यह कहना ज्यादती होगी। परन्तु उसका हेतु चाहे जैसा हो, उसकी प्रवृत्तिका परिणाम तो विषय-भोगकी वृद्धि ही होगा। पानीको गिराये तो वह नीचे ही जायेगा। इसी तरह यदि विषय-भोगको बढ़ानेवाली युक्तियोकी खोज की जायेगी, तो उनसे वह भोग बढ़ेगा ही, घटेगा नही।

इसी प्रकार, डॉक्टर और वैद्य सयमका पाठ सिखाये तो उनकी कमाई मारी जायेगी और इस कारण वे सयम नही सिखाते —— ऐसा मानना भी ज्यादती होगी। संयमका पाठ सिखानेको डॉक्टर-वैद्योने आजतक अपना कार्य माना ही नही। लेकिन डॉक्टर और वैद्य इस तरफ मुडते जा रहे हैं, इस बातके चिह्न जरूर नजर आते हैं। उनका कार्य-क्षेत्र रोगोके कारण खोजने और रोग मिटानेका है। यदि वे रोगोके कारणोमे असयम और स्वच्छन्दताको अग्रस्थान न देगे, तो यह कहना होगा कि उनका दिवाला निकलनेका समय आ गया है। ज्यो-ज्यो जन-समाजकी समझ बढ़ती है, त्यो-त्यो रोग यदि जडमूलसे नष्ट नही हुए तो उसे सन्तोष होनेवाला नही है। और जबतक जन-समाज सयमकी ओर नही मुडेगा, रोगोको रोकनेके नियमोका पालन नही करेगा, तबतक आरोग्यकी रक्षा करना असम्भव है। यह बात इतनी स्पष्ट है कि अन्तमे सभी इसपर ध्यान देगे और प्रामाणिक डॉक्टर सयमके मार्गपर अधिकसे-अधिक जोर देगे। सयम-रहित सन्तति-निरोध विषय-भोगको बढानेमे अधिकसे-अधिक हाथ बँटायेगा, इस विषयमे मुझे कोई शका है ही नही। इसलिए अहमदाबादका मण्डल अधिक गहरे उतरकर असयमके भयकर परिणामोपर विचार करे, स्त्रियोको सयमकी सरलता और आवश्यकताका ज्ञान करानेमे अपने समयका उपयोग करे, तो आवश्यक परिणाम प्राप्त हो सकेगा, ऐसा मेरा नम्र मत है।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २९-११-१९३६

१०७. एक ही शत्रु

मनुष्य-मात्रका एक ही शत्रु है और एक ही मित्र है; और वह शत्रु या मित्र मनुष्य स्वय है। यह मेरा अपना वचन नही है; यह सारे धर्मशास्त्रोका वचन है। जब मनुष्य अपनेको धोखा देता है, तब वह अपना शत्रु बनता है। और जब वह अपनेको अपने हृदयमे बसे हुए परमेश्वरकी गोदमे छोड देता है, तब वह अपना मित्र बन जाता है। यह लिखनेका हेतु पतनकी जिन दो घटनाओका उल्लेख मै पहले कर चुका हूँ उनकी तथा मेरी दृष्टिमे आई ऐसी ही अन्य छोटी-बडी घटनाओकी चर्चा करना है। इस प्रश्नमें मै जितना गहरा उतरता हूँ उतना ही यह देखता हूँ कि इन किस्सोसे सम्बन्धित व्यक्ति अपने-आपको धोखा देते है। मै उक्त मामलोकी जो जाँच-पडताल कर रहा हूँ, उसका परिणाम तो आगे मालूम पडेगा।

दोष तो हम सभी करते है। परन्तु जब दोषमे से हम निर्दोषता पैदा करनेका प्रयत्न करते है, तब हम ज्यादा नीचे गिरते है।

एक पुरुष ऐसी दो स्त्रियोके साथ, जो उसे अपना भाई समझती है, तपस्वी तथा शुद्ध सेवकके रूपमे देखती है और अपना शिक्षक या गुरु मानती है, नीचे गिरता है और फिर उनमे से एकके साथ विवाह कर लेता है। इसे मै पुरुषकी अपने व्यभिचारको छिपानेकी युक्ति मानता हूँ। ऐसे सम्बन्धको विवाहका नाम देना—विवाह जैसे पवित्र सस्कारकी निन्दा करना है। मै जानता हूँ कि आजकल ऐसा अनेक स्थानोपर चलता है। पापका गुणा या जोड करनेसे उसमे जो वृद्धि होती है, उस वृद्धिको कभी पुण्य नही कहा जा सकता। सारा जगत् कोई पाप करे तो वह पाप रिवाज बन सकता है, परन्तु पाप तो पाप ही रहेगा — पुण्य नही बन सकेगा। मै जानता हूँ कि यह नियम पाप माने जानेवाले सभी कृत्योके विषयमें सत्य नही है। परन्तु मेरी दृष्टिमे तो इस समय ऐसे ही किस्से है, जो परम्परासे पाप माने गये है और जिन्हे आजका समाज भी पाप मानता है।

शिक्षक अपनी शिष्याओके साथ गुप्त सम्बन्ध रखने लगे और बादमे ऐसे सम्बन्धोमे से किसीको विवाहका रूप दे दे, तो ऐसा करनेसे इस तरहका सम्बन्ध पवित्र नही बन सकता। मेरा दृढ मत है कि जिस प्रकार भाई-बहनके बीच पति-पत्नीका सम्बन्ध नही हो सकता, उसी प्रकार शिक्षक और शिष्याके बीच भी पति-पत्नीका सम्बन्ध कभी नही होना चाहिए। शिक्षण-सस्थामे यदि इस स्वर्ण-नियमका पूर्ण पालन न हो, तो अन्तमे वह शिक्षण-सस्था टूट जायेगी, कोई भी बाला शिक्षकोसे सुरक्षित नही रह सकती। शिक्षकका पद ऐसा है कि बालाएँ और बालक निरन्तर उसके प्रभावमे रहते है। वे दोनो अपने शिक्षकके वचनको वेद-वचनके रूपमे मानते है। इसलिए शिक्षक अपने व्यवहारमे उनके साथ जो स्वतन्त्रता लेता है, उसके विषयमें

उनके मनमे कोई सन्देह पैदा नही होता। इसलिए जहाँ शरीरसे भिन्न मानी जाने-वाली आत्माका सम्मान होता है, वहाँ इस प्रकारके सम्बन्ध असह्य माने जाते हैं और माने जाने चाहिए। जब ऐसे सम्बन्ध हरिजन सेवक-संघ जैसी संस्थामे होते है, तब उनका बुरा असर बहुत दूरतक पहुँचता है और वे हरिजन-कार्यको नुकसान पहुँचाते हैं।

मेरा यह दृढ विश्वास है कि त्रावणकोरमें सारे राज-मन्दिर हरिजनोके लिए खोल देनेकी जो अकल्पित घटना घटी है, उसके पीछे मूक सेवकोकी सेवाका बल था। ऐसे सेवक सारे देशमे बिखरे हुए हैं। उन्हे प्रशसा और ख्याति नही चाहिए। उनके पास आडम्बर नही है। वे तो सेवा करनेमे ही अपनी सार्थकता मानते है। उन्हीके पुण्यसे त्रावणकोरके महाराजके मनमे भगवान जागे और उन्होने महाराजके हाथो सारे मन्दिरोके द्वार हरिजनोके लिए खुलवा दिये। यह कदम प्रभुकी महिमाका प्रथम दर्शन है। सेवकोके लिए अधिक सावधानीसे कार्य करने, अधिक पवित्र रहने तथा अधिक तन्मयतासे सेवा करनेका आमन्त्रण है। जबतक सारे मन्दिरोके द्वार हरिजनोके लिए नही खुल जाते, जबतक हरएक मन्दिरसे दंभ, पाखण्ड और मलिनता दूर नही हो जाती, जबतक हिन्दुओके रक्तमें से अस्पृश्यता मिट नही जाती, तबतक कोई सेवक या सेविका शान्त होकर बैठ नही सकती। और उन्हे यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि अस्पृश्यताके इस सनातन पापको धोनेमे जो ढिलाई हो रही है, उसका कारण केवल हालमे प्रकाशमे आये ऐसे सेवकोके पाप ही है। कौन जानता है कि ऐसे कितने सेवक अपने पापोको छिपा रहे होगे। इसलिए सेवक पापको पुण्य मानकर अपनी कमजोरीका पोषण न करे, पापको छिपानेमे स्वय नीचे गिरकर अपने कार्यको भी अपने साथ नीचे न गिराये और किये हुए पापको अल्प मात्रामे स्वीकार करके ही सन्तोष न माने।

कुछ लोगोको अपना पाप सबके सामने स्वीकार करनेमे सकोच होता है, कुछ लोग स्वीकार करते समय उसपर मुलम्मा चढा देते हैं। लेकिन धर्म तो पुकार-पुकार कर यही कहता है. अपने किये हुए राई-जैसे दोषोको पर्वत-जैसा देखो, यदि तुम उन्हे हृदयसे पूरी तरह स्वीकार करोगे तो जिस प्रकार मैला कपडा मैलके निकल जानेसे शुद्ध हो जाता है और शुद्ध दिखाई देता है, उसी प्रकार तुम भी शुद्ध हो जाओगे और शुद्ध दिखाई दोगे। और पापकी सार्वजनिक रूपसे की गई स्वीकृति और पश्चात्ताप तुम्हारे लिए भविष्यमे पापसे बचनेके लिए ढाल-जैसा सिद्ध होगा।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २९-११-१९३६

१०८. काठियावाड़के दरिद्रनारायणके लिए थैली

चरखा द्वादशीके उपलक्ष्यमे काठियावाडसे दरिद्रनारायण-थैलीके लिए श्री नारणदास गाधीने ७१७८-७-६ की जो रकम इकट्ठी की थी, वह काठियावाडमे काममे लानेके लिए सरदार वल्लभभाई पटेलको भेट कर दी गई थी। वह किन कार्योंपर खर्च की जाये, इसकी व्यवस्था मुझे करनी थी।

थैलीकी रकम इकट्ठी करनेवालोका विचार था कि इस रकमका उपयोग खादी और हरिजन-कार्यके लिए किया जा सकता है। मै यह समझ गया हूँ कि फिलहाल खादी-कार्यके लिए इस रकमकी जरूरत नही है। काठियावाडके खादी-कार्यकी आवश्यकताको पूरा करनेके लिए चरखा सघ यथासाध्य प्रयास कर रहा है। इसके अतिरिक्त, मै समझता हूँ कि काठियावाड़के खादी-कार्यके विकासके लिए स्वर्गीय मोहनलाल पण्डया स्मारक कोषमे भी व्यवस्था की गई है। किन्तु मै यह जानता हूँ कि काठियावाडमे हरिजन-कार्यके लिए पैसेकी खास तौरसे जरूरत है। अत मैने उक्त थैलीकी रकम अखिल भारतीय हरिजन सेवक सघ, काठियावाड अचलके प्रतिनिधि श्री नानालाल कालिदास झवेरीको देनेका निर्णय किया है।

इसके साथ ही मै एक गलती भी सुधार दूं। श्री नारणदास लिखते है कि उनके दो लाख तार[1] नही बल्कि उतने गज थे। तारका मतलब चार फुट हैं, जबकि गज तीन फुटका ही होता है। और शालामे दो महीने नही, बल्कि तीन महीने कताई की गई थी।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २९-११-१९३६

१०९. पत्र: अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा

२९ नवम्बर, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

शम्मीको मै जरूर लिखूंगा। मै फैजपुर जल्दी जा सकूंगा, यह निश्चित नही है। जाऊँगा तो तुम्हे सारी जानकारी भेज दूंगा। चिन्ता मत करो।

मगनलालके बारेमे तुम्हारी रिपोर्ट बहुत अच्छी है। क्या मै तुम्हारे नामसे इसे छाप सकता हूँ? गुमनाम तो यह छप नही सकती।

अहमदाबाद जाते समय रास्तेमें तुम्हे मुझसे मिल लेना चाहिए। चाहे जब भी वहाँ जाओ, मेरी स्पष्ट राय है कि अपना काम खत्म किये बगैर तुम्हे अहमदाबाद से

१. महादेव देसाईके सप्ताहिक पत्र "वीकली लेटर" में, जो हरिजन २४-१०-१९३६ में प्रकाशित हुआ था, ऐसा ही बताया गया था।

हटना नही चाहिए। तुम्हारा वैसा करना अनुचित होगा। जबतक तुम्हारी बैठके चलती रहे, तुम्हे पूरा ध्यान उन्हीमे देना चाहिए। अगर तुम आखिरी दिन ही पहुँचो तो भी क्या हर्ज है!

और लिखनेके लिए समय नही है।

अत· तुम्हे गाडी-भर प्यारके साथ,

अत्याचारी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७५७)से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६९१३ से भी।

११०. पत्र: अमृतकौरको

२९ नवम्बर, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

आज दोपहर बाद मैंने तुम्हे एक पुर्जा जल्दी-जल्दीमे लिखकर भेजा है।

साथमे बी० का पत्र है। मिलनेपर इसके बारेमे मुझसे बाते करना।

जे० के पत्रका जो अर्थ तुमने लगाया है वही मैंने भी लगाया है। अखबारोंने जान-बूझकर उसके अर्थको तोड़-मरोडकर पेश किया है।

मुझसे फैजपुरमे न मिल सको तो तुम्हारे वर्धा रुक जानेसे तुम्हारा वक्त बरबाद नही होगा। और वर्धा तथा सेगाँव आना तो भुसावल और फैजपुर आनेसे निश्चय ही आसान है। फिर फैजपुरमे रहना कोई आरामदेह भी नही है। देखे, तुम्हारे भाग्यमे क्या लिखा है।

सस्नेह,

अत्याचारी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७५६) से, सौजन्य : राजकुमारी अमृतकौर। जी० एन० ६९१२ से भी।

१११. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

२९ नवम्बर, १९३६

भाई बापा,

गोविन्दबाबूके बारेमे तुम्हारा पत्र मिला। इस आदमीको मैंने बेटेके समान पाला है। इसकी पहली करतूतका तो तुम्हे पता है। बादमे मैंने बाबा राघवदासकी मार्फत जाँच कराई तो उनकी रिपोर्ट भी असन्तोषजनक थी। यह ससदका सदस्य बनना चाहता है, इसका तो मुझे पता भी नही था। जिन-जिनके पास यह गया है, वे सब इसे मेरा आदमी मानते है। बम्बईसे ही इसकी शिकायत आई, इसलिए मैंने यह कदम उठाया[1]। यह आश्रमका कब्जा दे दे, सो तो मै चाहता ही हूँ। तुम तो सबके दु खमे हाथ बँटानेवाले हो, अत तुम्हे लिखना ठीक ही था। है न?

बापूके आशीर्वाद

श्री ठक्कर बापा
हरिजन निवास
किंग्जवे, दिल्ली

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११७२) से।

११२. पत्र : महादेव देसाईको

३० नवम्बर, १९३६

चि० महादेव,

बिच्छूवाली घटना भयानक है। क्या झवेरभाई उसकी जाँच ठीक-ठीक कर सकेंगे? रसोईघरमे कौन था? बहुत सम्भव है कि भणसालीपर उसका असर हुआ हो। यह रातमें हुआ या सवेरे? ब्रजलालको हम जल्दी नही छोड़ेंगे। जो होना हो, भले वही हो। वह जितना प्रचार करना चाहे करे। हम किसीको पिंजरेमे थोड़े ही रख सकते है, ठीक है न?

१. देखिए "चन्दा मागनेवालोंसे सावधान," पृष्ठ ७३।

इस बार भूलें सुधारनेमें बहुत समय लग गया, इसलिए बड़ी मुश्किलसे उतना ही लिखा गया है जितना भेज रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च .]

इस समय तीन बजे है। अभी लिख रहा हूँ, इसलिए सब यही जँचवा रहा हूँ।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५०४) से।

११३. पत्र : द० बा० कालेलकरको

३० नवम्बर, १९३६

चि० काका,

कामशास्त्रपर तुम्हारा लेख अभी पढ़ा। हमें इस विषयपर चर्चा करनी पड़ेगी।

तुम्हारे आहारमें कोई परिवर्तनकी आवश्यकता नहीं है। जो ले रहे हो, कम-से-कम उसका समर्थन तो कर सकता हूँ। अभी इतना काफी होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७६९५) से।

११४. पत्र : सत्यमूर्तिको[1]

सेगाँव

१ दिसम्बर, १९३६

आपके द्वारा पेश की गई शर्तें[2] मुझे ठीक ही लगती हैं। लेकिन "हरिजन-उत्थान" शब्द बहुत गोलमोल है, उसमें मन्तव्य स्पष्ट नहीं हो पाया है।

१. तमिलनाड कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष।

२. सत्यमूर्ति द्वारा सुझाई शर्तें इस प्रकार थीं:—

(१) हरिजन-उत्थानको कांग्रेस सदा अपने कार्यक्रमका एक अभिन्न अंग मानेगी।

(२) कांग्रेसकी असहयोग या विधान-मण्डलोंके बहिष्कारकी योजनासे अगर हरिजन सदस्य सहमत न हों तो उनपर कांग्रेसके तत्सम्बन्धी निर्णयोंको माननेकी पाबन्दी नहीं होनी चाहिए।

(३) जिन मामलोंमें हरिजनोंको राहत पहुँचाने या उनके उत्थानके लिए सरकारी सहायताकी जरूरत हो, उनके सम्बन्धमें हरिजन-सदस्योंको अपनी इच्छानुसार कार्य करनेकी पूरी छूट

अस्पृश्यताको समूल नष्ट करनेको कांग्रेस प्रतिबद्ध है। यह उसके मूल कार्यक्रमका ही हिस्सा है। यह उम्मीद तो मैं करता ही हूँ कि प्रारम्भिक चुनाव निर्विरोध होंगे। आपकी शर्तोको गोपनीय रखनेकी क्या जरूरत है? मैं तो यही सलाह दूंगा कि जिस सवालसे लाखो-करोडो लोगोका सम्बन्ध हो, उसके सम्बन्धमें सब-कुछ पूरी तरहसे खुले तौरपर किया जाना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ४-१२-१९३६

११५. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

सेगाँव, वर्धा
१ दिसम्बर, १९३६

चि० कान्ति,

तेरा दूसरा पत्र कल मिला। केवल समय के अभाववश तेरे दो पत्रोका उत्तर यहाँ एक साथ देना पड रहा है। तेरे लम्बे पत्र पढनेमे मुझे अडचन नही होती, न उनसे ऊबता हूँ, क्योकि तेरे अक्षर महादेवके अक्षरोके समान स्पष्ट होते है और तू अनर्गल कुछ नही लिखता। तेरे बम्बई रहनेमें मुझे यह डर नही था कि तू कलमा पढ लेगा। अमतुस्सलामको जरूर था, इसके लिए मैंने उसे उलाहना भी दिया था। किन्तु तेरे मनकी डाँवाडोल स्थितिको देखते हुए ऐसा हो जाना मैंने असम्भव भी नही माना था। पर तेरे पास अपने परिवर्तनोके लिए समझमें आने लायक तर्क होते है और उनके पीछे जो हेतु होता है उसमे अनीति नही होती, इसलिए मै उन्हे बरदाश्त कर सकता हूँ। मेरे लिए सब धर्म समान हैं, इसलिए यदि कोई व्यक्ति बुद्धिमानी, हार्दिकता तथा आन्तरिक प्रेरणासे अपना त्याग बढाने और जरा जल्दी ही ईश्वरके निकट पहुँचनेकी इच्छासे धर्म-परिवर्तन करे तो मुझे उसका दुःख नही होना चाहिए। हाँ, एक बात है जो सब धर्मोको समान मानता है, उसे धर्म-परिवर्तन करना ही नही पडता, क्योकि उसके धर्ममे सहज ही सब धर्मोका समावेश हो जाता है। जो इस बातको पूरी तरह समझता है, उसके लिए धर्म-परिवर्तन आवश्यक ही नही होता। मुझे तेरे वहाँ जानेमे जो डर था, वह तो मैंने तुझे बताया था। वह डर आज भी बना हुआ है। लगता है, तू बच रहा है। अन्ततक बचता रहेगा, तो तेरी जय होगी और मेरे सन्तोषका पार नही रहेगा।

होगी, भले ही अन्य सदस्योंके लिए उन मामलोंमें दलगत नियम इसके विपरीत ही क्यों न हों।

(४) जिन मामलोंका सम्बन्ध विशेष रूपसे हरिजनोंसे हो उनके सम्बन्धमें अगर हरिजन-सदस्य कांग्रेसकी नीतिसे सहमत न हों, तो उन्हें अलग राय रखने और इच्छानुसार उसके पक्ष या विपक्षमें मत देनेकी पूरी स्वतन्त्रता होगी।

अपना शरीर सुखाकर यदि तू सब विषयोमें प्रथम आया, तो वह भी मेरे लिए व्यर्थ समझना। "शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम्," इस वचनमे सचाई है।

जहाँ खाना हो, वहाँ खा। जहाँ रहना हो, रह। लेकिन तन्दुरुस्त रह।

मैंने तो अमतुस्सलामको कही जानेकी अनुमति नही दी। हाँ, त्रिवेन्द्रम जानेकी मनाही नही की, यद्यपि उसमे भी अनेक शर्ते लगा दी है। तू उससे नही मिला, यह तो अच्छा ही हुआ। इसमें सन्देह नही कि उसमे बचपना है और वह बेवकूफ है। उसके पास लाख रुपया हो तो वह उसे भी उड़ा दे। न तो उसे प्रोत्साहन देना, न उसकी उपेक्षा करना। वह मुझसे बहुत कह रही है कि मै तुझे उससे मिलनेपर लगी रोकसे बरी कर दूँ, लेकिन मैंने उसके साथ कोई रियायत नही की।

तेरी परीक्षाका परिणाम अच्छा आया। उसके बारेमे मुझे कोई सन्देह था ही नही।

हरिलाल-सम्बन्धी विवरण तूने ठीक दिया है। उसकी डोर भगवानके हाथमे है, इसलिए मै उसे छेड़ता ही नही। अभी उसका पत्र आया था। उसमे कुछ नही था। मैंने उसका जवाब दे दिया है। एक कोई आर्यसमाजी सज्जन मेरे साथ पत्र-व्यवहार कर रहे है। यदि ये लोग उसे सीधे रास्तेपर ले आये, तो शायद कुछ सुधार हो। लेकिन लिखनेवाला लिखता है कि सभावना कम है। उनका नाम कही लिख रखा है, लेकिन मै भूल गया हूँ। हरिलाल अब भी शादी करना चाहता है। उसे रुपया चाहिए और ऐशे-आराम चाहिए। सुरेन्द्रके साथ क्या बाते हुई है, तू तो जानता होगा। लेकिन उसके शब्दोका मूल्य नही आँका जा सकता, क्योकि उसे आगे-पीछे का भान नही रहता।

लीलावती यही है। मनु सोमवारको आ गई। बारडोलीकी विजया भी यही है। नानावटी और मीराबहनकी सार-सँभालके लिए जो लोग आये थे, वे भी यही है। मतलब यह कि खासा जमघट है।

दुर्गा और बबलो भी आ गये है, इसलिए कहा जा सकता है कि महादेवने घर बसा लिया। नवीनके पत्र कभी-कभी आते है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७३०९) से; सौजन्य कान्तिलाल गांधी।

११६. पत्र : ताराबहन एन० मशरूवालाको

१ दिसम्बर, १९३६

चि० तारी,[1]

तेरा पत्र मिला। तूने जो पुस्तके भेजी थी, उनमे से क्या कोई तुझे वापस भेजी जानी है? तू मुझे पत्र न लिखे, तब भी मैं तो तुझे लिखूँगा ही। तेरा निराश होना बिलकुल उचित नही है। यह निश्चित है कि तुझे 'पुरुषार्थ' करना चाहिए। अभी तेरी उमर ही कितनी है कि तू निराश होकर बैठ जाये? वहाँ उपचार न कराना हो, तो मेरे पास आ जा। डॉ० ऊमेनकी बात मुझे तो जँचती है। इस तरह तेरा स्थान-परिवर्तन हो जायेगा और उस भलेमानसकी मदद भी मिलेगी। इतनी बात तू मेरी मान ले। महिला-आश्रमकी बात समझ गया। तूने कुछ पहले भी लिखा तो था।

मुझे लिखना तो बन्द करना ही नही चाहिए। हम अपने वचनके मूल्यकी अवगणना कैसे कर सकते है? मुझे पत्र लिखनेका आग्रह रखनेसे ही कदाचित् तुझे दृढता प्राप्त हो जाये और तू फिर इस तरह पराजय स्वीकार न कर लिया करे।

"कदी नही हारना भावे साडी जान जावे।"[2]

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६९८) से। सी० डब्ल्यू० ४३४३ से भी, सौजन्य . कनुभाई एन० मशरूवाला।

११७. प्रश्नोत्तर[3]

[१ दिसम्बर, १९३६][4]

प्रश्न: क्या आपको लगता है कि पश्चिमके ईसाई कार्यकर्त्ताओंको यहाँ आनेकी जरूरत है? अगर ऐसा लगता है तो उन्होंने यहाँ किया क्या है?

उत्तर: जिस ढंगसे वे यहाँ काम कर रहे है उसमे तो उनके लिए यहाँ कोई गुंजाइश मालूम नही देती। क्योंकि बिलकुल अनजाने वे खुद अपनेको और

१. गांधीजीकी पुत्रवधू सुशीला गांधीकी बहन।

२. हारना कदापि नही है, भले ही हमारी जान चली जाये।

३. महादेव देसाईके "वीकली लैटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। ये प्रश्न गांधीजीसे मिलने आनेवाले ऐसे लोगोंने पूछे थे जो ईसाइयोंके सामूहिक आन्दोलनमें दिलचस्पी रखते थे।

४. महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

इस तरह हमे नुकसान पहुँचाते है। मेरे लिए शायद यह कहना उचित न होगा कि वे खुद अपना नुकसान करते है, लेकिन यह कहना तो बिलकुल उचित है कि वे हमे नुकसान पहुँचाते है। जिन लोगोमे वे काम करते है और जिनमे काम नही करते उन सभीको उनसे नुकसान पहुँचता है, अर्थात्, सारे हिन्दुस्तानको नुकसान पहुँचा है। जिसे वे ईसाइयत समझे हुए है, उसीको हमारे सामने पेश करते है। लेकिन जिसे मै ईसा मसीहका सन्देश समझता हूँ, उसका प्रचार वे नही करते। उनकी गतिविधियोपर मै जितना ही ध्यान देता हूँ उतना ही अधिक मुझे दु ख होता है। वे लोग बुद्धिमान है, बहुत काफी उन्नत है और उनकी नीयत साफ है, मगर धर्मके बारेमे वे बडे भ्रममे पडे हुए है। मानव-परिवारमे ऐसी बात हो, यह सचमुच बडे दु खका विषय है।

प्रश्न : आप तो जैसी इस समय हालत है उसकी बात कर रहे है। क्या आप ऐसी स्थितिकी कल्पना नहीं करते जब कि दृष्टिकोण दूसरा होगा ?

उत्तर . आपकी योग्यतामे कोई सन्देह नही। अपनी योग्यतासे आप भारतकी ऐसी सेवा कर सकते है जिसको वह सराहेगा। लेकिन ऐसा तभी हो सकता है जबकि मनमे कोई और हेतु न हो। अगर आप शिक्षा देनेके लिए आते है, तो वह आपको भारतीय ढगकी देनी चाहिए। आपको चाहिए कि सहानुभूतिके साथ हमारी सस्थाओ का अध्ययन करके जिस फेर-बदलकी जरूरत मालूम पडे हमे सुझाये। लेकिन आप तो पहलेसे ही धारणाएँ बनाकर आते है और हमारे यहाँकी पद्धतिको नष्ट करनेकी कोशिश करते है। पश्चिमवाले अगर हिन्दुस्तानकी शर्तोपर आये तो वे एक ऐसे अभावकी पूर्ति कर सकते है जिसे हम बहुत महसूस करते है। जब अमरीकावाले आकर मुझसे पूछते है कि वे हमारी क्या सेवा कर सकते है, तो मै उनसे यही कहता हूँ—'अगर आप अपने लाखो रुपये हमारे सामने डालेगे तो आप हमे भिखारी बनाकर नैतिक दृष्टिसे पतित कर देगे।' लेकिन एक बातमे मै भिखारी बननेकी कोई परवाह नही करता। अपने इजीनियरो और कृषिविशेषज्ञोसे आप हमे सेवाएँ देनेके लिए कह सकते है। यह जरूरी है कि वे हमारे मालिक बनकर नही, बल्कि स्वैच्छिक कार्यकर्त्ताओके रूपमे यहाँ आये। तनख्वाह पानेवाला नौकर तो किसी भी दिन नौकरी छोड सकता है, लेकिन स्वेच्छापूर्वक काम करनेवाला ऐसा नही कर सकता। अत इस तरह आये तो जितनी अधिक सख्यामे आये उतना ही अच्छा। मैसूरके एक इजीनियरने, जो कि पौलेडका[१] निवासी है, गाँवोकी जरूरतोके लायक हाथसे बने औजारोका एक सन्दूक भेजा है। यह सोचनेकी बात है कि अगर ऐसा कोई इजीनियर आकर हमारे घरेलू यन्त्रो, औजारोका अध्ययन करके हमे यह बताये कि इनमे ऐसा-ऐसा सुधार होना चाहिए, तो वह हमारी कितनी बडी सेवा होगी। अगर आप धर्म-भावनासे इस तरहका काम करे, तो आप सचमुच ईसा मसीहका सन्देश ही प्रचारित करेगे।

१. मौरिस फ्राइडमैन।

प्रश्न : विदेशोंमें ऐसा सोचा तो जा रहा है।

उत्तर हिन्दुस्तानके आम मिशनरियोमे यह विचार आ जाये तो मुझे बडी प्रसन्नता होगी।

प्रश्न : अगर ईसाई बननेवालोंकी संख्या बहुत बढ़ने लगे, तो क्या होगा?

उत्तर : अगर उनमे विशेष वृद्धि हुई तो हरिजनोमे आपसमे ही लडाई-झगडे और खून-खराबी होने लगेगी, जो कि हालमे बम्बईमे हुए काण्डोसे भी अधिक बर्बरतापूर्ण होगी। सेगाँवमे जो लोग रहते हैं उनमे ५० फीसदी हरिजन है। कल्पना कीजिए, उनमे से १० हरिजनोको आप ईसाई बनाकर उनके लिए एक गिर्जाघर यहाँ बना दें। उस हालतमे आप बापको बेटेका और बेटेको बापका विरोधी बना देंगे। और अपने इस कार्यके समर्थनमे आप 'बाइबिल' मे से कुछ वचन भी ढूँढ निकालेगे। वह तो ईसाई-धर्मका एक व्यग्य-चित्र होगा।

इसके बाद गांधीजीने समझाया कि लाखों हरिजनोंमें एकाएक आध्यात्मिक जिज्ञासा जाग पड़नेकी जो कहानी गढ़ी गई है वह एकदम बेसिर-पैरकी है। बिशप पिकेटने वैस्टमिंस्टरके सेन्ट्रल हॉलमें जो भाषण दिया था और जिसका विवरण गांधीजीने 'चर्च टाइम्स' में पढ़ा था, उससे उनको बड़ा धक्का लगा। उन्होने कहा :

उन्होंने ऐसे बेहिसाब दावे किये है कि मै चाहता हूँ कि वे उनको प्रमाणित करे — इस दावेको भी कि लाखो लोग ईसाई बननेके लिए ललक रहे है।[1]

प्रश्न : वैज्ञानिक उपलब्धियोंके माध्यमसे जो योगदान हुआ है, उसके अलावा तो लगता है कि पूर्व और पश्चिमको एक-दूसरेके निकट लानेके लिए ईसाइयतका प्रचार बिलकुल ही बेमानी है?

उत्तर यही मै कहता हूँ। परन्तु मै थोड़े सकोचके साथ कहता हूँ। उचित ढगसे मत या विश्वास या आस्थामे परिवर्तन लाना, प्रकृतिका एक तथ्य है जिसका खण्डन करना बेमतलब है। उसे मुझे बरदाश्त ही नही, बल्कि स्वीकार करना पडेगा। जब आपको लगे कि 'बाइबिल' की अपनी एक खास व्याख्यासे आपके मनमें शान्ति उत्पन्न होती है, तो आप उसे दूसरोको भी बतलाइये। परन्तु यह जरूरी नही कि आप अपने उस अनुभवको शाब्दिक अभिव्यक्ति ही दें। आपका सारा जीवन आपके अपने मुखसे कही अधिक मुखर होता है। विचारकी पूर्ण अभिव्यक्तिमें शब्द तो सदा ही बाधक बनते है। उदाहरणके लिए, आप किसी मनुष्यको कैसे बतलायेंगे कि वह 'बाइबिल' का पाठ उसी प्रकार करे जैसे आप करते है, वह उसमे वही अर्थ देखे जो आप देखते है? 'बाइबिल' से आप नित्य-प्रति और क्षण-क्षण जो प्रकाश हासिल करते है, उस प्रकाशको आप वाणीके द्वारा उस व्यक्तिके हृदयमे कैसे उतार सकेंगे? इसीलिए सभी धर्म कहते है "आपका जीवन ही आपकी वाणी है।" यदि आपके अन्दर पर्याप्त विनम्रशीलता है, तो आप यही कहेंगे कि आप वाणी या लेखनीके द्वारा अपने धर्मको पूरी तरह नही समझा सकते।

१. देखिए "चमत्कार कैसा होता है?" १९-१२-१९३६ भी।

प्रश्न : लेकिन क्या एक व्यक्ति पूरी विनम्रताके साथ यह नहीं कह सकता : "मै जानता हूँ कि मेरा जीवन मेरे आदर्शतक ऊँचा नहीं उठ पाया है, उससे कहीं नीचे है, लेकिन मै बतलाता हूँ कि मेरा आदर्श क्या है?"

उत्तर. नहीं। विनम्रताको तो आप उसी क्षण छोड़ देते है जब आप कहने लगते है कि आपका जीवन पर्याप्त स्तरतक ऊँचा नही उठ पाया है और उसको पूर्ति आपको वाणी द्वारा करनी पड़ेगी। मानवोको पशुओके समीप जाकर चीखकर यह समझानेकी जरूरत नही कि "हम मनुष्य है।" पशु तो उनको मानवोके रूपमे जानते ही है। आत्माकी भाषा अभिव्यक्तिकी पकड़मे नही आती। वह दैहिक मर्यादा से कही ऊँचे स्तरतक पहुँचती है। भाषा सत्यको परिसीमित करती है; जीवन ही सत्यको व्यक्त कर सकता है।

प्रश्न : किसी-न-किसी रूपमें वाणी द्वारा स्पष्ट अभिव्यक्ति दिये बिना एक पीढ़ी अपने अनुभवको आगे आनेवाली पीढ़ियोंको कैसे सौंप सकेगी?

उत्तर : स्पष्ट मौखिक अभिव्यक्तिका कोई अवसर ही नही होता। जीवन स्वय में अपनी अभिव्यक्ति है। मैंने वर्षों पहले गुलाबकी उपमा दी थी, उसीको लेता हूँ। गुलाब अपने चारो ओर जो सुगन्ध बिखेरता है और सभी आँखोवालोके लिए जो सौन्दर्य उद्भासित करता है, उनके बारेमे उसे कोई पुस्तक लिखने या प्रवचन देनेकी आवश्यकता नही। आध्यात्मिक जीवन तो सुन्दर, सुगन्धित गुलाबसे कही अधिक श्रेष्ठ है; और मै साहसपूर्वक कहता हूँ कि जीवनमे जिस क्षण भी आध्यात्मिक सत्य अभिव्यक्त होने लगेगा, आसपासका समस्त वातावरण उसी क्षण उससे प्रभावित होकर अनुकूल प्रतिक्रिया करने लगेगा। 'बाइबिल,' 'गीता,' 'भागवत' और 'कुरान'मे ऐसे अनुच्छेद मौजूद है जो इसे बड़े सहज, सुन्दर ढगसे सिद्ध करते है। हम पढ़ते है, "कृष्ण जहाँ भी प्रकट हुए, जनता बिलकुल मन्त्र-मुग्धकी भाँति आचरण करने लगी।" ईसाके साथ भी यही होता था। एक और अधिक परिचित उदाहरण ले। जवाहरलाल जहाँ भी जाते है वहाँ लोगो पर जादू-जैसा क्यो हो जाता है? कभी-कभी उनको मालूम भी नही होता कि वे आ गये है, लेकिन वे आ रहे है बस इस खयालसे ही वे एकाएक उल्लसित हो उठते है। हाँ, जवाहरलालके मामलेमे इसे शायद आध्यात्मिक प्रभाव न कहा जा सके। लेकिन एक विचित्र-सा प्रभाव पडता जरूर है, यह तो निश्चित है, नाम उसे आप जो भी चाहे दे। जनता उनका भाषण सुननेके लिए नही बस उनके दर्शनके लिए ललकती है। और यह स्वाभाविक ही है। लाखो-करोड़ो लोगोके साथ काम करनेका दूसरा कोई रास्ता है भी नही। आध्यात्मिक जीवन मारकोनीकी बेतारकी तरगोसे कही अधिक क्षमताशील होता है। मेरे प्रभु और मेरे बीच कोई माध्यम न होने पर भी मै उनके प्रभावोको अपने अन्दर ग्रहण करनेके लिए एक खुला पात्र बन जाता हूँ; और फिर गगोत्रीपर गगाके जलकी भाँति मै फूट निकलता हूँ। व्यक्ति जब सत्यको जीता है तब उसकी बोलनेकी, शाब्दिक अभिव्यक्तिकी इच्छा नही होती। सत्य कम-से-कम शब्दोकी अपेक्षा रखता है। इसलिए जीवनसे अधिक सच्चा या दूसरा कोई धर्म-प्रचारका रास्ता है ही नही।

प्रश्न : लेकिन यदि कोई पूछे कि ऐसे एक जीवनका स्रोत क्या है, तब ?

उत्तर : तब आपको वाणीका प्रयोग करना पड़ेगा, लेकिन आपके शब्दोका चयन अत्यन्त सुविचारित होगा। आप स्वयं ही ऐसा महसूस करेगे। वह पूरी तरह अभिव्यक्तिकी पकड़मे नही आता। लेकिन यदि प्रश्नकर्त्ता जिज्ञासु हो तो वह और अधिक गहराईमे जानेकी कोशिश करता है, तब आप उसे अपने निकट खीच लेगे। तव आपको उसके पास जानेकी जरूरत नही पड़ेगी। आपकी प्रसिद्धि इतनी फैल जायेगी कि संसारके सभी भागोसे लोग आपके दर्शनको और आपकी बात सुननेके लिए दौड़ पड़ेगे। तव आप उनके सामने प्रवचन करेगे। अरविन्द घोषको ही ले लीजिये। ससार के सभी भागोसे अनेक लोग उनके पास आते हैं। वे उन सबसे मिलतेतक नही, वर्षमें केवल दो दिन उनसे मिलते हैं, पर उनसे बात कभी नही करते।

प्रश्न : क्या आपको ऐसे लक्षण दिखाई पड़ते हैं कि उच्चतर जीवनका आभास पा जानेवाले लोग एक-दूसरेके अधिक निकट आये हैं ?

उत्तर जी हाँ। लेकिन इन सस्थाओके जरिए नही। सस्थाएँ तो इस प्रक्रियामे बाधक बनती हैं। मैं सेगाँवमे क्यो हूँ? इसीलिए कि मुझे विश्वास है कि मैं यहाँसे अपना सन्देश भारतीय जन-मानसमे, और शायद इस तरह विश्व-भरके लोक-मानसमे ज्यादा आसानीसे उतार सकूँगा। वैसे मैं ऐसा व्यक्ति नही कि किसी एक जगह बँधकर बैठा रह सकूँ। बल्कि मेरे स्वभावमे इतनी अधिक सहजता है कि जहाँ मुझे किसी कामकी एक बार प्रेरणा मिली कि बस मैं उसे करने चल पडता हूँ, फिर चाहे जो भी हो जाये। दक्षिण आफ्रिकी शिष्टमण्डलके डॉ० हॉफमेयर[1] ने इधर-उधर ज्यादा भाग दौड़ न करनेकी मेरी इस इच्छाको ठीक-ठीक समझा था, उन्होने इस इच्छाको मेरा अहं या उपेक्षापूर्ण वृत्ति मानकर इसपर नाराजी प्रकट नही की थी। इस प्रकार शब्दो और कर्मकी मितव्ययताका अपना एक मूल्य है; हाँ यदि वह सहज-स्वाभाविक हो।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १२-१२-१९३६

१. वे सितम्बर, १९३६ में भारत आये थे; देखिए खण्ड ६३ पृ० ३८१-८२।

११८. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

सेगाँव, वर्धा
२ दिसम्बर, १९३६

बापा,

तुम्हारे पत्र बराबर आते रहे है। त्रावणकोरके बारेमे मैने जो कदम उठाया है, उसे लेकर अभीतक मेरे मनमे कोई सन्देह उत्पन्न नही हुआ। मैने जो मर्यादा बाँध दी है, उसके बाहर जानेमे लाभके बदले हानि होगी।

इसके साथ बापी नीडूके साथ हुआ पत्र-व्यवहार है। वालुजकरकी रिपोर्ट वही फाइल कर देना।

गोविन्द बाबूकी धोखेबाजी अधिक स्पष्ट होती जा रही है। उसने खुद ही मेरे पास आकर सफाई देनी चाही थी। मैने उसे बुलवाया। अब वह लिखता है, "आपके पास मुझे नही आना है। आपके और मेरे विचारोमे अन्तर है। सामाजिक कार्योसे मुझे सन्तोष नही होता," इत्यादि। दूसरी ओर उसके विरुद्ध प्रमाणोका मेरे आगे ढेर लग रहा है। तुमने इस मामलेमे रुचि ली थी, इसलिए इतना लिख दिया है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११७३) से।

११९. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२ दिसम्बर, १९३६

भाई घनश्यामदास,

मै खा रहा हू और यह लिखा रहा हू। परमेश्वरी प्रसाद यहा दो दिनसे आये है। मेरे साथ और जमनालालजीके साथ वात हुई। और परमेश्वरी प्रसाद स्मिथ इत्यादि विशारदोके अभिप्राय लाये है। इससे यह सिद्ध होता है कि उनकी योजना शास्त्रीय है और चलाने के योग्य है। यदि समय मिले तो उसे पढ लेना। परमेश्वरी प्रसादकी दरखास्त यह है कि जितनी शेर होल्डर है वे सब अपने शेअर का दान करे और इतने दानसे लिमिटेड कपनी पब्लीक ऐसोसिएशन बने। इतने दानसे आरभ किया जाय। और बाकीके लिये पब्लीक डोनेशन मागी जाय। जमनालालजी और मैंने ऐसा तय किया है कि जैसा आप कहे वैसा किया जाय। अब बात

रहती है हर हालतमें जो आपने लोन दिया है उसके लिये तो मैंने यही सलाह दी है कि जैसे दूसरे कर्ज रह जायेंगे ठीक उसी तरह यह भी कर्ज रह जायेगा। और वो दिया जायेगा। अगर वाइंडप हुआ तो उसमें तो नाथुरामजीके पैसेके साथ फर्स्ट चार्ज है ही। और अगर पब्लीक एसोसिएशन बनेगा तो उसको सब कर्जाकी जिम्मवारी लेनी ही है। परमेश्वरीप्रसाद कलकत्ता आये हैं। और सब बातें सुनायेंगे। और उनकी बात सुनकर जो योग्य समझा जाये वो किया जाये।

आपकी बेटी अनसूयाने यह लिखा है।

बापुके आशीर्वाद

सी० डब्ल्यू० ८०२४ से, सौजन्य घनश्यामदास बिड़ला।

१२०. पत्र: कमलाबहनको

३ दिसम्बर, १९३६

चि० कमलाबहन,

मेरा तार मिला होगा। मैं तुम्हे क्या आश्वासन दे सकता हूँ? मृत्यु भला किसको छोडती है? तथापि अपने प्रियजनोसे पहले जाना निस्सन्देह अच्छा लगता है। लेकिन जो केवल सेवार्थं ही जीना चाहता है, उसकी जल्दी मृत्यु हो अथवा देरसे, इससे क्या फर्क पड़ता है? ईश्वर तुम्हे स्वस्थ रखे और सेवा-परायण बनाये।

बापू

गुजरातीकी नकलसे प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य . प्यारेलाल।

१२१. पत्र: भगवानजी अनूपचन्द मेहताको

सेगाँव

३ दिसम्बर, १९३६

भाई भगवानजी,

कामकी भीडमें बस, इतना ही लिख रहा हूँ कि तुम शकाशील आदमी हो और शकाशीलताकी एकमात्र दवा है—काम। अनजानेमें मैंने अन्याय किया हो तो भगवान् जाने, भगवानजी नही। प्रसवकी पीडा दूसरा कौन जान सकता है? बीमारोकी[1] खटिया छोड़कर आनेवालेको अध्यक्षकी तरह बुलाते हो, और उससे लिखित भाषणकी आशा करते हो, यह क्या ठीक है?- लेकिन तुम्हारे लिखनेसे

१. अक्तूबरमें मीराबहन और नानावटीके बीमार होनेके कारण गांधीजी उनकी तीमारदारीमें व्यस्त थे।

मुझे बुरा लगा हो ऐसा नही। पर हर बार इतना लिखकर भी जवाब न दे सकूँ, तो माफ करना।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५८३१) से। सी० डब्ल्यू० ३०५४ से भी; सौजन्य. भगवानजी अनूपचन्द मेहता।

१२२. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

वर्धागंज
४ दिसम्बर, १९३६

अहमदाबाद मिल-मालिक सघ और अहमदाबाद मजदूर-संघने हमे कुछ निश्चित मामले पंच-फैसलेके लिए सौपे है। हमने वर्धा और सेगाँवमे दोनोके प्रतिनिधियोके साथ बैठकर तीन दिन तक सलाह-मशविरा कर लिया है। हमे आशा है कि हम १५ तारीखतक अपने फैसले[2] दे देगे।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ५-१२-१९३६

१२३. चर्चा : ग्राम-सेवक प्रशिक्षण विद्यालयके विद्यार्थियोंके साथ[3]

[५ दिसम्बर, १९३६से पूर्व]

ग्राम-सेवक प्रशिक्षण विद्यालयके विद्यार्थियोंका एक दल कुछ समयसे तुलसी रामायण और भजन गाते हुए आसपासके गाँवोंमें घूम रहा है। चूँकि अब विद्यार्थियोंकी परीक्षा निकट आ रही है, विद्यार्थियोंमें से किसीने गांधीजीके सम्मुख यह सुझाव रखा कि कुछ समयके लिए इस कार्यक्रमको बन्द कर दिया जाये। गांधीजीने उनसे कहा :

आपकी इस बातसे मुझे धक्का पहुँचा है। यदि आप अपनी पढाईमे से गाँवोमे थोड़ा घूमनेका समय नही निकाल सकते और यदि परीक्षाके लिए आपको चौबीसो घंटे पढ़नेकी जरूरत है तो आपकी यह पढाई बिलकुल व्यर्थ है। लेकिन इसे छोड दे तब भी आपका यह प्रस्ताव गाँववालोकी दृष्टिसे एक बुरा लक्षण है। आपने उन्हे वचन दिया है कि आप सप्ताहमे अमुक-अमुक दिन उनके गाँवोमे पहुँचेगे और अब

१. यह वक्तव्य गाधीजी और अहमदाबादके उद्योगपति तथा मिल-मालिक कस्तूरभाई लालभाईने संयुक्त रूपसे जारी किया था।

२. गाधीजीके फैसलेके लिए, देखिए "मजदूर विवादका पच-फैसला", २६-१२-१९३६।

३. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

आप अपना यह वचन तोड़ने जा रहे है। मै आपसे कहता हूँ कि पिछले चन्द दिनोंमें जो आप उनके यहाँ गये हैं वह उनके लिए उतना ही बुरा सिद्ध होगा जितना कि पुच्छल तारेका दिखाई दे जाना। कदाचित् उससे भी ज्यादा बुरा सिद्ध हो। पुच्छल तारा एकाएक प्रकट हो जाता है, प्राकृतिक नियमोका उसपर कोई असर होता नही दिखता। या ऐसा कहे कि उन नियमोको हम जानते नही। किन्तु आपने उन्हें एक वचन दिया और अब यदि आप अपने वचनसे फिर जाते हैं तो वे लोग समझेंगे कि आप उनके लिए गाँवोमे नही जाते बल्कि अपने मन-बहलावके लिए वहाँ जाते है। इससे वे आपके प्रति उदासीन हो जायेंगे और अन्तत: उन्हे आपसे अरुचि होने लगेगी। मै आपसे कहता हूँ कि आपका तुलसी रामायण और भजन गाते हुए गाँवोंमे घूमना दवाइयाँ बाँटनेके लिए जानेसे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। दवाइयाँ उनके शारीरिक कष्टोके लिए अच्छी हैं, लेकिन रामायण उनके आध्यात्मिक कष्टोंके निवारणके लिए श्रेयस्कर है। यदि आपने इसकी शुरूआत न की होती तो मैं आपसे ऐसा करनेके लिए नही कहता। उन्होंने आपको कभी वहाँ आनेके लिए नही कहा और न आपसे कभी ऐसी अपेक्षा ही रखी। लेकिन अब चूँकि शुरूआत की जा चुकी है, आपको इसे जारी रखना चाहिए। इस तरह रामायण और भजन गाते हुए गाँव-गाँव जानेसे आप लोगोके जीवन्त सम्पर्कमें आते हैं। इन ग्राम-यात्राओको बन्द करनेकी अपेक्षा तो आपको यह सोचना चाहिए कि इन्हे किस तरह ज्यादा-से-ज्यादा उपयोगी और सफल बनाया जाये।

इसके बाद उन्होने भंगीके धन्धेको लेकर पूछे गये एक प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा कि मैने 'हरिजन'के इस अंकमें "आदर्श भंगी"[1] शीर्षक जो लेख लिखा है उसे पढ़िए और यदि उसमें आपको कोई कमी दिखाई दे तो ब्यौरेकी पूर्ति स्वयं कर लीजिए। गांधीजीने ग्राम-सेवक स्कूलके विद्यार्थियोको उस भंगीका किस्सा बताया जिसे अपने कामके प्रति लापरवाही बरतनेके कारण गाँवसे चले जानेके लिए कहा गया था। उन्होंने नये भंगीके बारेमें भी बताया जिसने काम करनेके लिए ३० रुपये महीनेकी माँग की थी लेकिन जो बादमें १५ रुपयेपर तैयार हो गया। [उन्होने कहा :]

अब इन लोगोको और इनके तौर-तरीकोंको सुधारना आपका काम है और आप तबतक ऐसा नही कर सकते जबतक आप स्वयं अच्छे भंगी न हो। जैसा कि मैंने अपने लेखमें लिखा है, मैं चाहता हूँ कि भंगी आजकी तरह अपना काम लापरवाहीसे करनेवाला न हो। मेरी इच्छा है कि वह लोगोकी बीमारियोको दूर करे और आदर्श भंगीके अलावा चिकित्सक भी हो। प्राचीन कालमें गाँवका नाई गाँवका शल्य-चिकित्सक भी हुआ करता था। मैं चाहता हूँ कि एक अच्छा भंगी गाँवका स्वास्थ्य-निरीक्षक और चिकित्सक हो। इसके लिए आपको मार्ग प्रशस्त करना होगा। आज हमने उसे निम्नतम दर्जेपर पहुँचा दिया है और उसके साथ-साथ हम भी गिर

१. देखिए पृ० ९७-९।

गये है। वह धूल और गन्दगीमे रहनेमे ही सन्तुष्ट है, हम स्वय भी उससे कुछ ज्यादा अच्छी तरह नही रहते। आप तबतक उसका सुधार नही कर सकते जबतक कि आप उसी लगनके साथ यह कार्य न करे जिस लगनके साथ आप परीक्षाके दिनोमे पढाई करते है। गाँवकी सफाईका यह काम कोई आसान काम नही है। गाँवकी सफाईका काम करनेका अर्थ गाँवके भगीको आदर्श भगी बनाना है। इसके बारेमे कभी किसीने कुछ नही सोचा है और यह काम गन्दा नही है। यह मनुष्यको शुद्ध और स्वच्छ बनाता है और जीवनकी रक्षा करनेवाला है। लेकिन हमने इसे नीचे गिरा दिया है। अब हमे इसे इसका सही दर्जा दिलाना होगा। इस बारेमे मैंने अपने लेखमे जो मार्ग सुझाया है, मैंने जो कहा है उसे मै यहाँ दोहराऊँगा नही।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, ५-१२-१९३६

१२४. मन्दिर-प्रवेशके नियम

हरिजनोके लिए राजकीय मन्दिर खोल देनेकी त्रावणकोरकी प्रसिद्ध घोषणाके अन्तर्गत मन्दिर-प्रवेशके कुछ नियम[1] बनाये गये है। इस अकमे पाठकोको उनका पूरा पाठ मिल जायेगा। जबतक इन नियमोपर अमल होने नही लगता, इनके विषयमे कुछ भी नही लिखा जा सकता। जैसा कि सभी नियमोके साथ स्वाभाविक है, जहाँ एक तरफ इनकी व्याख्या और प्रयोग इस घोषणाकी ही तरह उदारतापूर्ण हो सकता है, वही दूसरी तरफ इतना सकीर्णतापूर्ण भी हो सकता है कि उससे यह घोषणा बिलकुल ही निष्प्रभावी बन जाये; और इस तरह हालत पहलेसे कही खराब हो जाये। पर इस आशकाका कोई कारण नही है कि इसका ऐसा कोई दुखद परिणाम होगा। जैसा कि मै मानता हूँ, यह घोषणा तो सुधारकी भावनासे प्रेरित एक नरेश द्वारा युगकी भावनाकी एक माँगको पूरा करनेके लिए ही जारी की गई है। जो-कुछ अखबारोमे प्रकाशित होता रहा है वह अगर सच है और जिनको इस सम्बन्धमे ठीक-ठीक जानकारी होनी चाहिए उन लोगोसे मैंने जो-कुछ सुना है उसपर अगर विश्वास किया जा सकता है, तो कहना होगा कि इस घोषणा को आम जनताका अनुमोदन प्राप्त है।

लेकिन जैसा कि मै पहले भी लिख चुका हूँ, इस सुधारको सफल बनानेका भार खास तौरपर त्रावणकोरके सुधारकोको ही उठाना पडेगा। वहाँ एक ऐसा वातावरण बन जाना चाहिए जिससे सरकारके बलपर इन नियमोका पालन करानेकी नौबत ही कभी न आये। मन्दिरोमे प्राय सच्चे भक्त जाते है या ढोंगी-पाखण्डी। सच्चे भक्त तो प्रथागत नियमोका बडी सख्तीसे पालन करते है, क्योकि उन्हे डर रहता है कि ऐसा न करनेसे कही उनकी सारी पूजा बेकार न चली जाये। और

१. देखिए परिशिष्ट।

पाखण्डीको भी पूजा-अर्चनाकी विधिका उतनी ही सख्तीसे पालन करना पड़ता है, जिससे कि उसकी कलई न खुले। हमारे लिए जिस तरहके नियम बनाये गये हैं उस तरहके नियम बनाना आधुनिक युगकी देन होते हुए भी नितान्त आवश्यक है। जब धार्मिक सस्थानके बदले एक लौकिक सत्ता — राज्य — की घोषणा द्वारा हजारो लोगोके लिए मन्दिरोके दरवाजे खोले जाते है, तो उसका यथोचित पालन करानेके लिए नियम भी राज्य द्वारा ही बनाना जरूरी हो जाता है। इसमे कोई शक नही कि त्रावणकोरके इस समूचे महान प्रयोगमे सभी सम्बन्धित लोगोसे सतर्कता और सहानुभूतिके साथ प्रार्थनापूर्ण ढगसे काम करनेकी अपेक्षा है। अगर इसके पीछे शुद्ध धार्मिक भावना है, तब तो सब ठीक होगा। पर सुधारको और उन हरिजनोके अतिरिक्त, जिन्हे वे मन्दिरोमे लायेंगे, और कौन है जो इस दिशामे आगे बढकर रास्ता दिखा सकता है?

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-१२-१९३६

१२५. शेगाँव नहीं सेगाँव

कई पत्र-लेखक मुझे शेगाँवके पतेपर पत्र लिख दिया करते है। शेगाँव तो भुसावल और वर्धाके बीच बडी लाइनपर एक रेलवे स्टेशन है। मै शेगाँवमें नही रहता; मै तो वर्धाके पास सेगाँवमे रहता हूँ। यह रेलवे स्टेशन नही है। यहाँ न डाकखाना है, न तारघर। इसलिए मुझे जो भी पत्र या तार भेजा जाये, उसपर वर्धाका ही पता लिखना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-१२-१९३६

१२६. पत्र : अमतुस्सलामको

५ दिसम्बर, १९३६

प्यारी बेटी अमतुलसलाम,

तुम्हारा खत मिला। तुमको कैसे खुश करूँ? मैंने तुमको कह दिया है कि अच्छी हो जानेपर मेरे पास आ सकती हो। जो सेवा घरपर पा सकती हो, ऐसी मैं आजकी हालतमें तुम्हारे लिए पैदा नही कर सकता। यही कारण है कि मैं तुमसे कह रहा हूँ कि इस वक्त तुम्हारा मेरे पास आना शायद अच्छा नही होगा।[1]

इतना लिखनेपर थकान महसूस होने लगी। मिलनेवाले आ पहुँचे इसलिए पत्र लिखना रुक गया। तू अपने हाथो दुखी होती है। मै सीधी बात करता हूँ किन्तु तू उसे भी उलटा समझती है। तू यह नही देखती कि मेरा जीवन बदल गया है। मैं आश्रम बनाकर नही बैठा हूँ। इसलिए जितने लोगोको चाहूँ उन सबको नही रख सकता। मैं तुझे बुलाकर तेरी चाकरी न करूँ — यह कैसे हो सकता है? तू तो कहेगी कि मुझे चाकरी नही चाहिए, किन्तु इसे मैं कैसे बरदाश्त कर सकता हूँ। किसी भी बीमारको मैं यहाँ नही रखता। जो लोग यहाँ है उनसे भी मैंने बात कर ली है कि यदि उनमें से कोई बीमार पडे तो वह या तो वर्धा जाये या अपने घर जाये। ऐसी स्थितिमें मैं तुझसे क्या कहूँ? तू चंगी हो जा, और चली आ। यदि ऐसा न करना चाहे तो तू जहाँ कहे वहाँ मैं तुझे अच्छी होनेके लिए भेज दूँ। इसीलिए तो बगलौर[2] भेजनेको लिखा था। तू बीमार भी अपने कारण ही पडती है। कान्तिको तेरे पास भेजा, उसका मतलब भी तू नही समझती।

बापूके आशीर्वाद

उर्दू तथा गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३६४) से।

१. पत्रका इतना अंश उर्दूमें है। बापूके पत्र–८: बीबी अमतुस्सलामकेनाममें इस अंश पर ४ दिसम्बर की तारीख डाली गई है, पर कारण कोई नही बताया गया है।

२. देखिए पृ० ३३।

१२७. पत्र : महादेव देसाईको

५ दिसम्बर, १९३६

चि० महादेव,

इसे सुधारा तो है, किन्तु इसके प्रकाशनके औचित्यके बारेमे मुझे सन्देह है। आज या कल एन्ड्रयूजसे पूछ लेना। वे न मिले, तो मॉटके पास भेजना और कहना, गाधीजी कहते है कि यदि आपको यह प्रकाशित करने लायक लगे, तभी हम इसे छापेंगे, अन्यथा नही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५०५) से।

१२८. नाक-कान छिदवानेके बारेमें

ठेठ केन्यासे, वहाँकी सरकारी हिन्दी पाठशालाके शिक्षक श्री० वदियानी लिखते है[1]

श्री० गिजुभाईके लिए 'महान् बाल-शिक्षा विशेषज्ञ' का विशेषण लगाकर मेरे-जैसे सामान्य मनुष्योको नीचे गिरानेकी प्रस्तुत पत्र-लेखककी प्रवृत्ति कदापि अनुसरणीय नही कही जा सकती। गिजुभाई बालक-बालिकाओको पढानेमे ही अपना सारा जीवन लगाना चाहते हैं, उन्हे पढाते हुए ही वृद्ध होना चाहते हैं, इसलिए बालिकाओके नाक-कान छेदकर या छिदवाकर उन बेचारियोको वे भला अपने-जैसे लोगोके हवाले क्यो नही करेगे? यदि गिजुभाई स्वय महान् बाल-शिक्षा विशेषज्ञ होनेका दावा करे और किसी अन्य व्यक्तिको अपने बराबर ही न माने, तो उनकी बातोपर विचार करना पडेगा। ऐसी स्थितिमे यह जानना होगा कि उन्होने किस परिस्थितिमें और किस साल अपनी लड़कियोके नाक-कान छिदवाये, किस परिस्थितिमे और किसको उपर्युक्त पत्र लिखा।

किन्तु तर्कके लिए हम गिजुभाईको महान् बाल-शिक्षा विशेषज्ञ मान ले। इसके बावजूद, हमे यह क्यो मानना चाहिए कि उनके विचारोमे कोई गलती हो ही नही

१. पत्र यहाँ नही दिया गया है। पत्र-लेखकने लिखा था कि नाक-कान छिदवानेके बारेमें गिजुभाईके विचार जाननेके बाद अब उसके लिए गाधीजीके दृष्टिकोणसे सहमत होना सम्भव नहीं रहा है।

सकती। महात्माओके वचनोको हम उनके प्रसगकी परवाह किये बिना वेद-वाक्य क्यो माने? गिजुभाईके नामसे उनके हाथमे जो पत्र आया उसे पढते ही मेरी सलाह — जिसपर अबतक अमल होता आ रहा था — निरर्थक कैसे हो गई? क्या श्री बदियानीके यह जाननेमे आया है कि जिन बालिकाओके नाक-कान नही छिदे उन्हे कोई नुकसान हुआ है?

मेरा सुझाव तो यह है कि छोटे-बडे किसी भी मामलेमे किसीकी रायको वेद-वाक्य जितना महत्त्व नही देना चाहिए। हर वचनको – फिर वह चाहे मेरे-जैसे 'महात्मा' का हो या गिजुभाई-जैसे 'महान् विशेषज्ञ' का – बुद्धिकी तुलापर तौलना चाहिए और फिर दोनोमे से जो वजनदार लगे उस पर डटे रहना चाहिए। बादमे यदि कोई उससे भी महान् महात्मा या महान् विशेषज्ञ माना जानेवाला नजर पड जाये, तो उसे तुरन्त साष्टाग प्रणाम न करके जिसके प्रति हमारा बौद्धिक रुझान हो, उसके प्रति वफादार बने रहना चाहिए। इसे अव्यभिचारिणी बुद्धि कहते है। यदि ऐसा करना नही सीखेंगे तो हम कहीके नही रहेगे और बेचारी हमारी बुद्धि इधर-उधर भटककर निकम्मी हो जायेगी।

हम अब मूल प्रश्नपर विचार करे। क्या गहने केवल बालिकाओको ही अच्छे लगते है? क्या बालकोको अच्छे नही लगते? गहने अच्छे लगनेके साथ नाक-कान छिदवानेका क्या सम्बन्ध हो सकता है?

पश्चिममे असख्य बालिकाएँ है जिनके नाक-कान नही छेदे जाते, किन्तु बडी हो जाने पर उन्हे इस बातका पश्चात्ताप हुआ हो ऐसा सुननेमे नही आया।

यदि नाक-कान छिदवाये ही जाये तो कितने छेद किये जाये और फिर उतने ही छेद क्यो किये जाये? किस तरहके गहने पहनाने पर शोभाकी बात होगी और उन्हे कुरूप कब माना जायेगा?

यदि नाक-कान छेदनेकी प्रथा अच्छी ही हो तो बालिकाओके सयानी होनेपर यह क्रिया करवानेका भार हम उन्हींपर क्यो न छोड दे?

बालक-बालिकाओके बीच कृत्रिम भेद क्यो बढ़ाया जाये? क्या हममेसे बहुत-से माता-पिता बालक-बालिकाओ, दोनोके कान छिदवाते है? तो फिर केवल बालिकाओके प्रति ही यह पक्षपात या उनपर यह जुल्म क्यो?

अब मै सक्षेपमे अपनी मान्यताके बारेमे कह दूँ।

मेरे दोनो कानोमे कुल मिलाकर छ छेद थे जो आज भी है, किन्तु वे मुझे अच्छे नही लगते। किन्तु उन्हे अब बन्द कैसे करूँ? मेरी पत्नीके नाक-कान, दोनो बिंधे हुए थे। अपने गहने उतारते उसे बहुत बुरा लगा होगा। गहने उतार देनेसे हम दोनोमे से किसीकी शोभा कम हुई हो, ऐसा हमे तो नही लगा। यदि अन्य लोगोको हम सुन्दर रूपवान न लगते हो, तो क्या ऐसे मामलोमे भी हम उनपर तरस खाये?

नाक-कान छिदवाने और उनमे गहने ठूँस लेनेसे वहाँ मैल भर जाता है और कभी-कभी वे पक जाते है। इस तरहके अनिष्टसे बचनेके लिए उन्हे साफ रखना

पड़ता है और साफ रखनेमे समय नष्ट होता है, यह कोई सामान्य बात नही है।

सुकुमार बालकोंके नाक-कान छेदनेसे उन्हे जो कष्ट होता है उसके प्रभावको तो बड़े वैद्य ही माप सकते हैं।

बेचारी स्त्री तो गुलाम है। उसके नाक-कान छेदनेकी क्रियामे मुझे तो हमेशा उसकी गुलामीकी निशानी ही नजर आई है। उसके कानकी बालीमे रस्सी बाँधकर उसे बैलकी तरह खीचा जा सकता है। क्रूर पतियों द्वारा अपनी पत्नीके नाक-कान, दोनो गहनो सहित काट लेनेके उदाहरण मौजूद है।

नाक-कान बिंधवानेकी क्रियाके हिमायतियोंको मै आमन्त्रित करता हूँ कि वे हिन्दुस्तानकी बहनोंके नाक-कानके डरावने गहनो और उनमें भरे हुए मैलपर नजर डाले और फिर राय दे कि मुझे क्या करना चाहिए? मुझे उनके गहने उतरवा देने चाहिए या कानके उन बड़े-बड़े छेदोंमें, जिनमें मेरी अँगुली चली जाये, उन्हे मोतीके लटकन पहननेकी सलाह दूँ।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, ६-१२-१९३६

१२९. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव
६ दिसम्बर, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

तुम्हारे पत्र मिल गये। अगाथा कल शाम आई। एन्ड्रयूज यही हैं, और कार्ल हीथ भी।

तुम्हारे भेजे दो पार्सल आ चुके है। उनमे मुझे दो कम्बल मिले। सफेद कम्बल तो इस्तेमालमें भी ले लिया गया है। उनमे से कोई क्या प्रदर्शनीके लिए भी है? मै समझता हूँ कि बाकी चीजें प्रदर्शनीके लिए ही है। पुस्तकें बड़ी उपयोगी हैं।

लेखोंके बारेमें पत्र कैसा है? मेरा खयाल है कि मैंने तुमको बतला दिया था कि वे लेख, कम-से-कम मैंने उनमे से जितने पढ़े थे, प्रकाशनके योग्य नही हैं।

शम्मीका उत्तर मिल गया है। अच्छा है। लेकिन वह जुदाई सहन नही कर सकता और वह तुम्हारे स्वास्थ्यके बारेमें चिन्तित है।

मुझे २० तारीखके पहले फैजपुर नही पहुँचना है। इसलिए तुम अहमदाबाद जाती हुई वर्धा होती जाना। मै १९ तारीखकी शामको वर्धासे रवाना होऊँगा। यहाँ मौसम बड़ा अच्छा है। मैंने अबतक गोटा देखा नही है। क्या वह अलग पार्सलमें आ रहा है?

अधिक लिखनेको बिलकुल समय नही है।

सस्नेह,

अत्याचारी

[पुनश्च.]

हाँ, जे० की अपील शानदार है। बी० एस० और मगनलालके बारेमे तुमने जो लिखा है, उसे मैं समझता हूँ। इसके बारेमे हमारा बातचीत करना जरूरी है।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७५८) से, सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६९१४ से भी।

१३०. पत्र: नर्मदाबह्न रा० पाठकको

६ दिसम्बर, १९३६

चि० नर्मदा,

नालायक लडकी, तू मेरे पास इतने घटे बैठी, लेकिन मेरा दु:ख नही देख सकी? मेरे आँसू नही परख सकी? मुझसे कहा हुआ भी भूल गई? क्षणिक तरगमे पडकर तू स्थायी सुख खो बैठी है। अब मुझे लिखनेमे भी शरमाती है। आश्रम[1] मे आई तब तू क्या कहती थी, और यह क्या कर लिया? मुझे तेरा विवाह करना[2] नही अखरता, किन्तु तूने ही स्वीकार किया है कि यह सम्बन्ध विवाह नही कहा जा सकता। इस अधर्ममे से तुम दोनोको धर्म खोजना है। मेरा ही मार्ग सच्चा है, यह मैं नही कहता। किन्तु तुमने जो मार्ग अपनाया है, वह अधर्मका है, इस बारेमे मुझे कोई सन्देह नही है। नीदसे जाग। तेरी बुद्धि शायद यह सब न समझे। किन्तु तेरा हृदय, यदि ठीक स्थानपर होगा तो, जरूर समझेगा। यह पत्र केवल तेरे सन्देसेका जवाब है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २७८०) से, सौजन्य: रामनारायण एन० पाठक।

१. जुलाई, १९३२ में देखिए खण्ड ५०, पृ० २४४ और २४६।

२. रामनारायण पाठकके साथ।

१३१. पत्र : रामनारायण एन० पाठकको

सेगाँव, वर्धा
६ दिसम्बर, १९३६

भाई रामनारायण,

तुम्हारे पत्र मिले। तुम्हारे वक्तव्यका मसविदा बनानेके बजाय मैं तुम्हारे पत्रोंके आधारपर एक लेख[1] लिखूंगा और उसे प्रकाशित करूँगा। तुम दोनो जितना रो रहे होगे, उससे ज्यादा मैं रोता हूँ, यह जान रखना। क्योकि मैंने बहारकी आशाओका जो वितान ताना था, वह तिरोहित होता जा रहा है। तुम्हारा पश्चात्ताप यदि शुद्ध हो, तो भी कुछ बिगडा नही है। विषय-भोग करते हुए पश्चात्ताप नही किया जा सकता। मैं अभीतक अपने विचारोसे चिपका हुआ हूँ। तुम नर्मदाकी पवित्रताके रक्षक थे। वह पवित्रता तुमने रौद डाली और उसे रौदते हुए आगा-पीछा नही सोचा। गगाबहनके साथ न्याय करना तो बाकी ही है। यदि तुम नर्मदाके शिक्षक बन सको, तो उसका जीवन सुधरे, तुम्हारा भी सुधरे और गगाबहनको कुछ शान्ति मिले। गगा-बहनको मैं पहचानता नही हूँ। उसके पत्रका मुझपर बहुत असर नही हुआ। किन्तु उस महिलाको आघात पहुँचा है, यह देख पाया हूँ। तुम्हारे भाई और हेमूभाईकी पीडा भी अभी जैसी-की-तैसी बनी है। परिताप करनेसे नही, बल्कि शान्तिपूर्वक विचार करनेसे ही तुम अधकारसे प्रकाशमे आ सकोगे। इसी प्रकार दाम्पत्य-शास्त्रके प्रवाहमे बहते रहे तो नाश ही होगा। क्या हरिजनोका ऋण नही चुकाओगे?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २७८२) से, सौजन्य : रामनारायण एन० पाठक।

१. देखिए "चित्तशुद्धिकी आवश्यकता", पृ० १४७-५०।

१३२. चर्चा: ग्राम-सेवक प्रशिक्षण विद्यालयके विद्यार्थियोंके साथ[1]

[६ दिसम्बर, १९३६][2]

मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नही कि स्वेच्छासे आरम्भ की गई और प्रफुल्लित मनसे सम्पन्न की गई मेरी 'इस तपश्चर्या'[3] का भी समझौता करानेमे कुछ-न-कुछ हाथ अवश्य था। मै ऐसा सकेत नही दे रहा हूँ कि सघ सरकारपर इसका सीधा प्रभाव पडा था। मेरा दृढ विश्वास है कि सभी सच्ची तपश्चर्याओका अलक्षित लेकिन निश्चित प्रभाव पडता है। वह तपश्चर्या आत्म-शुद्धिके लिए और, चाहे जितनी कम मात्रामे हो, हडतालियोके कष्ट बँटानेके लिए आरम्भ की गई थी। उनके लिए ईश्वरसे प्रार्थना करनेका यही एक मार्ग मेरे पास था।

इस प्रकारकी तपश्चर्या करनेवाला व्यक्ति अपने-आपको पूरी तरहसे ईश्वरके हाथोमे सौप देता है। वह ऐसी तपश्चर्या बिना पूरी तरह सोचे-समझे नही करता, क्रोधमे तो कभी नही करता, और स्वय अपने लिए कोई लाभ पानेकी दृष्टिसे भी निश्चय ही नही करता। ऐसी तपश्चर्या किसी ऐसे प्रतिपक्षीके विरुद्ध भी नही होनी चाहिए जिसके साथ कोई स्नेह-सम्बन्ध न हो। फिर, ऐसी तपश्चर्याके लिए व्यक्तिगत शुद्धि और अहिंसा तथा सत्यपर जीवन्त विश्वास भी आवश्यक है। स्पष्ट ही, ऐसी तपश्चर्यामे अहकारके लिए कोई स्थान नही हो सकता।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १२-१२-१९३६

१. महादेव देसाईके "वीकली लैटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

२. साधन-सूत्रके अनुसार ग्राम-सेवक प्रशिक्षण विद्यालयके विद्यार्थी गांधीजीसे "पिछले रविवार" को मिले थे, जो ६ दिसम्बरको पड़ा था।

३. गांधीजीसे विभिन्न अवसरों पर किये गये उनके उपवासोंके बारेमें पूछा गया था। इसपर उन्होंने सार्वजनिक आन्दोलनके सिलसिलेमें सन् १९१३ में किये गये अपने एक उपवासका उल्लेख किया। तब उन्होंने स्वेच्छया कष्ट-सहनके लिए ये तीन प्रतिज्ञाएँ की थीं कि जबतक तीन पौंडी कर नहीं हटाया जायेगा तबतक वे (१) मजदूरोंकी ही पोशाक पहनेंगे; (२) नगे पैर रहेंगे; और (३) दिन-भरमें केवल एक बार भोजन करेंगे। उन दिनों उनका भोजन आगपर न पकाये गये फलोंका होता था। यह तपश्चर्या कई महीनोंतक, कर हटाये जाने तक, चलती रही थी। देखिए खण्ड १२।

१३३. पत्र : म्यूरियल लेस्टरको

[६ दिसम्बर, १९३६ के पश्चात्][1]

प्रिय म्यूरियल,

तुम अभी मेरे पत्रका इन्तजार तो नही कर रही होगी, तथापि मै तुम्हे लिख रहा हूँ और यह समाचार देना चाहता हूँ कि अगाथा इस समय यही है और जमनालालजीके घरसे सेगाँव तक पैदल आती है। ठडे मौसममे इतनी दूर पैदल चलने का साहस किया जा सकता है। एन्ड्रयूज यहाँ चार दिन ठहरे। डॉ० मॉट और बी० मैथ्यू भी सेगाँव आ चुके हैं। अस्पृश्यताकी समस्याके इर्दगिर्द ही चर्चा होती रही; यानी, इस सवाल पर कि ईसाई मिशनरियोका देशके सुधार-आन्दोलनमे पड़ना उचित है या नही। त्रावणकोर राज्य द्वारा हरिजनोके लिए सारे मन्दिरोके द्वार खोल दिये जानेसे इस सुधार-आन्दोलनमें अचानक भारी वृद्धि हुई है।

आशा है, तुम बहुत स्वस्थ होगी।

अपनी पिछली बडी बीमारीके बाद मीराकी तबीयत भी अब बहुत अच्छी है।

सस्नेह,

बापू

कुमारी म्यूरियल लेस्टर
मार्फत : एन० पी० एम० १०५ ईस्ट २२वी स्ट्रीट
न्यूयार्क सिटी।

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल।

१३४. पत्र : महादेव देसाईको

७ दिसम्बर, १९३६

चि० महादेव,

कामके मारे आँखे ऊँची नही कर सका। रामनारायणके बारेमे यह लेख[2] तुम्हे ठीक न लगे तो चर्चा कर जाना; और अगर ठीक लगे तो फौरन रवाना कर देना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५०६) से।

१. एन्ड्रयूजके उल्लेखसे जो ६ दिसम्बरको भी सेगाँव में थे। देखिए "पत्र : अमृतकौरको", पृष्ठ १२४-२५।

२. देखिए "चित्तशुद्धिकी आवश्यकता," पृष्ठ १४७-५०।

१३५. राधाकृष्ण बजाजको

सेगाँव
७ दिसम्बर, १९३६

चि० राधाकिसन,[1]

यह ज्वर मुझे बिलकुल अच्छा नही लगता। न तुमारे बीमार होना चाहीये न अनुसूया को। बुखार होते हुए भी बाथ ले सकते हैं। पाणी गरम नही, ठंडा ही होना चाहीये। मै मिट्टी की पट्टी लगाने का भी कहा हे। यदि कल बुखार न आवे तो मेरे पास आकर समझ जाओ।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१२२) से।

१३६. पत्र: आनन्द तो० हिंगोरानीको

सेगाँव, वर्धा
८ दिसम्बर, १९३६

प्रिय आनन्द,

मै क्रुद्ध नही हूँ, परन्तु मेरा हृदय दर्द तथा व्याकुलतासे भर गया है। तुम्हारे पत्रसे मामले सुलझते नही है। यदि तुम्हे विद्यासे सहानुभूति थी, तो वह चाहे कितनी ही मोहक क्यो न थी उसके प्रति तुम्हारा कर्त्तव्य स्पष्ट था। तुम उसके स्वास्थ्यके सरक्षक थे। गर्भ-निरोधकोके बारेमे मैंने जो-कुछ कहा था, उसका यह अर्थ नही था कि तुम्हारा इनमे विश्वास है। मेरे दु खका कारण तो यह है कि तुम-जैसा उदात्त स्वभाववाला व्यक्ति भी यदि आत्म-सयम नही कर सका तब तो गर्भ-निरोधक भद्र-जनोचित ही लगने लगेगे। मान लो, तरस खाकर मै राजी हो जाता हूँ और परिणाम-स्वरूप कोई दुर्बल स्त्री गर्भवती हो जाती है, तो क्या इससे गर्भ-निरोधकोका पक्ष और मजबूत नही हो जाता? इन दोनो स्थितियोमें केवल मात्राके अलावा और कोई अन्तर नही है, यही अन्तर है कि मेरा पतन तुम्हारे पतनसे कही अधिक अक्षम्य है। भावुक होनेके साथ-साथ तुम्हारा उतना ही व्यावहारिक बनना भी आवश्यक है, अन्यथा तुम्हारी भावुकता निरर्थक होगी तथा आसानीसे ही कमजोरी व दुर्गुण बन सकती है।

१. जमनालाल बजाजका भतीजा।

विद्याको मेरे आशीर्वाद तो है ही। अपनी और विद्याकी विषयासक्तिपर विजय[1] ही ईश्वरके नामका अर्थ समझो।

तुम सबको प्यार।

[पुनश्च]

मुझे विश्वास है कि विद्या ठीक होगी।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्मसे, सौजन्य राष्ट्रीय अभिलेखागार तथा अनन्द तो० हिंगोरानी।

१३७. प्रश्नोत्तर[2]

सेगाँव

[८ दिसम्बर, १९३६][3]

कुछ समय पूर्व हिन्दुस्तानमें यंगमैंस क्रिश्चियन एसोसिएशनकी विश्व-समितिकी बैठक हुई थी। उसके लिए विभिन्न देशोंसे जो लोग आये थे, उनमें से कुछ[4] गांधीजीसे मिलनेके लिए सेगाँव आये। . . . इन मित्रोंके प्रश्नोंमें कुछ आनन्दप्रद नवीनता थी। इन्हें यह मालूम था कि गांधीजी इस गाँवमें गाँववालो और खासकर हरिजनोंकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सुधारनेके लिए आसन जमाकर बैठे हैं। इसलिए सबसे पहले इन मित्रोने यही पूछा कि यह काम आप किस तरह करते है?

उत्तर: उनके साथ रहकर, उनके साथ काम करके और उनकी सेवा करके।

प्रश्न: यह तो बहुत अच्छा है। लेकिन, इससे क्या उनके मनमें अपनी गरीबी दूर करके सुखपूर्वक रहनेकी कोई आकांक्षा उत्पन्न होती है?

उ०: हाँ, होती है।

प्र०: अपने भविष्यके बारेमें क्या उनमें बड़ी आशाएँ हैं?

उ०. यह मै नही जानता। उनके अन्दर आशाएँ स्वाभाविक रूपसे और धीरे-धीरे जगे, यह ज्यादा अच्छा है। इतना तो निश्चित है कि भविष्यमें उनके अच्छे दिन आ रहे है, यह भावना उनके अन्दर है और इस बातका उन्हे विश्वास भी है।

प्र०: हमारे यहाँकी समस्या बिलकुल अलग ढंगकी है। हमारे यहाँ लोग धर्म-शून्य होते जा रहे हैं, राष्ट्रपूजा धर्म बनता जा रहा है, और यह भी सवाल दरपेश

१. बच्चेका नाम विजय रखा गया था, देखिए पृ० १४३।
२. महादेव देसाईके "वीकली लैटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।
३. तारीख महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी से ली गई है।
४. श्री और श्रीमती डेवीस रीड और सैतो नामके एक जापानी।

है कि बढ़ती हुई आबादीको कहाँ भेजा जाये? आप हमारे नौजवानोंको कोई सलाह न देंगे?

उ० : जिनके बारेमे मैंने सिर्फ दूसरोसे ही सुना है, खुद कुछ भी नही जानता, उन्हे सलाह देना तो निरी धृष्टता ही होगी। फिर मेरा स्वभाव ऐसा है कि अनजान लोगोको अनजान लोगो द्वारा मैं कोई सलाह नही भेज सकता।

प्र० : यहाँ हम अनेक देशोंके प्रतिनिधि आये हैं। इनमें से कुछ अलग-अलग टुकड़ियोंमें विभक्त होकर भारतके आम लोगोंके पास जायेंगे, और उनसे अपने-अपने देशकी स्थितिके बारेमें कुछ कहना चाहेंगे। इसलिए हम यह जानना चाहते हैं कि हिन्दुस्तानके लोग खास तौरपर किन बातोंको सुनना पसन्द करेंगे?

उ० . मेरी बात गलत हो सकती है, लेकिन मेरा खयाल है कि आर्थिक या आध्यात्मिक बातोकी बनिस्वत राजनीतिक बातोमे लोग ज्यादा दिलचस्पी लेगे। यह बात चाहे दु.खद हो, लेकिन मैं समझता हूँ कि वास्तविक स्थिति यही है।

प्र० : राजनीतिमें हमारे यहाँ फासिज्म और कम्यूनिज्मके बीच जो संघर्ष चल रहा है, मैं समझता हूँ उसके बारेमें तो उन्होंने सुना ही होगा। क्या वे स्पेनके बारेमें सुनना पसन्द करेंगे?

उ० : जरूर। हमारे अध्यक्ष[1] ऐसे नही है कि हमे स्पेनके बारेमे कुछ सुने बिना रहने दे।

प्र० : अच्छा, ऐसी बात है! अब मैं यह पूछूँगा कि हिन्दुस्तानसे हम क्या सीख सकते हैं। हम अमेरिका, यूरोप, सुदूर पूर्व आदिके अपने-अपने देशोंको लौटनेवाले हैं। उनके लिए हम यहाँ क्या खास चीजें देखें? भारतीय संस्कृतिके अक्षय भण्डारमें से हम अपने लिए कुछ ले जाना चाहें, तो कैसे ले जा सकते हैं? क्या हम भारतके अन्तरंगको देखनेकी आशा कर सकते हैं?

उ० : यह बहुत मुश्किल सवाल है, मगर शायद इतना मुश्किल नही कि इसका जवाब न दिया जा सके। अगर आप भारतके अन्तरगको देखना चाहते हैं तो, मैं आपसे कहूँगा, आप बडे शहरोपर नजर न डाले। यहाँके बड़े शहरोको तो आप अपने यहाँके बड़े शहरोकी बहुत मामूली नकल ही समझिए। इसलिए आपको गाँवोमे —और वह भी शहरो या रेलके आसपासके नही, बल्कि ऐसे गाँवोमे जहाँ उनका बुरा असर न पहुँचने पाया हो—जाना चाहिए। रेलवेसे तीसेक मील दूर ऐसी जगह जाइए जहाँ लोगोको तार और डाकका स्पर्श न हुआ हो, तो आपको लोगोमे एक ऐसी सस्कृति देखनेको मिलेगी जैसी आपने पश्चिममे नही देखी होगी। दुभाषियोकी मारफत आपको लोगोसे बाते करनी पड़ेगी। जो कला अभी नष्ट होनेसे बच गई है, उसके अवशेष आपको वहाँपर मिलेगे। वहाँ आपको एक ऐसी सस्कृति देखनेको मिलेगी जिसे सस्कृतिके रूपमे पहचाननेमे आपको कोई कठिनाई नही होगी, लेकिन

१. स्पेनमें गृह-युद्ध छिड़ गया था। कांग्रेसके तत्कालीन अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू स्पेनी गणतन्त्र पर आई इस विपत्तिके विषयमें चिन्ता व्यक्त कर रहे थे।

जो पश्चिमकी संस्कृतिसे बहुत भिन्न होगी। तब आप यहाँसे ऐसी कुछ चीज ले जा सकेंगे जो ले जाने लायक होगी। लेकिन यह निश्चित है कि इसका आधार इसी बात पर होगा कि आप किस दृष्टिसे सब बातें देखते हैं।

प्र० : लेकिन हमें गाँवोंमें संस्कृतिके जो तत्त्व देखनेको मिलेंगे उनको जरा समझा तो दीजिए।

उ० : आप क्या चाहते हैं, जरा स्पष्ट करके बतायेंगे?

प्र० : एक सज्जनने कहा कि भारतीय ग्रामोंमें हमें प्राचीन संस्कृतिके जो गुण दिखाई देंगे वे पश्चिममें देखनेको नहीं मिलेंगे। यह बात जीवन-दर्शनमें या कलामें या और किस चीजमें देखनेको मिलेगी?

उ० . तो आप यह चाहते हैं कि हमारी संस्कृतिकी खास बात क्या है, यह मैं आपको बताऊँ। यही बात है न?

प्र० : हाँ।

उ० : तो मैं कहूँगा कि वह बात है, उसकी आध्यात्मिकता।

प्र० : इस पर एक प्रश्न और उठता है। हम जिन प्रश्नों पर विचार करनेवाले हैं उनमें एक है, "ईश्वरकी इच्छाके रूपमें युवकोंके सामने उपस्थित चुनौती।" एक ही धर्मके माननेवाले भी ईश्वरकी इच्छाके दर्शन भिन्न-भिन्न रूपोंमें करते हैं। क्या आप बता सकते हैं कि यहाँके लोगोंको यह भान है या नहीं कि वे ईश्वरकी इच्छा पूरी करनेके लिए ही काम कर रहे हैं?

उ० : उन्हें ऐसा भान नहीं है, और यह अच्छा ही है, क्योंकि यह चीज उनके जीवनमें इतने सहज ढंगसे समाई हुई है कि वे इसकी ओरसे बिलकुल बेखबर हैं। हम साँस लेते हैं या आँखको काममें ला रहे हैं, इसका कोई भान न होते हुए भी प्रतिक्षण इन क्रियाओंको करते ही रहते हैं। स्वस्थ आदमी अपने स्वास्थ्यके बारेमें विचार या बात नहीं करता। इसी प्रकार, इन लोगोंकी आध्यात्मिक वृत्ति अज्ञात रूपसे इनके हृदयमें समाई हुई है। यह पूर्व परम्परासे विरासतमें मिली हुई संस्कृति है। मसलन, यहाँके संस्कारवान् कुटुम्बमें कोई यह नहीं जानता कि शराब क्या चीज है। मद्य-त्यागी हो जाना क्या है, यह वे नहीं जानते, क्योंकि वे तो जीवन-भर मद्य-त्यागी ही रहे हैं। इसलिए उनके शब्द-कोषमें मद्य-त्याग जैसा कोई शब्द ही नहीं है।

प्र० : जापान और हिन्दुस्तान तो बहुत-सी बातोंमें समान हैं।[1]

उ० . हाँ, पूरब पूरब ही है, लेकिन अब नहीं। जापान अमेरिका बनता जा रहा है, सब बातोंमें वह उसीकी नकल कर रहा है। सच तो यह है कि हिन्दुस्तानको चूसनेमें जापानने अमेरिका और इंग्लैंडको काफी पीछे छोड़ दिया है।

१. यह बात सैताने कही थी।

जापान हर साल हमारे यहाँ कपड़ेके कितने थान भेजता है, यह आपको मालूम है?

प्र० : हम तो सस्ता माल देते हैं। क्या उससे कोई हानि होती है?

उ० : मैं यह नही कहता कि वह सस्ता है, इसलिए हानिकर है। लेकिन वह हमारी दरिद्रताको बढाता है।

प्र० : तो क्या सस्ता माल सुलभ कराना अच्छा नहीं है?

उ० : नही। हमारे हाथ-पैरोका उपयोग बन्द कराकर हमे बेकार बना देना आपका धर्म नही है।

प्र० : अच्छा! तो मतलब यह कि आप इस यंत्रयुगके खिलाफ है।

उ० : यह कहना तो मेरे विचारोको विकृत रूपमे रखना है। खुद यन्त्रका मै विरोधी नही हूँ, लेकिन जब यन्त्र हमारा मालिक बन जाये तब मै उसका पूरा विरोध करता हूँ। जापान, अमेरिका और इग्लैड आज हिन्दुस्तानको चूस रहे है। आप लोग हिन्दुस्तान और जापानके बीच व्यापारिक सन्धिकी बात करते है, लेकिन यह शब्द-प्रयोग ही गलत है। यह तो इग्लैड और जापानकी सन्धि है। जापानको इस प्रतिस्पर्धासे अलग हो जाना चाहिए। इस शोषणसे दोनोको ही नुकसान है। जो दूसरेको गुलाम बनाता है, उसका अपना अध:पतन भी होता ही है। अभी कुछ वर्ष पहले तक हम अपना कपडा खुद ही बना लेते थे। लेकिन अब जापान और इंग्लैडसे कपडा मँगाना पडता है। यह स्थिति अस्वाभाविक है। हम तो अपने ही लिए नही, बल्कि सारे ससारके लिए कपडा बना सकते है। प्राकृतिक साधन-सामग्रीकी हमारे यहाँ कोई कमी नही है। इतने पर भी हम अपनी रुई विदेश भेजकर वहाँसे तैयार कपड़ा मँगाये, इसमे कही कोई भयंकर गलती छिपी हुई है। हमारे देशसे हर साल नौ करोड रुपयेका कच्चा चमड़ा विदेश जाता है और वहाँसे उसका सामान बनकर यहाँ आता है। ऐसा क्यो होना चाहिए? इसके लिए कारण तो कोई है ही नही।

प्र० : आप हिन्दुस्तानका उद्योगीकरण नहीं करना चाहते?

उ० : करना तो जरूर चाहूँगा, लेकिन अपने ढगपर। ग्रामीण समुदायोको पुनरुज्जीवित करना चाहिए। हिन्दुस्तानके गाँव अपने कस्बो और शहरोकी जरूरतका सारा माल तैयार करके देते थे। लेकिन जब हमारे शहर विदेशी मालके बाजार हो गये और विदेशोसे सस्ती व भडकीली चीजे लाकर गाँवोमे उनकी भरमार की जाने लगी और दूसरी तरह गाँवोका धन चूसा जाने लगा, तभीसे हिन्दुस्तान धनहीन और दरिद्र हो गया।

प्र० : तो आप प्राकृतिक अर्थ-व्यवस्थापर ही लौटना चाहते है?

उ० हाँ। नही तो मुझे वापस शहरमे ही चले जाना चाहिए। बड़े व्यापार या उद्योग-धन्धोका सचालन करनेकी मुझमे पूरी शक्ति है, लेकिन इस आकाक्षाको मैने जान-बूझकर छोड दिया है। और उसे जो छोडा है वह त्यागकी भावनासे नही, बल्कि इस कारण कि मेरे हृदयको वह स्वीकार ही नही था। कारण, दिन-प्रति-दिन

होनेवाली राष्ट्रकी लूटमे मुझसे हाथ नही बँटाया जा सकता था। गाँवोमे उद्योगी-करण मैं भी कर रहा हूँ, लेकिन भिन्न प्रकारसे। मैं आपको गाँवमे बनी हुई एक चीज दिखाऊँगा। मुझे विश्वास है कि वह अमेरिकामे बनी टॉफीका मुकाबला मजेसे कर सकती है। देखिए, यह खजूरका गुड है — बताइए, आपको यह अमेरिकी टॉफीसे ज्यादा पसन्द है या नही?

तब सब मेहमानोंको थोड़ा-थोड़ा ताड़-गुड़ दिया गया, और सबने उसे पसन्द किया। अमेरिकी महिलाको तो वह बहुत ही अच्छा लगा। इतनेमें सामनेकी मिट्टीकी दीवारके आलेके ऊपर चित्रित ताड़के वृक्षो पर उसकी नजर पड़ी। उसकी कला-वृत्तिको वह चित्र बहुत रुचा, और वह उसकी प्रशंसा करने लगी।

ऐसे मामलोमे जापान हमे बहुत-कुछ सिखा सकता है। आपकी कला और दस्तकारीको तो ससारमे कोई नही पहुँच पाता।

प्र० : लेकिन मुझे तो यह मिट्टीका फर्श और मिट्टीकी दीवारें बहुत अच्छी लगती है।

उ० : हाँ! इनसे सर्दीमें गरमाहट और गर्मीमे ठडक मिलती है।

प्र० : यही बात तो जर्मन लोग अपने यहाँकी बियरके बारेमें कहते हैं।

उ०: तब तो धरती माता हमारी बियर हुई! बढ़िया बात है न?

लेकिन अमेरिकी भाई इस तरह विनोदमें वक्त खो देना नहीं चाहते थे। उन्होंने कहा, किसी खास देशके ही नही, बल्कि समस्त संसारके युवक आज एक नई दुनिया बनानेके लिए प्रयत्न कर रहे हैं, क्या उन्हें आप कोई सन्देश नहीं देंगे...

उ० : उन्हे मेरा यही सन्देश है कि पचास वर्षतक यथाशक्ति अहिसाका अखण्ड पालन करनेके बाद उसपर मेरी श्रद्धा घटनेके बजाय और बढी है। यदि उनके लिए मेरी श्रद्धाका कोई मूल्य है तो वे हिम्मत न हारे, निराश न हो, बल्कि मेरी श्रद्धासे प्रोत्साहन पाकर श्रद्धावान् बने। मुझमे से तो अगर यह श्रद्धा निकल जाये तो मैं जिन्दा ही दफन हो जाऊँ।

प्र० : आपको ईसाका गिरि-प्रवचन पसन्द है न?

उ० : जी हाँ, लेकिन मेरे इस कहने-भरका कि वह मुझे अच्छा लगता है, ईसाई मित्रोने दुरुपयोग किया है। मगर चाहे जो हो, आप तो यह बताइये कि आप इस बारेमे क्या जानना चाहते है?

प्र० : उसके जिस वचनने आपको अन्य किसी वचनकी बनिस्बत ज्यादा संतोष प्रदान किया हो, उसे आप बतायें, यही मेरी प्रार्थना है।

उ० : यह कहना मुश्किल है। लेकिन मुझे ईसाई बनानेके लिए आनेवालोंके सामने मैंने अकसर जो वचन उद्धृत किया, वही आपको बताता हूँ — "एक

बार प्रभुमय जीवन और उसमे निहित आत्म-शुद्धिकी साधना करो तो और शेष तुम्हे सब अपने-आप प्राप्त हो जायेगा।" टॉल्स्टॉयकी एक सुन्दर कहानीमे मैंने इस तत्त्व पर विशेष जोर पाया। वह कहानी और उसमे निहित उनका आशय मेरे मनमे भली भाँति जम गया।

इसके बाद त्रावणकोरके आधुनिक चमत्कारकी बात चली। गांधीजीने कहा कि इस चमत्कारका सम्पूर्ण श्रेय एक महान् स्त्रीके प्रभावको है। यह सुनकर अमेरिकी महिलाने अमेरिकी स्त्रियोंके बारेमें यह आखिरी सवाल पूछा:

प्र०: हमारे देशके जो सर्वोत्तम गुण हैं, वे हमारी स्त्रियो और लड़कियोमें दिखाई नहीं पड़ते। मैं सोचती हूँ कि क्या हमारे यहाँ स्त्री-शिक्षाका पाठ्यक्रम इस प्रकार नहीं बदला जा सकता जिससे स्त्री हमारी सभ्यताके अच्छे-से-अच्छे अंशोकी रक्षक बनकर पुरुषकी उपयुक्त सहकर्मिणी बन सके? क्या आप हमारी लड़कियोके लिए कुछ विचार प्रकट करेंगे?

उ०: स्त्रियोको उपयुक्त शिक्षा मिलनी चाहिए, यह मै मानता हूँ। लेकिन इसके साथ ही यह भी मानता हूँ कि पुरुषकी नकल करके या उससे स्पर्धा करके स्त्री दुनियाको अपनी कोई देन नही दे सकेगी। वह पुरुषके साथ होड तो कर सकती है, लेकिन पुरुषकी नकल करनेसे वह उस ऊँचाईतक नही पहुँच पायेगी जहाँ पहुँचने की उसमे अपनी शक्ति है। स्त्रीको तो पुरुषका पूरक बनना चाहिए, जो काम पुरुष न कर सके, वह उसे करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २७-२-१९३७

१३८. पत्र: कस्तूरभाई लालभाईको

सेगाँव, वर्धा
१०/११ दिसम्बर, १९३६

भाई कस्तूरभाई,

इस पत्रके साथ अपने पच-फैसले[1] का मसविदा भेज रहा हूँ। मै अब भी कागज-पत्र पढ रहा हूँ। और जितना पढता हूँ, मुझे लगता है कि या तो मिल-मालिकोके पास कटौती करनेके लिए पर्याप्त कारण नही है या है, तो वे उन्हे सामने नही रख पाये। यदि आपको लगता है कि जो कागज-पत्र हमारे पास आये हैं, उनके आधारपर उनका पक्ष सिद्ध हो जाता है तो आपका कर्त्तव्य है कि मुझे समझायें। आपका निर्णय तो मुझे मिलेगा ही। उसमे आपके तर्क होंगे। उसे पढकर मेरी समझमे आया, तो मैं अवश्य अपना निर्णय बदल दूंगा। इतना मैं मान लेता हूँ कि जिस बातका मुझे ज्ञान नही है और आपको है, उसका उपयोग आप अपने निर्णयमे

१ देखिए "मजदूर-विवादका पच-फैसला", २६-१२-१९३६।

बिलकुल नही करेंगे, क्योकि यदि उसका उपयोग किया तो वह निर्णय मै समझ ही नही पाऊँगा। मजूर-महाजनसे तो बहुतेरी बाते सुनी है, किन्तु जबतक वे हमारे सामनेके कागजोमें न लिखी हो, मै उनका उपयोग कैसे कर सकता हूँ? मै यह चेतावनीके रूपमें नही लिख रहा हूँ, बल्कि आपका दृष्टिकोण समझनेके लिए लिख रहा हूँ, क्योकि यदि हम दोनो एक ही निर्णयपर न पहुँच सके तो मुझे दुःख होगा। मै आपका दृष्टिकोण पूर्णतया समझना चाहता हूँ, किन्तु वह हमारे पास आये प्रमाणों पर आधारित होना चाहिए। मै तो यही नही समझ पाता कि जबतक दिल्लीके समझौते[1] पर अमल करना असम्भव नही सिद्ध हो जाता, तबतक कटौतीकी माँग कैसे की जा सकती है। मेरे लिए तो दरवाजा ही बन्द है। लेकिन निर्णयका मेरा मसविदा पढ़कर आप मेरी कठिनाई ज्यादा अच्छी तरह समझेंगे।

आ सके तो आइए। तार कर सकें, तो तार कीजिए।

सुनता हूँ कि आप अहमदाबाद गये हुए है, इसलिए यह पत्र दो पतोपर भेज रहा हूँ। मेरे मसविदेकी एक प्रति वापस भेज दीजिए। ऐसा कुछ कीजिए कि हम १५ तारीखकी अवधिका निर्वाह कर सकें।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

[पुनश्च:]

११ दिसम्बर, १९३६

यह पत्र मैंने कल लिखा था; लेकिन सारी कोशिशोके बावजूद यह गाड़ी से नही जा पाया। इसलिए पंचोके बारेमें लिखनेके विचारसे मैंने इसे खोल लिया। पहले वह रह गया था। श्री मडगाँवकरके अतिरिक्त दूसरे सुझाये गये नाम श्री मोतीलाल सीतलवाड और श्री पाटकरके हैं। शंकरलालने मुझसे कहा कि आप श्री गोविन्दवल्लभ पन्तका अनुमोदन करते है। इनमें से कोई भी चुन लीजिए।

मो० क० गांधी

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४१९६) से।

१. जो १३-१-१९३५ को हुआ था, और जिसमें मजूरीमें ६$\frac{1}{4}$ प्रतिशत की कटौती नियत की गई थी।

१३९. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
११ दिसम्वर, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

अभी-अभी वस थोडा-सा समय मिला है इस प्रेम-पत्रके लिए। अहमदावाद जाते हुए तुम्हारे वर्धा न रुकनेकी सम्भावना मेरी समझमे नही आती। अगर तुम गम्मीके साथ अधिक-से-अधिक समय रहना चाहती हो तो निश्चय ही वर्धाको छोड सकती हो। दिल्लीसे अहमदाबाद जानेके लिए सबसे कम समयका रास्ता छोटी लाइनका ही है। वर्धासे अहमदाबादतक तुम्हारे लिए बम्बईका रास्ता अधिक सुविधापूर्ण है। ताप्ती घाटीवाला रास्ता सस्ता रहेगा और अच्छा भी।

मुझे खुशी हुई कि तुम दिल्ली नही जा रही हो। बेमतलबकी भागदौडसे कोई फायदा नही। वी० एस० को ज्यादा नही चढाना चाहिए।

वा की कुटिया लगभग तैयार हो चुकी है। उसमे कुछ शहरीपन-सा तो है, वैसे तुमको पसन्द आयेगी। उसपर मेरी कुटियासे ज्यादा खर्च आया है। पक्की वात है कि उसमे कम-से-कम सौ रुपयेकी बचत तो की ही जा सकती थी। लेकिन मैं उसे तैयार करनेके कामकी निगरानी नही कर सका, क्योकि उसके लिए समय देना पडता जो मैं दे नही सकता था। लेकिन ये सव बाते मिलनेपर ही।

सस्नेह,

अत्याचारी

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७५९)से, सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६९१५ से भी।

१४०. पत्र: महादेव देसाईको

११ दिसम्बर, १९३६

चि० महादेव,

उस माँगी हुई पुस्तकका क्या हुआ? फाउलर के लेख वगैरह आ गये क्या?

फैजपुर हम कौन-कौन जायेंगे? अभीतक मक्खन नियमपूर्वक नही आता। मै सन्तरोके तो ढेरमें दब गया हूँ। किसने क्या प्रबन्ध किया है? हर तीसरे दिन ५० की डाली आती है? यह बन्द होना चाहिए। इनका भाव क्या है?

मॉट के सुधारोंको जरा और ध्यानसे दोहरा लेना चाहिए। बावलोका सब ठीक चल रहा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५०७)से।

१४१. पत्र: द० बा० कालेलकरको

११ दिसम्बर, १९३६

चि० काका,

'पड़ी टेव ते तो टळे केम टाळी'।[2] तुमसे कितनी बार कहा है कि कोई मेरे शब्द कहकर तुमसे कुछ जा कहे, तो न उनपर विश्वास करना, न अमल। दिनकर बेचारा दीन; न उसमे विनोद करनेकी शक्ति है, न समझनेकी। अब तो मुझे यह भी कहना पड़ेगा कि तुममें भी इस शक्तिका अभाव है। किन्तु क्या तुम्हारी कल्पनाशक्ति भी उपवासके कारण मन्द पड़ गई है? अनुमान लगाकर क्यो नही कहा कि "बापूने मजाक किया होगा, मै तो जरूर जाऊँगा" और तुम्हे तो पाँव पड़ने आना था; मै न बोलता तो भी क्या, तिरस्कार करता तो भी क्या? पाँव पड़ना तो कर्त्तव्य था न? कर्त्तव्यका पालन करनेमे सकोच कैसा? तुम्हे मुझसे जो बाते करनी थी, सो भी कर सकते थे। लिखते हो, तो मुझे पढना तो पडता ही है न? अब तो तुम्हे ब्याज समेत कर्ज चुकाने आना पडेगा। अथवा तुम्हारी यह

१. देखिए, पृ० १२२।

२. आदत जो पड़ जाये भला वह दूर कहाँ होती है।

इच्छा तो नही है कि दूसरोके साथ बाते करते-करते मै भूलसे भी तुम्हारा नाम न लूं?

अब तो तुमने वन[1] मे प्रवेश किया, यानी तुम्हारे मनकी बात हो गई। वृक्षोके साथ बात कर सकोगे। गुजराती साहित्य परिषद्मे दिया गया तुम्हारा भाषण आरम्भसे अन्ततक पढ गया। अच्छा लगा। बाकी बाते तो मिलनेपर ही होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७९६८) से।

१४२. पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको

११ दिसम्बर, १९३६

भाई घनश्यामदास,

तुमारे दो खत मेरे सामने पडे है। परमेश्वरी के बारे मे मै समझा हू। मैंने उसकी नकल भी भेज दी है। और लिखा है कि दिल्ली फार्म छोड देना चाहिये। मै भी समझता हू कि रुपेये का प्रश्न बडा नही है। वह मेरे लिये मर्यादा और विवेक का है। तुमारे विश्वास और तुमारी उदारता का मै दुरुपयोग न करू न किसीको करने दू। देखे क्या होता है।

त्रावणकोर के बारे मे तुमारी बात समझता हूं। तथापि मैंने जो किया है उससे अधिक करना मेरे लिये अनावश्यक था। मेरे मनपर जो असर होता जाता है उसे मै प्रकट कर रहा हू। अब जो हो रहा है उस बारे मे मैंने 'हरिजन' मे लिखा[2] है सो पढेगे।

तुमारी तवीयत कुछ विगडी है ऐसा ठक्कर बापा लिखते हैं। क्या हुआ है? क्यो? खजूर नियमसर आ रहा है। नमदा मिल गया है। खुब गरम है।

बापुके आशीर्वाद

सी० डब्ल्यू० ८०२६ से, सौजन्य: घनश्यामदास बिडला

१. गांधीजी काकासाहबके ५१ वाँ वर्ष पूरा करनेकी ओर इशारा कर रहे थे, जो "वानप्रस्थ-आश्रम" में प्रवेशका द्योतक माना जाता है।

२. देखिए "ईश्वर महान् है", पृ० १४१-४३।

१४३. पत्र : व्रजकृष्ण चाँदीवालाको

सेगाँव, वर्धा
११ दिसम्बर, १९३६

चि० व्रजकिसन,

माताजी अब अच्छी होगी। कांग्रेस मे क्यो आना है? मै शायद २०को वहां पहोचुगा। इस वखत पता नही है जगह का क्या प्रबध है, कैसे जाते है सो भी मै नही जानता। मेरा इरादा तो स्टेशन से पैदल जाने का है। अगर मेरे पास जगह होगी और तुमारे आना ही है। तो अवश्य ठहरेगा आना। अनावश्यक हो तो वही ठहरो और कुछ सेवा करो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २४४२)से।

१४४. भोजनमें अनाजोंका स्थान

बडौदाके एलम्बिक कैमिकल वर्क्सके मुख्य रसायनविद् तथा तकनीकी अधीक्षक श्री ईश्वरभाई अमीनने गुजरातमे आम तौरपर इस्तेमाल किये जानेवाले अनाजो तथा दालोमे पाये जानेवाले तत्त्वोका रासायनिक विश्लेषण तैयार किया है और उसके सम्बन्धमे एक टिप्पणी भी दी है। मैं उसके खास-खास अश नीचे दे रहा हूँ।[1] मैंने उन अंशोको छोड दिया है जिनमे विस्तृत विश्लेषण है, क्योकि बहुत तकनीकी होनेके कारण वे पाठकोकी समझसे बाहर है। टिप्पणीमे पाठकोके मार्गदर्शन के लिए यथेष्ट जानकारी दी गई है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १२-१२-१९३६

१. यहाँ उद्धृत नही किये जा रहे है।

१४५. ईश्वर महान् है।

हरिजन सेवक सघ, त्रिवेन्द्रमकी ओरसे गत ३ तारीखको यह तार[1] पूनामें मिला था:

> घोषणापर अत्यन्त सफलताके साथ अमल हो रहा है। कुछ लोगोंको इस विषयमें शंकाएँ थीं, इससे वे सब झूठी साबित हो गईं। इलवा तथा हरिजनोंके लिए मन्दिरका ऐसा कोई हिस्सा बन्द नहीं है जो अन्य भक्तोंके लिए खुला हो। मन्दिरके गर्भगृहको छोड़कर, जिसमें केवल पुजारी ही जा सकता है, और सब जगहें जैसे मण्डप, आरक्षित चबूतरे, गलियारे वगैरह नये प्रवेश-पाये भक्तों द्वारा भी उसी तरह काममें लाये जाते हैं जैसे कि अन्य सवर्ण भक्तों द्वारा। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इन मन्दिरोंके सरोवरोंके पवित्र जलको भी इलवा तथा हरिजन अब जब चाहें प्रयुक्त कर सकते हैं। पहले हरिजनोंके नजदीक आते ही जो एक प्रकारकी सनसनी-सी छा जाती थी, वह अब जरा भी नहीं रही। अन्य जातिके भक्त जिस समय पूजा कर रहे हों, उस समय अगर हरिजन-भक्त भी पहुँच जायें तो उनमें कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं दिखाई देती। यह बतानेकी भी कोई जरूरत नहीं कि हरिजनोंके लिए पूजा-दर्शन आदिका कोई खास समय या अन्य कोई मर्यादा नियत नहीं की गई है। यह भी एक आशाका चिह्न है कि पुजारी और मन्दिरोंके अन्य अधिकारी सच्चे और खुले दिलसे सहयोग दे रहे हैं। उनपर कोई मानसिक भार-तक पड़ा दिखाई नहीं देता।. . .
>
> नम्बूद्रियों सहित कट्टर सनातनियोंने व्यक्तिगत या सामूहिक रूपसे भी कोई विरोध प्रकट नहीं किया है, बल्कि उनमें से अधिकांशने घोषणाके साथ अपनी पूरी सहमति जाहिर की है। उनमें नाराजीके कोई चिह्न तो हमें नजर आते ही नहीं। उनके व्यवहारसे तो ऐसा लगता है, मानों कोई असाधारण बात नहीं हुई है। पहलेकी कट्टरताको देखते हुए यह एक आश्चर्यजनक बात मालूम होती है। उच्चादर्शपूर्ण घोषणा पर पूरी तरह अमल हो रहा है।
>
> चेंगनचेरी के० परमेश्वरन् पिल्लै, अध्यक्ष, केरल हरिजन सेवक संघ
> एन० गोविन्दन, अध्यक्ष, त्रिवेन्द्रम जिला हरिजन सेवक संघ
> जी० रामचन्द्रन्, मन्त्री, केरल हरिजन सेवक संघ

१. यहाँ कुछ ही अंश दिये जा रहे हैं।

यह तार इतनी देरसे पहुँचा था कि पिछले अकमें प्रकाशित नही किया जा सका। सम्पादन एक जगह और छपाई दूसरी जगह होनेसे ऐसी ही असुविधा होती है।

जब मन्दिर-प्रवेशकी घोषणा की गई थी, तब मुझे कुछ शकाएँ थी, जिन्हे मै दबा न सका और न वैसा चाहता ही था। यह कोई राजनीतिक घोषणा तो है नही, जिसमे कई पोले हो और कई बाते जान-बूझकर गोलमोल रखी गई हो? अगर यह एक ऐसी चीज है जो जबरदस्ती लादी गई है, तो सवर्ण हिन्दुओपर इसका क्या असर होगा? हरिजनोपर इसका क्या प्रभाव होगा? क्या उनमे और उदासीनता नही छा जायेगी?

मित्रोके उत्साह और खुशीमे मै शरीक नही हुआ, इसके लिए मुझे उन्होने कसूरवार ठहराया। पर मै करता भी क्या[1]? यह नही कि श्रीमती महारानी, श्रीमान् महाराजा या उनके दीवान सर सी० पी० रामस्वामीकी इच्छाकी सचाईमे मुझे कोई शक था। नही, वास्तवमे बरसो पहले जब मै त्रावणकोर गया था, और मुझे महारानी साहिबा और उनके आशास्वरूप पुत्र — वर्तमान महाराजसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, तभी महारानी साहिबाने इस सुधारमें अपनी श्रद्धा प्रकट की थी। मैंने कुमारसे — महाराजा तब कुमार ही थे — मजाक करते हुए यह भी पूछा था कि "क्या आप गद्दीनशीन होनेपर अस्पृश्यताको दूर करेगे और अछूतोके लिए मन्दिरो के दरवाजे खुलवायेंगे?" उन्होने उत्साहपूर्वक जवाब दिया था, "जरूर।" क्या मै सन् १९१५ या १९१६से ही नही जानता कि सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर भी खुद एक सुधारक है? पर मुझे जो आशकाएँ थी उनके गहरे कारण थे, जिन्हे मैंने प्रकट करनेकी कोशिश की थी। हो सकता है कि उसका कारण यह हो कि जनतापर तब मेरी समुचित श्रद्धा न रही हो। हाँ, हरिजन सेवक सघकी छायामें काम करने-वाले सुधारकोकी पवित्रता और उनके प्रयत्नोकी पूर्णतामे तो मुझे शक था ही।

पर सबसे हालकी गतिविधियोके विवरणने, जो बहुत विस्तारके साथ उपर्युक्त तारमे दिया गया है, मेरे तमाम सन्देहोको दूर कर दिया है। पिछले हफ्ते जो नियम[2] प्रकाशित किये गये थे, उनका सारा डर अब मिट गया है। वास्तविकताने तमाम अपेक्षाओको पीछे छोड दिया है। हरिजनोका उत्साह, उच्चतम जातियोको जहाँतक जानेका हक है हरिजनोको वहाँतक जानेकी इजाजत मिल जाना और पुजारियोका स्वेच्छापूर्वक ही नही बल्कि हार्दिक सहयोग मिलना—ये सब यही बताते है कि यह महान् और व्यापक सुधार बिलकुल सहज और सच्चा है। मनुष्यके लिए जो बात असम्भव थी, ईश्वरने उसीको सम्भव कर दिया है। राजाज्ञाएँ लाखो आदमियोके दिलोको नही बदल सकती। इसलिए यह हिन्दुओमे सामूहिक हृदय-परिवर्तनका एक सुन्दर नमूना है। सत्य यह इसलिए है कि यह स्वयस्फूर्त है।

१. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", पृ० १०० ।
२. देखिए परिशिष्ट।

कुछ ही बरसोकी बात है, सवर्ण हिन्दुओने धमकी दी थी कि वाइकोम मन्दिरको जानेवाले कुछ रास्तोपर अगर हरिजन पैर भी रखेगे तो हिंसा-काण्ड हो जायेगा। आज वाइकोमके उसी मन्दिरमे हरिजनोको भी प्रवेश और पूजाके वही सब अधिकार मिल गये जो सवर्णोको प्राप्त हैं। और यह सब किसी भी तरफसे बगैर किसी प्रकारके दबावके हुआ है। मुझे तब 'शकर-स्मृति' का हवाला दिया गया था। आज 'महाराज-स्मृति' ने उसका स्थान ले लिया है, जिसकी प्रामाणिकता सवर्ण हिन्दुओके असदिग्ध समर्थनने सिद्ध कर दी है। हरिजनोने भी दूसरी तरहसे इसका असदिग्ध समर्थन करके यही सिद्ध कर दिया है। सचमुच ईश्वरकी महिमा अगाध है — उसकी झाँकी देखनेके लिए सिर्फ अपनी आँखोके सामने से अज्ञानके पटल हटानेकी देरी है। महाराजा, उनकी सहृदय माता और उनके महान् दीवान और त्रावणकोरके हिन्दुओको भी मै बधाई देता हूँ। हम आशा करे कि जहाँतक ऊँच-नीचके भेदभावका सम्बन्ध है, त्रावणकोरसे तमाम जाति-भेद दूर हो गया है। अगर हम इसी प्रकारका उत्साह सब जगह दिखाये तो सारे हिन्दुस्तानमे त्रावणकोरकी-सी भावना फैलनेमे देर नही लगेगी।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १२-१२-१९३६

१४६. पत्र[1]: आनन्द तो० हिंगोरानीको

सेगाँव, वर्धा
१२ दिसम्बर, १९३६

प्रिय आनन्द,

विजयकी मृत्युसे मुझे दुःख हुआ भी और नही भी। वह तो दड देने और अपने ऋणकी अदायगी कराने आया था। उसका कार्य समाप्त हुआ और वह बेचारा शिशु चलता बना। आओ हम दो आँसू बहा ले। उस कार्यके लिए मेरा आशीर्वाद प्राप्य नही था। तुम्हारे तथा विद्याको मेरे आशीर्वाद पहले भी प्राप्त थे और हमेशा प्राप्य रहेगे। यदि इसका कोई अर्थ है तो इसे गलतीकी पुनरावृत्तिके विरुद्ध ढालका काम करने दो। तुम्हारे मामलेने मुझे अस्त-व्यस्त कर दिया है। तुम-दोनोने मुझे ऐसा बना दिया है कि मुझे तुम्हीपर बहुत अधिक आश्रित रहना पडता है।

मै अभी भी निराश नही हुआ हूँ।

बापू

१. देखिए "पत्र: आनन्द तो० हिंगोरानीको," पृ० ८८-८९।

[पुनश्च:]

आशा है, विद्या ज्वरमुक्त हो गई होगी।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्मसे; सौजन्य. राष्ट्रीय अभिलेखागार और आनन्द तो० हिंगोरानी।

१४७. पत्र : अमतुस्सलामको

१२ दिसम्बर, १९३६

चि० अमतुल सलाम,

तेरा खत लौटा रहा हूँ। तू पगली है, इसमे कोई शक नही। तू जितनी पगली है उतनी ही वहमी भी है। कान्तिके बारेमें मैंने जो खत लिखा था उसका तूने कितना उलटा अर्थ कर डाला और फिर परेशान हुई। तेरी मदद करना भी मुश्किल हो जाता है। तुझे न तो कोई हिन्दू दुतकारता है, न मुसलमान। दोनो तुझे चाहते हैं। तेरे भाई तुझे चाहते हैं। ठक्कर बापा और मलकानीको देख, नारणदास, प्रभावती, बा, मीरा, महादेव आदिको देख। कान्तिकी तो तू माँ बन गई है। तेरे बिना कान्ति जी नही सकता था। अब वह मोह उसे नही रहा, लेकिन कान्ति अब भी तुझे पूजता तो है ही। डॉ० अनसारीने तेरे लिए क्या-क्या नही किया? खानसाहब तो तेरा नाम रटते रहते हैं। वे तो आशा कर रहे थे कि तू रमजान उनके साथ करेगी। तेरी भाभी तुझे पूजती हैं। तेरे भाई तुझे प्यार करते हैं। इससे ज्यादा तू क्या चाहती है? तेरे-जैसा नसीब कम लोगोका होता है। खुर्शेदबहन-जैसी औरत तेरी खुशामद करती हैं। मैडम वाडिया तेरी मदद करनेको उत्सुक हैं। यदि तू सजग होकर देखे तो पता चलेगा कि तू पगली है, इसीलिए दुःखी होती है। मै यहाँसे १९ को रवाना होनेवाला हूँ। उससे पहले यदि तू मुझसे मिलना चाहे तो मिल जाना। लेकिन मिलकर तू क्या करेगी? यदि तुझे यहाँ इलाज करवाना हो तो मैं जरूर करा दूंगा। लेकिन फिर तुझे यहाँसे वहाँ भागना नही होगा। मैं जैसे कहूँ वैसे रहना, खाना, और जो कहूँ सो करना।

बापूकी दुआ

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३६७) से।

१४८. पत्र : नारणदास गांधीको

१२ दिसम्बर, १९३६

चि० नारणदास,

अब मुझे थोडी फुरसत मिली है, इसलिए मै यह लिख रहा हूँ।

तुमने यह प्रश्न उठाया है कि हरिजन-आश्रमके बुनकर-निवासमे कौन रह सकता है। तुम्हारा सुझाव मुझे अच्छा लगा है। तुम इस सम्बन्धमे नरहरिके साथ विचार-विमर्श कर लेना। यदि कोई मतभेद हो तो मुझे सूचित करना। ऐसा करनेसे मेरा समय बच जायेगा।

वजुभाई[1] आकर उलटे पाँवो लौट गया। मुझे वह सन्तुष्ट नही कर सका और मै उसे सन्तुष्ट नही कर सका। मैने उससे कहा कि तुम जो-कुछ करते हो वह मुझसे सलाह-मशविरा करके और मेरी अनुमतिसे करते हो और इसलिए यदि उसका तुमसे मतभेद हो तो उसे मुझसे बातचीत करनी चाहिए। यह जान लेनेके बाद तो उसके लिए मुझसे तर्क-वितर्क करना ही रह जाता था। फिर पता चला कि उसके और मेरे विचारोमे बहुत अन्तर है। इसलिए आखिर वह लौट गया। उसे वापस लौटनेके लिए किराया दे दिया। उसने बताया था कि न्याय-प्राप्तिके लिए शायद वह सत्याग्रह करेगा, अर्थात् उपवास करेगा। मैने उसे [इस प्रसगमे] उपवासके अनौचित्य और अनीतिके बारेमे समझाया तो है। यदि वह कुछ करे या कहे तो मुझे सूचित करना। मुझे आशा तो है कि अब वह शान्त रहेगा और कोई अन्य काम खोज लेगा।

केशूके बारेमे मै समझ गया। तुम्हारी रायके प्रति मेरे मनमे हमेशा आदरकी भावना रही है, इसलिए इस मामलेपर मुझे पुन विचार करना पडेगा। लक्ष्मीदासके पत्र मै पढ गया हूँ, किन्तु मुझपर वैसा असर नही पडा जैसा तुमपर पडा है। इसका कारण यह हो सकता है कि मै पत्र ध्यानसे नही पढ सका हूँ। अब मै ध्यानसे पढूगा। यदि तुम ऐसा-कुछ लिख सको जिससे कुछ अधिक प्रकाश पड़े तो लिखना।

बापूके आशीर्वाद

१. वजुभाई शुक्ल।

[पुनश्च:]

लगता है, कुमी और वली बहुत दुःख भोग रही हैं। उन्हें देखते रहना।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५१३ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी।

१४९. पत्र: प्रेमाबहन कंटकको

१२ दिसम्बर, १९३६

चि० प्रेमा,

इतना लिखनेकी फुरसत न होते हुए भी यह लिख रहा हूँ। भले ही पेड़के नीचे पड़े रहना पड़े तो भी सासवड़ नहीं छूटना चाहिए।[1] किन्तु ऐसा करनेकी बात तुझे मनमें भी नहीं लानी चाहिए। यदि तू मनमें भी क्रोध रखेगी तो पेड़के नीचे रहनेका पुण्य या फल नहीं मिलेगा।

कांग्रेस-अधिवेशनमें उतनी ही सजावट की जानी चाहिए जितनी हम देहातके अनुरूप कर सकें। 'कर सकें' शब्दको दोनों अर्थोंमें लेना। अर्थात्, उस सजावटमें कला हो; और उसपर एक पाई भी खर्च न की जाये।

२० तारीखको मेरा वहाँ जाना निश्चित हुआ है। हम कितने लोग आयेंगे, यह तो वहाँसे आनेवाले उत्तरपर निर्भर करेगा।

लगता है, तू विनोबाका काफी 'मनोरंजन' कर रही है।

फिर बीमार मत पड़ना। अपनी सीमामें रहकर काम करनेसे वह अधिक अच्छा और शोभनीय होता है।

लीलावतीके भाई बहुत बीमार हैं, इसलिए वह विले पार्ले गई है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३८७) से। सी० डब्ल्यू० ६८२६ से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक।

१. प्रेमाबहन कंटकने सासवड़में अपने आश्रमके लिए जो मकान लिया था, वह मालगुजारके प्रपंचके कारण उन्हें छोड़ना पड़ा था।

१५०. पत्र : एस० अम्बुजम्मालको

१२ दिसम्बर, १९३६

चि० अम्बुजम,

तुमारे हाथ से तुलसी रामायण का तामील अनुवाद हो रहा है यह बात मुझे तो बहूत प्रिय है। तुमारे इस पुण्य प्रयत्न से तामील जनता को तुलसीदास की अनन्य प्रसादी का लाभ मिलेगा।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्रसे: अम्बुजम्माल-पेपर्स; सौजन्य: नेहरू स्मारक सग्रहालय और पुस्तकालय।

१५१. चित्तशुद्धिकी आवश्यकता

जिन दो व्यक्तियोके पतनके विषयमे मैं लिखता[1] आ रहा हूँ उनमे से एकका नाम श्री रामनारायण पाठक है, जो पोरबन्दर छाया-हरिजन आश्रमके प्राण थे। उनके साथ कुछ बातचीत और पत्र-व्यवहार होनेके बाद उन्होने मुझे यह पत्र लिखा है:[2]

३ दिसम्बरका पत्र सचमुच ही लम्बा है। मैने उसका सार नही निकाला; निकालना आसान भी नही है। पूरा पत्र प्रकाशित करूँ तो भी उससे हमारा अभीष्ट सिद्ध होनेकी सम्भावना नही। केवल विकृत दोष देखनेसे खुश होनेवाली जिज्ञासाको सन्तुष्ट करना मैं हानिकर मानता हूँ। इसलिए मैं पाठकोको इस किस्सेके अनावश्यक विवरणमे ले जाना नही चाहता।

श्री रामनारायणके कुछ मित्रोकी तरफसे, जो अपनेको उनका शुभचिन्तक मानते है, मुझे मीठा उलाहना मिला है। मैने नाम-ठाम तो दिया नही था, इसलिए उलाहना अप्रासगिक है। मैने जो लिखा था वह विचार किये बिना या, अकारण नही लिखा था। लेकिन दोषका भार सहन न हो सकनेसे भाई रामनारायणने जो कबूल किया है वह जितना मैं समझता था उससे भी अधिक गभीर है।

अपने अथवा प्रियजनोके दोष न छुपानेकी जो आदत मुझे वर्षोसे पडी हुई है उसका मुझे पश्चात्ताप नही है, उससे उन व्यक्तियोका और दूसरोका कल्याण ही हुआ है।

१. देखिए पृ० ११-१२ और १०२-३।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने अपने पापका प्रायश्चित्त करनेकी इच्छा प्रगट करते हुए गांधीजीसे अनुरोध किया था कि वे ही उसके लिए एक ऐसा निवेदन तैयार कर दें जिसमें दोषका सम्पूर्ण स्वीकार हो और चाहें तो उसे हरिजनबन्धुमें प्रकाशित कर दें।

मैंने अपने स्वर्गवासी पिताके दोष नही छिपाये, अपनी धर्मपत्नीके नही छिपाये, और न अपने लड़कोके। मेरे दोष तो सभी पाठकोको कठ है। जिन दोषोको भूल जानेकी सभावना है, उन्हे भी चुन-चुनकर कोई सद्‌भावसे और कोई केवल निन्दा करनेके लिए याद कराते रहते हैं! अपने दोषोंको प्रगट करनेसे मैं उन्हें फिर न करना सीख सका हूँ। [दोष करके] मनुष्य छिपकर निर्दोष दिखनेके लिए चाहे जैसा प्रयत्न करे, उसमें वह सफल नही हो सकता। ईश्वर जिन दोषोको देखता है, उन्हें उसकी सृष्टि क्यो न देखे? जो अपने दोषसे सचमुच शरमाता है वह तो उसे प्रगट करके सुरक्षित रहेगा, और अपने साथियोको इस तरह अपना रक्षक बनायेगा। इसीका नाम ईश्वर पर निर्भर रहना मान सकते हैं। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि कितनी ही बार मैं भयानक काम करनेसे बच गया हूँ, इसका कारण केवल मेरे साथी और मेरे बाल-बच्चे हैं। मैं अपनेको निर्बलताका शिकार हो जाने दूँ तो फिर उनका क्या होगा? उन्हे अगर मालूम पडा, तो जिसे वे आधार मान रहे थे, उनका वह आधार ही टूट जायेगा। इन विचारोने मुझे बचाया है। इसीका नाम ईश्वर द्वारा की गई रक्षा है। 'निर्बलके बल राम' का यही अर्थ है। अपनी निर्बलता कबूल करनेसे ही इंद्रियजनित विकारोसे छूट सकते हैं। इसीसे दोषका प्रगट करना शुद्धिकी पहली सीढी है।

भाई रामनारायण सेवा-क्षेत्रमे अच्छी तरह प्रवेश कर चुके थे, उसके बाद ही मुझे उनका परिचय हुआ था। पहले-पहल जब मैं मिला तभी उनकी आँखोमें और उनके चेहरे पर मैंने निष्कपटता या भोलापन नही देखा। पर ठक्कर बापाने उन्हे इतना बडा प्रमाणपत्र दे डाला कि मैंने अपने ऊपर पडी उनकी छापको मिटाकर उन्हे उचित आशीर्वाद दे दिया। उसके बाद ठक्कर बापाकी भाँति मैं भी भाई रामनारायणका प्रशंसक बन गया था। आदर्श हरिजन-सेवक देखना हो तो मैं राम-नारायणका नाम अक्सर लिया करता था। जिस प्रकार दूसरे अनेक युवक और युवतियोको मैं अपने पुत्र और पुत्रियोकी तरह मानने लगा हूँ, उसी प्रकार राम-नारायणके विषयमे भी था। और नर्मदा? वह तो, कह सकते हैं, ठेठ बचपनसे ही मेरी गोदमें आ गई थी। मैं उसकी माँ भी बना और बाप भी, क्योकि उसे माँके स्नेहकी जरूरत थी।

इससे पाठक मेरे आघातकी कल्पना कर ले और इस लेखका रहस्य समझ ले। नर्मदाने मुझे जो आशा बँधाई थी, वह तो आज एक क्षणमे हवामे उड़ने जानेवाले रजकणके समान अदृश्य हो गई है।

रामनारायणके बारेमे जब मेरे पास शिकायत आई तो उसे सच माननेसे मेरे हृदयने इनकार कर दिया। उसमें मुझे काठियावाडी द्वेष-भावनाकी गंध आई, इस कारण मैंने उसकी जाँच-पडताल करनेके लिए कागज भेजे। और फिर तो सबूतोकी मेरे ऊपर वृष्टि ही हो गई। एक लम्बे समयसे जो दुगुना पाप भाई रामनारायण छिपा रहे थे, उसका बहुत-कुछ प्रगट हो गया। और उन्होने नर्मदाके साथ छायासे विदा ले ली।

नर्मदा अभी भी बालिका है। मैं उसे अभी भी भोली मानता हूँ। उसमें एक प्रकारकी हिम्मत है, दृढ़ता नही है। पर वह जान-बूझकर पापमे पड़ सकती है, ऐसा

मैंने कभी नही माना। यह बालिका रामनारायणकी भोग-वासनाका शिकार बनी और उनके साथ जूझते-जूझते उसका पतन हो गया। अब दोनोने विवाह कर लिया है। दूसरी जो बहन उसी समय उनके चगुलमे फँसी, वह अब मारी-मारी फिर रही है।

यह लिखते हुए मै रामनारायणके दोषोको चित्रित नही कर रहा हूँ। मै मानता हूँ कि यह सब रामनारायणने विषयके नशेमे किया है। असत्याचरणके बिना यह सम्भव नही, इसलिए यह चलता रहा। लेकिन शायद ही कोई अन्त तक अपने दोषो को छिपा सकता है। जिसके दोष प्रगट हो जाते है उस पर ईश्वरकी कृपा समझनी चाहिए। भाई रामनारायणके विषयमे भी यही हुआ है।

उनका यह लिखना कि स्पष्टतम निवेदन से भी वे शुद्ध तो नही ही हो सकते, बिलकुल ठीक है। वह विषय-कूपमे इतने गहरे उतर चुके है कि उसमे से निकलने मे असमर्थ-से हो गये है। शादी कर लेनेसे एक प्रकारकी ऊपरकी शाति हो जाती है। विषय अब एक नये और ज्यादा भरपूर वेशमे प्रवेश करता है। मै जानता हूँ कि स्त्री-पुरुष सम्बन्ध-विषयक नवीन विचार रखनेवालोको यह भाषा अच्छी नही लगेगी।

पर इस पत्रमें तो कुछ भी किसीको खुश करनेके लिए लिखा नही जाता। कमसे-कम मैं तो ऐसा नही लिखता। सत्यनारायणको साक्षी रखकर लिखते हुए अगर सबको मै खुश रख सकूँ तो ठीक। लेकिन खुश न रख सकूँ तो भी मै ऐसा तो कुछ नही लिखूँगा जो सत्यनारायणको पसन्द न पड़े। भाई रामनारायण इस समय क्या मानते है, यह मै नही जानता। अपने ३ दिसम्बरके पत्रमे उन्होने नर्मदाके साथ अपने विवाहको अनुचित नही माना है। परन्तु उनके उस पत्रसे जो मैंने ऊपर प्रकाशित किया है, मालूम होता है कि उनका मन स्थिर नही है। उन्हे अपना मार्ग स्पष्ट नही दिखाई देता।

उनका मथन प्रामाणिक है, ऐसा मैं मानता हूँ। नर्मदा उनकी सहधर्मिणी नही है। जहाँ धर्म नही है, वहाँ धर्मका साथी कहाँसे हो? वह तो सचमुच अबला है। उसे आगे ले जाकर उसकी सेवाके स्वप्न सच्चे बनाकर ही वह उसकी सेवा कर सकते है, उसके प्रति प्रायश्चित्त कर सकते है। जो दूसरी बहन है उसके प्रति न्याय करने का धर्म भाई रामनारायण निर्विकार रहकर पालन कर सकते है। और हरिजनोका ऋण? उनका विचार करते हुए तो हृदय भर आता है। कहाँ हरिजनोके प्रौढ सेवक रामनारायण, और कहाँ अपनी कामवासनाके गुलाम रामनारायण!

लेकिन बहुत-से गुलाम पुरुषार्थसे मुक्ति प्राप्त कर सके है। बहुत-से पापकुडमे से उबर सके है। गजराजको किस ग्राहने पकडा था? वह गजराज कोई चार पैरवाला और सूँडवाला हाथी नही था। वह दो पैरवाला हमारे जैसा ही मिट्टीका पुतला था। अपने बलसे तो वह अधिकाधिक फँसता जा रहा था। पर जब सब बल हार गया, तब भगवान उसकी रक्षाको आये और उसे मुक्त किया। गजेन्द्र-मोक्ष कोरा काव्य नही है। हमारे-जैसोके लिए वह एक आश्वासन है, रक्षाकी बाड है।

जो पाठक यह लेख पढकर रामनारायणके प्रति द्वेष करेगे, वे कुछ नही पायेंगे। सब पाठक उनकी शुद्धिके लिए प्रार्थना करे। इससे भी ज्यादा महत्त्वकी बात यह है कि इस किस्सेका स्मरण करके वे खुद जागृत रहे, अपनी कमजोरी कभी भी न छिपाये। इस प्रकारके अहकारमे न फँसें कि ऐसी स्थिति आ जाने पर भी वे फँसेगे नही। किसीका अभिमान टिका नही है। अन्त समय तक जिसका हृदय ठिकाने रहता है, वही जीतता है।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, १३-१२-१९३६

१५२. पत्र : सरस्वतीको

८/१३[1] दिसम्बर, १९३६

चि० सरस्वती,[2]

तुम्हारी असफलतासे मै बिलकुल भी चिन्तित नही हूँ। वह सफलताकी एक सीढ़ी है . . . .[3] जिन विषयोमे फेल हुई हो उनका पूरा ज्ञान पाने . . .। यदि लोग तुमको चतुर या मेधावी नही मानते तो इसमें कोई बुराई नही। हाँ, यदि वे तुमको एक अच्छी लड़की न मानें और तुम अच्छी लडकी न हो, तो वह सचमुच एक बुरी चीज होगी। नियमित रूपसे लिखती रहना . . . .।[4]

बापू

[पुनश्च]

वेचारी मीनाक्षी। मेरी समवेदना उसतक पहुँचा देना। उसके पिताको क्या हुआ था और उनकी क्या अवस्था थी?

बापू

[पुनः पुनश्च[1]]

अधिक लिखनेके लिए इसे आजतक रोके रखा।

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१५७) से। सी० डब्ल्यू० ३४३० से भी, सौजन्य . कान्तिलाल गाधी।

१. पुनः पुनश्च दिनांक १३-१२-१९३६ को जोड़ा गया था।
२. मूलमें ये शब्द देवनागरीमें ही है।
३ और ४. साधन-सूत्रमें यहाँ स्पष्ट पढ़नेमें नहीं आता।

१५३. पत्र : ना० र० मलकानीको

सेगाँव, वर्धा
१३ दिसम्बर, १९३६

प्रिय मलकानी,

तुम्हारा पत्र मिला। हाँ, तुम्हारे भेजे आँकडे मै गौरसे ही देखता हूँ। पर चूँकि शिकायत करनेकी कोई बात मुझे नही मिली, इसलिए मै कुछ नही लिखता।

त्यागीके बारेमे मैंने अवश्य कुछ कहा था और वियोगी हरिसे कहा था कि उसके बारेमे तुमसे बात करे। उसकी अच्छाईमे कोई सन्देह नही। लेकिन वह है काहिल और सपनोकी दुनियामे रहता है। उसके भोजन और आवासकी जब व्यवस्था है ही, तो फिर उसे पन्द्रह रुपये किस लिए चाहिए? आश्रममे तो वह कुछ भी नही माँगता था। उसकी कोई आवश्यकताएँ नही है। उसका लडका कामसे लगा है। राजकिशोरी अपना खर्च बखूबी चला सकती है। मै यह तो नही चाहता कि तुम उससे अपना पीछा छुडा लो, लेकिन, हाँ, उसकी आवश्यकताओसे अधिक उसको नही मिलना चाहिए और उतना देनेमे भी इस बातका खयाल रखना होगा कि ऐसे कार्यकर्ताको बाहर जितना मिल सकता है उससे अधिक उसे न मिले। मुझे लगता है कि वह कुछ अधिक ही पा रहा है। तुम चाहो तो मै उसे लिख दूँगा। उसके कामके बारेमे मैंने उसे लिखा ही था।

जहाँतक तुम्हारी बात है, 'हिन्दुस्तान टाइम्स' से तुमको कुछ मिलता रहे, मै इसे गलत नही समझता।

मै तुम्हारी इस बातसे सहमत हूँ कि हमे अपने मिस्त्री खुद तैयार करने चाहिए। जितनी जल्दी हो सके, उतना ही अच्छा। अफसोसकी बात कि त्यागी मिस्त्री नही बनना चाहता। तो तुम कांग्रेस-अधिवेशनके लिए पहुँच रहे हो!

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९२५) से।

१५४. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

१३ दिसम्बर, १९३६

चि० कान्ति,

अच्छा हुआ तेरा पत्र आया। मनुके साथ मैंने तुरन्त बात कर ली। अब सुरेन्द्रकी इच्छा जानकर तदनुसार व्यवस्था[1] करूँगा। दूधके बारेमें तो लिख ही दिया है।

तेरी तबीयतके बारेमे मुझे खबर मिलती ही रहती है। वक्त नही मिलता, इसलिए लिखता नही हूँ। तू अभीसे बूढा हो जाये तो कैसा होगा। शरीरकी उपेक्षा नही करनी चाहिए। शास्त्र-निर्दिष्ट आहार लेना ही चाहिए। अध्ययनकी क्या चिन्ता है? जितना हो सके, उतना कर और सतुष्ट रह। जल्दी भी काहेकी है? तुझे ज्ञान प्राप्त करना है, या विद्वत्ताका प्रदर्शन करना है? जो भी हो, स्वास्थ्य बिगाड़कर "डबल फर्स्ट" प्राप्त करनेका लोभ मत करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७३१०) से; सौजन्य . कान्तिलाल गांधी।

१५५. पत्र : सुरेन्द्र बी० मशरूवालाको

१३ दिसम्बर, १९३६

चि० सुरेन्द्र,[2]

मनु तुझे लिखती रहती है, इसलिए मैं नही लिखता। आज लिख रहा हूँ, क्योकि कान्ति दो बाते लिखता है एक तो तू दूध नही पीता, और दूसरे शादीके लिए भी कुछ उतावला हो रहा है। मै यह नही कहता कि इन दोनो बातोमें परस्पर कोई सम्बन्ध है। दूध तो छोडना ही नही चाहिए। किशोरलाल जो कारण बताते है, वह भी ठीक नही है। यदि स्वप्नदोष होता हो, तो उसके लिए उपाय है, मनकी शुद्धि, और बाह्य उपचारोमे कटिस्नान। तू विवाह कब करना चाहता है? कान्ति समझ बैठा है कि इसमे जितनी जल्दी करूँ उतना अच्छा। तू मुक्त मनसे

१. देखिए अगला शीर्षक।
२. किशोरलाल मशरूवालाका भतीजा और बालूभाई मशरूवालाका पुत्र।

मुझे अपनी इच्छा बताना, तब मै बड़े-बूढोसे परामर्श करके जो बनेगा करूँगा। विवाह कहाँ हो? वर्धामे ही न? सेगाँवसे भी हो सकता है? नि.सकोच लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १५६२) से, सौजन्य · मनुबहन एस० मशरूवाला।

१५६. पत्र : जे० सी० कुमारप्पाको

१४ दिसम्बर, १९३६

प्रिय कु०,

होम मेम्बरका वक्तव्य[1] नही देखा। अभागा गुटूर!

हाँ, बैठके उल्लिखित तिथियोमे ही रखो। मुझे बतलाया गया था कि २३ को उद्घाटन था। पर मुझे मालूम नही।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०११२) से।

१५७. पत्र : महादेव देसाईको

सेगाँव
१४ दिसम्बर, १९३६

चि० महादेव,

आज फिर हमे मक्खन नही मिला। उनसे कहो, गनपतके हाथो दो दिनके लायक भेजे।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

मैं पत्र भी लिख रहा हूँ।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५०८) से।

१. तूफानसे होनेवाली क्षतिके सम्बन्धमें। होम मेम्बरके अनुसार मकान फिर बना दिये गये थे और राहत-संस्थाएँ काफी अच्छा कार्य कर रही थी।

१५८. पत्र : कस्तूरभाई लालभाईको

१४ दिसम्बर, १९३६

भाई कस्तूरभाई,

मैंने आपके तारका जवाब लिख दिया है। वह कल भेजा जायेगा। इस समय रातके ८–३० बजे हैं। आपका वक्तव्य पढ़कर यदि मुझपर उसका प्रभाव पड़ा तो मैं अवश्य अपने विचार बदल लूँगा। यदि चर्चाकी जरूरत हुई तो आपको कष्ट दूँगा।

मैंने तो मजूर आफिससे सम्बद्ध अपना मसविदा किसीको बताया नहीं। हमारे निर्णय दे देनेके बाद मेरा यह इरादा जरूर था कि शंकरलालको बताऊँगा। किन्तु वैसा हो चाहे न हो, मैं आपके इस विचारसे बिलकुल सहमत हूँ कि सरपंच तक जाना पड़े तो जबतक उनका निर्णय प्रकाशित न हो जाये, हमारे निर्णयकी कोई भी बात किसी पक्षकी ओरसे प्रकट न हो। इस सम्बन्धमें आप हम दोनोंकी ओरसे वहाँसे ही लिखित चेतावनी दे दें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[पुनश्च :]

मैं २० को फैजपुर पहुँचूँगा। वहाँ ९ दिन तो लग ही जायेंगे। लेकिन जरूरत मालूम हुई तो हम लोग मिल सकेंगे। उम्मीद तो ऐसी है कि उससे पहले ही हम इस कामसे बरी हो जायेंगे।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४१९७) से।

१५९. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
१५ दिसम्बर, १९३६

मूर्खारानी,

कैसी मूर्खता है तुम्हारी कि तुमने मुझे ऐन वक्तपर निराश कर दिया। लेकिन अच्छा है। कर्त्तव्य ही सबसे पहले है। वर्धा होकर जाना तुम्हारा कोई कर्त्तव्य नही था। वह तो अपने कर्त्तव्य-निर्वाहके दौरान हासिल की जा सकनेवाली एक खुशी ही होती।

तुमने जो कहा है, उससे लगता है कि दोनो लिहाफ मेरे लिए ही है, प्रदर्शनीके लिए नही। जे०के आनेपर फूलकारियाँ उनको दे दी जायेगी।

हाँ, मै नटेसनको वडी अच्छी तरह जानता हूँ। मै उसको जरूर लिख सकता हूँ। लेकिन मै चाहूँगा कि तुम एक वार और उससे कहकर देखो। फिर बतलाना कि क्या बना। तुमसे न बना तो मै कोशिश करूँगा।

अगाथाके साथ मग[न]वालकी यात्राका तुम्हारा विवरण दिलचस्प है। लेकिन तुम्हे अपने-आपको थकाना नही चाहिए। अपने ऊपर शक्तिसे ज्यादा बोझ क्यो डालो? वहुत ज्यादा या शक्तिसे ज्यादा वोझ अपने ऊपर डालनेसे तुम्हे कोई पुण्य मिलेगा, ऐसी बात तो है नही। ईश्वरने तुमको जितनी स्फूर्ति दी है, उसके ही उपयोगसे सन्तुष्ट क्यो नही रहती? उसका शक्तिसे अधिक उपयोग करना उतना ही बुरा है जितना कि गलत ढग या बहुत कजूसीसे उपयोग करना। यह बात तुम्हारे कुद जेहनमे समाई या नही? यदि समा गई हो, तो इसीके मुताविक काम करो न।

मै यहाँसे १९को फैजपुरके लिए रवाना हो जाऊँगा। वे लोग मुझसे मन्दिर-प्रवेशकी घोषणाके बाद अव लोगोका ठीक मार्ग-दर्शन करनेके लिए त्रावणकोर जानेका आग्रह कर रहे है।

सस्नेह,

डाकू

[पुनश्च :]

अव यह निश्चित ही लगता है कि मुझे जनवरीके पहले सप्ताहमें त्रावणकोर जाना पडेगा। हम मिलनेपर इसके वारेमे वाते करेगे।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७६०) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६९१६ से भी।

१६०. पत्र : महादेव देसाईको

१५ दिसम्बर, १९३६

चि० महादेव,

इस पत्रके साथ काफी-कुछ भेज रहा हूँ — ३ गुजराती लेख, गोविन्दके पत्रके बारेमें एक लेख[1], मैसूरके बारेमें एक लेख, कस्तूरभाईके लिए एक तार और बाकी डाक।

मक्खनकी बात समझा। धर्माधिकारी वहाँ हों, तो आकर मिल जायें, अथवा उनके बदले जो हो वह।

इस आदमीके हाथ जो-कुछ थोड़ा-बहुत भेजना हो भेज देना। गनपत तो दोपहरको आयेगा ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५०९) से।

१६१. पत्र : महादेव देसाईको

१५ दिसम्बर, १९३६

चि० महादेव,

रामचन्द्रन् अधीर हो गया है। उसे तार भेजनेसे पहले तुम्हारे साथ सलाह करना जरूरी है। मुझे एक वार्षिक डायरी तारीखोंके लिए चाहिए। क्या वहाँ कुछ आई नहीं है? एक दीवारका कलैंडर चाहिए। लेकिन यह तो हुआ विषयान्तर। किसीको कोई तारीख न दी हो, तो त्रिवेन्द्रमकी समस्या झटपट सुलझा ली जाये। यह हो सके तो मुझे अच्छा लगेगा। क्या कहना चाहिए, मुझे सुझाना। जवाब मैं कल दूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५१३) से।

१. देखिए "एक कष्टप्रद कर्तव्य", १९-१२-१९३६।

१६२. एक पत्रका अंश[1]

१५ दिसम्बर, १९३६

जब वचन और आचार विचारका अनुसरण करते है तब शब्द विचारको पूरी तरह व्यक्त नही कर पाते, और शब्दोमे जितना कहते है, उतना आचरणमे नही आता। अपनी कल्पनाकी मेजका यदि मै शब्दोमे वर्णन करूँ, तो वह वर्णन मेरी कल्पनासे ओछा पड जायेगा, और जब वह मेज बनकर तैयार होगी, तो वह उस वर्णनसे ओछी पडेगी। यूक्लिडकी सीधी रेखा कल्पनामे ही है। उसकी परिभाषा उस कल्पनाका एक अश है, और उसका आकार उस परिभाषाका भी एक अश। यदि इतना कहनेसे भी मेरी बात स्पष्ट न होती हो, तो कोष्ठकमे दिया अश निकाल दे सकते हो। विचार-श्रेणीका क्रम तब भी भग नही होगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५५९) से।

१६३. तार: अमतुस्सलामको

वर्धागज
१६ दिसम्बर, १९३६

अमतुल सलाम
ईस्टर विला, साताक्रुज

फैजपुर आना वाछनीय नही। फिर भी तुम खुद फैसला करो।

बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३६५) से।

१. पत्र किसे लिखा गया था, साधन-सूत्रसे पता नहीं चलता।

१६४. पत्र : महादेव देसाईको

१६ दिसम्बर, १९३६

चि० महादेव,

तुम्हारी प्रस्तावना पढ़ गया। है तो अच्छी। इसमें कोई रद्दोबदल करनेकी जरूरत नहीं थी, इसलिए थोड़ा ही किया है। लेकिन यह हजम होगी या नहीं, इसके बारेमें शक है। जो हो, जाने दो।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

तीन लेख भेजे हैं, एन्ड्रयूजका लेख[1] अलग। अब गुजराती लिखने बैठता हूँ।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५१०) से।

१६५. पत्र : मूलचन्द अग्रवालको

सेगाँव, वर्धा
१६ दिसम्बर, १९३६

भाई मूलचंद,

तुमारे पत्र का उत्तर बहुत दिनो के बाद देता हूँ। 'हरिजन' में लिखने के बदले मैं इस चीजकी अच्छी तहकीकात कर रहा हूँ। अजमेर आर्यसमाजमें मुख्य कार्यकर्ता के नाम-ठाम दो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५९) से।

१. "शान्तिका सन्देश", २६-१२-१९३६ के हरिजनमें प्रकाशित।

१६६. भेंट : कुमारी फ्रिचको[1]

[१६ दिसम्बर, १९३६][2]

हिन्दू-धर्ममे एक बडी बात यह है कि उसकी सच्ची आस्था है कि समस्त जीव (मनुष्य ही नही, समस्त जीवधारी प्राणी) एक ही है, अर्थात् सारे जीवोकी उत्पत्ति एक ही स्रोतसे हुई है—चाहे आप उसे अल्ला कहिए, या गॉड या परमेश्वर। एक हिन्दू धर्मग्रन्थका नाम है—'विष्णु सहस्रनाम,' जिसका अर्थ इतना ही है—'ईश्वरके एक सहस्र नाम।' इन एक सहस्र नामोका यह अर्थ नही कि ईश्वर इन नामोतक ही सीमित है। इसका अर्थ यह है कि ईश्वरके उतने नाम है जितने कि आप सोच सकते है। आप उसे जितने चाहे उतने नाम दे सकते है, बशर्ते कि आप जिसे विभिन्न नामोसे याद कर रहे है वह ईश्वर आपके मनमे एक ही हो। इसका अर्थ यह भी है कि ईश्वर अनाम, नामरहित है।

जीवकी यह एकता हिन्दू-धर्मकी अपनी विशेषता है। इसके अनुसार, मुक्ति प्राप्त करना मानवतक ही सीमित नही है, बल्कि ईश्वरके रचे सभी प्राणियोके लिए सम्भव है। हो सकता है कि मानव-देह धारण किये बिना मुक्ति प्राप्त करना सम्भव न हो, लेकिन इससे मनुष्य जगत्का स्वामी नही हो जाता। इस मान्यताके अनुसार मनुष्य सृष्टिका सेवक है। जब हम मानवीय भाईचारेकी बात करते है, तो उसे मानवोतक ही सीमित रखते है, और सोचते है कि शेष सभी जीव इसलिए बने है कि मनुष्य उनसे अपना मतलब साधे, उनका शोषण करे। लेकिन हिन्दू-धर्ममे सभी प्रकारका शोषण वर्जित है। जीव-मात्रके साथ यह एकात्मता अनुभव करनेके लिए मनुष्य जितना भी त्याग करे थोड़ा होगा। लेकिन यह आदर्श इतना विराट है कि यह निश्चय ही आपकी आवश्यकताओको मर्यादित कर देता है। आप देखेगी कि यह दृष्टिकोण आधुनिक सभ्यताकी दृष्टिके सर्वथा विपरीत है। आधुनिक सभ्यता तो कहती है : 'अपनी आवश्यकताओमे वृद्धि करो।' ऐसी दृष्टि रखनेवाले लोग सोचते है कि आवश्यकता बढ़ाते जानेका अर्थ है, अपने ज्ञानमे वृद्धि करते जाना, जिसका मतलब है असीमको और अच्छी तरहसे समझना। इसके विपरीत, हिन्दू-धर्ममे भोग और

१. महादेव देसाईके "वीकली लैटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। भेंट करनेवाली महिलाने गांधीजीसे हिन्दू-धर्मकी मुख्य मान्यताओंके बारेमें पूछा था, क्योंकि उसने सुन रखा था कि गांधीजी हिन्दू-धर्मके प्राण हैं।

२. नाम और तारीख महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीके अनुसार हैं।

आवश्यकताओंकी निरन्तर वृद्धि वर्जित है, क्योंकि ये दोनों चीजें विश्वात्माके साथ परम एकात्मताकी स्थिति प्राप्त करनेके मार्गमें बाधक हैं।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २६-१२-१९३६

१६७. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
१८ दिसम्बर, १९३६

मूर्खारानी,

तो यह पत्र तुमको अहमदाबादमें मिलेगा। तुम हरिजन आश्रममें जाकर वहाँ लड़कियोंसे बात करना। मैंने उस आश्रमके लिए जब जमीन ली थी, तब वहाँ मवेशियों और वृक्षोंका नाम-निशानतक न था। मेरा खयाल है कि तब वहाँ एक अकेला नीमका वृक्ष था। वहाँ तुम्हारी भेंट बूढ़े हरिजन रामजी और उसकी लम्बी पत्नीसे होगी। तुमको कुछ परिचित चेहरे भी वहाँ दिखाई पड़ेंगे। मेरा खयाल है कि आनन्दीको तुम जानती हो। वहाँ तुमको विद्यापीठ और अनसूयाबाईका मजदूर-सेवा-कार्य अवश्य देखना चाहिए। हरिजन बच्चोंके लिए, उसका वह देसी ढंगका शिशु-विहार जाकर देखना। मृदुलाका ज्योति-संघ तो देखना ही। दूसरी चीजें तो तुमको वैसे ही दिखाई जायेंगी।

मैं जानता हूँ कि नियमित किस्मके दैनिक कार्योंको छोड़ा नहीं जा सकता, लेकिन उनमें अपने-आपको डुबो मत देना। तुमको बिना खीझे और अपने ऊपर बहुत ज्यादा बोझ महसूस किये बिना काम करनेकी कला सीखनी चाहिए।

यह पत्र एक लम्बा-चौड़ा उपदेश बन गया है न? फैजपुरमें तुम मेरे साथ बड़े आरामसे रह सकोगी। इतना जरूर है कि अपनी सेहत बिगाड़कर वहाँ मत आना। तुमको जितना भी दरकार हो, उतना पूरा स्नेह।

अत्याचारी

[पुनश्च :]

मैं २० को फैजपुर पहुँच रहा हूँ।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७६१) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६९१७ से भी।

१६८. पत्र : अमतुस्सलामको

१८ दिसम्बर, १९३६

चि० अमतुल सलाम,

तेरा तार मिला। फैजपुर आनेका यह आग्रह क्यो? सेगाँवमे मिलने आ और वहाँ बात कर। यदि जगह पसन्द आये तो रहना। मैंने सेगाँवमें तुझे रखनेको कहा है, फिर क्यो घबराती है? फिर भी यदि तू फैजपुर आना ही चाहे तो आ जाना। मै २९को सेगाँव पहुँचनेकी आशा रखता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३६६) से।

१६९. पत्र : लीलावती आसरको

१८ दिसम्बर, १९३६

चि० लीला;

तेरा पत्र मिला। तू चिन्ता क्यो करती है? चिन्तासे तू भाईका दु:ख कम नही कर सकती। चिन्ताका क्या कारण है? मरना, जीना, अच्छा होना, सब भगवान्के अधीन है। जीना, अच्छा होना अथवा प्रयत्न करना अपना कर्त्तव्य है; कर्त्तव्यका पालन करना चाहिए। इसका पालन करे तो चिन्ता किसलिए? चिन्ता कर्त्तव्यके पालनमे विघ्नरूप होती है, इतना समझ ले। प्रार्थना, भजन आदि यदि हमे सब प्रकारकी स्थितिमे निश्चिन्त रहना नही सिखाते, तो उन सबको बेकार समझना।

दिनशाको अस्पतालमे क्यो नही बुलाती? डाक्टरकी अनुमति ले ले। वे अनुमति दे देंगे। इलाज भी उनकी अनुमति लेकर कराना। तू दिनशासे मिल तो, उनसे बात कर, उनसे सब जानकारी प्राप्त कर ले, उनके मिलनेके दिन मालूम कर ले। बाढ़ आनेसे पहले बाँध बँधवाना चाहिए। घर जलने लगे, तब कुआँ नही खुदवाते, पहलेसे खुदवाकर तैयार रखते हैं।

निरर्थक ऊधम मत मचाना। जोर-जोरसे बाते मत करना। जो करना, सो सोच-विचारकर करना। जो-जो मनमें आता जाये, उसे अनर्गल मत कहती रहना। जिसपर तेरा कोई बस न चले, उसे सहन करना।

दमयन्ती हिम्मत और धीरजसे काम ले रही होगी। अस्पतालका नाम तूने नही दिया।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३५२) से। सी० डब्ल्यू० ६६२७ से भी; सौजन्य : लीलावती आसर।

१७०. पत्र : महादेव देसाईको

१८ दिसम्बर, १९३६

चि० महादेव,

कहना चाहिए बावलोके अक्षर तो बहुत सुधर गये। लेकिन सीखा हुआ बहुत-सा भूल भी गया है। कस्तूरभाईका तार मिला होगा और तुमने भी भेज दिया होगा। ईशोपनिषद्की मेरे पास काफी प्रतियाँ आ गई है।

कल ७-३०के आसपास वहाँ पहुँचनेकी आशा करता हूँ। नवीन बा के साथ आयेगा। इसलिए अभी तो हम तीन लोग और मेहरताज ही आयेंगे। बावलो तो २३को आ मिलेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५११) से।

१७१. पत्र : नानाभाई आई० मशरूवालाको

१८ दिसम्बर, १९३६

भाई नानाभाई[1],

तुमने दोनो पत्र लिखे, यह बहुत अच्छा किया। मुझे लिखनेमे तुम्हे बिलकुल संकोच नही करना चाहिए।

पहले पत्रके सम्बन्धमे तो किशोरलालने ही जिम्मा ले लिया है।

अब दूसरे पत्रकी बात। मुझे लगता है कि गुरुजन भी जैसे हो वैसे ही दिखाई दें, यही ठीक है। मेरा अनुभव ऐसा है कि बहनोके विषयमें कुछ मालूम न होनेसे उनके प्रति जो धारणा बन जाती है, उसमें अतिशयता होती है, जिसका परिणाम यह होता है कि ब्रह्मचर्य आदिकी महिमा घटती है। लोग यदि मुझे बाल ब्रह्मचारी

१. किशोरलाल मशरूवालाके भाई।

मान बैठें तो ब्रह्मचर्यका तेज मद पड़ जायेगा। जिसके मन, वचन, काया, स्वभाव सब शुद्ध होते हैं, उसका तेज निराला ही होता है। वैसे ब्रह्मचारी आज कहाँ मिलेंगे? गुरुजन जैसे हों वैसे ही दिखाई दें, तो इससे उनका प्रभाव कम नही होता। किन्तु यदि वे अपने दोषोपर परदा डाले तो उनका जो प्रभाव पड़ेगा, वह केवल आभासमात्र होगा।

सन्तति-नियमनके सम्बन्धमे मेरे विचार कृत्रिम उपायोके विरुद्ध ही हैं, अतः मेरे लिए तो मर्यादाका प्रश्न ही नही उठता। किन्तु तुम्हारे मतसे मैं सहमत हूँ कि यद्यपि कुछ लोगोको यह ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए, तथापि इसका प्रसार अत्यन्त संयमपूर्वक ही होना चाहिए।

स्त्रियो और पुरुषोके मिलने-जुलनेकी स्वतन्त्रताकी भी मर्यादाएँ होनी चाहिए, इस विषयमे तो सन्देह ही नही है। हाँ, मर्यादाकी रेखा आँकनेमे अवश्य कठिनाई होती है। यह रेखा कोई सर्वमान्य, स्वयसिद्ध रेखा नही हो सकती। तुम्हारी तवीयत ठीक होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५२९) से। सी० डब्ल्यू० ५००५ से भी; सौजन्य : कनुभाई ना० मशरूवाला।

१७२. पत्र : तारावहन ना० मशरुवालाको

१८ दिसम्बर, १९३६

चि० तारी,

तुझे तो ऐसा लिखनेको मन करता है कि 'तोहे किस बिध कर समझाऊँ'।

क्या तू बिलकुल बेकार हो जायेगी, तभी जागेगी। तबीयतको ठीक करनेके लिए कम-से-कम रुपयेमे दो आने तो स्वास्थ्य सुधारनेका निश्चय कर। निराश क्यो होती है? वहाँ तू सचमुच मदद कर रही हो तो करती रह। मै कुछ नही कहूँगा।

नानाभाईसे कहना, कि उनके लम्बे पत्रके निराकरणका जिम्मा किशोरलालने अपने सिर ले लिया है, इसलिए [उसके विषयमे] मैंने कुछ नही लिखा।

बापूके आशीर्वाद

श्री तारावहन मशरूवाला
अकोला
वरार

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६९९) से।

१७३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१८ दिसम्बर, १९३६

भाई घनश्यामदास,

मेरा लेख इस वखत अच्छा लगा उसका मुझे हर्ष है। लेकिन बात यह है कि जो दिलमे है वही मेरी कलम पर चढ सकता है, यही ठीक है।

त्रावणकोर से जब रामचद्रनका तार आया ऐसे ही मुझे लगा कि जाने का मेरा धर्म है।

जैसे त्रावणकोरके अधिकारीयोसे मिले ऐसे ही सर अकबरको क्यो न मिले?

वाइसरायसे और दूसरे बड़े लोगोसे कानूनकी आवश्यकताकी बात क्यो न करे? गुरुवायूर [मन्दिर] खोलनेके लिये शायद कानूनकी आवश्यकता है। सिर्फ सम्मति देनेवाला होना चाहिये। मालवीयजी अब भी नही मानेंगे? पारनेरकरको मैं भूल ही गया। मै उसको भेजनेकी कोशीश करूंगा। मै कल फैजपुर जाता हूं। पारनेरकर वहीं है। मिलने बाद लिखूंगा।

परमेश्वरीके बारेमें मैंने तुमारे अभिप्रायको स्वीकार कर लिया है, क्योकि मेरे पास निश्चयात्मक कोई अभिप्राय नही है। मेरे भीतरमें कुछ ऐसा है सही कि मौजुदा कम्पनीको सार्वजनिक बनाकर परमेश्वरीको अपना प्रयोग करने देना। मुझको लगता है कि वह अप्रमाणिक नही है। नसल-सुधारका काम में उसका रस है। दूसरे विशारदोंका अच्छा अभिप्राय पासका है। मेरा पक्षपात उसकी ओर है सही, लेकिन मैं क्या जानुं? मैं तो उसको आप ही लोगोके मार्फत पहचानता हूं। इसलिये स्वतन्त्र अभिप्रायसे कुछ करना नही चाहता।

बापुके आशीर्वाद

सी० डब्ल्यू० ८०२७ से, सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला।

१७४. एक कष्टप्रद कर्त्तव्य

निम्न पत्र मैं ज्यों-का-त्यों प्रकाशित कर रहा हूँ:[1]

महात्मा गांधीके नाम खुली चिट्ठी:

प्रिय महात्माजी,

२१-११-१९३६ के 'हरिजन' में मेरे सम्बन्धमें आपने जो टिप्पणी[2] लिखी है उसे पढ़कर दिलको चोट पहुँची। उस टिप्पणीमें मेरे बारेमें असत्य बातें लिखी हुई हैं। मैं "कटकके नजदीक हरिजन-कार्य" नहीं कर रहा हूँ, और न मैं "सदाकी तरह धन-संग्रह करनके लिए बम्बई ही गया", और न "पैसा इकट्ठा करनेके लिए जानेसे पहले मैं आपसे सलाह अवश्य ही लेता हूँ।" . . .

२१-११-१९३६ के 'हरिजन' में अपनी टिप्पणीमें मेरे सम्बन्धमें आपने जो बातें कहीं है उनका निवारण और उन्हें दुरुस्त करनेके लिए मैं निम्न वक्तव्य दे रहा हूँ। यद्यपि मैं किसी समय साबरमती आश्रममें था, पर कटकके पास या किसी और जगह हरिजन-कार्य या दूसरा कोई कार्य चलानेके लिए मुझे आपसे कोई आदेश या कोई मदद कभी नहीं मिली। कटकके पास मैं हरिजन-कार्य नहीं कर रहा हूँ। मैंने जो सेवाश्रम खोला है और जिसका नाम आपके सम्मानार्थ 'गांधी सेवाश्रम' रखा है, उसके निमित्त पैसा इकट्ठा करनेके लिए जानेसे पहले मैंने कभी आपसे सलाह नहीं ली। यह आश्रम न तो किसी कांग्रेसी संस्थासे सम्बन्ध रखता है और न आपसे ही, और न किसीपर निर्भर ही है। १९२१ में जब मैं साबरमतीसे लौटा तो उस तरीकेपर, जिसका कि आप प्रचार कर रहे थे, देश-सेवा करनेकी मेरे मनमें एक कल्पना थी। . . .

१८ महीने पहले जब आपके पास मेरे खिलाफ कुछ शिकायतें पहुँची, तब आपने मुझे उनके विषयमें लिखा था और मैंने आरोपोंको संजीदगीके साथ अस्वीकार करते हुए आपको उचित उत्तर भेज दिया था। जहाँतक मेरा और मेरे आश्रमका सम्बन्ध है, आपके प्रति मेरा कर्त्तव्य वहीं खत्म हो

१. यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

२. देखिए "चन्दा मांगनेवालोंसे सावधान", पृ० ७३।

जाता है। अब आप जो तहकीकात करना चाहें, खुशीसे कर सकते हैं। . . .

आपका,
गोविन्दचन्द्र मिश्र

कटक
६ दिसम्बर, १९३६

अगर लेखकने इस पत्रका प्रचार न चाहा होता तो मैं इसे दबा लेता। इसे प्रकाशित करना कष्टप्रद है, इसपर टीका करना एक कष्टप्रद कर्त्तव्य है।

गोविन्द बाबूको पहले-पहल मेरे पास दीनबन्धु एन्ड्रयूजने भेजा था। उस समय वे बहुत ही तगहाल थे। उड़ीसामें उनकी दरकार नही थी। उडीसाके लिए मेरे हृदयमे जो सहानुभूति है उसने मुझे उन्हे साबरमतीमे रख लेनेके लिए मजबूर किया। उनकी असम्बद्ध बातचीतने मुझे उनकी ओर आकर्षित नही किया और अगर वे उड़ीसावासी न होते और उन्होने अपने कष्टोका करुण वर्णन न किया होता, तो दीनबन्धुकी सिफारिशके बावजूद मैं उन्हे जगह न देता। औरोकी भाँति वे भी तुरन्त मेरे लिए पुत्रकी तरह बन गये। सचमुच उनका बरताव इतना अनाकर्षक था कि आश्रमके लोग उन्हें दिलसे नही चाहते थे। इसलिए मुझे उनका अलगसे खयाल रखना पड़ता था। मुझसे सलाह लेकर ही वे उड़ीसा गये। मुझसे सलाह लेकर ही उन्होने आश्रम खोला। अपनी रिपोर्ट वे नियमित रूपसे मेरे पास भेजते थे। निश्चय ही, मेरी देखरेखमे ही उन्होने हरिजन-कार्य तथा खादी-कार्य किया। बम्बईमें उन्होने खासकर उन लोगोसे, जो मेरे परिचित थे और उनको एक साबरमती आश्रमवासीके रूपमें जानते थे, रुपया इकट्ठा किया। मैं खासकर उनका आश्रम देखने गया था। वहाँ जानेपर वह बँगला देखकर, जो उन्होने बनवाया है, मुझे गहरा दुःख पहुँचा और मैंने सार्वजनिक तौरपर उनकी निन्दा की। उन्होने अपना कसूर मान लिया था। नाम लेने लायक सिर्फ एक ही काम मैंने वहाँ देखा और वह था दवाखाना, जिसमें दवाइयाँ तो काफी रखी गई थी, पर जो साफ-सुथरी हालतमें नही था। मेरी आशाओपर पानी फेर देने, ठीक-ठीक हिसाब-किताब न रखने और कोई भी रचनात्मक कार्य न करनेके लिए मैंने उन्हे काफी फटकारा था। दवाखानेकी निश्चय ही जरूरत नही थी। मैंने उनसे कहा कि अगर किसीके पास पैसा हो तो दवाखाना खोल देना एक सबसे आसान काम है।

उन्होने गलती सुधारनेका वचन दिया था, पर उसे सुधारा नही। तब बाबा राघवदासको तहकीकात करनेके लिए भेजा गया और उन्होने खिलाफ रिपोर्ट दी। इसके बाद उनके चरित्रके सम्बन्धमें गम्भीर आरोप आये। इन आरोपोकी तहकीकात अभी चल रही है। असेम्बलीके लिए वे खड़े हो रहे है, इस बारेमे तो मुझे कुछ भी पता नही था। इस सम्बन्धमे उन्होने मुझसे कभी सलाह नही ली। वे जानते थे कि

मैं उनके लिए ऐसा प्रस्ताव नामंजूर कर देता। उनके बारेमें जब वह टिप्पणी निकली तब कही उन्हे लगा कि यह रहस्य अब मजबूरन खोलना ही पड़ेगा। उनके पहले पत्रमे सत्यको छिपाया गया था, पर दूसरेमे उन्होने कबूल कर लिया। उस टिप्पणीके प्रकाशित होनेके बाद उन्होने अपनी सफाई देनेके लिए सेगांव आनेके लिए पूछा। उनके पहलेके मित्रोंके ऐसे कई बयान मेरे पास थे, जिनमें बहुत ही अधिक निन्दापूर्ण बाते कही गई थी। इसलिए मैंने लिख दिया कि वे आ सकते है। लेकिन यह कहकर वे नट गये कि मेरे दर्शनमे अब उनका विश्वास नही रहा है। गोविन्द बाबूके साथ अपने सम्बन्धकी मैंने ईमानदारीसे जो यह रूपरेखा दी है, उसके प्रकाशमे केवल इतना ही कह सकता हूँ कि उनके इस पत्रमे सत्यको विकृत ढंगसे रखा गया है। जिस मनुष्यके बनानेमे मुझे बहुत-कुछ करना पड़ा और जो किसी समय मैं जो कराना चाहता वह करनेको तैयार था, उसके विरुद्ध एक भी शब्द लिखना मेरे लिए कोई खुशीकी बात नही है।

इस सारी कहानीमे सिर्फ राहत देनेवाली एक चीज है, वह यह कि गोविन्द बाबूको उन्मादग्रस्त मनुष्यकी तरह अकसर यह पता नही रहता कि वे क्या बोल रहे है या कि वे जो बोल रहे है वह झूठ है। मैंने जो यह लिखा है, ईश्वर करे, वे इसमें गहरे उतरकर ऐसे पिताकी वेदनाको जरा देख सके जिसने अचानक अपना एक आज्ञाकारी पुत्र खो दिया है, और मेरे हृदयमे उन्होने जो घाव कर दिया है उस पर वे पश्चात्ताप कर सके। उनकी तमाम सीमाओंके बावजूद, मैंने कभी उनकी वफादारीपर और जिस ध्येयने उन्हे मेरे साथ प्रेमके बन्धनमे बाँध दिया था, उसके लिए मेरी इच्छाएँ पूरी करनेकी उनकी तत्परतापर मैंने कभी सन्देह नही किया। उनके हालके दो पत्रोने और इस आखिरी पत्रने तो मेरे लिए वज्रपातका काम किया है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १९-१२-१९३६

१७५. कितना अन्तर!

ठक्कर बापाने ग्वालियरसे मुझे ये चार घटनाएँ लिख भेजी है:

(१) ग्वालियर राज्यके मुख्य हरिजन कार्यकर्ता, श्रीयुत के० बी० वातेने गत अक्तूबरकी दैनन्दिनीमें दर्ज किया है कि उज्जैनके टाउन हॉलमें हुई एक सार्वजनिक सभामें कैसे एक बड़ा हंगामा मच गया था। वहाँ जैन गुरु अनन्तसागर पाँच-छः सौ श्रोताओंके समक्ष भाषण कर रहे थे। उनका धर्मोपदेश सुननेके लिए कुछ हरिजन जैसे ही भवनमें प्रविष्ट हुए, श्रोताओंमें उपस्थित सनातनी लोगोने उनको बाहर निकलवानेके लिए शोर मचाना शुरू कर दिया। परन्तु वक्ता और सुधारकोंने दृढ़तासे उनकी माँग ठुकरा दी। नतीजा यह हुआ कि सनातनी लोग नाराज होकर सभासे उठकर चले गये।

(२) अक्तूवरके अन्तमें उज्जैनके कलेक्टरने एक आदेश जारी किया कि हरिजनोंके साथ घनिष्ठ सम्पर्क रखनेके कारण हरिजन-सेवकोको, सवर्ण हरिजन-सेवकोंको भी, आगेसे उज्जैनके मुख्य मन्दिरमें पूजा-अर्चनाके लिए प्रवेश नहीं करने दिया जायेगा। इस आदेशके सिलसिलेमें राज्य-सरकारको आवश्यक प्रार्थना-पत्र भेज दिया गया है।

(३) महुदिया गाँवकी एक चमार वालिकाने अपने एक कानमें सोनेकी वाली पहननेकी धृष्टता की थी। कुछ सनातनी लोगोंने इस पर एतराज किया और उसे उतरवा दिया। एक कार्यकर्त्ताको जब यह मालूम हुआ तो वह वहाँ पहुँचा और उसने उन लोगोंको समझाया-बुझाया। वालिकाको कानोमें वालियाँ पहने रहनेकी अनुमति दे दी गई।

(४) २७ अक्तूवरको नीमचमें एक खादी-कार्यकर्त्ता श्री मूलचन्द अग्रवाल की माताका देहान्त हो गया। श्रीयुत धनीराम सागर नामके एक हरिजन-कार्यकर्त्ता भी शव-यात्रामें सम्मिलित हुए और मृतात्माके प्रति अपने आदर-भावके कारण उसने कुछ दूरतक अर्थीको कन्धा भी दिया। शव-यात्रामें सम्मिलित सनातनी लोगोंने इस पर बड़ी आपत्ति की, परन्तु श्रीयुत मूलचन्दके दृढ़ता दिखानेपर मामला आगे नहीं बढ़ा।

त्रावणकोरकी घटनाओं और इनमें कितना अन्तर है! ग्वालियरके वर्तमान महाराजा अभी-अभी गद्दीपर बैठे हैं। उन्होंने हरिजनोके वारेमें एक उदारतापूर्ण वक्तव्य दिया था। अव यदि वे त्रावणकोरके महाराजाकी तरह उसपर अमल करेंगे तो उनके यहाँके कलैक्टर वैसे हास्यास्पद आदेश नही निकालेगे जैसा कि उज्जैन के कलैक्टरने जारी किया वताया जाता है। और न सवर्ण हिन्दू ही हरिजनोको उस तरह तग करेंगे जिस तरह कि ठक्कर वापाके विवरणके अनुसार उन्होने किया है। सवर्ण हिन्दुओकी एक वडी सख्या दो परस्पर-विरोधी मतोके वीच झूल रही है।

भारतीय रजवाड़ोमें वात वडी आसान मालूम पडती है। यदि त्रावणकोरकी तरह अन्य हिन्दू-नरेश भी वैसी अधिकृत घोषणाएँ कर दे, तो उनको वही मान्यता मिल जायेगी जो स्मृति-ग्रन्थोको मिली हुई है और उससे सारे विरोधियोके मुँह वन्द हो जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १९-१२-१९३६

१७६. चमत्कार कैसा होता है?

गत ९ अक्तूबरके आसपास लन्दनमें ईसाई सम्प्रदायोंकी एक सभा हुई थी। कैंटरबरीके आर्कबिशप उसके अध्यक्ष थे। इस सभाका जो विवरण १६ अक्तूबरके 'चर्च टाइम्स' में छपा, उससे एक उद्धरण नीचे दिया जा रहा है:

> इसके बादके वक्ताकी पोशाक एक आम आदमीकी-जैसी थी। वह अमेरिकाके मेथॉडिस्ट एपिस्कोपल चर्चका एक पादरी था, पर धर्माचार्योंकी वेशभूषाका कोई चिह्नतक उसकी पोशाकमें नहीं था। उसका नाम डॉ० पिकेट था। डॉ० पिकेट कुछ वर्षोंसे हिन्दुस्तानमें प्रत्यक्ष निरीक्षण करके वहाँकी सामुदायिक प्रवृत्तियोंका अध्ययन कर रहे हैं, और 'क्रिश्चियन मास मूवमेन्ट्स इन इंडिया' नामक पुस्तकमें उन्होंने अपने अध्ययनके परिणाम दिये हैं। इस पुस्तकको कैंटरबरीके आर्कबिशपने उल्लेखनीय और अत्यन्त उपयोगी बताया है। डॉ० पिकेट मानते हैं कि जिस प्रवृत्तिका उन्होंने स्वयं वर्णन किया है वह आध्यात्मिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहा कि हिन्दुस्तानमें दलित वर्गोंके ४५ लाख लोग हमारे प्रभु ईसाके शिष्य बन गये हैं, और वे अपने जीवनमें हमारे प्रभु ईसाके प्रति जैसी आस्था प्रदर्शित कर रहे हैं उसे देखकर हिन्दुस्तानमें लाखों आदमी आश्चर्यचकित हैं। ब्राह्मणोंने भी — कुछ संकोचके साथ ही सही — यह स्वीकार किया है कि जिन लोगोंके बारेमें वे ऐसा मानते थे कि उनमें धर्मकी भावना पैदा हो ही नहीं सकती और जिनको उन्होंने हिन्दू मन्दिरोंमें प्रवेश करनेका अधिकार देनेसे इनकार कर दिया था, ईसाई-धर्ममें उन लोगोंके भी चरित्र तथा जीवनमें कायापलट करनेकी बड़ी शक्ति है। डॉ० पिकेटने कहा कि ऐसे लोगोंमें गिरजा जाने और प्रार्थना करनेकी जैसी निष्ठा है, उसका जोड़ पश्चिमके ईसाइयोंमें भी मिलना मुश्किल है। जिस प्रदेशमें तेलुगू भाषा बोली जाती है, वहाँका उन्होंने एक उदाहरण दिया। वहाँ आज ९ लाख व्यक्ति ईसाई-धर्मका पालन कर रहे हैं। वहाँके १,०२६ गाँवोंमें से १,००२ में तो बारहों महीने रोज शामको गिरजोंमें ईश्वरकी प्रार्थना होती है, और दो-सौसे ऊपर गाँवोंमें नित्य सवेरे भी प्रार्थना होती है। हिन्दुओंमें से जो ईसाई हुए हैं, उनमें से अधिकांश कहते हैं कि वे ईश्वरके साथ आध्यात्मिक एकात्मता अनुभव करते हैं और विश्वास करते हैं कि उनके जीवनमें परमात्माका प्रवेश हो गया है। डॉ० पिकेट मानते हैं कि यह उनकी धर्मश्रद्धाके

सर्वथा सत्य होनेका ही प्रमाण है, और इससे पूरी तरह सन्तुष्ट जान पड़ते हैं। इन नये ईसाइयोंके हिन्दू पड़ौसी तक यह कबूल करते हैं कि ईसा मसीहके धर्मने इन लोगोंको उन्नत बनाकर इन्हें शरीरकी और रहन-सहनकी एक नये ढंगकी स्वच्छता सिखा दी है, और इन्हें विश्वासके योग्य बना दिया है। इससे भी अधिक मार्केकी बात तो यह है कि जिस प्रदेशमें अस्पृश्योंके जीवनमें ऐसी कायापलट हुई है, वहाँ सवर्ण हिन्दू भी आज गिरजोंमें सैकड़ोंकी तादादमें आने लगे हैं। डॉ० पिकेटने घोषणा की कि यह एक चमत्कार है, ईसाई-धर्मके इतिहासमें जो बड़े-बड़े चमत्कार हुए हैं, यह उनकी टक्करका ही है।"

इतने थोड़े शब्दोमे इतनी बडी अतिशयोक्ति शायद ही मेरे देखनेमें कही आई हो। भारतकी स्थितिसे अपरिचित पाठक तो यह मान लेगा कि ये आँकड़े डॉ० अम्बेडकरके चलाये आन्दोलनके कारण होनेवाले धर्म-परिवर्तनके होगे। डॉ० पिकेट ऐसा कोई दावा नही कर सकते — इसका मुझे पूरा यकीन है। उनके मनमें तो सदियो पहले हिन्दुस्तानमें सबसे पहले स्थापित हुए ईसाई चर्चसे लेकर आजतकके आँकडे ही रहे होगे। पर बिशप महोदयने आम तौरपर वैसी स्थिति होनेका जो दावा पेश किया है, उसका इन आँकड़ोसे कोई सम्बन्ध नही है। "४५ लाख दलितोके जीवनकी कायापलटसे चमत्कृत होनेवाले लाखो मनुष्य" हिन्दुस्तानमें है कहाँ? मै उन लाखोमें से ही हूँ, और मैने छः से अधिक बार सारे हिन्दुस्तानमें भ्रमण किया है। परन्तु डॉ० पिकेट द्वारा बताये गये पैमानेपर हुआ परिवर्तन मैने कही भी नही देखा, और अभी हालमें हुई ऐसी कोई कायापलट तो निश्चय ही कही देखनेमें नहीं आई। भारतीय ईसाइयोकी सभाओंमे भी मैने भाषण दिये हैं, पर मुझे दूसरे भारतीयोंसे उनकी हालत जरा भी बेहतर दिखाई नही दी। जहाँतक सामाजिक प्रतिष्ठाका सम्बन्ध है, धर्मका नाममात्रका परिवर्तन करनेपर भी अस्पृश्यताका कलक तो उनके साथ लगा ही रहता है। कहनेकी जरूरत नही कि मै यहाँ व्यक्तियोंकी नही, बल्कि समुदायोंकी बात कर रहा हूँ। "जिन लोगोंके बारेमे वे ऐसा मानते थे कि उनमें धर्मकी भावना पैदा हो ही नही सकती और जिनको उन्होंने हिन्दू मन्दिरोमें प्रवेश करनेका अधिकार देनेसे इनकार कर दिया था, ईसाई-धर्मने उन लोगोके चरित्र तथा जीवनमे कायापलट करनेकी बड़ी शक्ति है", ऐसा किन ब्राह्मणोने "— कुछ सकोचके साथ ही सही — स्वीकार किया है", यह मै जरूर जानना चाहता हूँ। पर, अगर इससे कुछ मतलब निकलता हो तो, मै यह स्वीकार करनेवाले बहुत-से ब्राह्मणोको बतला सकता हूँ कि जिन हरिजनोको सवर्ण हिन्दुओने उपेक्षित और तिरस्कृत कर दिया था उनके जीवन और उनकी दृष्टिमे जड़-मूलसे परिवर्तन कर देनेकी शक्ति सुधार-आन्दोलनमे उन्होने पाई है। अविश्वसनीय आम दावोके बारेमे मै कुछ नही कहता। पर "जिस प्रदेशमें अस्पृश्योके जीवनमें ऐसी कायापलट हुई है, वहाँ आज गिरजोंमे सैकड़ोकी तादादमें" कौन-से सवर्ण हिन्दू "आने लगे है", यह मै सचमुच

जानना चाहता हूँ"। डॉ० पिकेटने चकित कर देनेवाली जो वडी-वडी वाते वघारी है, उन्हे अगर साबित किया जा सके, तो सचमुच यह "ईसाई धर्मके इतिहासमे हुए बड़े-बड़े चमत्कारोकी टक्करका" तो है ही, बल्कि इसे मनुष्यके इतिहासमें हुए महान चमत्कारोकी टक्करका मानना पडेगा।

पर क्या चमत्कारोको अलकारयुक्त वक्तृत्वके प्रमाणकी आवश्यकता पडती है? भारतवर्षमे हमारी आँखोके सामने अगर ऐसा महान चमत्कार हुआ हो तो क्या उसे हम देख नही सकते? क्या हम उससे अछूते रह सकते है? चमत्कार तो आप ही हमारी नजरमे आ जाते है। त्रावणकोरके चमत्कारको ही देखिए। एक महीना पहले कोई इस बातपर विश्वास भी नही करता था कि त्रावणकोरके दो हजारसे ऊपर मन्दिरोके द्वार हरिजनोके लिए खुल जायेगे और हरिजन सैकडोकी सख्यामे, कट्टरपथी हिन्दुओकी किसी रोकटोकके विना, उनमे प्रवेश करेगे। पर यह घटना त्रावणकोरमें घटी है, और रास्ते चलनेवाला भी इसे देख सकता है। अब इसे चमत्कार कह सकते है या नही, इस बातकी चर्चाका यह प्रसग नही है। मै तो इसमे अदृश्य रहनेवाले परमेश्वरका प्रत्यक्ष हाथ देखता हूँ।

मुझे जितनी आस्था 'गीता' पर है, उतनी ही 'बाइबिल' पर है। मै मानता हूँ कि दुनियाके सारे महान् धर्म उतने ही सच्चे है जितना कि मेरा अपना धर्म। पर इन धर्मोंके अनुयायी आज जब खुद अपने ही हाथो अपने धर्मको हास्यास्पद बनाते है, जैसा कि विद्वान विशपने किया है, तब यह देखकर मेरे दिलको चोट पहुँचती है। नि सन्देह मैंने यह बात यह मानकर ही कही है कि विशपके भाषणका प्रस्तुत विवरण सारतः सही है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १९-१२-१९३६

१७७. अहिंसा क्या है?

एक मित्र[1] लिखते है:

अपने सभी अनुयायियोंसे आपका आग्रह है कि वे कर्मसे ही नहीं, मन और वचनसे भी अहिंसाका पालन करें। 'हरिजन'के २६[2] नवम्बरके अंकमें समाचार था कि मिशनरियोके मौजूदा रुखके बारेमें आपकी प्रतिक्रिया जाननेके इच्छुक श्री एन्ड्रूजसे आपने कहा था: "उनका रवैया भी अपने-अपने धर्मानुयायियोकी संख्या बढ़ानेके लिए इस क्षेत्रमें काम करनेवाले अन्य लोगोंकी ही तरह खराब है। दुःखका विषय यह है कि वे हरिजनोंकी कमजोरीका नाजायज फायदा उठानेमें जी-जानसे लगे हुए हैं। अगर वे यह कहे कि 'हिन्दू-धर्म एक

१. ए० एस० वाडिया, देखिए "अहिंसा क्या है?", ६-२-१९३७।
२. यहाँ २८ होना चाहिए।

आसुरी धर्म है और इसलिए आप हमारे धर्ममें आ जाइए' तो यह बात मैं समझ सकता हूँ। लेकिन वे तो उन्हें भौतिक सुखोंका प्रलोभन देते है और उनसे ऐसे-ऐसे वादे करते है जिन्हें वे कभी पूरा नहीं कर सकते।"[१]

यदि आपके शब्दोंको ठीक-ठीक उद्धृत किया गया है, तो मैं पूछना चाहूँगा कि — क्या यह पूरे मिशनरी वर्गके विरुद्ध शब्दोंसे की गई हिंसा नहीं है?

मेरे कोई अनुयायी नही है। मै तो स्वयं ही साधक हूँ और एक गुरुकी तलाशमें हूँ। पर मेरे मित्रने जो प्रश्न उठाया है उससे इसका कोई ताल्लुक नही। कुछ अरुचिकर शब्द कहना या लिखना निश्चय ही हिंसा नही है, विशेषकर तब जब कि वक्ता या लेखक अपनी कही या लिखी बातको सत्य समझता हो। और जब मैंने दीनबन्धुसे ऊपर उद्धृत बात कही थी तब उसे इसी प्रकार सत्य समझकर ही कहा था। लेकिन मेरा कथन यदि अतिरंजनापूर्ण या उससे भी अधिक बुरा, अर्थात् असत्य सिद्ध हो जाये, तो भी वह उस अर्थमें हिंसापूर्ण नही होगा जिस अर्थमें कि पत्र-लेखकने उसे पेश किया है। हिंसाका सार-तत्त्व यह है कि विचार, वचन या कर्मके पीछे कोई-न-कोई हिंसापूर्ण मन्तव्य होना चाहिए, अर्थात् उस विचार, वचन या कर्मकी जड़मे अपने तथाकथित विरोधीको नुकसान पहुँचानेका इरादा होना चाहिए। मेरे कथनके पीछे ऐसा कोई इरादा न तो था, और न हो ही सकता था। मैं तो ऐसे दो भले ईसाइयोके साथ दोस्ताना बातचीत कर रहा था जिनमें से प्रत्येक अपने-अपने ढंगसे मिशनरी है।

हरिजनोके साथ सनातनियोके व्यवहारके बारेमें और हालमें अपने प्रिय सहकर्मियों के कार्योंके बारेमे मैंने इससे कही कडी भाषाका प्रयोग किया है। लेकिन कड़ी भाषाके मेरे प्रयोगके पीछे कोई हिंसापूर्ण इरादा नही रहा है। और मेरे आलोचकोंने भी कोई हिंसापूर्ण इरादा रखनेका आरोप तो मुझपर आम तौरपर कभी नही लगाया।

सचमुच अहिंसाकी सबसे खरी कसौटी यही है कि हिंसा करनेकी गम्भीर-से-गम्भीर उत्तेजना होनेपर भी व्यक्ति अपने विचार, वचन और कर्ममें अहिंसापूर्ण बना रहे। सज्जन और विनम्र लोगोंके प्रति अहिंसक बने रहना कोई बड़ी बात नही। अहिंसा तो विश्वकी प्रबलतम शक्ति है, जो बडे-से-बडे प्रलोभनके विरुद्ध खड़ी रह सकती है। ईसा 'दुर्जनोकी पीढ़ी'को बडी अच्छी तरह जानते-समझते थे और उन्होने उनके वर्णनमे काफी खरी-खरी बाते कही, लेकिन ईश्वरसे उन्होने यही प्रार्थना की कि 'उनपर दया करो, क्योकि वे समझते ही नही कि वे क्या कर रहे हैं।'

मैंने उनसे जो बाते कही थीं, उनके समर्थनमें अधिकृत प्रमाण भी दिये थे। मैं अपने-आपको मिशनरियोका मित्र मानता हूँ। उनमें से अनेकके साथ मेरे बड़े अच्छे सम्बन्ध हैं। पर मेरी मित्रता कभी भी मेरे मित्रोंकी अपनी सीमाओंको, या उनके द्वारा समर्थित प्रणालियो या तरीकोकी अच्छाई-बुराइयोको अनदेखा नही करती।

१. देखिए "चर्चा: सी० एफ० एन्ड्रयूजके साथ," पृ० २१-२८।

अशोभनीयताके मिथ्या विचार या दूसरोकी भावनाओंको ठेस लगनेकी आशंकासे लोग अकसर अपनी बात साफ-साफ नही कह पाते और इस प्रकार आगे चलकर पाखण्डमे फँसने लगते है। लेकिन वैचारिक अहिंसाको यदि व्यक्तियों, समाजों या राष्ट्रोके स्तरपर जगाना और विकसित करना है तो हमे सत्य कहना ही पड़ेगा, चाहे वह सत्य कुछ समयके लिए कितना ही कटु या अप्रिय क्यो न लगे। और यदि अहिंसापूर्ण कर्मके पीछे अहिंसक विचार न हो, तो उस कर्मका कोई खास महत्त्व नही रह जाता। वह किसी दूसरे व्यक्तिको प्रभावित नही कर सकता। वह तो एक कपट-जैसा हुआ। कर्मकी शक्ति और उसका प्राण तो उसके मूलमे रहनेवाला विचार होता है। हम इस बातको समझते ही नही कि कर्म या वचनके मुकाबले विचार कही अधिक शक्तिशाली होता है। जब विचार, वचन और कर्म इन तीनोमे सामजस्य होता है तब विचारको वचन और कर्म दोनो मर्यादित करते है, इतना ही नही, स्वय वचनको कर्म मर्यादित करता है। कहनेकी जरूरत नही कि विचारसे मेरा आशय उस जीवन्त विचारसे ही है, जिसका वचन और कर्ममे रूपान्तरण सम्भव है। सामर्थ्यसे रहित विचार हवाई किलेसे अधिक अर्थ नही रखते और वे हवामे ही विलीन हो जाते है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १९-१२-१९३६

१७८. अश्लील विज्ञापनोंको कैसे रोका जाये ?[1]

अश्लील विज्ञापन-सम्बन्धी मेरा लेख[2] देखकर एक सज्जन लिखते है :

> जैसा कि आपने लिखा, जो अखबार वैसी अश्लील चीजोंके इश्तिहार देते है उनके नाम जाहिर करके आप अश्लील विज्ञापनोंका प्रकाशन रोकनेके लिए बहुत-कुछ कर सकते है।

इन सज्जनने जिस सैंसरशिपकी मुझे सलाह दी है, उसका भार मै नही ले सकता; लेकिन इससे अच्छा एक उपाय मै सुझा सकता हूँ। जनताको अगर यह अश्लीलता अखरती हो, तो जिन अखबारो या मासिक-पत्रोमें आपत्तिजनक विज्ञापन निकले, उनके ग्राहक यह कर सकते है कि उन अखबारोका ध्यान इस ओर आकर्षित करे और अगर फिर भी वे ऐसा करनेसे बाज न आये तो उन्हे खरीदना बन्द कर दें। पाठकोको यह जानकर खुशी होगी कि जिस बहनने मुझे अश्लील विज्ञापनोकी शिकायत भेजी थी, उसने इस दोषके भागी मासिक-पत्रके सम्पादकको भी इसके बारेमे लिखा था, जिसपर उन्होने इस भूलके लिए खेद-प्रकाश करते हुए उसे आगेसे न छापनेका वादा किया है।

१. लेखका अंग्रेजी अनुवाद २-१-१९३७ के हरिजनमें प्रकाशित हुआ था।
२. देखिए पृ० ३४-३६।

यह कहते हुए भी मुझे खुशी होती है कि मैंने इस बारेमें जो-कुछ लिखा, उसका कुछ अन्य पत्रोने भी समर्थन किया है। 'निस्पृह' (नागपुर) के सम्पादक लिखते हैं :

> अश्लील विज्ञापनोंके बारेमें 'हरिजन'में आपने जो लेख लिखा है उसे मैंने बहुत सावधानीके साथ पढ़ा। यही नही, बल्कि मैंने उसका अविकल अनुवाद भी 'निस्पृह'में दिया है और एक-छोटी-सी सम्पादकीय टिप्पणी भी उस पर मैंने लिखी है।
>
> मैं बतौर नमूनेके एक विज्ञापन इस पत्रके साथ भेज रहा हूँ, जो अश्लील न होते हुए भी एक तरहसे अनैतिक तो है ही। इस विज्ञापनमें साफ झूठ है। आम तौरपर गाँववाले ही ऐसे विज्ञापनोंके चक्करमें फँसते हैं। मैं ऐसे विज्ञापन लेनेसे इनकार करता रहा हूँ। और इस विज्ञापनदाताको भी यही लिख रहा हूँ। जैसे अखबारमें निकलनेवाली समस्त पाठ्य सामग्रीपर सम्पादककी निगाह रहना जरूरी है, उसी तरह विज्ञापनोपर नजर रखना भी उसका कर्त्तव्य है। और कोई भी सम्पादक अपने अखबारका ऐसे लोगों द्वारा उपयोग न होने दे जो भोले-भाले देहातियोंकी आँखोमें धूल झोंककर उन्हें ठगना चाहते हैं।

हरिजनसेवक, १९-१२-१९३६

१७९. पत्र : महादेव देसाईको

१९ दिसम्बर, १९३६

चि० महादेव,

निश्चय किये अनुसार, पत्र इस व्यक्तिके हाथ ही भेज रहा हूँ। इसका नाम महादेव है। यह जो ला सके, इसे देना। लीलावती तो गाडीमें आ ही रही है।

मुझे ६ अनार और १२ केले चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५१२) से।

१८०. कर्त्तव्यभ्रष्ट क्या करें?

जिस दु:खद घटनाका वर्णन मुझे करना पड़ा है उसके आधारपर कुछ मित्रोंने इस प्रकारका प्रश्न उठाया है[1]: "आप इस तरहकी घटनाओंको प्रकाशमें लाते हैं, और सम्बन्धित व्यक्तियोंको अपना पद छोड़ देनेकी सलाह देते हैं। आप बाह्य दृष्टिसे उनके काममें दोष नहीं निकाल पाये। आपने उनके कामकी प्रशंसा भी की है। क्या अब उन्होंने अपनी योग्यता भी गँवा दी? क्या जनता उनकी सेवासे वंचित रहेगी? उनके स्थानकी पूर्ति कौन करेगा?"

यह प्रश्न विचार करने लायक है। मैं तो इस प्रश्नपर वर्षों पहले विचार कर चुका हूँ और उसपर असंख्य बार अमल कर चुका हूँ। मैंने 'असंख्य' विशेषणका प्रयोग बिना सोचे-समझे नहीं किया है। मैंने उसपर इतनी अधिक बार अमल किया है कि मैं उसकी संख्या नहीं बता सकता। मैं यह मानता हूँ और मेरा यह अनेक बारका अनुभव है कि कोई व्यक्ति कितना भी योग्य क्यों न हो, उसके गुप्त अनीतिपूर्ण कृत्यका असर उसके कामपर पड़े बिना नहीं रहता। इस नियमका एक सुदृढ़ आधार है, और वह यह कि वह व्यक्ति जो काम करता है उसके लिए नीतिकी आवश्यकता है। योग्यताके अभावके बावजूद, जिनका चरित्र पूर्णत: दोषरहित है उनका काम सफल हुआ है। इसके उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। उदाहरण देना एक नाजुक काम है। किन्तु नीतिपर आधारित कामोंकी ओर नजर डालनेवाला मुझसे सहमत हुए बिना नहीं रहेगा। यह माननेमें किसी तरहकी आनाकानी नहीं होनी चाहिए कि अस्पृश्यता-निवारणका कार्य चरित्रहीन व्यक्तिसे कराना असम्भव है। शास्त्रोंमें प्रवीण श्रेष्ठ वक्ता भी सनातनी हिन्दूकी मान्यताको कैसे बदल सकता है? उसकी बुद्धिपर किये गये प्रहार व्यर्थ जाते हैं। चैतन्य, रामकृष्ण, राममोहन राय, दयानन्द आदिका प्रभाव अब भी देखा जा सकता है। यह प्रभाव क्या जोर-जबरदस्तीसे पड़ा होगा? इनकी अपेक्षा कहीं प्रखर बुद्धिके झुण्ड-के-झुण्ड लोग शायद हमें देखनेको मिल जायेंगे। किन्तु वे मनुष्योंका हृदय-परिवर्तन नहीं कर सके। इस तरहके उदाहरणोंसे संसारका इतिहास भरा पड़ा है। इसके बावजूद, यदि हम इसका प्रमाण माँगें तो यहाँ 'नाच न जाने आँगन टेढ़ा'वाली कहावत लागू होगी। हाँ, यह स्वीकार करना पड़ेगा कि चरित्रवान व्यक्तियोंमें भी उद्यम, आवश्यक ज्ञान प्राप्त करनेकी उत्कट इच्छा, विवेक आदि गुण तो होने ही चाहिए।

किन्तु प्रश्नकर्त्ताका प्रश्न तो अभी अनुत्तरित ही रह गया। जो लोग सार्वजनिक संस्थाओंको छोड़ चुके हैं, यदि उनमें सेवा करनेका उत्साह हो तो वे उससे अलग

१. देखिए "चित्तशुद्धिकी आवश्यकता", पृ० १४७-५०।

नही होते, अलग नही हो सकते। कोई किसीको उसके धर्मसे मुक्त नही कर सकता। धर्म तो उसीका है जो उसका पालन करता है। धर्म उनके लिए है जो हरिजन-सेवा, खादी-कार्य, ग्राम-सेवा आदिके काममे लगे हुए है। जिन लोगोका पतन हो चुका है, ऐसे लोगोकी मूर्च्छा यदि टूट चुकी हो तो वे कही भी रहकर सेवा कर सकते हैं। ऐसे लोगोको किसी गाँवमें वसनेसे कौन रोक सकता है? मूक भावसे पड़े रहकर गाँवमें भंगीका काम करनेसे उन्हे कौन रोक सकता है? कताई करने और अन्य लोगोको कातना सिखाने या हरिजनोकी सेवा करनेमें क्या अड़चन हो सकती है? ऐसा करते हुए वे इतने शुद्ध वन जायेंगे कि उन्हे समाजके बीच खडे होनेमे कोई कठिनाई नही होगी। या फिर अपने स्थानपर, लोगोंकी नजरमें न आनेके बावजूद, उनका ऐसा प्रभाव पड़ेगा कि वह व्यापक होगा। मैने ऐसा कभी नही कहा, न कभी माना कि पापका मार्जन ही नही किया जा सकता। यहाँतक कि पतितोका सिरमौर भी महा पुण्यात्मा वन सकता है। किसी इतिहासकारने तुलसीदासके वारेमें ऐसा ही कहा है। 'गीता' पुकार-पुकारकर कहती है कि भक्तिमार्ग महापापीके लिए भी मुक्तिप्रद होता है। इसीलिए भगवानका एक विशेषण 'पतितपावन' है।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २०-१२-१९३६

१८१. आदर्श और व्यवहार

'आदर्श भंगी' शीर्षक मेरा लेख[1] पढकर एक सज्जनने लम्वा पत्र लिखा है, जिसका सार[2] यह है:

लेखकने तो अपने पत्रको वहुत-सी दलीलोसे अलकृत किया है, लेकिन उनमें कोई ऐसी नई दलील नही है। पत्रमें केवल मुझे समझानेकी कोशिश की गई है। इसलिए उन दलीलोमे पाठकोको नही उतारूँगा। जवावमें सिर्फ कुछ तथ्य ही देना चाहता हूँ, जिससे कि मेरा आशय अधिक स्पष्ट हो जाये। जो आदर्श अमलमें जरा भी न लाया जा सके, वह आदर्श ही नहीं। आदर्श और व्यवहारके वीचमें अन्तर सदा रहेगा ही। इस अन्तरको कम करनेमें पुरुषार्थकी आवश्यकता रही है। ऐसे उच्च शिक्षाप्राप्त और भंगीका काम करनेवाले मुझे आज भी अच्छी सख्यामें मिल रहे है जो मेरे आदर्श भगीतक पहुँचनेका प्रयत्न कर रहे है। उनकी सख्या रोज वढ़ती जाती है। अगर कुछ मनुष्य जन्म-भर वढई रहेगे, अनेक किसान रहेगे, कुछ सगतराश

१. देखिए पृ० ९७-९९।
२. यहाँ प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है। पत्र-लेखकने लिखा था: आदर्श भंगीवाला आपका लेख मेरे गळे नहीं उतरा। मालूम होता है, आप आदर्श और व्यवहारके बीच भेद नहीं करते। आपका आदर्श भंगी ऐसा है कि उस तक कभी कोई नहीं पहुँच सकता। ऐसे आदर्श भंगी पैदा करनेमें आप सफल नहीं होंगे।

रहेंगे, नाई रहेगे, तो भंगी क्यो नही? ये सब ज्ञानके अधिकारी नही है क्या? असलमे देखा जाये तो हरेक डॉक्टर, हरेक नर्स भगी तो है ही। उन्हे मल-मूत्र बिखेरना पड़ता है, सूंघना पड़ता है, साफ करना पडता है, उसका पृथक्करण करना पडता है। उन्हे हम भंगी मान ले तो क्या उनका अपमान होगा? किस कारणसे? भगीने ऐसे कौनसे पाप किये है कि उसका धंधा नीच-से-नीच माना जाये? सारी दुनियामे ऐसा नही है। विलायतमे भी कुछ लोगोको रास्ते साफ करने पड़ते है, मैला उठाना पड़ता है। पर वहाँ इस धंधेको कोई नीच धंधा नही मानता।

कोई भी धन्धा हो, जब उसका शास्त्र बन जाता है तब उसमे दूसरे शास्त्रो-जितना ही रस उत्पन्न हो जाता है। हमारे यहाँ ही धंधोको नीच मानकर समाजने उनके शास्त्र नही बनने दिये। इसलिए बढईगिरीका शास्त्र बढई नही रचता, उनका शास्त्र हम पश्चिमसे लाते है। डॉ० फाउलर आज बगलौरमे भंगीका काम कर रहे है। जिस होटलमें वे रहते है वहाँका सारा मैला वे इकट्ठा करते है और सूक्ष्म रीतिसे यह शोध कर रहे है कि उसकी आसान-से-आसान तरीकेसे किस तरह खाद बन सकती है। पश्चिममे बड़े-बड़े शहरोका मैला उठाना और उसे ठिकाने लगाना एक प्रकाण्ड क्रिया है। उसे करनेवाले भगी ही हुए ना? दार्जिलिंग और शिमलेमे मैलेकी सफाईपर काफी पैसा खर्च किया जाता है। यह कैसी शर्म और दु खकी बात है कि हमारे भगी भाइयोमे से किसीने इसका ज्ञान प्राप्त नही किया। यह उच्च वर्णके माने जानेवाले लोगोका महान पाप है। भगीकी अवगणना करके वे जगत्की अवगणनाके पात्र बन गये है। मेरे मनमे जरा भी सन्देह नही कि ब्राह्मण-जितना ही मान जबतक भंगीको प्राप्त नही होगा, तबतक भारतको सुख मिलनेका नही, और न आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्वतत्रता मिलेगी। यह मैंने कोई आदर्शकी बात नही कही है, बल्कि यह शुद्ध व्यवहारकी बात है। भंगी जैसा आज है, उसे भी मान दिया जाये — यह मेरी माँग है। जब कोई भगी ब्रह्मज्ञानी हो जायेगा, तब तो हम विवश होकर उसकी पूजा करेगे ही। पर भगी आज जैसा है वैसा भी वह हमारा सगा भाई है, ऐसा समझकर हम बरताव करेगे तभी हमारी शुद्धि होगी।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २०-१२-१९३६

१८२. पत्र : अमतुस्सलामको

२० दिसम्बर, १९३६

चि० अ० सलाम,

तू तो अब हिन्दीमें खूब लिखने लगी है। मैं तुझे तार क्यों दूं? तेरी मूर्खताका पार ही नहीं है। अगर तू वहाँ शान्तिसे इलाज न करवाये तो मेहरबानी करके सेगाँव आ जा। मैं अपनी इच्छानुसार तेरी दवा करूँगा। मैं सेगाँव २९को और देर हुई तो ३१ को पहुँचूंगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३६८) से।

१८३. पत्र : कस्तूरभाई लालभाईको

फैजपुर
२० दिसम्बर, १९३६

भाई कस्तूरभाई,

जैसा कि हमारे बीच तय हुआ था, सरपंचको सौंपनेके कागज-पत्रोंको मैं ध्यानपूर्वक देख गया हूँ। तीन प्रश्नोंसे सम्बद्ध सारे कागज अलग निकाल लिये हैं। सरपंचको जो कागज भेजे जायेंगे, उनकी सूची इसके साथ भेज रहा हूँ। न० २, ७, ८, ९, १४, १५ और १६ के साथ मिल-मालिकोंकी एसोसिएशनकी ओरसे जो अन्तिम उत्तर आये हैं, उन्हे भी संलग्न कर दिया है। न० १०, ११, और १२ मजदूर यूनियनकी ओरसे पेश की गई स्वतन्त्र टिप्पणियाँ हैं। इनके सम्बन्धमें एसोसिएशनकी ओरसे कोई जवाब नही आया। ये टिप्पणियाँ भी वर्धामें हुई चर्चासे सम्बन्धित है। इनमें से एक तो, आप देखेंगे, भूल-सुधार सम्बन्धी है। इसकी नकल अन्य टिप्पणियोंके समान एसोसिएशन को भी भेज ही दी गई है, सो इसे रख लेना उचित होगा। किन्तु यदि आपको लगे कि इन तीन टिप्पणियोंको निकाल लेना चाहिए तो मुझे कोई एतराज नही है। मैं स्वयं तो इस मामलेके गुण-दोषोंमें गया ही नहीं हूँ। अतः अपने निर्णयके लिए मुझे इन मूलों अथवा इन टिप्पणियोंमें उल्लिखित अंकोंकी आवश्यकता नही है। अत. इस सम्बन्धमें जैसा आप कहे, मैं करनेको तैयार हूँ।

यदि सरपंचतक जाना ही हमारे नसीबमें हो तो इस सूचीके अनुसार कागज-पत्र तो मेरे पास तैयार है। इनमें मैंने अपनी कोई टिप्पणी वगैरह नही लिखी है,

इसलिए ये सरपंचको भेजे जा सकते है। किन्तु मै आशा करता हूँ कि मेरे उठाये मूल प्रश्नोके बारेमें आपको स्वतन्त्र रूपसे अथवा किसी वकील मित्रकी सहायतासे विश्वास हो गया होगा और आप, हम ने जो उपाय सोचे थे, उन्हे सफलतापूर्वक काममे ला रहे होगे। कागजोको व्यवस्थित करते हुए मुझे उन्हे फिरसे पढ़ना ही पडा। लेकिन सरसरी तौरसे ही पढ पाया हूँ। मुझे तो लगता है, मेरा निर्णय दीपकके प्रकाशके समान स्पष्ट है। किन्तु इसका तो कोई अर्थ नही होता। आपके मनपर भी यही छाप पडे, तब और तभी हम सरपचतक जानेसे बच सकते है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४१९८) से।

१८४. पत्र : श्रीमन्नारायण अग्रवालको

२० दिसम्बर, १९३६

चि० श्रीमन्,

तुम्हारा लेख पढ़ गया हू। 'हरिजन' मे नही छप सकता है। कही छपने लायक नही है। तुम्हारे पास जो योजना है उसे प्रकट करो। तुम्हारा प्रस्ताव तो सर्वमान्य है। लेकिन 'लिटरेसी' का अर्थ क्या किया जाये। यह प्रश्न बहुत विवादग्रस्त है।

बापूके आशीर्वाद

पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० २९९।

१८५. पत्र : मीराबहनको

२१ दिसम्बर, १९३६

चि० मीरा,

वैसी वर्षा तो हमारे यहाँ नही हुई, लेकिन आँधी और बिजलीका पूरा जोर रहा। यहाँ अबतक कुछ नही हुआ। लोग पूरी शक्तिसे काम कर रहे हैं, फिर भी काफी-कुछ करना शेष है। प्रकृति कृपालु नही रही। परन्तु उसकी इस अकृपाको हम भूल जायेंगे यदि वह इसे दोहराये नही।

यदि प्रह्लादका बालक गाड़ी खीच ले जाये, तो बड़ी बात होगी,। मुझे खुशी है कि तुमको हर शाम आध घटेके लिए बालकोबाका साथ मिल जायेगा।

फलोके बारेमे मैने बड़ी सख्त हिदायते दी हैं। आशा है, बा और बालकोबाको बिना किसी अड़चनके फल मिल रहे होंगे।

अपनी शक्तिसे अधिक काम मत करो।

सस्नेह,

बापू

[पुनश्च:]

तिलकनगर डाकघर। इससे अधिक पतेकी जरूरत नही।

[पुनः पुनश्च:]

पी०से बात की है। वह लिखेगा।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३६८) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९८३४ से भी।

१८६. पत्र : लीलावती आसरको

तिलकनगर
२१ दिसम्बर, १९३६

चि० लीला,

क्या तुझे मेरा पत्र नही मिला? अब भाईको आराम होता आ रहा है, जानकर प्रसन्न हुआ।

दमयन्तीसे कहना, मैंने उसे बहादुर समझा था। बहादुर स्त्री न कभी रोती है, न बेचैन होती है। जीवन-मरण न तुम्हारे हाथमे है, न और किसीके। तो फिर शोक क्यो किया जाये? सेवा की, तहाँ हमने सब-कुछ कर लिया।

साथमें तो केवल महादेव, बाबलो, प्यारेलाल और राधाकिसन हैं। खानसाहब और मेहरताज तो हैं ही। वे अलग रहते हैं। मेहर प्रभाके साथ है।

बा, मनु, नीमूका काना और नवीन २४ को आयेंगे।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

इतना ही मेहर और ताराके लिए काफी है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३५३) से। सी० डब्ल्यू० ६६२८ से भी; सौजन्य : लीलावती आसर।

१८७. पत्र : हरिलाल गांधीको

फैजपुर कांग्रेस
२१ दिसम्बर, १९३६

चि० हरिलाल,

तू मेरे लिए ८ महीने तक शराब छोड़े रहेगा, और विजयशकरजीके लिए ९ महीनेतक। तो अपने स्वयके लिए और भगवानके लिए कब और कितने समय तक के लिए शराब छोड़ेगा?

बापू

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य : नारायण देसाई।

१८८. पत्र : मुन्नालाल जी० शाहको

२१ दिसम्बर, १९३६

चि० मुन्नालाल,

दुग्धालय और भगीका तुम्हारा काम ठीक चल रहा होगा। इस कामके बारेमें मीराबहनका प्रमाणपत्र लेना। वे यह काम ठीक जानती है। दूधका हिसाव बारीकीसे समझ लेना। विद्यार्थी रविवारको आ गये होगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५९२) से। सी० डब्ल्यू० ७००४ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल जी० शाह।

१८९. पत्र : विजया एन० पटेलको

तिलकनगर
२१ दिसम्बर, १९३६

चि० विजया,

मुझे कुछ विशेष नही लिखना है। तू मुझे लिखना। सब कामोमें खूब सुघड़ाई का समावेश करना। हिसाब-किताब बिलकुल ठीक रखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७०६२) से। सी० डब्ल्यू० ४५५४ से भी; सौजन्य: विजया एम० पचोली।

१९०. पत्र : बलवन्तसिंहको

२१ दिसम्बर, १९३६

चि० बलवंतसिंह,

रामदास को खत दिया। वह मानता था तुमारे पास कुछ काम ही नही था तो यहाँ क्यो न आना? मैंने जब गोमाता की बात की तो खामोश हो गया। तुमारी तबीयत अच्छी होगी।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १८८८) से।

१९१. भाषण : कांग्रेस-स्वयंसेवकोंके समक्ष[1]

२१ दिसम्बर, १९३६

कांग्रेसके स्वयंसेवकोंसे — विशेष रूपसे जिनके जिम्मे सफाई वगैरहका काम है उनसे — एक निवेदन करते हुए महात्मा गांधीने आज रात अपना मौन भंग किया। लगभग ५०० स्त्री-पुरुषोंने पूरी शान्तिके साथ उनकी बातें सुनीं।

वे बहुत ही शान्त स्वरमें और समझानेवाले लहजेमें बोले। उन्होंने — स्वयं उन्हींके शब्दोंमें कहें तो — "भंगी-कार्य-शास्त्र" की विस्तारसे चर्चा की। भाषण आरम्भ करते हुए उन्होंने कहा कि भंगीका काम तो मैंने बहुत पहले दक्षिण आफ्रिकामें ही शुरू कर दिया था। भंगी बनकर जन्म लेना पूर्व जन्मके पुण्योंका फल होता है। मुझे नहीं मालूम कि किन कारणोंसे एक आदमी भंगीके घर जन्म लेता है और दूसरा ब्राह्मणके घर। लेकिन जहाँतक समाजके लाभकी बात है, भंगी ब्राह्मणसे रत्ती-भर भी कम नहीं है। जो लोग भंगीके कामको अधम मानते हैं वे अज्ञानवश ही ऐसा मानते हैं।

हरएक माँ अपने बच्चोंके लिए भंगीका काम करती है। हरएक डॉक्टर अपने मरीजोंके लिए अकसर भंगीका काम करता है। लेकिन डॉक्टर लोग जहाँ उसके लिए मोटी-मोटी फीसें फटकारते हैं, वहाँ समाजके लिए उतना ही उपयोगी काम करनेवाले भंगियोंको उनके मुकाबले बहुत ही थोड़ा मिलता है। समाज भंगियोंके कामको नीची नजरसे देखता है, जबकि डॉक्टरोंके कार्यको भला और ऊँचा उठानेवाला काम मानता है। ऐसे किसी भी व्यक्तिसे जो सही भावनासे और डटकर और उसमें अपना गौरव मानते हुए भंगीका काम नहीं कर सकता या नहीं करता, यह आशा नहीं रखी जा सकती कि वह देश-सेवाका कोई भी काम प्रभावकारी ढंगसे कर सकेगा। कांग्रेस-अपने अधिवेशनोंकी कार्यवाही चलाती रह सकती है और सफलता भी हासिल कर सकती है, लेकिन तभी जब सफाईका काम समुचित ढंगसे चलता रहे। कांग्रेस अधिवेशनकी कार्यवाही भले ही सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाये, लेकिन यदि सफाईका काम सफल नहीं होता तो कांग्रेसके किसी भी अधिवेशनको सफल नहीं कहा जा सकता। दो या तीन दिनोंतक तो भोजनके बिना भी काम चलाया जा सकता है और बिना किसी खास परेशानीके चलाया जा सकता है, लेकिन इससे कम समयतक भी भंगीकी सेवाके बिना किसीका काम नहीं चल सकता। कांग्रेस-

१. इस भाषणकी रिपोर्ट हिन्दू, हिन्दुस्तान टाइम्स और हितवादमें भी छपी थी।

अधिवेशनोंके प्रबन्धका काम जिन लोगोंके जिम्मे रहता है, उनको सबसे अधिक चिन्ता इसी बातकी करनी पड़ती है कि भोजन और सफाईकी व्यवस्थाको लेकर कोई शिकायत न हो। उनको दूसरी चीजोंकी इतनी चिन्ता नहीं करनी पड़ती।

महात्मा गांधीने ऐसे कुछ स्वयंसेवकोंके कामका उल्लेख किया जिनको उन्होंने काम करते देखा था। उन्होंने उनके कामकी आलोचना करते हुए कहा, मुझे लगा कि वे बहुत धीमी गतिसे काम करते हैं। मैं उनको दोष नहीं देता। इसमें उनका दोष नहीं। वे ईमानदारीसे काम कर रहे थे, लेकिन उनको किसीने प्रशिक्षित ही नहीं किया। मुझे विश्वास है कि प्रशिक्षण मिले तो वे शानदार काम करके दिखा सकते हैं। भारतमें रामराज्य आना निश्चित है। और मेरी कल्पनाका रामराज्य एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें ब्राह्मण और भंगी, बल्कि यहाँतक कि ब्राह्मण और महाराजाके बीच भी कोई भेद नहीं रहेगा। उनको उनके कामकी सामाजिक उपयोगिताकी दृष्टिसे आँका जायेगा और उसीके अनुसार उनको महत्त्व दिया जायेगा। गांधीजीने उस समाज-व्यवस्थामें भंगीके महत्त्वपर फिर जोर देते हुए घोषणा की कि भारतमें स्वराज्य विधान-मण्डलोंमें कांग्रेसी विधायकोंके प्रयत्नोंसे नहीं आयेगा, बल्कि उन भंगियों और अन्य कार्यकर्त्ताओंकी कुशल और ईमानदाराना कोशिशोंके बलपर ही आयेगा जो, नगरपालिकाओंके और अन्य सार्वजनिक मानपत्रोंमें अपनी प्रशंसा या किसी पुरस्कारकी अपेक्षा किये बिना, अपने कर्तव्य-पालनमें जुटे रहेंगे। उन्होंने आग्रह किया कि फैजपुर आनेवाले दर्शकों और प्रतिनिधियों तथा कार्यकर्त्ताओंको उसे एक आदर्श गाँव बनाकर दिखाना चाहिए।

गांधीजीने उनके लिए नियत किये गये स्वयंसेवकोंकी संख्याका उल्लेख करते हुए कहा कि घूमते समय मेरे साथ रहनेके लिए जो पन्द्रह स्वयंसेवक तैनात किये गये है, वे बहुत ज्यादा हैं। मेरे लिए इतना ही काफी होगा कि मुझे रास्ता बतलानेके लिए बस एक स्वयंसेवक दे दिया जाये। फैजपुर आखिर एक गाँव ही है, कोई बड़ा शहर नहीं, इसलिए दर्शकोंकी बड़ी भीड़पर काबू पानेके लिए बड़ी संख्यामें स्वयंसेवक रखनेकी भी कोई जरूरत नहीं है।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २२-१२-१९३६

१९२. तार : इलवा मन्दिर-प्रवेश समारोह समितिको

[२२ दिसम्बर, १९३६ या उससे पूर्व][1]

अधीर न हो। ६ जनवरीसे पहले आना सम्भव नही। पाँच दिन का कार्यक्रम बनाकर मुझे भेजे और सब इन्तजाम कर ले।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २३-१२-१९३६

१९३. पत्र : मीराबहनको

फैजपुर

२२ दिसम्बर, १९३६

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र मिला।

मुझे उम्मीद है कि बा २४को आ जायेगी। अच्छा ही रहा कि मै उसे अपने साथ नही लाया। यहाँ तीमारदारी चाहनेवाले जितने ही कम लोग हो उतना ही अच्छा। मेरी चलती तो मै बा को आनेसे रोक देता। लेकिन वैसा हो नही सकता था।

जबतक तुम अपनी शक्तिसे अधिक मेहनत नही करती, तबतक तुम जितना चाहे काम करो, मुझे उसकी चिन्ता नही।

मुझे आशा है कि प्रह्लादके बालककी दशा अब सुधारपर है और नई गायकी भी। उसे हम न बचा सके तो बड़ा दु:ख रहेगा।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३६९) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९८३५ से भी।

१. साधन-सूत्रमें विवरण पर २२ दिसम्बर की तिथि दी गई है।

१९४. भाषण : किरोड़ामें[1]

२२ दिसम्बर, १९३६

गांधीजीने कहा कि मुझे इस गाँवमें आनेकी बड़ी खुशी है। मैं इसको एक तीर्थ-जैसा मानता हूँ, क्योंकि मुझे याद है कि इस गाँवके धनजी नाना चौधरीने क्या सेवा की है, कैसा त्याग किया है। उन्होंने पुलिस-विभागकी नौकरीको लात मारकर कांग्रेसके काममें काफी हाथ बँटाया। मुझे यह भी याद है कि श्री चौधरीकी सफलताओंमें यहाँके ७५ स्त्री-पुरुषोंने क्या योग दिया और किस तरह उनका साथ दिया।

गांधीजीने कहा कि मैं यहाँ उन सेवाओंके लिए पूरे गाँवको बधाई देने आया हूँ और मुझे यह देखकर खुशी हो रही है कि आप लोगोंने गाँवको कितना साफ-सुथरा रखा है। कांग्रेस-अधिवेशन आपके इतने समीप रखे जानेका कारण शायद 'संघर्षमें किया गया आपका वह योगदान ही है।

मुझे जहाँ यह देखकर खुशी हो रही है कि आपने अपने गाँवको काफी साफ-सुथरा रखा है, वही मुझे दु:खके साथ यह भी कहना पड रहा है कि मनुष्य-मनुष्य मे भेद-भाव करना बुरा है। आपने जो दूसरा आदर्श वाक्य अंकित कर रखा है उसमे कहा गया है कि सच्चा हिन्दू-धर्म हरिजनो और सवर्ण हिन्दुओंके बीच भेद नही मानता। लेकिन मैंने गाँवमे और इसकी हरिजन बस्तीमें घूमकर देखा है कि हरिजनो और सवर्ण हिन्दुओके बीच भेद-भाव बरता जाता है। आप हरिजनोके साथ उस तरहका बरताव नही करते जैसा आपके आदर्श वाक्यमें बतलाया गया है। आप उनको अपने कुओसे पानी नही लेने देते और इसलिए उनको तालाबोसे पानी लेना पडता है और, मै समझता हूँ, कभी-कभी मवेशी भी उन तालाबोमे पानी पीते है। यह बड़ी बुरी चीज है।

हमारा देश विदेशियोकी गुलामीमे रहा है। हम स्वतन्त्र नही है। हालाँकि हम सब मानते है कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, लेकिन हम अपने अधिकार को अबतक प्राप्त नही कर पाये है। इसमें कांग्रेसकी सदस्यताका कोई महत्त्व नही है। देश-भरमे आज काग्रेसके कितने सदस्य है? अधिक-से-अधिक एक करोड। फिर शेष ३४ करोडका क्या होगा? मैंने काग्रेस छोड दी है। मैं काग्रेसका चवन्निया सदस्य तक नही हूँ। मैंने आम लोगोको सही जानकारी और सही दिशा देनेका निश्चय

१. गांधीजीको सौ रुपयेकी थैली और मराठीमें एक मानपत्र भेंट किया गया था। गांधीजी ने हिन्दीमें भाषण दिया था। भाषणका विवरण हिन्दू, हिन्दुस्तान टाइम्स और हितवादमें भी प्रकाशित हुआ था। हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं हैं।

किया है, इसलिए मैं भी ३४ करोड़में ही शामिल हो गया हूँ। उदाहरणके लिए, आपके गाँवके २,५०० लोगोमे से सिर्फ २५० ही कांग्रेसके सदस्य है। यदि आप सब कांग्रेसके सदस्य न हो, तो भी कोई हर्ज न ही। इसका मतलब यह नही कि मै चाहता हूँ कि आप सदस्य न बने। लेकिन मैं यह जरूर महसूस करता हूँ कि सिर्फ सदस्य बन जानेसे कोई लाभ नही। वैसे मैं इस पक्षमे हूँ कि आप सब कांग्रेसके सदस्य बन जाये। आप विधान-मण्डलोमे प्रवेश करना चाहे, तो उसपर भी मुझे कोई आपत्ति नही। लेकिन वैसा करनेकी कोशिशमे आपको अपने बीच मतभेद और झगड़े खड़े करनेकी जरूरत नही।

विधान-मण्डलोका काम मैं उन लोगोपर छोडता हूँ जो उस तरहका काम करने के इच्छुक है और जिनके पास उसके लिए योग्यता और उतना अवकाश है। मैंने कहा है कि विधान-मण्डलोमे प्रवेश करके कोई ठोस चीज हासिल होनेवाली नही है। लेकिन यदि कांग्रेसने विधान-मण्डलोकी सीटोको अपने अधिकारमे कर लेनेका निर्णय किया है, कांग्रेसी सदस्योको कौसिलोमे भी कांग्रेसका झण्डा गाडनेका आदेश दिया है, तो उसने ऐसा इसलिए किया है कि वह नही चाहती कि वे सीटे अवांछनीय लोगोके हाथोमे जाये और वे उनका ऐसा उपयोग करे जो राष्ट्रीय हितोके लिए हानिकर हो।

यदि वास्तविक स्वराज्य प्राप्त करना है तो हमे आपसमे झगड़ना बन्द कर देना चाहिए। हमारे बीच पूर्ण समानता और भाईचारा होना चाहिए। मनुष्य-मनुष्य, समुदाय-समुदाय और वर्ग-वर्गके बीच मौजूद सभी प्रकारका कृत्रिम अन्तर अविलम्ब मिटाया जाना चाहिए। आखिर हम सब मनुष्य हैं, एक ही ईश्वरकी सन्तान है। हम जैसे ही इस सचाईको समझ लेगे और अपने नित्यप्रतिके जीवनमे इसपर अमल करने लगेगे, वैसे ही स्वराज्य हमारी पकड़मे आ जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २४-१२-१९३६

१९५. सन्देश : अखिल भारतीय महिला-सम्मेलनको[1]

[१३ दिसम्बर, १९३६ से पूर्व]

मैं बूढा हो गया हूँ, लेकिन अगर तुम लोगोको मेरे सन्देशकी जरूरत है तो जरूर दूंगा। मैं यही कह सकता हूँ कि नारियाँ जबतक अपने नारीत्वको प्रतिष्ठित नही करती, तबतक भारतकी चतुर्दिक् प्रगति असम्भव है। हम जिनको अबला कहते हैं जब वे सबला बन जायेगी तब सभी अबलजन सबल हो जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २४-१२-१९३६

१. सम्मेलन २३ दिसम्बरको आरम्भ हुआ था और उसकी अध्यक्षा थी, मार्गरेट कज़िन्स।

१९६. पत्र : रोनाल्ड डंकनको

सेगाँव, वर्धा
के पतेपर
२३ दिसम्बर, १९३६

प्रिय मित्र,

आपकी भेजी पुस्तिकाके लिए धन्यवाद। अपनी बातकी स्थापनामें आपने जो तर्क दिये हैं वे अपनी सीमामें ठीक मालूम होते हैं। समाज कुछ करे या न करे इसे बिना विचारे व्यक्तिका अपना आचरण तो शुद्ध ही होना चाहिए, इस बातपर शायद पूरी तरह जोर नही दिया गया है। अहिंसक कार्रवाईके लिए दूसरेके सहयोग पर निर्भर नही रहना पड़ता, लेकिन हिंसक कार्रवाई दूसरेके सहयोगके बिना नाकाम हो जाती है। यहाँ अहिंसा और हिंसा – इन दोनो शक्तियोकी चर्चा समाजके परम कल्याणके सन्दर्भमे की जा रही है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

रोनॉल्ड डंकन, महोदय
६ पॉल मॉल
लन्दन

अंग्रेजीकी नकलसे प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल।

१९७. पत्र : अमृतलाल टी० नानावटीको

तिलकनगर
२३ दिसम्बर, १९३६

चि० अमृतलाल,

अभी सूर्योदय नही हुआ, हाथ सुन्न है, लेकिन तुम्हारा कार्ड सामने पड़ा है, इसलिए इतना लिखे डालता हूँ। अब तो जितनी पहले थी उससे अधिक शक्ति आ जानी चाहिए। तुममे और मीरामें होड़ लगी है। मीरामे तो शक्ति आ गई है। रोज लगभग ४ पौंड दूध, आठसे दस तोलेतक मक्खन, १५ तोले आटा, साग और फल लेती है। हाँ, वजन नही बढ़ा, जितना था उतना ही है। अब वह अपने कपड़े

खुद धो लेती है। सेगाँव जानेके लिए बा, मनु, कनु कल आ गये। यहाँ तो महादेव, बाबलो, प्यारेलाल और राधाकिसन हैं। खानसाहब और मेहरताज तो हैं ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७२७)से।

१९८. पत्र : नर्मदाबहन रा० पाठकको

२३ दिसम्बर, १९३६

चि० नर्मदा,

तू चाहती है इसलिए तुझे लिख रहा हूँ। जो लोग तुझे प्रौढ बुद्धिकी, अथवा निर्णय ले सकने योग्य समझते हैं, वे भूलमे पडे हैं। तेरी बुद्धि कच्ची है, तेरा मन अस्थिर है। तेरी भावनाएँ अच्छी है, किन्तु उन्हे मूर्तिमान करनेकी शक्ति तुझमे नही है। यह तेरे बारेमे मेरा निदान है। जो तुझे सीधे रास्ते ले जा सकता था, उसीने तुझपर कुदृष्टि डाली और तू गिरी। साथ ही जिस बहनके लिए तेरे मनमे सहानुभूति थी, उसके प्रति अन्याय हुआ और उस अन्यायमे तू सहायक बनी। तू यह क्यो नही समझती कि ऐसे दोषमय सम्बन्धमे से तू अपनी सेवाभावनाका सिंचन कैसे कर सकती है? न तो तेरे पत्रमे स्पष्टता है, न रामनारायणके पत्रमे। मुझे तो इतना स्पष्ट समझमे आता है कि या तो तुम्हे एक-दूसरेको पति-पत्नीके रूपमे भूल जाना चाहिए, या फिर इच्छानुसार दृढतापूर्वक भोग-विलास करना चाहिए। पति-पत्नी कहलाओ, साथ ही ब्रह्मचर्यका पालन करो, यह बात मैं लगभग असम्भव मानता हूँ। तुम्हारे मनमे तो विकार रहेगा ही। प्रभु तेरा कल्याण करे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २७८१) से, सौजन्य : रामनारायण एन० पाठक।

१९९. पत्र : रामनारायण एन० पाठकको

२३ दिसम्बर, १९३६

भाई रामनारायण,

तुम दोनोके पत्र मिले। आवेशमें आकर कुछ नही किया होगा। जब दोनोने ब्रह्मचर्यका निश्चय कर लिया है, तब विवाह रहा ही कहाँ? तुम्हारे विवाहका मूल अपने मनोविकारको सन्तुष्ट करना ही था, यह तुम्हारे पत्रसे स्पष्ट हो जाता है। जो पति-पत्नी स्वेच्छासे ब्रह्मचर्यका पालन करे, वे भाई-बहन ही हुए। किन्तु तुम दोनो तो दम्पति होने योग्य ही नही थे। जिसने विवाहसे पहले ही किसी स्त्रीसे सम्बन्ध कर लिया, वह उस स्त्रीसे विवाह कैसे कर सकता है? यदि तुम विवाहकी विधिको कोई मान्यता ही न देते हो, तब तो मुझे तुमसे कुछ कहना नही है। क्योकि ऐसा हो, तो तुम्हारा गगा तथा नर्मदाके प्रति व्यवहार निर्दोष माना जाना चाहिए; यानी व्यभिचार शब्द ही भाषासे उठ जाना चाहिए। तुम मेरे मतका आदर करते हो, इसीलिए अभीतक तुम्हारे साथ जूझ रहा हूँ। किन्तु जबतक मेरा तर्क तुम्हारे गले न उतरे, तबतक कोई कदम न उठाना। जो करोगे, वह कठिन ही होगा। कामको जीतना सरल बात नही है, यह मैं जानता हूँ। मेरा प्रयत्न तो तुम्हारी विचार-शुद्धि करना है। जहाँ दोष हो, वहाँ निर्दोषता नही देखनी चाहिए। कामेच्छा उलटेको सीधा बनाकर दिखाती है। अब तुम्हे जो ठीक लगे सो करना, और जो करो उससे चिपटे रहना। यह कहना तो सरल है, लेकिन करना मुश्किल।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २७८३)से; सौजन्य : रामनारायण एन० पाठक।

२००. पत्र : अमतुस्सलामको

तिलकनगर, फैजपुर
२४ दिसम्बर, १९३६

चि० अमतुल सलाम,

तेरा पत्र मिला। मैं तेरे किन प्रश्नोका जवाब दूं? कान्ति अभीतक यहाँ आया ही नही है। वह कब आयेगा यह भी मुझे मालूम नही। वह अपने किसी मित्रसे मिलने पूना गया है। तू सेगाँव आना। वहाँ सलाह-मशविरा करना। रहेगी तो मै तेरा उपचार करूँगा या कराऊँगा। यदि तू अपने मनकी शान्तिकी खातिर भी आये तो ठीक होगा। तू अब भी अपनी अँगुलीके बारेमें कुछ नही लिखती।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३६९) से।

२०१. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

२४ दिसम्बर, १९३६

महात्मा गांधीने कहा कि वे चूंकि बकरीके दूधके सेवनके बिना नहीं रह सकते, इसलिए वे शुद्ध अन्तःकरणसे संघ[1] के अध्यक्षके पद पर और अधिक बने नहीं रह सकते। परन्तु उन्होंने वचन दिया कि वे संघके कार्योंमें ठीक उसी प्रकार रुचि लेते रहेंगे और उसका मार्ग-दर्शन करते रहेंगे जिस प्रकार कि वे अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघका करते आये हैं।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दुस्तान टाइम्स, २७-१२-१९३६

१. अखिल भारतीय गौ-रक्षा संघकी कार्यकारिणी समितिने निर्णय किया था कि उसके प्रत्येक न्यासीको केवल गायके दूध या गायके दूधसे बनी वस्तुओंका सेवन करना चाहिए, इसलिए महात्मा गांधीने उसके अध्यक्ष-पदसे त्यागपत्र दे दिया था।

२०२. पत्र : कस्तूरभाई लालभाईको

तिलकनगर, फैजपुर
२५ दिसम्बर, १९३६

भाई कस्तूरभाई,

आपके तार व पत्र मिले। मैं मान लेता हूँ कि जो मूल आपत्तियाँ मैंने उठाई है, उनके बारेमें आपने वकीलकी राय ले ली है और वह मेरे अर्थके विरुद्ध गई है। यदि ऐसा हो तो यह सहज ही समझमें आ सकता है कि आप अब और कुछ नही कर सकते।

नं० २ का कागज मेरे सुझावसे रखा गया था, किन्तु उस समय आपने इसपर अपना विरोध व्यक्त नही किया था। मेरे लिए किसी प्रकारका बन्धन नही था, इसलिए मेरा तो कर्त्तव्य ही था कि मजूर-महाजनकी बात सुनूं। मेरा निर्णय उनके विरुद्ध ही है, किन्तु यह विरोध हमारे सम्मुख किये गये उनके निवेदनका एक अग है, और इसे सरपंचके पास जाना चाहिए। ६की माँग मैंने ही की थी और आपका उसके प्रति कोई विरोध नही था। नं० १० और ११को छोड़ देनेमे मुझे कोई एतराज नही है।

१२की माँग तो हम-दोनोने की थी। भूले सुधारनेकी बात भी थी ही।

अत: अपने रेकार्डमे तो मैं १०, ११को छोड़कर बाकी सब कागज रख लेता हूँ। यह कहा जा सकता है कि मैंने उनका उपयोग अपने निर्णयपर पहुँचनेके लिए किया है। मेरे लिए १२का कोई उपयोग नही है, किन्तु आपका मत मामलेके गुण-दोषपर आधारित है, इसलिए मैं उसकी आवश्यकता मानता हूँ।

यदि इस विषयमें हमारे बीच मतभेद रहे ही, तो निर्णय भी सरपंच ही करे। बहुत समय बीत गया है, इसलिए अब हम पत्रोंके विनिमयमें अधिक समय न खर्च करें।

राजनगर-मिलके बारेमे मेरी राय यह है कि इसमे चमनभाईने भारी भूल की है। मैंने जो निर्णय किया है, मैं उसमें न्याय देखता हूँ, इसलिए उसे बदलनेमे मुझे दोष दिखाई देता है। किन्तु बाकी मिलोके बारेमें यदि चमनभाईने हमें निर्णय करने दिया होता, तो मैं जरूर इतना जुर्माना मजूरों पर करता जिससे कि लेन-देन का सब हिसाब बराबर हो जाता। उन मजूरोंको फिरसे रख लेनेके बारेमें जरा और गहरे उतरकर विचार करना चाहिए।

अब सुधार व परिवर्धन सहित अपनी राय मैं आपको कल भेजनेका प्रयत्न करूँगा। उसे अपनी रायके साथ सरपचके पास, वे वहाँ हो तो वहाँ अथवा जहाँ हो, पहुँचा दीजिए।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[पुनश्च]

एक बात भूल गया। निर्णयकी नकल हमे दोनो पक्षोको देनी चाहिए। यदि हम अखबारोको कुछ न दे, तो भी वे इस बारेमे लिखा ही करेगे। आपकी भेजी कतरन पढ गया। किसकी ओरसे नाम प्रगट किये गये, कैसे कहा जा सकता है? अखबारवाले अटकल भी क्या कम लगाते है? उनमे से कोई तो कभी सच निकलेगी ही। ठीक है न?

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४१९९)से।

२०३. भाषण : खादी तथा ग्रामोद्योग प्रदर्शनीके उद्घाटन-अवसरपर[1]

२५ दिसम्बर, १९३६

अखबारोमे आप लोगोने यह तो देखा ही होगा कि गाँवमे काग्रेसका यह जो अधिवेशन हो रहा है, इसके लिए मै ही सब तरहसे जिम्मेदार हूँ। उन्होने यह भी घोषित कर दिया था कि मै दिसम्बरके शुरूमे फैजपुर पहुँच जाऊँगा और प्रदर्शनी-सम्बन्धी व्यवस्थाकी निगरानी करूँगा। यह पिछली बात सही है, और बगैर किसी झूठे शील-सकोच या अतिशयोक्तिके, मै यह कहूँगा कि यहाँ आप जो भी त्रुटियाँ देख रहे है, उनके लिए मै ही पूरी तरहसे जिम्मेदार हूँ। काग्रेस-अधिवेशन और प्रदर्शनीको गाँवमे करनेका विचार मुझे ही सूझा था, इसलिए जो भी दोष या त्रुटियाँ आप यहाँ देखेगे, उनकी जिम्मेदारी मुझे अपने ऊपर लेनी ही चाहिए। और जो भी अच्छी चीज आप यहाँ देखे, उसका श्रेय उन लोगोको है जिन्होने कि यहाँ सारी व्यवस्थाकी है। गाँवमे काग्रेस-अधिवेशन और प्रदर्शनी करनेकी मेरी तजवीज दास्ताने और देवने स्वीकार की थी, और परिपूर्णता तथा दृढनिश्चयके साथ, जो कि महाराष्ट्रियोकी चारित्रिक विशेषताके अनुरूप है, उन्होने अपने वचनका पूरा-पूरा पालन भी किया है। प्रदर्शनी तो मेरी कल्पनाके अनुसार होनी आवश्यक ही थी,

१. प्रदर्शनीका उद्घाटन साढ़े आठ बजे सुबह किया गया था। वहाँ कस्तूरबा गाधी, जवाहरलाल नेहरू, अब्दुल गफ्फार खाँ, वल्लभभाई पटेल, सरोजिनी नायडू, राजेन्द्रप्रसाद, अबुल कलाम आजाद, गोविन्दवल्लभ पन्त, जे० बी० कृपलानी, जमनालाल बजाज और महादेव देसाई भी उपस्थित थे। भाषणका विवरण हिन्दुस्तान टाइम्स, बॉम्बे क्रॉनिकल, और अन्य समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हुआ था। यह साराश महादेव देसाईने तैयार किया था।

क्योकि अखिल भारतीय चरखा-सघने, जिसका कि मै अध्यक्ष हूँ, और अखिल भारतीय ग्रामोद्योग सघने, जिसे मै अपनी देख-रेखमें चला रहा हूँ, इसका सारा आयोजन किया है। मुझे उन्हे आगाह करना पड़ा था कि महाराष्ट्रके इस गाँवमे वे लखनऊ या दिल्लीकी नकलपर कुछ बनानेका खयाल छोड़ दें। अगर यही करना हो तो फिर पूनामे ही काग्रेस-अधिवेशन और प्रदर्शनी क्यो न की जाये? लेकिन अगर इनको गाँवमे रखना है तो भारतीय गाँवके मुताबिक ही सारा आयोजन करना चाहिए। और यह काम मुझसे अच्छा कोई और नही कर सकता था, क्योकि, जैसाकि मैंने उनसे कहा था, मै मुद्दतसे स्वैच्छिक ग्रामीण रहा हूँ, जब कि वे हाल ही मे ग्रामीण बने है। सेगाँवमे बसे हुए मुझे अभी चन्द ही महीने हुए है और मेरा जन्म तथा पालन-पोषण चूँकि कस्बेमे हुआ, शिक्षा भी मैंने कस्बेमे ही पाई इसलिए अपने-आपको ग्रामीण जीवनके अनुकूल बनानेमे मेरे शरीरको कठिनाई मालूम पडी। इसीलिए मुझे वहाँ मलेरिया हो गया। लेकिन, जैसाकि आप जानते है, मैंने उसे तुरन्त भगा दिया, जल्दी अच्छा हो गया, और मै बिलकुल चुस्त-दुरुस्त हूँ। दरअसल इसका कुछ सबब तो यह है कि मै अब निश्चिन्त हूँ, अपनी तमाम चिन्ताओका भार मैंने जवाहरलाल और सरदारके विशाल कन्धोपर छोड दिया है। फिर भी मेरे स्वास्थ्यका सच्चा रहस्य यह है कि मेरा शरीर भी उसी काम और वातावरणमे रह रहा है जहाँ मेरा दिल बस गया है।

यहाँकी रचनाका श्रेय वास्तुकार श्रीयुत म्हात्रे और कलाकार श्रीयुत नन्दलाल बोसको है। दो महीने पहले जब नन्द बाबू मेरे बुलानेपर वर्धा पहुँचे तो मैंने उन्हे समझाया कि मै असलमे क्या चाहता हूँ, और अपनी कल्पनाको मूर्त रूप देना मैंने उन्ही पर छोड दिया। कारण कि वे एक सृजनशील कलाकार है, और मै नही हूँ। ईश्वरने मुझे कलाकी भावना तो दी है, पर उसे मूर्त रूप देनेकी प्रतिभा प्रदान नही की। श्रीयुत नन्दलाल बोसको ईश्वरने ये दोनो ही चीजे बख्शी है। मै उनका आभार मानता हूँ कि प्रदर्शनीकी कलापूर्ण रचनाका सारा भार उन्होने अपने ऊपर ले लिया और ठीक-ठीक व्यवस्था करनेके लिए वह कुछ हफ्ते पहले यहाँ आकर बैठ गये। फल यह हुआ कि सारा तिलकनगर ही एक प्रदर्शनी बन गया है, और इसीलिए प्रदर्शनी वहाँसे शुरू नही होती जहाँ कि मै उद्घाटन करने जा रहा हूँ, बल्कि उसका आरम्भ मुख्य प्रवेश-द्वारसे होता है, जो ग्रामीण कलाका एक सुन्दर नमूना है। नि सन्देह, श्री म्हात्रेके भी हम कृतज्ञ है, जिन्होने सारी आयोजनाको पूर्णतातक पहुँचानेमें कुछ उठा नही रखा। कृपया याद रखिए कि यहाँ जो तमाम कलात्मक रचना दिखाई देती है इसमे हमारे नन्द बाबूने स्थानीय साधन-सामग्री और यहीके मजदूरोसे सारा काम लिया है।

अब मै चाहता हूँ कि आप लोग प्रदर्शनीमे जाये और सम्भव हो तो उसे मेरी आँखोसे देखे। अगर आप यह ध्यान रखें कि अखिल भारतीय चरखा-सघ और अखिल भारतीय ग्रामोद्योग सघके सरक्षणमे उसका आयोजन किया गया है, तो आपको मालूम हो जायेगा कि यहाँ आपको क्या देखनेकी आशा करनी चाहिए। चरखा-सघका उद्देश्य

सारे हिन्दुस्तानको खादीधारी बना देना है, जिस मजिलतक दुर्भाग्यसे हम अबतक नही पहुँचे है और वह अब भी हमसे बहुत दूर है। और ग्रामोद्योग सघका उद्देश्य भारतवर्षके मृतप्राय कुटीर-उद्योगोका पुनरुद्धार करना है। खादी तथा ये दूसरे कुटीर-उद्योग हमारे गाँवोकी आर्थिक बेहतरीके लिए इतने जरूरी है जितने कि शरीरके लिए प्राण।

यह प्रदर्शनी कोई तमाशेकी चीज नही है, लोगोकी आँखोको चौधियाने या भुलावेमे डालनेके इरादेसे यह प्रदर्शनी नही लगाई गई है। यह वास्तविक ग्राम-प्रदर्शनी है, जो गाँववालोके परिश्रमसे तैयार की गई है। यह शुद्ध शिक्षणात्मक प्रयत्न है। ग्रामवासियोको यह दिखाना ही इसका एकमात्र उद्देश्य है कि अगर वे अपने हाथ-पैरो तथा अपने आसपासकी साधन-सामग्रीका ठीक-ठीक उपयोग करे तो वे किस प्रकार अपनी आमदनी दुगुनी कर सकते है। मै तो अपने अध्यक्षसे कहूँगा कि वे मुझे सयुक्त प्रान्तके किसी गाँवमे ले चले। मै उस गाँवकी पुनर्रचना जमनालालजीके रुपयेसे नही, बल्कि उस गाँवके मर्दो और औरतोके हाथ-पैरोकी सहायतासे करूँगा —बशर्ते कि उस गाँवके लोगोको मै जो हिदायते दूँ, उनके अनुसार काम करनेके लिए वे उन्हे राजी कर ले। हमारे अध्यक्ष इसपर शायद कहे कि ज्यो ही ये गरीब लोग अपनी आमदनी कुछ बढाना शुरू करेगे, त्यो ही जमनालालजी-जैसे जमीदार लगानमे इजाफा कर देगे और इस तरह उनके हाथसे उनकी अतिरिक्त आमदनी छीन लेगे। हम जमीदारको इस तरहका काम नही करने देगे। मुझे इसमे जरा भी सन्देह नही कि हमारे हिन्दुस्तान-जैसे देशमे, जहाँ लाखो आदमी बेकार पडे है, लोग ईमानदारीके साथ अपनी रोजी कमा सके, इसके लिए उनके हाथ-पैरोको किसी-न-किसी काममे लगाये रखना जरूरी है। खादी और कुटीर-उद्योग उनके लिए आवश्यक है। मेरे लिए यह बात सूर्य-प्रकाशकी भाँति स्पष्ट है कि इन उद्योगोकी आज सख्त जरूरत है। भविष्यमे इनका क्या होगा यह मै नही जानता, न जाननेकी चिन्ता ही करता हूँ।

इसके साथ वे प्रदर्शनीकी कुछ चीजोंका, जो उनके सामने रखी हुई थीं, वर्णन करने लगे — जैसे, लुहारखानेके औजार जो रातको तैयार किये गये थे, आन्ध्र के कारीगरोकी बनाई हुई चीजें (जैसे बटुवे और चश्मेके केस) जो नदी-किनारे उगनेवाली एक घाससे तैयार की गई थीं, लोमड़ीकी खाल, जो वर्धाके चर्मालयमें कमायी गयी थी और उसमें खादीका अस्तर लगाया गया था, वगैरह, वगैरह।

ये छोटी-छोटी चीजे गरीब ग्रामवासियोकी आमदनीमे काफी वृद्धि कर सकती है। आप उनके लिए इतना सुनिश्चित कर सकें कि तीन पैसे रोजके बजाय, जो आज उन्हे मिलते है, वे तीन आने रोज पैदा कर सकेंगे, तो उन्हे स्वराज्य मिल गया, ऐसा वे सोचने लगेगे। बुनकरोके लिए आज खादी यही करनेका तो प्रयत्न कर रही है।

सक्षेपमे कहा जाये तो उनको सिखाना यह है कि धूलसे कचन किस तरह बन सकता है, और उन्हे यह सिखाना ही इस प्रदर्शनीका मकसद है। दो महीने

पहले जब मैं नन्द बाबूसे मिला, तब उनसे मैंने कह दिया था कि वे यहाँ शान्ति-निकेतनसे अपने आर्ट स्कूलके कीमती चित्र न लायें, डर यह है कि बेमौसमकी बारिशसे वे चित्र कही खराब न हो जाये। उन्होंने मेरी यह सलाह मान ली और यही पास-पडोससे उन्होने ये सारी चीजे इकट्ठी की। उन्होंने अपनी कलाकारकी दृष्टिसे आसपासके गाँवोमें चक्कर लगाया और किसानोकी घर-गिरस्तीमे से वे अनेक चीजें चुन लाये —ऐसी चीजे जिनमे आम आदमीको कोई खास कला दिखाई नही देगी। पर उनकी आँख तो कलाकारकी सूक्ष्मदर्शी आँख है, उन्होने उन चीजोको यहाँ खूबसूरतीके साथ सजा दिया है और उन्हे एक नया ही रूप दे दिया है।

पहलेकी प्रदर्शनियोके मुकाबले यह प्रदर्शनी बहुत छोटी है, इसके लिए श्री बैकुंठलाल मेहताने माफी माँगी है। पर माफी माँगनेकी कोई बात नही थी। इस प्रदर्शनीमें कोई चीज फालतू नही है, और जो शिल्प दर्शाये गये है, उनका अर्थ है—कितना अतिरिक्त उत्पादन किया जा सकता है। हाथके बने कागजके नमूनोको ही ले लीजिए। ये कागज मूजसे, केलेकी छालसे, और बाँससे तैयार किये गये है। आप यहाँ जो यह सारा नगर देख रहे है इसकी बनावटमे बाँसका भाग मुख्य है, और आप यह यकीन रखे कि कांग्रेस-शिविर उखडनेके बाद इस तमाम बाँसका ठीक उपयोग किया जायेगा।

हमारे अध्यक्षके लिए जिस प्रकारके जुलूसका आयोजन किया गया था, उसकी वह अनोखी सादगी आपने जरूर देखी होगी—खास करके वह सुन्दर सजा हुआ रथ जिसमे छः जोडी बैल जुते हुए थे। आपको यहाँ क्या मिलनेवाला है, इस बातके लिए आपको तैयार करनेकी गरजसे ही इस प्रकारका सब आयोजन किया गया था। शहर-जैसी कोई सुविधा या आराम यहाँ आपको नही मिलेगा, यहाँ तो आपको ऐसी ही चीजे मिलेगी जिन्हे गाँवके गरीब आदमी मुहैया कर सके है। इस तरह यह जगह हम सबके लिए एक तीर्थ बन गई है—यह हमारी काशी है, यह हमारा मक्का है, जहाँ हम स्वतन्त्रताके लिए प्रार्थना करने और राष्ट्रकी सेवाके लिए अपने को उत्सर्ग करने आये है। आप लोग यहाँ गरीब किसानोपर हुकूमत जतलाने नही आये हैं, बल्कि यह सीखनेके लिए आये है कि उनके रोजमर्रांके मशक्कतके कामोमे भाग लेकर—जैसे, भगीका काम करके, अपने कपडे वगैरह खुद धोकर और अपना आटा खुद पीसकर—आप उनका भार किस तरह हलका कर सकते है। कांग्रेसके इतिहासमें यह पहला ही मौका है कि आपको यहाँ बिना पालिशका अनकुटा चावल और हाथके पिसे आटेकी रोटियाँ भोजनमे दी जा रही है। जितनी चाहे ताजी हवा और पृथ्वीमाताकी स्वच्छ गोद तो है ही, जहाँ आप आराम कर सकते है। बेचारे व्यवस्थापकोकी तमाम त्रुटियोको कृपया क्षमा कर दीजियेगा, क्योकि खान-साहबके शब्दोमे हम सब खुदाई खिदमतगार है, हम यहाँ सेवा करानेके लिए नही, सेवा करनेके लिए आये है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-१-१९३७

२०४. आधा दर्जन या छः

ठक्कर बापाने समाचारपत्रोसे यह कतरन[1] मेरे पास भेजी है

हरिजन नामसे चाहे ईसाई हो या मुसलमान, हिन्दू हो या सिख, है फिर भी वह हरिजन ही। उसे तथाकथित हिन्दू-धर्मसे विरासतमे जो दाग मिले है, उनको वह बदल नही सकता। वह अपना ऊपरी लिबास बदलकर अपने-आपको कैथोलिक हरिजन या मुस्लिम-हरिजन या नया मुसलमान या नया सिख तो कहलवा सकता है, लेकिन उसकी अस्पृश्यता जीवन-भर उसका पीछा नही छोडेगी। पाँचके बाद आनेवाले अकको आप छ· कहे या आधा दर्जन, बात तो एक ही है। हिन्दू-धर्मसे जबतक अस्पृश्यताको नही मिटाया जायेगा, तबतक हरिजनोके माथेसे यह कलक नही मिटेगा, चाहे वे अपने ऊपर किसी भी धर्मका बिल्ला लगा ले। इसलिए हिन्दू-धर्मकी रक्षा करना या उसे नष्ट करना हरिजनोके हाथमे है, उसी तरह जिस तरह कि यह सवर्ण हिन्दुओके हाथमे है। इसमे शक नही कि अपने ऊपर किसी और धर्मका बिल्ला लगा लेना हरिजनोके लिए जितना आसान है, सवर्ण हिन्दुओके लिए हृदय-परिवर्तन उतना आसान नही है। लेकिन हरिजनोके लिए यह ज्यादा आसान हो सकता है कि वे हर सासारिक प्रलोभनसे ऊपर उठकर, सचेतन रूपसे, उसी धर्मंमे दृढतापूर्वक प्रवृत्त रहे जिसमे कि उनके सहधर्मियोने उन्हे बिलकुल बुनियादी मानवीय अधिकारोसे वचित कर रखा है। हरिजनोको आजकल जैसे प्रलोभन दिये जा रहे है उनके चक्करमे न पडना निस्सन्देह किसी भी व्यक्तिके लिए कठिन ही है। इसलिए यदि हरिजन अपने सतत व सचेतन प्रयत्नो द्वारा अपने पैतृक धर्मको शुद्ध बनानेका सकल्प लेकर उसके प्रति सच्चे बने रह सके और उसपर दृढ रह सके, तो यह सचमुच एक चमत्कार ही होगा। हरिजन इस बातको जानते है कि सवर्ण हिन्दुओमे ऐसे लोग एक अच्छी सख्यामे है — और वह सख्या दिन-दिन बढती ही जा रही है — जिन्होने उनके सुख-दुखको अपना सुख-दुख बना लिया है और जो अपने पिछले अन्यायो और सवर्ण अपने हरिजन भाइयोके साथ आज भी जो अन्याय कर रहे है, उनका प्रतिकार करनेके प्रयत्नमे लगे हुए है। इस दृष्टिसे देखा जाये तो कुम्भकोणमकी घटना रोमन कैथोलिक धर्मके लिए भी उतनी ही लज्जास्पद है जितनी कि वह हिन्दू-धर्मके लिए है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २६-१२-१९३६

१. यहाँ उद्धृत नही की गई है। उसमें समाचार था कि कुम्भकोणमके सेंट मेरीज कैथेड्रलमें रविवारकी प्रार्थनाके दौरान जब कैथोलिक हरिजनोंने सगठित रूपसे प्रवेश किया और उनके लिए नियत स्थानपर बैठनेके बदले वे सवर्ण कैथोलिकोंके बीच जहाँ-तहाँ बिखर गये, तो सवर्ण कैथोलिक प्रार्थना-स्थल छोड़कर चले गये।

२०५. इसका मर्म

"हरिजन-सेवक सघकी त्रावणकोर-शाखाके विनम्र किन्तु सतत प्रयत्नोने इस महान कार्य (त्रावणकोर नरेशकी घोषणा) का मार्ग प्रशस्त किया था",[1] मेरे इस कथनको गलत साबित करनेके लिए त्रावणकोर विधान-सभाके उपाध्यक्षने एक लम्बा लेख लिखा है। लेखकने स्थानीय सघसे यहाँतक कहा है कि अपने कामका ढिढोरा पीटनेके लिए वह न तो सार्वजनिक सभाओका आयोजन करे और न श्री राजगोपालाचारी-जैसे बाहरी लोगोको आमन्त्रित करे। यही नही, बल्कि इसके विपरीत, उन्होने यह भी कहा है कि मै तो अहमदाबादमे भी, जहाँ मेरा सबसे ज्यादा प्रभाव समझा जाता है, हरिजनोके लिए मन्दिर खुलवानेमे बिलकुल असफल रहा हूँ।

मेरा आशय तो मेरे शब्दोसे स्पष्ट ही था कि स्थानीय सघने लोगोको इस कार्यका महत्त्व समझाकर उनके मानसको इसके अनुकूल बनानेके लिए जिस अथक उत्साहसे काम किया, उसीने सवर्णोको इसके लिए तैयार किया। और जहाँतक पता है, त्रावणकोरमे उसके सिवा ऐसी कोई सस्था है ही नही जो सवर्णोकी अन्त-रात्माको जगानेके लिए उनके बीच काम कर रही हो। मेरे लेखमे ऐसी कोई बात नही थी जिससे यह ध्वनि निकलती हो कि महाराजा साहबने जो-कुछ किया वह हरिजन-सेवक सघकी हलचलसे प्रभावित होकर किया है।

अन्य सभी बातें ऐसी है जिनके बारेमे स्थानीय कार्यकर्त्ता ही ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते है कि क्या करना है और कैसे।

जहाँतक मेरे अपने प्रभावका सवाल है, मै उपाध्यक्ष महोदयके इलजामको कबूल करता हूँ। मै न सिर्फ अहमदाबादमे, बल्कि वर्धामे भी, यहाँ आकर बस जानेके बाद भी, हरिजनोके लिए मन्दिर नही खुलवा सका हूँ। और मेरी प्रसिद्धिके लिए इससे भी बढकर जो बुरी बात है, वह यह कि इस छोटे-से गाँव सेगाँवमे सवर्णोके जो दो मन्दिर है उन्हे भी मै हरिजनोके लिए नही खुलवा सका हूँ। लेकिन ऐसी स्वीकारोक्ति करते हुए मुझे कोई पश्चात्ताप नही है। मेरी यह असफलता उस सफलताकी, जिसमे मुझे पूरा विश्वास है, पहली सीढी है। लेकिन वह मुझे तभी मिलेगी जब ईश्वरको मजूर होगा। "मेरा कर्त्तव्य तो सिर्फ इतना है कि उसके लिए प्रयत्न करते-करते प्राण-विसर्जन करूँ।"

इसलिए त्रावणकोरमे यह जो चमत्कार हुआ इसका श्रेय निश्चित रूपसे महाराजा साहब, उनकी नेक माता और उनके योग्य दीवानको ही है। और हम सबके लिए, जो अस्पृश्यताको जड-मूलसे उखाडनेके प्रयत्नमे लगे हुए है, यह एक सबक है। ठीक हो या गलत, हिन्दू-धर्मकी परम्पराके अनुसार हिन्दू नरेशको

१. देखिए "हिन्दू नरेशों और उनके सलाहकारोंके लिए एक अनुकरणीय उदाहरण", पृ० ५४-५७।

यह अधिकार है, और उसका यह कर्त्तव्य भी है कि जनता अपने नैतिक दायित्वोका यथावत् पालन करे, इसके लिए वह 'स्मृतियो' की ऐसी नई व्याख्या करे जो धर्मके मूलभूत सिद्धान्तोसे मेल खाती हो।

कई साल पहले जब वाइकोममे पडितोसे मेरी बातचीत हुई थी, तो उन्होने मुझे विश्वास दिलाया था कि अपने कथनके समर्थनमे यद्यपि उन्होने 'स्मृति' को पेश तो किया है, पर यदि उनके नरेश उसके विपरीत नियम बनाकर राजाज्ञा निकाल दे तो वे उन नियमोका पालन करेगे। त्रावणकोरके निवासी राजकीय घोषणाका जो पूरी तरह पालन कर रहे है और आज वहाँ जो सुखद दृश्य दृष्टिगोचर हो रहा है, सम्भवत उसका बहुत-कुछ कारण यही है। दूसरी हिन्दू रियासते भी यदि त्रावणकोरके इस सुन्दर उदाहरणका अनुकरण करे, तो उन्हे भी शायद इस बातका पता लग जायेगा कि जो नियम वे जारी करेगे, प्रजा उनका पालन करेगी। जो भी हो, इन रियासतो की जनता अपने यहाँ इस प्रकारका लोकमत बखूबी तैयार कर सकती है। हाँ, उन्हे राजाज्ञाकी प्रतीक्षामें सम्बन्धित न्यासियो से हरिजनोके लिए मन्दिर खुलवानेके अपने प्रयत्न हरगिज ढीले नही करने चाहिए। क्योकि सुधारकोकी दलील यह है कि हरिजनोके लिए मन्दिर खोलने या अस्पृश्यता दूर करनेके लिए किसी नई स्मृतिकी जरूरत नही है। जरूरत सिर्फ यह है कि अपनी उद्देश्य-पूर्तिके लिए जो भी सम्मानपूर्ण उपाय हमे दिखाई दे, उसका हम पूरा उपयोग करे। इस काममे अगुआ बननेके लिए राजाओसे प्रार्थना करना, एक ऐसा ही उपाय है जो सम्मानपूर्ण है और बहुत सम्भव है कि यह हमे जल्दी सफलता दिला दे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २६-१२-१९३६

२०६. चर्च मिशनरी सोसाइटी

इग्लैंडकी चर्च मिशनरी सोसाइटीने प्रीबैंडरी [पुरोहित] डब्ल्यू० डब्ल्यू० कैश द्वारा तैयार की गई एक छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित की है। उसमे कहा गया है:

> चर्च मिशनरी सोसाइटी अगले पाँच वर्षोमें उन क्षेत्रोंको जहाँ यह जबरदस्त आन्दोलन चल रहा है, अतिरिक्त अनुदान देनेके लिए २५,००० पौंडकी एक आपातकालीन निधि जमा करनेकी अपील कर रही हैं और सोसाइटी समस्त ईसाई समाजसे इस प्रयत्नमें योगदानके लिए अपील करती है। हम अपने लिए नहीं, बल्कि उन हजारो-लाखोकी खातिर जनताके सामने हाथ फैला रहे है जो किसी तरह अपना मार्ग टटोलते हुए ईसाकी ओर आ रहे हैं और जो ईसाके उपदेशोंके माध्यमसे आध्यात्मिक जीवनमें प्रवृत्त हो रहे है और सामाजिक रूपसे उत्थान कर रहे हैं।

इसमे जिस 'जबरदस्त आन्दोलन' का उल्लेख है, वह हरिजनोके धर्म-परिवर्तन का आन्दोलन है। तेलुगू क्षेत्र और त्रावणकोरमे काम करनेके लिए यह धन माँगा जा रहा है।

अपीलका अन्तिम अश इस प्रकार है·

> अछूतोंके बीच चलाया गया यह आन्दोलन अब सवर्ण लोगोमें फैलता जा रहा है, और अनुमान है कि पिछले पाँच वर्षोंमें ५१ विभिन्न जातियोके ३०,००० से अधिक सवर्ण ईसाई बन चुके है। इस आन्दोलनमें इतनी व्यापक सम्भावनाएँ है कि हम सहायतासे हाथ खींच ही नहीं सकते। आज जिनकी संख्या हजारोमे है, कल लाखोंमें हो सकती है। क्या आप इस महान अभियानमें अग्रसर होनेमें हमारी सहायता करेंगे, ताकि इसके सुफल प्राप्त हो सकें?

अपीलके आरम्भिक वाक्य ये है

> समाचारपत्रोंकी हालकी खबरोंने बड़े व्यापक पैमानेपर लोगोंका ध्यान भारतके अछूतोकी ओर आकर्षित किया है। हमने अछूतोके ऐसे बड़े-बड़े सम्मेलनोंके समाचार देखे है जिनमें उन्होने हिन्दू-धर्मसे अपना नाता तोड़नेका फैसला किया है। हालके सालोंमें हमने बड़े पैमानेपर लोगोंके ईसाई धर्मकी ओर आने और दसियो हजार लोगोके बपतिस्मा लेनेकी बातें सुनी है। इन ग्रामीण क्षेत्रोंमें — विशेषकर दोर्नकल और त्रावणकोरके गिरजोके हलकोमें — नव-ईसाई समाजकी प्रगतिको हम अधिकाधिक रुचिसे देखते आये है। इसलिए हम भारतमें होनेवाली हलचलको अधिक समीपसे समझने और यह पता लगानेपर बाध्य हो गये है कि हम इन सम्भावनाओका कहाँतक लाभ उठा रहे है।

उसमे अन्य शीर्षकोके साथ, ये तीन शीर्षक भी है

> १. इन लोगोंके बीच क्या चल रहा है?
> २. डॉ० अम्बेडकर कौन है?
> ३. डॉ० अम्बेडकरकी सलाहके बारेमें भारत क्या कहता है?

इस तीसरे शीर्षकके अन्तर्गत जो लिखा गया है, उसका एक अंश इस प्रकार है·

> इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूरे भारतमें अछूत-सम्मेलनके बड़े महत्त्वपूर्ण परिणाम देखनेमें आये है। श्री गांधी पहले अस्पृश्यता-निवारणके लिए आन्दोलन चला रहे थे, लेकिन उनको करारी असफलता हाथ लगी, क्योकि वे सारे झगड़ेकी जड़ — हिन्दू व्यवस्था — से चिपके रहे।

यहाँ मै प्रसगवश इतना कह दूँ कि लेखकने जिस 'करारी असफलता' का जिक्र किया है, मुझे उसकी कोई खबर नही है। मै "सारे झगडेकी जड —

हिन्दू व्यवस्थासे चिपका" हुआ नही हूँ। इसके विपरीत, मैंने तो झगड़ेकी जड, अर्थात् अस्पृश्यताको बिलकुल अस्वीकार कर दिया है। और यहाँ जो यह सकेत दिया गया है कि मैंने आन्दोलन समाप्त कर दिया है, वह भी गलत है।

उसी शीर्षकके अन्तर्गत यह अनुच्छेद भी मौजूद है

च० मि० सो०के दोर्नकल गिरजावाले हलकेमें कम-से-कम तीन सौ गाँव ईसाई-धर्मकी दीक्षा देनेवालोंकी माँग कर रहे हैं। उनमें निश्चित रूपसे ४० हजार लोग ऐसे हैं जो बपतिस्मा देनेको कह रहे हैं। वहाँके बिशपका अनुमान है कि शायद उसके क्षेत्रमें लगभग दस लाख लोग ईसाई-धर्मकी ओर आ रहे हैं।

तेलुगू क्षेत्रमे मैंने अकसर दौरे किये है, पर मुझे तो ऐसा कही भी सुननेमे नही आया कि चालीस हजार या इसके आसपासकी सख्यामे हरिजन लोग बपतिस्मा लेनेकी राह देख रहे है।

उसी शीर्षकके अन्तर्गत मार्केका एक यह अनुच्छेद भी आया है

त्रावणकोरमें इलवा जाति निश्चित तौरपर धीरे-धीरे हमारी ओर बढती आ रही है। 'बहिष्कृत' जातियोंमें इस जातिका दर्जा ऊँचा है। उनमे से अनेक सुशिक्षित हैं; कुछ भूस्वामी हैं, कुछ वकील, डॉक्टर, सरकारी पदाधिकारी और अध्यापक भी हैं, लेकिन उनको मन्दिरोमें प्रवेश नहीं करने दिया जाता और वे बहिष्कृत समुदाय पर लगे प्रतिबन्धोसे पीड़ित हैं। इनके एक तबकेमें ८,५०,००० लोग हैं और उसके नेता त्रावणकोरमें आकर बिशपसे मिले थे, इसलिए कि वे अपने पूरे समुदायके साथ ईसाई बनना चाहते हैं। इसका पूरा श्रेय अकेले डॉ० अम्बेडकरको नही है, बल्कि यह तो दिन-दिन अधिक विस्तार पाती स्थितिमें एक और घटना-भर है।

इलवा नेताओकी ओरसे कुछ बोलनेकी धृष्टता मै नही कर सकता। हाँ, समाचारपत्रोमे ऐसे समाचार अवश्य आये थे कि उन्होने महाराजाकी घोषणापर उनको बधाई दी थी। हो सकता है, उनका बधाई देना और उनके पूरे समुदायकी ईसाई बननेकी इच्छामे परस्पर कोई असगति न हो। यदि वे चाहे तो इस उद्धरणके बारेमे अपने विचार स्वय ही व्यक्त करे।

बिशप पिकेट द्वारा कही गई अतिरजित बातोके बारेमे लिखनेका अप्रिय काम मुझे पिछले सप्ताह[1] ही करना पडा था। लेकिन इस अपीलमे जो अतिशयोक्तियाँ हैं वे तो शायद उनसे भी बढ-चढ कर हैं।

इस अपीलमे कही गई अतिरजित बातोको झुठलानेका केवल एक ही तरीका है, वह यह कि हम अपने व्यवहारसे उनको निष्प्रभाव बना दे और सचाईको सुधारको के नित्य-प्रतिके जीवनके जरिये प्रकट करते चले। अपीलमे कभी पहले की नही, बिलकुल आजकलकी घटनाओका उल्लेख है। यदि यह सच है कि लाखो व्यक्ति

१. देखिए "चमत्कार कैसा होता है?", पृ० १६९-७१।

ईसाके सन्देशको चर्च मिशनरी सोसाइटीके कार्यकर्त्ताओं द्वारा प्रस्तुत रूपमें सुनने और ईसाई बननेके लिए लालायित है, तो अपीलमें सम्मिलित कथनोंपर मेरा जो अविश्वास है वह, दोपहरके सूर्यकी तपती किरणोंके आगे बर्फकी भाँति, अपने-आप गल जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २६-१२-१९३६

२०७. पंच-फैसला: मिल-मजदूर विवादपर[1]

तिलकनगर
२६ दिसम्बर, १९३६

एक: अहमदाबाद मिल-मालिक संघने पंच-फैसलेके लिए ये प्रश्न सौंपे हैं

(क) तनखाहोंमें २० प्रतिशत कटौतीकी मि० मा० संघकी माँग।

(ख) न्यू मानिक चौक मिलके विरुद्ध शिकायत।

(ग) मोतीलाल हीराभाई मिलके विरुद्ध शिकायत।

(घ) राजनगर मिल्स नं० १ के विरुद्ध शिकायत।

संघने इनको सौंपते हुए ये दो शर्तें लगाई हैं, अर्थात्,

१. पंचोंको सौंपे गये सभी प्रश्नोंपर एक साथ ही फैसला दिया जाये।

२. यदि किसी मिलने मि० मा० सं०से त्याग-पत्र दे दिया हो, तो पंचोंको उसके विरुद्ध की गई शिकायतोंके सही-गलत होनेके बारेमें विचार करनेसे पहले यह देख लेना चाहिए कि ऐसी मिल उनके क्षेत्राधिकारमें आती है या नहीं।

दो: सेठ चमनलाल गिरधरदास पारेख मि० मा० सं०की ओरसे स्थायी पंच थे। लेकिन उनके त्यागपत्र दे देनेके कारण मि० मा० सं०ने उनके स्थानपर सेठ कस्तूरभाईको, केवल ऊपर उल्लिखित प्रश्नोंके सदर्भमें, पंच नियुक्त कर दिया है। सेठ चमनलालकी अनुपस्थिति सभीको खली है।

तीन: पंचोंने मि० मा० सं० और कपड़ा-मजदूर संघके प्रतिनिधियोंके साथ इस महीनेकी २, ३ और ४ तारीखोंको वर्धा और सेगाँवमें बातचीत की। उन बैठकोंमें बातचीतके अलावा कोई साक्ष्य न तो लिया गया और न पंजीकृत ही किया गया। परन्तु मेरे कहने पर और मेरी ही जानकारीके लिए कुछ विवरण प्रस्तुत किये गये थे, जो परिशिष्ट २, ६, ७, ८ और ९ में शामिल कर दिये गये हैं। सरपंचके सामने पेश किये जानेवाले साक्ष्यमें इन परिशिष्टोंको शामिल करनेके बारेमें हो सकता है मेरे सहयोगी पंचको आपत्ति हो। इन परिशिष्टोंमें दी गई जानकारी मैंने वर्धा और सेगाँवमें माँगी थी। उस समय मेरे सहयोगीने उसपर आपत्ति नहीं की

[1] १. गांधीजीने यह गुजरातीमें लिखा था और अंग्रेजी-अनुवादकी व्यवस्था कस्तूरभाई लालभाईने की थी। देखिए "पत्र: कस्तूरभाई लालभाईको", पृ० २०७-८।

थी। परिशिष्ट 'ओ' मे दी गई जानकारी हमने सयुक्त रूपसे माँगी थी, लेकिन अब यदि उसपर भी कोई आपत्ति हो तो उसे अलग कर देनेपर मुझे कोई एतराज नही, क्योकि मेरे निर्णयके लिए वह अनावश्यक है।

चार: सरपचके सामने पेश किया गया साक्ष्य साथके चौदह परिशिष्टोमे शामिल है।

पाँच: पेश किये गये साक्ष्यको देखकर लगता है कि क० म० स०को अनिच्छा-पूर्वक ही इस बातपर सहमत होना पडा है कि कुछ ही प्रश्न पच-फैसलेके लिए सौपे जाये, सब नही (परिशिष्ट २)। मेरी रायमे, दोनो पक्षोके बीच उठे सभी विवादग्रस्त प्रश्न यदि पच-फैसलेके लिए सौपे गये होते, तो पचोको अपना फैसला देनेमे ज्यादा आसानी होती, क्योकि ऐसे प्रश्न हमेशा ही एक-दूसरेसे काफी अधिक सम्बद्ध रहते है। इसलिए हालाँकि क० म० स०का विरोध मुझे काफी उचित लगता है, लेकिन उसके ३० नवम्बरके पत्र (परिशिष्ट १)मे इस मर्यादाको स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया गया है, भले ही वैसा अनिच्छासे किया गया हो। फिर भी क० म० स०को इन सभी प्रश्नोको पच-फैसलेके लिए सौपनेका पूर्ण अधिकार है।

मजदूरीमें कटौतीके बारेमें

छ: मि० मा० स०की मजदूरीमे कटौती करनेकी माँगसे सम्बन्धित सभी कागजात पढने और उनपर पूरी तरह विचार कर लेनेके बाद मै इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि प्रस्तुत साक्ष्य किसी कटौतीका कोई कारण नही जुटाता।

सात: इससे पिछला पच-फैसला १७, जनवरी, १९३५ को दिया गया था (परिशिष्ट ४, उप-परिशिष्ट 'एल')।

आठ: उस पच-फैसलेमे दोनो पक्षोके कुछ दायित्व निश्चित किये गये है, जिनमे से तीन ये है

(क) पहली जनवरी, १९३६ के पश्चात् जितना भी शीघ्र हो सके उजरती मजदूरोकी तनखाहोका मानकीकरण करनेका ईमानदारीसे प्रयत्न किया जाना चाहिए।

(ख) भविष्यमे मजदूरीके सिलसिलेमे दोनो पक्षोकी ओरसे उठनेवाले सभी प्रश्नोके तुरन्त निबटारेकी व्यवस्थाकी दृष्टिसे दोनो पक्ष एक साथ बैठे और मजदूरीके स्वत समायोजनकी एक योजना तैयार करनेकी कोशिश करे।

(ग) यौक्तिकीकरण (रैशनलाइजेशन) करनेकी इच्छुक मिले ३० जून, १९३५से पहले-पहले ऐसे मजदूरोकी एक पजिका तैयार कर ले जो अभी काम कर रहे है और जिनके उन विभागोमे बेकार हो जानेकी सम्भावना है जिनमे यौक्तिकीकरणकी योजनाएँ लागू की जायेगी।

नौ: पचोके सामने पेश किये गये साक्ष्यको देखकर लगता है कि मि० मा० स०ने इनमे से अपने हिस्सेके दायित्वोका निर्वाह नही किया है और न उसने इसका यथोचित प्रयत्न ही किया है। मेरी तो यह राय है कि यदि पर्याप्त प्रयत्न किया

जाये तो मजदूरीका मानकीकरण किया जा सकता है और हालांकि काम कठिन है, लेकिन ऐसी एक योजना बनाना भी असम्भव नही जिसके द्वारा मजदूरीकी घटा-बढ़ी स्वत. नियमित रूपसे होती चले। स्पष्ट ही मि० मा० स०का यह कर्त्तव्य था कि वह यौक्तिकीकरणके सिलसिलेमें मजदूरोंकी एक पंजिका तैयार कर लेता। दोनोंमें से कोई भी पक्ष इन तीनों मामलोमे पंचोकी सहायता ले सकता था, लेकिन लगता है कि ऐसा करनेका कोई खयाल ही उनके दिमागमें नहीं आया।

दस: यह ध्यानमें रखना आवश्यक है कि १९३५ का पंच-फैसला मूलत: दोनो पक्षोके बीच स्वैच्छिक करार था। स्पष्ट है कि उसे पंच-फैसलेका रूप तो स्वाभाविक क्रममे मिल गया; लेकिन उसका मंशा एक स्वैच्छिक करारको स्थायित्व प्रदान करना-भर था और इस तथ्यको देखते हुए उसपर अमल करना दोनो पक्षोका और भी अधिक परम कर्त्तव्य था और आज भी है।

ग्यारह: मेरी रायमे तो मि० मा० स०को मजदूरीमें कटौतीकी माँग करनेका तबतक कोई अधिकार नही जबतक कि पिछले समझौतोंकी शर्तोके पालनका गम्भीरतासे प्रयत्न करके न देख लिया जाये और उसके फलस्वरूप यह न साबित हो जाये कि उनपर अमल असम्भव है।

बारह: वैसे, दो पक्षोके बीच आपसी तौरपर हुआ आम समझौता मजदूरीकी कटौतीके प्रश्नके निवटारेके मामलेमें पंच-फैसले-जितना ही महत्त्व रखता है। समय-समयपर उठनेवाले छोटे-मोटे विवादोमें मध्यस्थताके लिए एक उपमध्यस्थ नियुक्त करनेकी आवश्यकता स्वीकार कर लेनेके बावजूद, अबतक उसकी नियुक्ति नही की गई है। यह तथ्य अपने-आपमें दोनो पक्षोकी पारस्परिक सद्भावनाके लिए हानिकारक है और पारस्परिक अविश्वासका एक कारण बन जाता है और फिर इससे पूरे उद्योगको हानि पहुँचती है। यह बात अनुचित मालूम पड़ती है कि मजदूरोंकी शिकायतोंका तो ठीक समय पर या बिलकुल ही कोई निवटारा न हो पाये, पर मजदूरीमें कटौतीका प्रश्न फिर भी पंचोको सौंपा जा सके।

तेरह: यह सर्वथा स्पष्ट ही है कि स्थायी पंच प्रत्येक शिकायतकी छानबीन नहीं कर सकते। न्याय चाहनेवालोंको अपना आचरण बिलकुल खरा रखना चाहिए। मेरी रायमे मि० मा० स०ने इस मामलेमे अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं किया है। और उसे मजदूरीमे कटौतीकी माँग करनेका तबतक कोई अधिकार नहीं जबतक कि वह उपमध्यस्थ नियुक्त करनेके अपने इस कर्त्तव्यको पूरा नही कर लेता।

चौदह: चूँकि मेरी राय ऐसी है, इसलिए मजदूरीकी कटौतीके प्रश्नके औचित्य-अनौचित्यपर विचार करना मेरे लिए अनावश्यक है।

पन्द्रह: परन्तु दोनों पक्षों द्वारा पेश किये गये कागजातके अध्ययनसे मुझे ऐसा लगा है कि पिछले पंच-फैसलेके बादसे अबतक इतना कम समय गुजरा है कि इस बीच मजदूरीमें कटौती करनेके लिए कोई उचित कारण उपस्थित नहीं हो सकता। और फिर, मि० मा० सं० द्वारा पेश विवरण अपने दावेके समर्थनमें पर्याप्त प्रमाण नहीं जुटाता।

सोलह : अब यहाँ मैं उन सिद्धान्तोको दोहरा देना चाहता हूँ जो मैंने दोनो पक्षोके भलेके लिए उनके सामने रखे है। ये सिद्धान्त इस उद्योगके साथ एक पचकी हैसियतसे १८ वर्षोके मेरे निकट तथा निरन्तर सम्पर्कका परिणाम है।

(क) जबतक कोई मिल मुनाफा देना बिलकुल ही बन्द न कर दे और काम चालू रखनेके लिए उसे अपनी पूँजीका ही सहारा लेनेको विवश न होना पडे, तबतक कोई कटौती नही की जानी चाहिए।

(ख) मजदूरी जबतक निर्वाहके लिए पर्याप्त स्तरतक न पहुँच जाये, तबतक उसमे कोई कटौती नही की जानी चाहिए। ऐसे समयकी कल्पना तो असम्भव ही लगती है जब मजदूर उद्योगको अपनी ही सम्पत्तिकी तरह समझने लगेगे और इस कारण उसे सकटसे उबारनेके लिए मुश्किलसे गुजारे लायक, रूखी-सूखी रोटीके लायक मजदूरी लेकर ही दिन-रात काममे जुटे रहनेको तैयार हो जायेगे। वह तो एक स्वैच्छिक व्यवस्था होगी। अभी जिन प्रश्नोपर विचार करना है उनके सन्दर्भमे वैसी बाते असगत है।

(ग) दोनोको आपसमे एक ऐसी समझ पैदा करनी चाहिए कि निर्वाह-योग्य मजदूरी निर्धारित करनेमे किन-किन चीजोको लिया जाये।

(घ) कुछ मिलोकी हालत खराब है, इस बातको लेकर आम तौरपर मजदूरीमें कटौती करनेका प्रश्न नही उठाया जा सकता।

(ङ) उद्योगकी खुशहालीके लिए यह बहुत ही जरूरी है कि मजदूरोको अश-धारियोके समकक्ष ही माना जाये, और इसलिए यह माना जाये कि मजदूरोको मिलोके सभी क्रिया-कलापकी सही-सही जानकारी रखनेका पूरा अधिकार है।

(च) मिलोमे काम करनेके लिए सुलभ सभी मजदूरोकी एक ऐसी पजिका रहनी चाहिए जो दोनो पक्षोको मजूर हो और कपडा मजदूर सघके अतिरिक्त अन्य किसी स्रोतसे मजदूर लेनेकी प्रथा बन्द कर दी जानी चाहिए।

सत्रह : इन सिद्धान्तोको मैंने इस विश्वासके साथ पेश नही किया है कि सहयोगी पच या मिल-मालिक या कम-से-कम मजदूर इनको स्वीकार कर लेगे। इस मामलेमे मैंने जो अपना निर्णय दिया है वह इन सिद्धान्तोपर आधारित भी नही है। लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि इन सिद्धान्तोको स्वीकार किये बिना उद्योगकी, अर्थात् मिल-मालिको और मजदूरोकी स्थिति खतरेसे खाली नही रहेगी।

अठारह : मजदूरीमे कटौतीसे सम्बन्धित इस चर्चाका समापन करनेसे पहले मुझे यह जरूरी जान पड़ता है कि मैं एक और बातका उल्लेख कर दूं, जो कार्यवाहीके दौरान मेरी नजरमे आई है। लगता है कि कुछ मिलोपर मि०

मा० स०का नियन्त्रण कुछ ढीला पड गया है। कुछ मिल-मालिकोको जब भी मि० मा० स०के निर्णय ठीक नही लगते, वे सघसे अलग हो जानेकी बात सोचने लगते है। निश्चय ही, यह स्थिति बडी शोचनीय है और इसमे सुधारकी जरूरत है। लेकिन इस स्थितिको मजदूरीमे कटौतीकी माँगके समर्थनमे पेश नही किया जा सकता। ऐसी शोचनीय स्थितिमे पडी मिलोको चलाते रखनेका दायित्व मजदूरोके कन्धोपर नही रखा जा सकता। देखा गया है कि कुछ मिलोकी हालत खराब होनेके कारण है — प्रबन्धकोकी खामियाँ, पुराने ढगकी मशीने या ऐसी ही कुछ अन्दरूनी खराबियाँ।

न्यू मानिक चौक मिल

उन्नीस : इस मिलके मजदूरी घटानेकी बातसे इनकार नही किया गया है, लेकिन किसी भी मिलको अपनी मर्जीसे कटौती करनेका कोई अधिकार नही है। मि० मा० स०का कहना है कि यह मिल सघसे अलग हो चुकी है और इसलिए उसके मामलेपर विचार करना पचोके क्षेत्राधिकारसे बाहर है। मजदूरीमे कटौतीका एक नोटिस पिछले ८ अगस्तको और दूसरा पिछले २ अक्तूबरको दिया गया। इसी बीच पिछले २० अगस्तको मिलने सघसे अपने-आपको अलग कर लिया। मि० मा० सं०का यह कथन कि कटौती ३० सितम्बरको की गई, स्पष्ट ही अनजानमे हो गई एक छोटी-सी भूल है। खैर, ऐसा हो या न हो, त्यागपत्र देने या सघसे उसके अलग हो जानेकी बातसे उसके मामलेको पचोके सामने लानेके क० म० स०के अधिकार पर कोई प्रतिबन्ध नही लगता। यदि कोई मिल अपने किसी कामके लिए पचो द्वारा दोषी ठहराये जानेसे बचनेके लिए सघसे त्यागपत्र देकर इस तरह बच सके, तो पच-फैसलेकी पूरी प्रणाली ही निरर्थक हो जाती है। यह एक बिलकुल ही अलग प्रश्न है कि इस प्रकार अलग होनेवालोपर मि० मा० स० अपना अनुशासन कैसे बनाये रखे। जब भी ऐसा प्रश्न उठे और आवश्यक हो जाये तो उसे पच-फैसलेके लिए सौपा जा सकता है। मेरी रायमें, इस मिलको कटौतीकी राशि चुका देनी चाहिए और अपना नोटिस वापस ले लेना चाहिए। यदि दोषी मिल इस निर्णय पर अमल न करे तो मि० मा० स०को दोषीके विरुद्ध सभी प्रकारके समुचित उपाय करनेमें क० म० स०के साथ सहयोग करना चाहिए।

मोतीलाल हीराभाई मिल

बीस : पेश किये गये कागजातपर मैं कोई निश्चित राय नही दे सकता। यदि इस मिलके मालिक अपेक्षित सूचना नही देते, तो मि० मा० स०को अविलम्ब वह हासिल करनी चाहिए, और यदि मि० मा० स० भी अपेक्षित सूचना नही जुटाता, तो क० म० स०को पचोके सामने मामला पेश करनेका पूरा हक है। लगता है कि मि० मा० स० और इस मिलने क० म० स०को इसमें आवश्यक सहायता नही दी, फिर भी यदि क० म० स०ने मजदूरोको हडतालपर जानेमे सहायता दी

है तो उसने गलत काम किया है। परिस्थितियाँ कितनी ही उत्तेजनापूर्ण क्यो न हो, मजदूर वाकायदा पूर्व-सूचना दिये विना काम वन्द नही कर सकते और न मालिक ही अपनी मर्जीसे मजदूरोपर कटौती थोप सकते है। पच-फैसलेके सिद्धान्तकी स्वीकृतिमे इसकी स्वीकृति भी शामिल है।

फैसला

इसलिए पच-फैसलेके लिए सौपे गये प्रश्नोके सम्वन्धमे मेरा फैसला इस प्रकार है:

१. मजदूरी कटौतीके लिए पेश किया गया दावा इसलिए खारिज किया जाता है कि मि० मा० स० उसे प्रमाणित करनेमे असफल रहा है।

२. न्यू मानिक चौक मिल द्वारा दिया गया तथाकथित त्यागपत्र उसे पचोके वोर्डके क्षेत्राधिकारके वाहर नही रख देता। मिलको कटौतीकी राशि चुका देनी चाहिए और कटौतीका नोटिस वापस ले लेना चाहिए। यदि इस मिलके मालिक इस फैसलेपर अमल नही करते, तो मि० मा० स०को अनुशासन लागू करनेके सभी वैध उपाय करनेमे क० म० स०के साथ सहयोग करना चाहिए और यदि आवश्यकता पडे तो इसमे पचोके वोर्डकी सहायता लेनी चाहिए।

३. मोतीलाल हीराभाई मिलके विरुद्ध की गई शिकायतके वारेमे मैं कोई निश्चित निर्णय नही दे सकता।

[अंग्रेजीसे]

हिस्ट्री ऑफ वेज एडजस्टमेंट इन द अहमदावाद इंडस्ट्री, खण्ड ४, पृष्ठ ३३-४०

२०८. पत्र: कस्तूरभाई लालभाईको

२६ दिसम्वर, १९३६

भाई कस्तूरभाई,

इस पत्रके साथ मेरा फैसला[1] और उसकी दो नकले है. एक मजूर-महाजनके लिए और दूसरी मिल-मालिकोके सघके लिए।

इसमे मैंने जो सुवार या परिवर्धन किये है, उन्हे आप देख लेना। परिशिष्टमें उप-परिशिष्टोका उल्लेख है। आपकी इच्छाके अनुसार, ये उप-परिशिष्ट मैंने निकाल लिये है। इसके लिए परिशिष्टमे जो टिप्पणी दी है, उसे आप देख लेना।

कल पत्र लिखनेके वाद मैंने रातको विचार किया और यह पत्र लिखते हुए मुझे लगा कि अधिक न्याय तो पिछली मजदूरी न देनेके निर्णयसे होगा, इसलिए मैंने अपना निर्णय वदल दिया है। हाँ, मजदूरीके वारेमे जरूर एक सिफारिश की है, जिसे आप देख लेगे। पिछली मजदूरी न देनेका कारण भी देख लीजिए। वह मेरे

१. देखिए पिछला शीर्षक।

स्वभावके अनुसार है। यदि आपने मेरा ध्यान आकर्षित न किया होता तो कदाचित् मैं अपना वैचारिक दोष न देख पाता। किन्तु आपने मुझे खूब विचार करनेको मजबूर किया। आपका सुझाव स्वीकार कर लेनेकी मेरी पूरी इच्छा थी। आपने मेरा ध्यान आकर्षित करके मित्रताका परिचय दिया है। क्या मैं आपका आभार मानूं? मित्र एक-दूसरेको सावधान करनेका कर्त्तव्य न निबाहे, तो सत्य सो जाये।

मैंने जो तार दिया है, मिला होगा। उसपर अमल कर पाये हो, तब तो बहुत अच्छा। सैंकडो मजदूर बेकार भटक रहे है, यह मुझे बहुत चुभता है। उनकी बात हमे सुनने नही दी गई, यह भी चुभता है। इसलिए अब तो एक क्षण भी व्यर्थ मत जाने दीजिए। सरपचको लिखे पत्रकी नकल मेरे पास नही है। उन्हे पन्द्रह दिनकी अवधि दी गई है न? जो भी हो, हम दोनोकी ओरसे सरपचसे प्रार्थना कीजिए कि अवधिके भीतर भी जितनी जल्दी कर सके, करे।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४२००) से।

२०९. पत्र : मीराबहनको

२६ दिसम्बर, १९३६

चि० मीरा,

तुम्हारे दो पत्र मेरे सामने है। अगर तुम्हे अपने जीवनमे अहिंसाको व्यक्त करना है, तो तुम्हे गरम-से-गरम मिजाजको भी निभा लेना होगा। वह गुस्सा खुद अपने प्रति हो या अपने सरक्षितो या प्रिय मित्रोके प्रति, इससे कोई फर्क नही पडता। यदि बलवन्तसिह और मुन्नालाल दोनो सर्वथा या लगभग दोष-रहित मानव होते, तो वे मेरे पास न होते।

मै शायद ३० तारीखको वहाँ पहुँचूँ।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३७०) से, सौजन्य मीराबहन। जी० एन० ९८३६ से भी।

२१०. सन्देश : विद्यार्थियोंको[1]

फैजपुर
[२६ दिसम्बर, १९३६][2]

अड़सठ वर्षकी इस अवस्थामे मैं तुमको कौन-सा नया सन्देश दे सकता हूँ? और तुम लोग अगर वहाँ मेरी हत्या करने या मेरा पुतला जलानेका प्रस्ताव पास करो, तो तुमको मेरे सन्देश देनेका कोई लाभ भी कहाँ है? खैर, शरीरकी हत्यासे तो कोई बात बनती नही, क्योकि तब मेरी भस्मसे हजारो गाधी पैदा हो जायेगे। लेकिन अगर तुम लोग उन सिद्धान्तोकी हत्या करो या उनको जलाओ जिनके लिए मैं जिन्दा रहा हूँ, तो?

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १६-१-१९३७

२११. हिन्दू आचार-संहिता

निम्नलिखित पत्र[3] सात महीने मेरी फाइलमे रखा रहा है

इस पत्रको मैंने इस आशासे दबा रखा था कि इसका जवाब खुद देनेकी अपेक्षा किसी विद्वान् शास्त्रज्ञसे लिखाकर भेज दूँ तो अच्छा हो। अब यह काम आचार्य आनन्दशकरभाईने मेरी प्रार्थनापर हाथमे ले लिया है। पर जो पुस्तक तैयार होगी उससे ऊपरके प्रश्नोका हल, जैसा कि लेखक चाहता है, वैसा नही होगा। उस पुस्तकमे से वह खुद आवश्यक चीजे निकाल लेगा ऐसी मेरी आशा है। इस प्रकारकी कोई चीज मैं यहाँ दे देता हूँ। चूँकि हरिजनोमे काम करते मुझे बरसो हो गये है, इसलिए मेरा अनुभव शायद प्रश्नकार-जैसे सेवकोकी कुछ मदद कर सके।

मैं हरिजनोसे हिन्दू-धर्मके तत्त्वोकी बाते नही करता। यदि उनके अपने मन्दिर होते है तो उनमे चला जाता हूँ। उनके पुजारीके साथ विनोद भी करता हूँ। सामा-

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। यह सन्देश एक विद्यार्थी-सम्मेलनके मन्त्रीके अनुरोधपर दिया गया था।

२. देसाई लिखते हैं कि गाधीजीने यह सन्देश "चरखेके सिद्धान्तपर महत्त्वपूर्ण भाषण" से एक दिन पहले दिया था। वह भाषण २७ दिसम्बरको दिया गया था।

३. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकका कहना था कि हरिजनोंको संस्कृतिपर भाषण देनेकी बजाय उन्हें अपने दैनिक जीवनमें हिन्दू-धर्मके पालनकी शिक्षा देना कहीं अच्छा है।

न्यतः उस बेचारेको कुछ ज्ञान नही होता। मेरा आशय यह नही है कि सवर्णोका पुजारी सब-कुछ जानता ही है। मगर सवर्ण पुजारी मेरी बात सुनेगा ही क्यो? हरिजन पुजारी मुझे एक बड़ा आदमी मानता है और मेरी बात सुनता है, बादमे भले ही एक कानसे सुनकर दूसरे कानसे निकाल दे। यह तो अलग बात हुई। हरिजन मण्डलीसे तो मैं इस प्रकार कहूँगा — तुम्हे आजतक हमने दुतकारा ही है; तुम्हारी तरफ देखा भी नही; तुम्हारे दु:ख-सुखमें भाग नही लिया। इसलिए हमारे धर्मका हमसे क्या तकाजा है, यह मैं तुम्हे बता दूँ।

१. सवेरे पौ फटनेसे पहले उठनेकी आदत न हो तो डाल लेनी चाहिए।

२. अधिकाश लोग उठते ही या तो बीडी-चिलम फूंकने लगते है, या अटसट जो भी मुँहमें आया सो बोलकर घरवालोको अपने जाग जानेका ज्ञान कराते है। ऐसा करनेके बजाय, बिस्तर छोड़नेसे पहले आलस्यको भगाते हुए प्रभुका नामोच्चारण करना चाहिए और रात निर्विघ्न बीत जानेके लिए भगवानका आभार मानना चाहिए।

३. बिस्तर छोडते ही बाल-बच्चोको उठा देना चाहिए और जहाँ लोगोका आना-जाना न हो वहाँ बैठकर बबूल या ऐसी ही किसी अन्य वनस्पतिकी दातुन करनी चाहिए। साथमे, नमक या घरमे पिसे हुए कोयलेसे दाँतोको अच्छी तरह घिसना चाहिए। दातुनको चीरकर उससे जीभ साफ करे और अच्छी तरह कुल्ले करे, आँखोपर पानीके छीटें मारे, कीचड़ हो तो उसे निकाले और चेहरा, कान, नाक वगैरह अच्छी तरह धोयें और साफ कपड़ेसे उन्हे पोछें।

४. अगर शौचकी खबर हुई हो और गाँवके नजदीक पाखाना न हो या हो किन्तु वहाँ जाना पसन्द न हो तो दूर जाकर जहाँ लोगोकी आवाजाही न हो वहाँ शौच-क्रिया करनी चाहिए। मलको धूल या मिट्टीसे अच्छी तरह ढँक देना चाहिए और मल-विसर्जनका भाग पानीसे ठीक तरहसे साफ कर लेना चाहिए। मल दोनो ही इन्द्रियोसे निकलता है, इसलिए दोनोको अच्छी तरह धोकर उनका मैल साफ कर देना चाहिए। इसके बाद पानी और मिट्टीसे हाथ धोने चाहिए और लोटा भी खूब मांजकर साफ करना चाहिए।

५. यह सब नित्य-क्रिया करते समय मनमें रामधुन या कोई भजन गाते जायें, और ऐसी कोई चीज न आती हो तो केवल रामनामकी ही रट लगाते रहे।

६. घर आते-आते इस तरह पौ फटनेका समय हो जायेगा। कुटुम्बके लोग भी इस बीचमें इसी तरह शौचादिसे निवृत्त हो चुके होगे। इसलिए उनके साथ बैठकर पाँच मिनटसे लेकर आध घटेतक भगवानका भजन-कीर्तन करना चाहिए। अगर कोई भजन वगैरह न आता हो तो रामनाम तो सब ले ही सकते है।

७. इसके बाद नाश्ता करके सबको अपने-अपने काम में लग जाना चाहिए, बालक कामपर न जाते हो तो पाठशाला पढ़ने चले जाये।

८. दोपहरका भोजन करनेसे पहले साफ पानीसे सारे शरीरको अच्छी तरह रगड़कर नहाना चाहिए। धोती-साड़ी वगैरह कपड़े साफ करके धोने चाहिए। गरीब

आदमी, जिन्हे कपडे रोज बदलनेकी सुविधा न हो, लँगोटी पहनकर नहा ले। नहानेके बाद शरीरको खूब अच्छी तरह पोछना चाहिए।

९. इस तरह नित्यका काम-धन्धा करते हुए जब शाम हो जाये, तब खाना खानेके बाद और सोनेसे पहले ईश्वरका नाम लेना चाहिए और दिन निर्विघ्न बिता देनेके लिए उसका आभार मानना चाहिए।

१०. हर समय खाना खानेके बाद या ऐसा कोई भी काम करनेके बाद जिसमे कि हाथ गन्दे होते हो, हाथ धोने चाहिए। खाना खानेके बाद कुल्ला करके मुँह साफ करना चाहिए।

११. हमे समझना चाहिए कि हमारे हरएक कामको, हमारे हरएक विचारको ईश्वर देखता है, इसलिए उसे कोई धोखा दे नही सकता। तो फिर उसके सिरजे हुए अपने भाई-बहनोको हम किस तरह धोखा दे? भले ही वे हमारी धोखेबाजीको न जान सके। और यदि जान सकनेकी सभावना हो तब तो धोखा दे ही कैसे सकते है?

१२. इसलिए हम जिसकी नौकरी करते हो उसका काम दिल लगाकर करे, उसे धोखा न दे।

१३. और अगर किसीको धोखा नही देना है, तो किसीकी चोरी किसलिए करे? खोटी तोल तोलना भी चोरी ही है।

१४. हमे कोई गाली दे या मारे या हमारी माँ-बहनके साथ दुर्व्यवहार करे, तो हमे वह निश्चय ही अच्छा नही लगेगा। इसलिए हम किसीको गाली न दें, अपनी स्त्री या बाल-बच्चोको भी न दे।

१५. और न किसीको मारे-पीटे। इसमे स्त्री और बाल-बच्चे भी आ गये। इनका नाम अलगसे लेना पड़ा है, क्योकि बहुत-से पुरुष अपनी स्त्री और बच्चोको अपनी मिलकियत समझते है। पर यह भारी भूल है। स्त्रीको तो हमारे धर्ममे पुरुषके समान ही माना है। इसीसे वह अर्धांगिनी कही जाती है, सहधर्मिणी कही जाती है, देवी मानी जाती है। बाल-बच्चे भी हमारी मिलकियत नही है। माता-पिता उनके रक्षक है, इसलिए उनके प्रति भी मृदुता, सहनशीलता और धीरज काममे लाना चाहिए।

१६. जिस प्रकार हम अपनी स्त्री या बालकोके साथ सद्भाव रखे, उसी प्रकार माता-पिता आदि बुजुर्गोके साथ मान व आदरसे बरताव करे।

१७. ऊपरके १४वे अनुच्छेदमे जो बताया है, उसके अनुसार यह तो सत्य ही है कि पुरुष परस्त्रीको माँ-बहनके समान समझे, और इसी तरह स्त्री भी परपुरुषको भाई और बापके समान माने।

१८. जिस प्रकार मनुष्यमात्र ईश्वरकी कृति है, उसी तरह प्राणीमात्र भी उसीकी कृति है; इससे वे भी एक कुटुम्बरूप है। इसलिए उनके साथ भी हमे सद्भाव रखना चाहिए। अत. मिट्टी या पत्थरका भी दुरुपयोग न किया जाये। हमारे धर्ममे तो हमे इस प्रकारकी प्रार्थना भी सिखाई गई है· 'हे धरती माता, तेरे ऊपर हम रोज चलते है, तेरे ही आधारपर तो हम टिके हुए है। हमारे पैरके स्पर्शके लिए हमे तू क्षमा करना।' ऐसा कहकर हम चुटकी, भर धूल माथेपर चढ़ा ले।

१९. इस तरह हम अपने पशुके साथ भी ममताका बरताव करे; उसे ठीक-ठीक खिलाये; जितना बोझ वह ले जा सके उससे अधिक उसके ऊपर लादना नही चाहिए, उसे अच्छी जगहमे रखे, उसे मारे-पीटे नही।

२०. इसी तरह जितनेकी जरूरत हो उतने ही पेड़-पत्तोको तोडे। तोडनेमें विवेकसे काम ले। चाहे जिस तरह पेडको न काटे।

२१. जहाँतक हो सके मासाहार न करे। पर गोमास तो लेना ही नही चाहिए। हमारे धर्ममे गोरक्षाका महान स्थान है।

२२. १९वे अनुच्छेदके अनुसार सब जीव हमारे भाई-बहन है। इसी लिए हमारे ऋषि-मुनियोने सिखाया है कि गायको माताके समान मानकर हमें मनुष्य-जातिसे इतर समस्त जीवोके प्रति भाईचारेका बरताव रखना चाहिए। गायको माता मानना भी उचित है, क्योकि माताकी तरह वह भी हमें दूध देती है। जिसे दूध मिलता है उसे मास-मछलीकी जरूरत नही रहती। फिर गाय तो हमें बैल भी देती है, और मरनेके बाद चमडा, खाद, गाडियो वगैरहके लिए चरबी आदि चीजें भी हमें दे जाती है। इसलिए गायकी हत्या तो करनी ही नही चाहिए।

२३. और गायकी हत्या न करे तो उसके मरनेके बाद उसका मास क्यो खाये? मुर्दार मास तो दुनियामे कोई समझदार आदमी खाता नही।

२४. व्यसनमे फँसनेसे मनुष्य पागल सरीखा बन जाता है; कितनी ही बार तो उसे बिलकुल ही होश नही रहता। इसलिए दारू, ताडी, भाँग, गाँजा, अफीम, तम्बाखू न पीना चाहिए, न खाना चाहिए।

२५. जुआ ठगी है और उसमे मिला हुआ धन हरामका पैसा है। इसलिए जुआ नही खेलना चाहिए।

२६. जैसे हमे अपना धर्म प्रिय है वैसे ही दूसरोको अपना धर्म प्यारा है। इसलिए हमे सब धर्मोका आदर करना चाहिए, उन्हे एक समान मानना चाहिए। अत. हमे मुसलमान, ईसाई वगैरह अन्य धर्मावलम्बियोके साथ द्वेष या लडाई-झगडा नही करना चाहिए।

२७. जब धर्म यह सिखाता है कि हम सब ईश्वरकी सन्तान है, तो फिर उसमे ऊँच-नीच कोई हो ही नही सकता। अस्पृश्यताकी तो गन्ध भी नही होनी चाहिए।

२८. अन्तमें हमारा धर्म यह भी कहता है कि जो अपने शरीर-श्रमसे अपनी आजीविका पैदा नही करता, वह चोरीका अन्न खाता है। इसलिए सबको खेतीमे या कपड़े बनानेमे या ऐसी ही किसी मजदूरीमे लगकर अपनी रोटी पैदा करनी चाहिए, और अपने-अपने गाँवमे अनाज, खादी वगैरह खाने-पहननेकी चीजें पैदा करनी चाहिए।

ऐसा मैंने अनेक बार भिन्न-भिन्न अवसरोपर कहा है और उसीको यहाँ लेख-बद्ध कर दिया है। इसमे अवसरके अनुसार और इसके अन्तर्गत सत्य, अहिंसा आदि सनातन तत्त्वोका अनुसरण करके और भी ऐसे वचन बनाये जा सकते है।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २७-१२-१९३६

२१२. ईसाई हरिजनोंके प्रति कर्त्तव्य

एक सज्जनने पूछा है कि ईसाई हरिजनोके प्रति हरिजन सेवक सघका क्या कर्त्तव्य है। उनके पत्रमे अनेक छोटे-छोटे प्रश्न है, जिन्हे यहाँ अलगसे देनेकी जरूरत नही है। यह लेख ही उन प्रश्नोको लक्ष्य करके लिखा जा रहा है।

साधारण रीतिसे यह कहा जा सकता है कि जो ईसाई धर्ममे चले गये है उनके प्रति वह विशेष कर्त्तव्य समाप्त हो जाता है जो कि हिन्दू हरिजनोके प्रति संघने मान रखा है और जिसे पालनेका वह प्रयत्न करता है। पर एक मनुष्यका दूसरे मनुष्योके प्रति जो सद्भाव होना चाहिए वह सद्भाव तो ईसाई हरिजनोके प्रति भी होना चाहिए। वह नियम सभी धर्मोके मनुष्योपर लागू होता है। कोई हरिजन अपनेको ईसाई कहता है, इससे उसके प्रति रोष नही करना चाहिए। पर अगर उसे सघकी ओरसे छात्रवृत्ति जैसी कोई खास मदद मिलती हो, तो वह बन्द हो जायेगी। पर ईसाई हो जानेपर भी यदि वह हरिजन पाठशालामे पढता हो और वहाँ रहना चाहे तो उसे निकाला न जाये। शायद उससे फीस भी माँगनी चाहिए। उसे मुफ्त कपडे वगैरह दिये जाते रहे हो तो न दिये जाये, क्योकि सघका पैसा केवल हिन्दू-हरिजनोके लिए ही है। हरिजन-पाठशालामे अन्य हिन्दू विद्यार्थी दाखिल हो सकते है, पर मुफ्त नही, उन्हे शुल्क देना चाहिए।

ईसाई-हरिजनोको फिरसे हिन्दू-धर्ममे आनेका लालच नही देना चाहिए, पर वे अपनी खुशीसे वापस अपने धर्ममे आना चाहे तो उन्हे मना नही करना चाहिए। लेकिन ईसाई-हरिजन कुएँ वगैरहकी सुविधा माँगते हो तो वह उन्हे देनेका सामान्य धर्म स्वाभाविक है। पर यहाँ भी हरिजन-निधिसे मदद न दी जाये। जिस कुएँसे हरिजन पानी भरते हो वहाँ उन्हे भरनेकी सुविधा कर देनी चाहिए, जिस डॉक्टरकी या सेवककी वगैर फीसके सेवा मिलती हो उसकी सेवा ईसाई-हरिजनोको भी सघके सेवक दे सकते है, और यह उनका धर्म है।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २७-१२-१९३६

२१३. पत्र : अमतुस्सलामको

तिलकनगर
२७ दिसम्बर, १९३६

चि० अमतुल सलाम,

तेरा पत्र मिला। मैं १० तारीखको त्रावणकोर जाऊँगा। कान्ति परसो आ गया। कल रात उससे तीन मिनट बातें हुई। तू ३ तारीखको सेगाँव आ जाना।
मैं बहुत जल्दीमें हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७०) से।

२१४. भाषण : प्रदर्शनी-मैदान, फैजपुरमें

२७ दिसम्बर, १९३६

यह भाषण साढे आठ बजे रखा गया था, पर इतनी देरसे, सवा नौ बजे, शुरू हो रहा है। इसके लिए मुझे दुःख है। मगर दूसरा उपाय था नही। यहाँ इतने अधिक लोग आये है, और चूंकि हमारी प्रदर्शनीकी दीवारे कच्चे बाँसकी टट्टियोकी ही बनी हुई है, इसलिए अगर इतने आदमियोका रेला एक साथ पडे तो ये गिर जायेंगी। इसलिए इनकी रक्षाके लिए भी व्यवस्था करनेकी जरूरत पडी और व्यवस्था करनेवालोका कुछ समय उसमे लग गया। ये लोग इतनी बडी भीडके रेलेके लिए तैयार नही थे। मेरा भाषण यहाँ रखनेमे आपको थोडी चालाकी मालूम होगी, पर ऐसा जान-बूझकर ही किया गया है। और कुछ नही तो लोग मेरा भाषण सुननेके लिए तो आयेंगे ही और उसकी खातिर दो आने प्रदर्शनीको भी देंगे! ऐसा करते हुए अगर वे भूलसे ही थोडी-सी खादी ले ले और थोडी ग्राम-कला भी देख ले तो उन्हे अनायास ही थोडा पुण्य मिल जायेगा, और मुझे भी।

आपने देखा होगा कि यह समूचा तिलकनगर ही एक प्रदर्शनीकी भाँति है। इसका श्रेय बाबू नन्दलाल बोसको है। उन्होंने निश्चय किया कि प्रदर्शनी और कांग्रेस-अधिवेशन दोनोके लिए एक ही व्यवस्था रखी जाये। इसमे खर्च बहुत ही थोडा हुआ है। इतने कम खर्चसे किसी भी कांग्रेस-नगरकी रचना हुई होगी, यह मै नही जानता। हाँ, अब भी कुछ खर्च मेरी दृष्टिसे अनावश्यक हुआ है, पर यह तो गाँवमे होनेवाली पहली कांग्रेस है न। जमीन लेनेमें खासा खर्च करना पडा। पर हमने कुछ ऐसा कर

लिया है कि इसके बादके कांग्रेस-अधिवेशन गाँवोमे ही करनेका प्रोत्साहन हमे मिले। आप देखते हैं कि लोग उमड़ते ही चले आ रहे हैं। स्वयसेवक इतने अधिक है, तो भी ऐसा लगता है, मानो इस भारी जनसमूहमे वे विला गये हो। भोजन करनेवाले इतने अधिक हैं कि उनका प्रबन्ध करना कठिन हो गया है।[1]

आज मैं आप लोगोको कोई नई बात सुनाने नही जा रहा हूँ। चरखेका सिद्धान्त अब १८ वर्षका हो गया है। मैंने १९१८ मे कहा था कि हम चरखेसे स्वराज्य हासिल कर सकते हैं। चरखेकी क्षमतापर मेरा विश्वास आज भी उतना ही दृढ है जितना १९१८ मे, इस सिद्धान्तकी प्रथम घोषणाके समय था। अबतक के अनुभव और प्रयोग ने मेरे विश्वासको और गहरा तथा व्यापक बना दिया है।

परन्तु चरखे या इससे तैयार होनेवाली खादीका पूरा अर्थ आपको समझ लेना चाहिए। केवल कुछ विशेष अवसरोपर खादी पहनना या अन्य सभी चीजोके लिए विदेशी वस्त्रोका इस्तेमाल करते हुए पहनने-भरके लिए केवल खादी इस्तेमाल करना ही काफी नही होगा। खादीका अर्थ है—सच्ची स्वदेशी भावना पैदा करना, भुख-मरीके शिकार करोड़ो लोगोके हितोके साथ अपने हितोको एकरूप कर देना।

स्वराज्यकी मेरी संकल्पनाके बारेमे भी कोई गलतफहमी नही रहनी चाहिए। स्वराज्यका अर्थ है, विदेशी शासनसे पूर्ण स्वतन्त्रता और पूर्ण आर्थिक स्वतन्त्रता। इस प्रकार स्वराज्यके एक सिरेपर राजनीतिक स्वतन्त्रता है, तो दूसरेपर आर्थिक स्वतन्त्रता। उसके दो सिरे और हैं। तीसरा सिरा है—नैतिक या सामाजिक, और चौथा है धर्मका। धर्म शब्दका प्रयोग यहाँ मैं उसके उच्चतम अर्थमे कर रहा हूँ। उसमे हिन्दू-धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म, इत्यादि सभी धर्मोका समावेश है, लेकिन वह सभी धर्मोसे श्रेष्ठ है। आप उसे सत्य भी कह सकते है। सत्य कार्यसाधकताकी ईमानदारी नही है। वह तो जीवन्त सत्य है, जो सर्वव्यापक है और जो किसी भी विनाशलीला और किसी भी परिवर्तन या कायापलटमे नष्ट नही होता। नैतिक और सामाजिक उत्थानको हम अपनी परिचित संज्ञा भी दे सकते है—अहिंसा। हम इसे स्वराज्यका चतुर्भुज कहेंगे, जिसका यदि एक भी कोण गलत हो जाये तो पूरे चतुर्भुजका ही आकार बिखर जायेगा। कांग्रेसकी भाषामें कहे तो हम इस राजनीतिक और आर्थिक स्वतन्त्रताको सत्य और अहिंसाके बिना या, अधिक स्पष्ट शब्दोमे कहे तो, ईश्वरमें जीवन्त आस्था और इसलिए नैतिक तथा सामाजिक उन्नयनके बिना प्राप्त नही कर सकते।

राजनीतिक स्वतन्त्रतासे मेरा आशय ब्रिटिश कामन्स सभा की, या रूसके सोवि-येत शासन या इटलीके फासिस्ट या जर्मनीके नात्सी शासनकी नकल नही है। उन्होने

१. यह हरिजनबन्धुमें प्रकाशित गुजराती पाठसे लिया गया है। इससे आगेका अंश हरिजनमें प्रकाशित "ए रिस्टेटमेन्ट ऑफ फेथ" शीर्षक विवरणसे अनूदित है, जो महादेव देसाई द्वारा तैयार किया गया था और गांधीजी द्वारा जाँचा गया था।

अपनी परिस्थितियों और अपने विचारोंके अनुरूप व्यवस्थाएँ बनाई हैं। हमारी व्यवस्था हमारी अपनी परिस्थितियों और विचारधाराके अनुकूल होनी चाहिए। वह व्यवस्था ठीक-ठीक कैसी हो सकती है, यह मैं नहीं बतला सकता। मैंने उसे रामराज्य, अर्थात् शुद्ध नैतिक सत्तापर आधारित जनताकी पूर्ण प्रभुता कहा है। नागपुर और बम्बईके कांग्रेस अधिवेशनोंमें पारित संविधानोंमें इस प्रकारके स्वराज्यको परिभाषित करनेका प्रयास किया गया है। उनमें मुख्यतः मेरी ही संकल्पना है।

अब आर्थिक स्वतन्त्रताको लीजिए। वह आधुनिक या पाश्चात्य ढंगके उद्योगी-करणकी उपज नहीं है। मेरे तईं तो भारतकी आर्थिक स्वतन्त्रताका अर्थ है — प्रत्येक व्यक्तिके अपने ही सचेतन प्रयत्नके बलपर व्यक्तिशः प्रत्येक स्त्री-पुरुषका आर्थिक उत्थान। उस व्यवस्थामें सभी स्त्री-पुरुषोंको पर्याप्त मात्रामें वस्त्र सुलभ रहेगा, मात्र लंगोटी नहीं, बल्कि जिनको हम आवश्यक मानते हैं वे सभी वस्त्र और पर्याप्त भोजन, — दूध और मक्खन समेत पर्याप्त भोजन — सुलभ रहेगा, जो आज करोड़ोंको नसीब नहीं है।

यहीं समाजवादकी बात उठती है। हमारे पूर्वजोंने हमें विरासतमें सच्चा समाज-वाद दिया है। उन्होंने हमें सिखाया है:

> सबै भूमि गोपालकी, वामें अटक कहाँ?
> जाके मनमें अटक है, सोई अटक रहा।

गोपालका शाब्दिक अर्थ है गोपालक और ईश्वर भी। आजकी भाषामें उसका अर्थ है — राज्य, अर्थात् जनता। आज भूमि जनताकी नहीं है। बात बिलकुल सच है। लेकिन इसमें दोष उस सीखका नहीं है। दोष तो हमारा अपना है, जो उस सीखपर अमल नहीं कर पाये हैं।

मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि हम उसपर अमल करनेमें उतने ही सफल हो सकते हैं जितना कि अन्य कोई भी देश रूस तक। इतना ही नहीं, हम हिंसाका सहारा लिये बिना ही उसे सफल बना सकते हैं। हिंसाके बलपर सत्तासे च्युत करनेका मार्ग यदि छोड़ दिया जाये तो फिर सबसे कारगर उपाय एक चरखा ही रह जाता है, चरखेको उसके सभी फलितार्थोंके साथ अपनाना। भूमि और सभी प्रकारकी सम्पत्ति उसीकी है जो उसपर काम करता है। दुर्भाग्यकी बात है कि मेहनत-कशोंको इस स्पष्ट तथ्यका ज्ञान नहीं है या उनको अज्ञानमें रखा गया है।

आइए, अब हम देखें कि भारत इतना दरिद्र देश कैसे बन गया। इतिहास बतलाता है कि ईस्ट इन्डिया कम्पनीने हमारे देशमें कपड़ेके उत्पादनको बिलकुल ही चौपट करके, देशको कपड़ेके मामलेमें लंकाशायरका आश्रित बना दिया। कपड़ेकी आवश्यकता मनुष्यकी मूलभूत आवश्यकताओंमें दूसरे नम्बरपर है। आज भी सबसे अधिक आयात वस्त्रोंका ही होता है। इस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनीने एक बड़ी संख्यामें लोगोंको आंशिक रूपसे बेरोजगार कर दिया और बदलेमें उन करोड़ों व्यक्तियोंके लिए कोई रोजगार नहीं जुटाया। हाथसे की जानेवाली पिजाई, धुनाई, कताई और एक हदतक बुनाईका भी धन्धा नष्ट हो जानेके कारण भारतके

अन्य ग्रामोद्योग भी नष्ट हो गये। लगातार वेरोजगार रहनेसे, निठल्ले रहनेसे, जनताके अन्दर एक प्रकारकी काहिली घर कर गई जो सबसे निराशाजनक चीज है। इस प्रकार जहाँ विदेशी शासन निस्सन्देह जनताकी निरन्तर वढती कगालीके लिए जिम्मेदार है, वहाँ इसके लिए अधिक जिम्मेदार हम स्वय ही है। मध्यवर्गीय जनताने चन्द टुकडोके लिए विश्वासघात करके अपनी आर्थिक स्वतन्त्रता वेच दी है। अव भी यदि वे अपनी गलती महसूस कर ले और गाँव-गाँवमे चरखेका सन्देश ले जायें और गाँवोकी जनताको काहिली छोडकर चरखा चलानेके लिए प्रेरित कर सके, तो हम एक वडी हदतक जनताकी दशा सुधार सकते है। यदि उद्यमशीलता पर आलस्य और आशापर निराशा हावी हो गई, तो वह देशके लिए सचमुच वडी दारुण स्थिति होगी।

ससदीय कार्यक्रमकी चर्चा जोरोपर है। ससदीय कार्यक्रम अव स्थायी रूपसे चलेगा, और यह ठीक भी है। लेकिन वह हमें स्वतन्त्रता नही दिला सकता। उसका कार्य नितान्त आवश्यक तो है, पर उसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। उसके सफल होनेपर सरकार ऐसा दावा नही कर सकेगी कि अध्यादेशोके सहारे चलनेवाले शासन को या स्वतन्त्रताके लक्ष्यकी ओर हमारी प्रगतिको प्रतिवन्धित करनेवाले किसी भी विधानको जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधियोकी स्वीकृति प्राप्त थी। इसलिए यह आवश्यक है कि मतदाता काग्रेसी उम्मीदवारोके पक्षमे ही मत डाले, क्योकि वे जन-विरोधी विधानोका समर्थन करनेका साहस नही कर सकेगे। यदि करेगे तो काग्रेस उनके विरुद्ध अनुशासनकी कार्रवाई करेगी। ससदीय कार्यक्रमकी सफलताके फलस्वरूप कुछ व्यक्तियोके मामलेमे भी राहत मिल सकती है—जैसे कि श्री सुभाष वोस या अन्य नजरबन्दियोकी रिहाई हो सकती है। लेकिन इस सबको राजनीतिक या आर्थिक स्वतन्त्रता तो नही माना जा सकता।

अव इसपर एक और दृष्टिसे विचार कीजिए। विधान-मण्डलोमे लोग एक निश्चित, सीमित सख्यामे ही सदस्य वनकर जा सकते है, शायद पन्द्रह सौ ही सदस्य वन सकते है। यहाँ उपस्थित लोगोमें से कितने लोग उनके सदस्य वन सकते है? और फिलहाल इन पन्द्रह सौ सदस्योके लिए मतदान करनेका अधिकार केवल साढे तीन करोड लोगोको ही प्राप्त है। शेष साढे इकतीस करोडसे अधिक लोगोका क्या होगा? स्वराज्यकी हमारी सकल्पनाके अनुसार तो ये साढे इकतीस करोड ही देशके सच्चे मालिक है और ये साढे तीन करोड मतदाता, जो पन्द्रह सौ विधायकोका भाग्य-निर्णय करेगे, उनके सेवक ही है। इस प्रकार पन्द्रह सौ विधायक यदि अपने विश्वासके प्रति सच्चे रहे तो वास्तवमे ये समूची जनताके दोहरे सेवक होगें।

लेकिन साढ़े इकतीस करोड लोगोको स्वय अपने प्रति, और व्यक्तियोके रूपमे वे जिसके अश है उस राष्ट्रके प्रति भी, अपने दायित्वका निर्वाह करना है। यदि वे स्वय काहिल वने रहे और उन्होने यह जानने-समझनेकी कोशिश नही की कि स्वराज्य क्या है और उसे कैसे हासिल किया जा सकता है, तो वे पन्द्रह सौ विधायकोके गुलाम वनकर रह जायेंगे। इस हिसावसे साढे तीन करोड मतदाता भी साढ़े इकतीस करोड आम जनताकी श्रेणीमे ही आते है। इसलिए कि यदि वे मेहनती और जागरूक

न बने, तो वे भी पन्द्रह सौ खिलाड़ियोके हाथमे, आम जनताकी भाँति, खिलौने-भर बनकर रह जायेंगे। फिर वे खिलाडी काग्रेसी विधायक हो या अन्य किसी दलके, इससे कोई खास फर्क नही पड़ता। यदि मतदाता हर तीन साल या ऐसी ही किसी अवधिके बाद केवल अपना मतदान करनेके लिए ही आँखे खोले और उसके बाद फिरसे सो जाये, तो उनके सेवक ही उनके मालिक बन बैठेंगे।

ऐसी विपत्तिसे बचनेका बस एक ही उपाय मै जानता हूँ — कि सभी पैंतीस करोड लोग मेहनती और समझदार बने। ऐसा तभी हो सकेगा जब वे चरखे और अन्य ग्रामोद्योगोको अपना ले। वे इनको बिना समझे-बूझे न अपनायें। मै अपने अनुभवसे आपको बतला सकता हूँ कि ऐसा प्रयत्न करनेका अर्थ है — सही किस्मकी वयस्क शिक्षा देना और इसके लिए जरूरी है, धैर्य, नैतिक मनोबल और अपनी पसन्दके जिस भी गाँवमे आप जो भी धन्धा शुरू कराना चाहते हो उसकी वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक जानकारी हासिल करना।

इस तरहकी योजनामे चरखा उसका केन्द्र बन जाता है। आप उसे यदि सौर-मण्डल कहे, तो चरखा उसका सूर्य और विभिन्न ग्रामोद्योग उसके ग्रह है, जो सौर-मण्डलके अनुल्लघनीय नियमके अधीन चरखेके चारो ओर घूमते रहते है। ईस्ट इडिया कम्पनीकी कार्रवाईके फलस्वरूप जब इस सूर्यकी प्रकाशदायी शक्ति नष्ट हो गई, तो ग्रहोकी शक्ति भी क्षीण हो गई और वे अदृश्य या लगभग अदृश्य हो गये। अब सूर्यको उसकी पूर्व-प्रतिष्ठाके साथ पुन प्रतिष्ठापित किया जा रहा है और तमाम ग्रह भी अब सूर्यकी शक्तिके अनुपातमे पुन गतिशील होते जा रहे है।

चरखेका अर्थ और उसका सन्देश अब शायद आपकी समझमे आ गया होगा। मैंने १९२० में कहा था कि यदि काग्रेस १९२०मे निर्धारित किये गये कार्यक्रमपर और उसमे शामिल खादी, साम्प्रदायिक एकता, नशाबन्दी और हिन्दुओमे पाई जाने-वाली अस्पृश्यताके निवारणके चतुर्भुजी रचनात्मक कार्यक्रमपर सच्चे दिलसे सफलतापूर्वक अमल करे, तो एक वर्षमें स्वराज्य निश्चित है। मैंने वह घोषणा की थी — इसका न तो मुझे कोई खेद है और न मैं उसके कारण लज्जित ही हूँ। मै आज भी उस घोषणाको आपके सामने दोहराना चाहूँगा। आप जब भी उस चतुर्भुजी कार्यक्रमको पूरी तौरपर सफल बना देंगे, आपको मुँह-माँगा स्वराज्य मिल जायेगा। इसलिए कि तब स्वराज्य प्राप्त करनेकी शक्ति आपके अन्दर पैदा हो चुकेगी। जरा सोचिए कि आपकी आस्था और आपके कर्ममे आज चरखेका क्या स्थान है। क्या बम्बईमे हुआ पारस्परिक गुप्त हत्याकाड साम्प्रदायिक एकताका लक्षण है? पूर्ण मद्य-निषेधका क्या बना? क्या हिन्दुओने अस्पृश्यताको जडमूलसे उखाड फेंका है? कही कोई एक छोटी-मोटी सफलता प्राप्त कर लेनेसे यह नही मान लेना चाहिए कि लक्ष्यकी प्राप्ति सनिकट है। त्रावणकोरकी महान घोषणा अस्पृश्यताके अन्तका आरम्भ हो सकती है, पर वह उसका अन्त नही है। यदि हम हरिजनोकी अस्पृश्यता मिटा दें, पर मुसलमानो या अन्य सम्प्रदायोके लोगोको अस्पृश्य मानते रहे, तो कलक हमारे माथेसे मिटेगा नही। "सब भूमि गोपालकी" — इस उक्तिका अर्थ और भी गहरा है। धरतीकी

भाँति, हम धरतीकी सतान भी गोपालके है, ईश्वरके है, और इसलिए हम सबको परस्पर एकात्म अनुभव करना चाहिए, और आजकी तरह एक-दूसरेके खिलाफ लक्ष्मण-रेखा नही खीचनी चाहिए, निषेधाज्ञाएँ जारी नही करनी चाहिए।

यही कर्मकी अहिंसा है। यदि हम इस कार्यक्रमको पूरा कर सके, तो फिर सविनय अवज्ञाकी आवश्यकता ही नही रह जायेगी और हिंसाकी निश्चय ही कोई आवश्यकता नही रह जायेगी। पैंतीस करोड़ लोग जब अपनी एकताकी शक्तिको पहचान लेंगे, जब वे समझ लेगे कि एकजुट होकर एक व्यक्तिकी भाँति खडे होनेसे उनमे कैसी अपार शक्ति पैदा हो जाती है, तब वे भारतमे मौजूद सत्तर हजार गोरो पर हाथ उठानेमे, उनपर हिंसा करनेमे लज्जा महसूस करने लगेंगे, भले ही ये गोरे कितनी ही भीषण विनाश-लीला करने और जहरीली गैससे पल-भरमे लाखोकी जान ले लेनेमे समर्थ हो। चरखेको पूरी समझदारीके साथ अपनानेसे, चरखा हमारे लिए आर्थिक मुक्तिका ताना-बाना ही नही बुन सकता है, वह हमारे विचारो तथा हमारी भावनाओमे एक क्रान्ति भी कर सकता है और हमे दिखा सकता है कि अहिंसात्मक मार्ग ही स्वराज्यका सबसे निरापद और आसान मार्ग है। हो सकता है कि इससे होनेवाली प्रगति हमे कुछ धीमी गतिसे चलती मालूम पडे, लेकिन कुल मिलाकर देखने पर वही सबसे तेज सिद्ध होगी।

मेरा विश्वास कीजिए कि आज यदि जवाहरलाल जेलमे नही है तो इसलिए नही कि उनको जेलसे डर लगता है। वे जेलके सीकचोके पीछे भी उसी शानसे जा सकते है जिस शानसे वे हँसते-हँसते फाँसीके तख्तेपर खड़े हो सकते है। मै नही समझता कि इस प्रकारके कष्ट-सहनके प्रभाव, उसकी कार्यसाधकतामे मेरा विश्वास पहलेसे कुछ कम हो गया है, या मुझमे उतनी शक्ति नही रही है। लेकिन जहाँतक मै समझ पा रहा हूँ, आज वह सब अकारण होगा। मुझे तो लगता है कि यदि हम विश्वास और सकल्पकी एकताके बलपर अपना रचनात्मक कार्यक्रम पूरा कर सके तो कष्ट-सहनसे बचा जा सकता है, उसकी आवश्यकता नही पड़ेगी। मै आपको वचन देता हूँ कि यदि हम रचनात्मक कार्यक्रम पूरा कर सके, तो हमे ब्रिटिश राष्ट्रसे या उसके विरुद्ध सघर्ष चलानेकी आवश्यकता नही पड़ेगी, बल्कि तब लॉर्ड लिनलिथगो स्वय हमारे पास आयेंगे और स्वीकार करेंगे कि हमारी अहिंसा और सत्यपर अविश्वास करना उनकी भूल थी और तब वे अपने राष्ट्रकी ओरसे हमारे निर्णयोका पालन करनेका वचन हमें देंगे। वे करे या न करे, मै तो अन्य किसीको नही, बस इसी लक्ष्यको लेकर चल रहा हूँ। "सर्वै भूमि गोपालकी।"

[अंग्रेजीसे]

हरिजनबन्धु, ३-१-१९३७ और हरिजन, २-१-१९३७

२१५. भाषण : कांग्रेस-अधिवेशनमें

२७ दिसम्बर, १९३६

महात्मा गांधीने कहा कि मैं समझता हूँ कि आप लोग अब काफी थक चुके होंगे। मेरे पास भी कहनेको ज्यादा कुछ नहीं है। मुझे जो भी कहना था, मैं सुबह प्रदर्शनीमें कह ही चुका हूँ। मैं उसे दोहराना नहीं चाहता। लोगोंको इतनी संख्यामें यहाँ देखकर मुझे खुशी हो रही है, क्योंकि कांग्रेसका अधिवेशन एक गाँवमें करानेकी जिम्मेदारी मेरी ही है। स्वागत-समितिके अधिकारी जब मेरे पास आये तो मैंने उनसे कुछ बातें कहीं। मैंने उनसे कहा कि ईश्वरपर भरोसा रखें और काम शुरू कर दें। कांग्रेस-अधिवेशन गाँवमें रखनेके निर्णयकी कई स्थानोंसे आलोचना हुई है।

अनेक समाचारपत्रोंने इसकी आलोचना की है और इसकी खामियोंके बारेमें विस्तारसे लिखा है। स्वागत-समितिके पास पर्याप्त धन नहीं है। फिर भी सब लोग देख रहे हैं कि यहाँ भी कांग्रेस-अधिवेशन उसी तरह हो रहा है जैसा पहले होता था। सच तो यह है कि गाँवमें कांग्रेसका अधिवेशन पहलेके अधिवेशनोंकी अपेक्षा कहीं बड़ा हुआ है। मैंने स्वागत-समितिसे कहा कि वह एक लाख लोगोंके लिए इन्तजाम करनेको तैयार रहे। लेकिन कुछ लोगोंका अनुमान है कि आज सुबहके ध्वजारोहण समारोहमें ही दो लाख लोग मौजूद थे। अनुमानमें कुछ अन्तर हो सकता है, लेकिन उसकी गुंजाइश छोड़ते हुए भी मुझे पूरा यकीन है कि कम-से-कम एक लाख तो मौजूद थे ही। लोगों को इतनी बड़ी संख्यामें उपस्थित देखकर स्वागत-अधिकारियोंको आशंका होने लगी है कि वे शायद इतने अधिकके लिए इन्तजाम न कर पायें।

आगे बोलते हुए, गांधीजीने 'भंगियों'की सराहना की और उन्होंने कहा कि फैजपुर आनेवालोंमें से कुछ लोग ऐसे काम भी करते हैं जो सफाईकी दृष्टिसे ठीक नहीं। यहाँ एक अस्पताल तो है, लेकिन वह इतना बड़ा नहीं है कि उसमें बहुत सारे लोगोंकी चिकित्सा एक साथ की जा सके। मैंने तो यह सुझाव दिया था कि स्वागत-समिति लोगोंसे कह दे कि अब उनको वापस जाना शुरू कर देना चाहिए। फिर भी, मुझे यही लगता है कि आगेसे कांग्रेस-अधिवेशन गाँवोंमें ही रखे जाने चाहिए। लोगों को प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि भविष्यमें कांग्रेस-अधिवेशन शहरोंमें नहीं किये जायेंगे। थोड़ी-बहुत जो खामियाँ हमें यहाँ नजर आई हैं, वे आसानीसे दूर की जा सकती हैं। मुझको इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि कांग्रेसके अधिवेशन गाँवोंमें करना बहुत

आसान काम है। ऐसा करके अधिवेशनोंके खर्चमें काफी किफायत की जा सकती है। मेरे खयालसे तो जितना खर्च हुआ है वह भी काफी ज्यादा है।

मै तो चाहता था कि फैजपुर-अधिवेशनपर ५,००० रुपयेतक ही खर्च आये। लेकिन, वैसा हो नहीं सका। हमें पूरा सहयोग न मिल सका। और जमीनके किरायेके रूपमें काफी बड़ी राशि अदा करनी पड़ी। मै सोचता हूँ कि कांग्रेस-अधिवेशन जिस स्थानपर किया जाये, उस जमीनके लिए किराया अदा करनेकी जरूरत नहीं पड़नी चाहिए। स्वागत-समितिको अधिवेशन खानदेशमें ही इसलिए रखना पड़ा, कि दूसरी जगहोपर इतने स्वयंवेवक नहीं मिल सके। फिर भी, बाधाओंके बावजूद, स्वागत-समितिने अपना काम पूरा किया और वर्षा होनेपर भी उसने हिम्मत नहीं हारी। यदि हम सचमुच गाँवोमें जाकर गाँवोके लोगोंतक कांग्रेसका सन्देश पहुँचाना चाहते है तो हमें आगेसे सभी अधिवेशन गाँवोमे ही करनेका प्रण कर लेना चाहिए।

महात्मा गांधीने भाषण जारी रखते हुए कहा कि गाँवोके लोगोको भी यह समझना पड़ेगा कि स्वराज्यके लिए प्रयत्न करनेवाले उनसे क्या करनेकी अपेक्षा रखते हैं। अध्यक्ष और समाजवादियोका कहना है: "आप लोग चार आने दे देनेके बाद बस फिर जाकर सो रहते हैं। एक चवन्नी दे देने-भरसे तो यह सिद्ध नहीं हो जाता कि आप सच्चे कांग्रेसी है।"

काग्रेस अधिवेशनकी तैयारियाँ एक दिनमे पूरी नही हो जाती, कई महीने लगते है। लोगोको काफी भाग-दौड करके सभी तैयारियाँ करनी पडती है। इस प्रकारका जो सम्बन्ध स्थापित हुआ है, इसे वर्ष-भर बनाये रखना चाहिए। यदि आप इसे बनाये रखना चाहते है तो आपको प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि काग्रेसके सभी अधिवेशन आगेसे आप गाँवोमे ही करेगे।

सविधान-सभा बुलानेका निर्णय तभी किया जा सकता है जब आप स्वराज्यको अपने बिलकुल पास ले आये। अपने अन्दर पूरी शक्ति पैदा कर लेनेपर आप सविधान-सभा बुला सकते है। उसकी बैठक दिल्लीमे नही, किसी सुदूरतम ग्राममे ही हो सकती है। सभी क्षेत्रोमे अपनी शक्ति बढाकर ही स्वराज्य प्राप्त किया जा सकता है। हम उतनी शक्ति बढा ले तो हमे स्वराज्य शीघ्र ही आता हुआ दिखने लगेगा। मैने १९२० मे आपको कुछ काम करनेको सौपे थे, वे आजतक अधूरे ही है। वे काम है—चरखा, मद्य-निषेध और अस्पृश्यता-निवारण। यदि आप इन कामोको अधूरे छोड देगे तो इस बूढेकी एक बात कान खोलकर सुन लीजिए स्वराज्य आपके हाथ नही आयेगा।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २८-१२-१९३६

२१६. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

२८ दिसम्बर, १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

अगर तुम अपना काम आज पूरा कर लो — और मुझे उम्मीद है कि कर लोगे — तो मुझे शायद कल दोपहर बाद चले जाने दोगे।

यदि भविष्यमें कांग्रेस-अधिवेशन गाँवोमे ही करनेका मेरा सुझाव तुम्हे पसन्द आया हो, तो मै चाहूँगा कि तुम कांग्रेससे फरवरी और मार्चके बीचमें अधिवेशन करनेके पुराने नियमको फिरसे चालू कर देनेके लिए कहो। सम्भव हो तो हजारो लोगोको जाडेके मौसमके कष्टोसे बचाना चाहिए। विधान-सभाओ आदिके कांग्रेसी सदस्योको भी अपने लिए इस व्यवस्थाके अनुरूप सुविधा कर लेनी चाहिए। अगर विधान-मण्डलोमे कांग्रेसको बहुमत प्राप्त हो जाये, तो कोई कारण नही कि बडे दिन, ईस्टर आदिकी तरह इस अवसरके लिए भी उनके कार्यालय बन्द न रखे जायें। मैंने सरूप[1]से कहा है कि कमला-स्मारकके लिए कहीं-न-कहीं जल्दी ही जमीन जुटा लेनी चाहिए और फिर उसके लिए घर-घर चन्दा इकट्ठा करनेका काम शुरू कर देना चाहिए।

सस्नेह,

बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३६; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय। ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स, पृष्ठ २१४ से भी।

२१७. पत्र : अमतुस्सलामको

तिलकनगर

२८ दिसम्बर, १९३६

चि० अमतुल सलाम,

तुझे खत लिखनेके बाद और मौन लेनेसे पहले कल रातको कान्तिसे थोडी और बातें हुईं। उसकी तबीयत खराब नही कही जा सकती। तू उसके लिए दुआ माँग। परन्तु उससे मिलने वगैरहकी बात भूल जा। तुझसे उसे जो मिलना था सो मिल गया।

१. विजयलक्ष्मी पण्डित।

तू तीनके बजाय पहली तारीखको सेगाँव आ सकती है। तारीख महादेवको लिखना, जिससे गाडी तुझे स्टेशनसे सीधे सेगाँव ले जा सके। मगनवाडीमे कुमारप्पासे मिलकर आना हो तो वैसा करना। मेरे साथ तू त्रावणकोर नही जा सकेगी। भविष्यके बारेमे सेगाँवमें विचार करेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७१) से।

२१८. सन्देश : राष्ट्रभाषा-सम्मेलन, फैजपुरके लिए

२८ दिसम्बर, १९३६[1]

मुझे दु:ख है कि मै मौन के कारण आज कुछ बोल नही सकता हू। मेरे मन मे कोई शक नही है कि सारे हिंदुस्तान मे एक-दूसरो के साथ संबंध रखने के लिये कोई एक सामान्य भाषा होनी चाहीये। मुझे इसमे भी शक नही है कि वह भाषा हिंदी याने हिंदुस्तानी ही हो सकती है। यह भाषा वह है जो उत्तर मे हिंदु-मुसलमान सब समझते है। इसकी जगह इंग्रेजी कभी नही हो सकती है।

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९९५)से।

२१९. भाषण : कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओंके समक्ष[2]

[२९ दिसम्बर, १९३६][3]

मैं जानता हूँ कि आप लोगोको कैसी-कैसी कठिनाइयोसे जूझना पड़ा है। मैं आपको बधाई दूँ या न दूँ, उससे कोई फर्क पड़नेवाला नही है। आप सब लोगोंने प्रशंसा या पुरस्कार पानेके लिए नही, बल्कि इसलिए काम किया है कि आपको यही प्रिय है और जिन लोगोको काम प्रिय होता है उनको बधाइयोकी कोई अपेक्षा नही रहती। और फिर उन लोगोको मै बधाई देनेकी धृष्टता कर भी कैसे सकता हूँ जो देश-सेवाके क्षेत्रमें मेरे समकक्ष ही है? लेकिन आपसे मेरा एक अनुरोध है। आपमें से प्रत्येकसे मेरा अनुरोध है कि आप अपने-अपने अनुभवोके बारेमें, विशेषकर सामने आई कठिनाइयोके बारेमें, अपना-अपना विवरण अवश्य तैयार करे और उसे सरदार वल्लभभाई तथा मेरे पास भेज दे। आपको उसमें मुझे ब्योरेवार ढगसे बतलाना चाहिए कि आपने कैसे जरूरी सामग्री जुटाई, पैसा कैसे खर्च किया और आपकी क्या सफलताएँ

१. तारीख ३०-१२-१९३६ के बॉम्बे क्रॉनिकलसे ली गई है। यह सन्देश उक्त दैनिकमें भी प्रकाशित हुआ था।

२. यह और अगले दो शीर्षक महादेव देसाईके विवरण 'द वीक एट फैजपुर" से लिये गये हैं।

३. गांधीजी २९-१२-१९३६ को फैजपुरसे रवाना हो गये थे।

और क्या असफलताएँ रही। उनसे आगे चलकर मार्ग-दर्शनमें बडी सहायता मिल सकती है। श्रीयुत नन्दलाल बोसको अपनी कला हमे भी थोडी सिखा देनी चाहिए। इस महान् प्रयोगमे आप सबने आगे बढकर रास्ता दिखानेवालोका काम किया है और व्यवस्था-सम्बन्धी आपकी प्रतिभाने उसे सफलता प्रदान की है। अहिंसात्मक साधनो द्वारा स्वराज्य-प्राप्तिकी दिशामे यह निश्चय ही एक अगला कदम है, और यह भी एक बडी बात है कि इसमे महाराष्ट्रने रास्ता दिखाया है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ९-१-१९३७

२२०. भाषण : कांग्रेस-स्वयंसेवकोंके समक्ष

[२९ दिसम्बर, १९३६]

आप सभी मूक सेवक है। यहाँ जो भी आया, उसने आपकी प्रशसा ही की है। मुझे बतलाया गया है कि आप लोग सदा ही आदेशोका पालन करनेके लिए तत्पर रहे, आदेश देनेके लिए नही। आपने उन कामोको करनेमें भी कभी कोई सकोच नही किया जिनको लोग नीच काम मानते हैं। लेकिन यह पूरे महाराष्ट्रका ही एक महान् गुण है। यहाँ एक बडी सख्यामे ऐसे त्यागी कार्यकर्त्ता मौजूद है जो सेवाको ही अपना आदर्श मानकर चलते है, नेतृत्वको नही। तिलक महाराजने जहाँ यह सिखाया था कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, वही यह भी सीख दी थी कि स्वराज्य-प्राप्तिकी कुजी नि स्वार्थ सेवा ही है। हो सकता है, नि स्वार्थ सेवा तिलक महाराज के पहले भी की जाती रही हो, लेकिन उसे एक व्यवस्थित रूप उन्होने ही दिया था। उन्होने बहुत मामूली-सा मेहनताना लेकर काम करनेकी प्रतिज्ञाके साथ अपना सार्वजनिक जीवन शुरू किया था, और उसके बादसे महराष्ट्रमें ऐसे अनेकानेक बड़े-बडे कार्यकर्त्ता सामने आये जो मामूली-से मेहनतानेपर काम करनेमे सन्तोष मानते रहे। उनके लिए पन्द्रह रुपये प्रतिमाह ही काफी रहता है, जबकि अन्य प्रदेशोके, उदाहरणके लिए गुजरातके, कार्यकर्त्ता ७५ या १०० रुपये प्रतिमाह लेते रहे हैं। किसी-किसी मामलेमें तो गुजरातके कार्यकर्त्ताओके सम्पर्कका उनपर बुरा प्रभाव पडा है। लेकिन उनमे से अधिकाश अब भी उससे अछूते है। इसलिए आप स्वयसेवकोने जिस उच्चादर्शपूर्ण ढगसे अपना कर्त्तव्य निभाया है, उसका श्रेय उन जाने-माने कार्यकर्त्ताओ को है जिन्होने आपके यहाँ एक महान् उदाहरण प्रस्तुत किया है। वे महाराष्ट्रकी नाक है। ईश्वर करे आप उनके पद-चिह्नोपर चलते रहे।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ९-१-१९३७

२२१. भाषण : कांग्रेस-स्वयंसेवकों[1] के समक्ष

[२९ दिसम्बर, १९३६]

मैं आप लोगोको बधाई क्यो दूँ? धन्यवाद तो आपको मुझे देना चाहिए कि मैंने आपको हमारे पापोके प्रायश्चित्तका यह अवसर दिया। और बधाईके पात्र भी आप तभी बनेंगे जब आप अपना काम पूरा कर ले। यह एक भला पेशा है—एक ऐसा पेशा जिसे हमारे यहाँके स्नातक और शिक्षित लोग चाहे तो जीविकोपार्जन के लिए बड़े मजेमे अपना सकते हैं। हमे इस पूरे कामको बिलकुल विज्ञानके दरजे तक उठा देना है और सफाईके बारेमे प्रबन्ध लिखने है। एक साधारण भंगीके बसका यह काम नही है। इसे तो शिक्षित भगी ही कर सकते है, और शिक्षितोमे भी वही जो इस कामके लिए अपना जीवन समर्पित कर दे। ऐसा करनेसे अस्पृश्यता भी मिट जायेगी—जिसका खुद अस्पृश्योके आपसी व्यवहारमे बरता जाना भी उतना ही बुरा है जितना कि हरिजनो और तथाकथित सवर्णोके बीच व्यवहारमें बरता जाना। आपने यहाँ जो भी सीखा है, उसे भुला मत दीजिएगा। मेरा तो कहना है कि आप जहाँ कही भी रहे, इसे अपना एक कर्त्तव्य बना लीजिए; आप जहाँ भी रहे सफाई-मन्त्रियोकी तरह काम करे। आपने बहुत अच्छा काम किया है, लेकिन आप इससे कही अच्छा कर सकते थे। देखिए, हमारे पास-पड़ोसके फैजपुर, खिरोड़ा और सावड़ा जैसे गाँवोका क्या हाल है? वे वैसे ही गन्दे-सन्दे पड़े है, जैसे सदासे चले आ रहे हैं। भविष्यमे कांग्रेस-अधिवेशनोका एक उद्देश्य यह भी रखना पड़ेगा कि वे जिन इलाकोमे किये जाये उन पूरे-के-पूरे इलाकोपर कम-से-कम सफाईके मामले मे तो ऐसा स्थायी प्रभाव छोड़ ही जाये जिससे लोगोमें इस गुणका ठीक विकास हो सके। तब 'भगी' शब्दसे किसीको अरुचि नही होगी, वे भगीको ऐसा व्यक्ति नही समझेंगे जिसे किसी तरह बर्दाश्त करना पडता है, बल्कि लोग भगी बननेके लिए लालायित रहेंगे। कारण, तब 'भगी'का मतलब गन्दा काम करनेवाला व्यक्ति नही रह जायेगा, बल्कि उसे शुद्धिकर्त्ता और रोगाणुओको नष्ट करनेवाला, रोगो तथा महामारियोकी रोकथाम करनेवाला व्यक्ति माना जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-१-१९३७

१. ये लोग स्वैच्छिक भंगी थे, जिन्होंने सफाई और भंगी विभागका काम स्वयं अपने हाथोंमें ले लिया था।

२२२. पत्र : महादेव देसाईको

सेगाँव, वर्धा
३० दिसम्बर, १९३६

चि० महादेव,

साथका तार रामचन्द्रनको भेजना। राजाको सारा विवरण देना।

वहाँ फल आये हो तो भेजना। अण्णाको लिखना कि अभी तो त्रावणकोर जाना रुक गया है, इसलिए अम्बुजमूके फल यही भेजा करे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५१४) से।

२२३. पत्र : गीजुभाई बधेकाको

३१ दिसम्बर, १९३६

भाई गीजुभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं उसे प्रकाशित नही करूँगा। तुम लिखते हो "माता-पिताके बच्चोपर अपनी इच्छा लादनेकी बात मुझे पसन्द नहीं और बच्चोंके अपनी इच्छानुसार आचरण करनेकी प्रवृत्तिपर मुझे कोई आपत्ति नही है।" तुम . . .[1] को बच्चे कहते हो? क्या माता-पिता बच्चेको अपना . . [2] देंगे? यदि बच्चे जरूरत से ज्यादा खाना चाहें, कुएँमे गिरनेकी इच्छा करें, मेहमान आयें हुए हो उनके . . .[3] और . . .[4] माँगना चाहे और माँगें, तब? क्या इन इच्छाओपर और उनके . . .[5] कार्यों पर क्या आपत्ति नही करोगे? ऐसी इच्छा रामदास अब भी करता है और मै अभी भी उसे ऐसा करनेसे रोकता हूँ?

बापू

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल-पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल।

१ से ५. साधन-सूत्रमें यहाँ शब्द छूटे हुए हैं।

२२४. पत्र : कस्तूरभाई लालभाईको

सेगाँव, वर्धा
१ जनवरी, १९३७

भाई कस्तूरभाई,

आपका पत्र और आपके निर्णयकी नकल, दोनो मिले। गुलजारीलाल लिखते है कि मोतीलाल हीराभाई मिलवालोने मजूर-महाजनके साथ समझौता कर लिया है। तो अब उनका मामला सरपचसे वापस ले लेना चाहिए न? उसे वापस ले लीजिए। आप मेरे निर्णयका अग्रेजी अनुवाद भेजेंगे तो मै उसे जाँच दूँगा। इस बीच मुझे समय मिला तो मै ही अनुवाद करके भेज दूँगा। जो पहले हो जायेगा, वही भेज देंगे। बना तो आज ही यहाँसे रवाना कर दूँगा, क्योकि यह लिखते हुए सोच रहा हूँ कि अग्रेजी अनुवाद तो उन्हे जल्दी भेज दिया जाना चहिए।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४२०१)से।

२२५. वातचीत : क्रजेन्स्कीसे[1]

[२ जनवरी, १९३७][2]

गाधीजी : तो क्या आपका कहना यह है कि दूसरे सभी धर्म झूठे है?[3]

क्रजेन्स्की : अगर दूसरोंको यह विश्वास है कि उनका अपना-अपना धर्म सच्चा है तब तो यह मानना होगा कि उनका उद्धार हो जाता है।

गा० : इसका मतलब तो यह हुआ कि आदमी झूठके सहारे भी उवर जायेगा। कारण, आपका कहना यह जान पडता है कि जो चीज वास्तवमे झूठी है उसमे भी यदि किसीकी सचमुच हार्दिक श्रद्धा है तो उसका उद्धार हो जायेगा। इस तरह तो आप क्या यह भी नही मान सकते है कि आपका अपना धर्म भी शायद झूठा हो, किन्तु चूँकि आपको यह विश्वास है कि वह सच्चा है, इसलिए आपका उद्धार हो जायेगा?

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। पोलैंडवासी प्रो० क्रजेन्स्की दर्शन-शास्त्रके प्राध्यापक थे।

२. तारीख महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीके अनुसार दी गई है।

३. क्रजेन्स्कीका कहना था कि एक कैथोलिक धर्म ही सच्चा धर्म है।

क्र० : लेकिन मैंने तो सभी धर्मोका अध्ययन किया है और उस अध्ययनके बाद मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि केवल मेरा धर्म-ही सच्चा है।

गा० : लेकिन इसी तरह दूसरोने भी तो दूसरे धर्मोका अध्ययन किया है। उनके वारेमे आप क्या कहेगे? मै तो इससे भी एक कदम आगे जाकर कहूँगा कि धर्म तो एक ही है, लेकिन इसकी शाखाएँ अनेक है, और इनमें से कोई भी छोटी-बडी नही, वल्कि सब समान हैं।

क्र० : मै यह स्वीकार करता हूँ कि ईश्वरीय प्रेरणा तो सभी धर्मोके पीछे है, लेकिन सभी समान रूपसे सत्यमय नहीं हैं, क्योंकि सबके पास समान प्रकाश नहीं है।

गां० : सत्यको केवल मै ही जानता हूँ — किसी सत्यान्वेषीका ऐसा मानना तो घोर असत्यमय आचरण है। आज वेचारे नक्षत्रशास्त्रियोकी कैसी दशा है? वे अपनी स्थिति रोज वदल रहे हैं। कुछ वैज्ञानिक तो आइन्स्टाइनकी सवसे ताजी स्थापना की भी आलोचना करने लगे है।

क्र० : लेकिन मैंने दूसरे धर्मोके पक्षमें दी जानेवाली दलीलोंपर भी विचार करके देखा है।

गा० : पर वह तो आपने बौद्धिक दृष्टिसे किया है। आध्यात्मिक सत्योके महत्त्वको परखनेके लिए अलग-अलग मापदण्डोकी आवश्यकता होती है। या तो हम सव-के-सब झूठे है — जो एक काफी तर्कसगत स्थिति है — या, चूँकि झूठमे से सत्य निकल ही नही सकता, यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि हम सबमे सत्य तो है, लेकिन पूर्ण सत्य नही। कारण, ईश्वर जिन साधनोके माध्यमसे अपने सत्यको उद्घाटित करता है, वे साधन सर्वथा निर्दोष और सर्वांगपूर्ण नही होते। वर्षाकी बूँदे भी, जो विशुद्धतम जल होती है, धरती माताके सम्पर्कमें आते ही दूषित हो जाती है, उनमें दूसरे तत्त्व मिल जाते है। मेरा नम्र निवेदन है कि आपकी स्थिति दुरभिमानपूर्ण है। लेकिन मैं आपको एक बेहतर स्थिति सुझाता हूँ। सभी धर्मोको समान मानकर चले, क्योकि सवकी जड़ एक ही है, सबके विकासके नियम एक-से है।

क्र० : लेकिन प्रत्येक धर्मपर तात्त्विक दृष्टिसे विचार करके यह निश्चित करना तो आवश्यक है ही कि कौन-सा धर्म अधिक संगत और पूर्ण है।

गां० : यह तो तभी सम्भव है न जब हम यह मानकर चलें कि सभी धर्म अलग-अलग साँचोमें गढ़े हुए है और उनका कोई ह्रास विकास हो ही नही सकता। किन्तु, यह बात गलत है। धर्म तो सदा विकसित होते रहते है। जो कार्य ईश्वरका है उसपर हम कोई मर्यादा न लगाये। वह अपने आपको मनुष्यके समक्ष हजारो तरहसे और हजारो बार उद्घाटित कर सकता है।

अब प्रोफेसर साहब अपने दूसरे प्रश्न, अर्थात् भौतिकताके खिलाफ मुहिम छेड़नेके सवालपर आ गये।

गा० : धर्मान्तरणके विचारका त्याग किये बिना इन शक्तियोंको वसमे करनेकी कोशिश करना बेकार है। मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सत्यकी जितनी क्षति इस घातक वस्तुसे हुई है उतनी आजतक और किसी बातसे नही हुई।

क्र० : लेकिन आपके धर्मके प्रति मेरे मनमें बड़ा सम्मान है।

गा० : मगर यह काफी नही है। किसी समय मेरा भी यही विचार था। लेकिन बादमे मैंने पाया कि यह काफी नही है। जबतक मै इस स्थितिको स्वीकार नही करता कि सभी धर्म समान है और जबतक मेरे मनमे दूसरे धर्मोंके प्रति भी वैसा ही सम्मानका भाव नही जगता जैसा अपने धर्मके प्रति है, तबतक अपने चारो ओरके इस घोर सघर्षमय वातावरणमे मै जीवित ही नही रह सकता। यदि सभी आध्यात्मिक शक्तियोकी कोई झूठी और कृत्रिम संहति कायम भी कर ली जाये लेकिन उपर्युक्त बुनियादी स्थितिको स्वीकार न किया जाये, तो उस संहतिका विफल होना निश्चित है। मै गीता पढता हूँ और अपनी सारी आध्यात्मिक प्रेरणा उसीसे प्राप्त करता हूँ। लेकिन अपने धर्मको और अधिक समृद्ध बनानेके लिए मै 'बाइबिल' और 'कुरान' भी पढता हूँ। और दूसरे धर्मोमें मुझे जो-कुछ भी अच्छा मिलता है उसे मै अपने धर्ममे जोड लेता हूँ।

क्र० : यह तो आपकी सद्भावना है।

गा० : सद्भावना रखना काफी नही है।

क्र० : लेकिन आपके प्रति मेरे मनमें बड़ी श्रद्धा है।

गा० : मै जो चाहता हूँ वह इससे पूरा नही होता। अगर मै कैथोलिक धर्म स्वीकार कर लूं तो आप मेरा और भी सम्मान करेगे — सच है न?

क्र० : हाँ, हाँ, बेशक। तब तो आप सेंट फ्रान्सिस-जैसे महान् हो जायेंगे।

गा० : लेकिन उसके बिना नही? कोई हिन्दू भला सेंट फ्रासिस कैसे बन सकता है? बेचारा हिन्दू!

क्र० : लेकिन क्या मै आपका फोटो खींच सकता हूँ?

गा० : जी नही, आप तो भौतिकताको कोई महत्त्व नही देते! और यह सब भौतिकता ही तो है — है न?

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १६-१-१९३७

२२६. पत्र : लॉयनेल फील्डेनको[1]

सेगाँव, वर्धा
३ जनवरी, १९३७

प्रिय फील्डेन,

आपने मुझे विश्वासमे लेकर अपने मनकी बात मुझसे कही, इसका मैं स्वागत करता हूँ। आपको जो कष्ट और कठिनाइयाँ झेलनी पड रही है, उनमे मेरी सहानुभूति आपके साथ है। लेकिन यदि आपको उस जगह[2] बने रहना है — फिर चाहे आपका वहाँ रहना इस देशके हितमे ही क्यो न हो — तो आपको इन कठिनाइयोंको दार्शनिकके अनुद्विग्न भावसे झेलना सीखना होगा। आपके व्यक्तिगत चरित्रपर कोई आक्रमण हो, यह तो वडी गर्हित वात है। लेकिन हर समाजमे कुछ धूर्त लोग होते ही है। उन्हे आपको हँसकर टाल देना चाहिए। फिर कुछ आलोचक होते है। सो उसके सम्बन्धमे मैं यही कहूँगा कि आपको विवेच्य वस्तुके अध्ययनपर आधारित आलोचनाकी अपेक्षा नही करनी चाहिए। सार्वजनिक हितके उद्देश्यसे लिखनेवाले वहुत ही कम है। अधिकाश लोग पैसेके लिए लिखते है। फिर एक तीसरा वर्ग है, आप चाहते है कि वे आपके पास आये, पर वे नही आते। वे आना तो चाहेगे पर नही आते। जो लोग आपको जानते है, वे उन सुविधाओका लाभ जरूर उठाना चाहेगे जो आप उन्हे दे सकते है, किन्तु वे यह भी जानते है कि उनके इस सहयोगसे अपेक्षित हित उतना नही होगा जितना कि नुकसान हो जायेगा। राजकुमारीका ही उदाहरण लीजिए। वे भी थोडी ही दूरी तक जा सकी, उससे ज्यादा नही। आपको इस बातपर दु ख नही करना चाहिए; ऐसा मानना चाहिए कि हम जिन परिस्थितियोमे रह रहे है उनका यह अनिवार्य परिणाम है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अग्रेजीसे]
इन्सीडेन्ट्स ऑफ गांधीजीज लाइफ, पृ० ५१

१. लॉयनेल फील्डेनके लेख "यू मस्ट नॉट ग्रीव" से लिया गया है। उनका कहना था कि भारत सरकार, काग्रेस तथा भारतीय समाचारपत्र मुझपर आक्रमण करते रहे हैं।
२. लॉयनेल फील्डेन ऑल इण्डिया रेडियोके डाइरेक्टर-जनरल थे।

२२७. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

३ जनवरी, १९३७

प्रिय जवाहरलाल,

कितना अच्छा होता अगर मैं तुम्हारे साथ अजन्ता गया होता!

मैंने तुम्हारा पत्र मिलनेसे पहले ही खानसाहबसे काफी जोर देकर बात कर ली थी और उनसे आग्रह किया था कि मेहरताजको वकीलके स्कूलमें भेज दें। लेकिन वे टस से मस नही हुए। वे नही चाहते कि उसे किसी सह-शिक्षावाले स्कूलमें भेजें। मैंने मेहरताजसे भी बात की। वह सचमुच बड़ी उतावली-हो रही है। लेकिन खानसाहब आशावादी हैं और उनको विश्वास है कि मेहरताज फिरसे पहले-जैसी खुशमिजाज बन जायेगी।

मुझे आशा है कि तुम अपनी सेहतका खयाल रखोगे और अपने-आपको थकाओगे नही।

मैंने स्मारक[1] के बारेमें सरूपसे थोड़ी बात की थी। मेरी पक्की राय है कि सबमें पहले हमें कम-से-कम जमीन तो ले ही लेनी चाहिए। जिस जमीनके बारेमें तुमने मुझे बतलाया था वह या दूसरी कोई जमीन आनन्द भवनके पास ही हो, यह आग्रह रखनेकी जरूरत नही।

सस्नेह,

बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स १९३७; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय।

१. कमला नेहरू स्मारक।

२२८. पत्र : सरस्वतीको

३ जनवरी, १९३७

चि० सरस्वती,[1]

तुम्हारा पत्र मिला। लगता है, त्रा०[2] मे मेरा आना नही होनेवाला है, फिलहाल तो किसी हालतमे नही। मुझे अगर वहाँ जाना भी पडा तो भी कान्ति शायद ही आ सके। वह फैजपुरमे तीन दिनतक मेरे साथ था।

बापूके आशीर्वाद

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१५८)से। सी० डब्ल्यू० ३४३१ से भी; सौजन्य: कान्तिलाल गांधी।

२२९. पत्र : कस्तूरभाई लालभाईको

३ जनवरी, १९३७

भाईश्री कस्तूरभाई,

आप पत्र मिला। आपके भेजे अनुवादमे कई भूले है तथा दूसरे भागको स्वच्छन्द भाषामें व्यक्त किया गया है। यदि उसकी नकल तैयार हो सकी, तो आपको इसके साथ मिलेगी।

सरपंच महाशयकी नाजुक हालतमे उन्हे यहाँ आनेका कष्ट तो कदापि नही दिया जा सकता। अत मै पूना जानेके लिए तैयार रहूँगा। उन्हे अपने निर्णयका अनुवाद भेजा है, साथ ही उनसे अनुकूल तारीखे भी पूछी है।[3] आपको कौन-सी तारीखे अनुकूल होगी? त्रावणकोर जानेकी बात टाल रहा हूँ। अब उसे रद्द करके ७को पूना पहुँच सकता हूँ।

१. यह और नीचेके हस्ताक्षर हिन्दीमें है।

२. त्रावणकोर; देखिए "पत्र: महादेव देसाईको", पृष्ठ २२६।

३. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

यह पत्र आपको ५को मिलना चाहिए। इसके पहुँचते ही मुझे तार करें तो ठीक होगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४२०२) से।

२३०. पत्र : महादेव देसाईको

३ जनवरी, १९३७

चि० महादेव,

साथमें मडगाँवकर तथा कस्तूरभाईको लिखे पत्र हैं। दोनोंको अनुवादकी नकल भेजना। एक मेरे लिए रखना। एक प्रति शंकरलालको भेजना। उसे लिखा पत्र[1] भी साथमें है।

अभी, ४ बजेतक अगाथा और पोलक नहीं आये।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

पत्र पढ़ लिये, किन्तु मुझे तो लगता है, जाना नहीं चाहिए।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५१५) से।

२३१. पत्र : अलीगढ़-विश्वविद्यालय छात्रसंघके अवैतनिक सचिवको

४ जनवरी, १९३७

प्रिय मित्र,

खिलाफतके बादके दिनोंमें हम दोनोंके बीच मतभेद पैदा हो गये थे। इसके बावजूद मेरे मनमें मौलाना मोहम्मद अलीके संसर्गकी सुखद यादोंके सिवा और कुछ भी नहीं है। कई बार कठिनाइयोंके मौकोंपर उनका अभाव मुझे बहुत ही खटकता है। 'मोहम्मद अली-दिवस' मनानेकी इससे अधिक अच्छी कोई दूसरी विधि नहीं हो सकती कि आप सब मिलकर हिन्दुओंके साथ हार्दिक एकता स्थापित करनेका संकल्प

१. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

करे। इस्लाम जिस भाईचारेकी भावनाकी सीख देता है, वह यदि दूसरे धर्मोंके लोगोको उससे पृथक् माना जाता है, तो कोरा मजाक हो जाती है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अवैतनिक सचिव
अलीगढ़-विश्वविद्यालय छात्रसंघ
अलीगढ़, यू० पी०

[अंग्रेजीसे]

अंग्रेजीकी नकल. प्यारेलाल-पेपर्स; सौजन्य. प्यारेलाल।

२३२. पत्र : जी० वी० गुर्जलेको

सेगाँव, वर्धा
४ जनवरी, १९३७

प्रिय गुर्जले,

तुमको मेरी पुरजोर सलाह है कि कोई धन्धा अपनाकर अपनी रोटी आप कमाओ और इसके साथ ही एक-दो हरिजन बालकोको अपने पास रखो। तुम अपनी ये बड़ी-बडी योजनाएँ छोड दो। क्या तुम कोडम्बकम् हरिजन सस्थामें जाना चाहोगे?

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १३८६) से।

२३३. पत्र : महादेव देसाईको

४ जनवरी, १९३७

चि० महादेव,

मेरी स्मरण-शक्तिकी गड़बडी बढती जा रही है। मुझे कुछ अन्दाज तो था कि मैंने डकनको लिख दिया है; लेकिन उसका पत्र फाइलमें पडा था, इसलिए फिर पत्र लिखा दिया। अच्छा हुआ कि तुम्हे याद था। स्मरण-शक्ति तो जैसे गई, लेकिन लापरवाही नही जाती। डंकनको लिखते समय ही यदि मैंने उसके पत्रपर 'उत्तरित' लिख दिया होता, तो वक्त बचता, कागज बचता और शर्मिन्द ना होना पड़ता। "अठारह जगह ऊँटजी बाँके, जो ढाँके भी तो कैसे ढाँके?"

अकतेने अविचलित चेहरेसे चार-पाँच बार अपने पाशविक आचरणसे इनकार किया। लेकिन फिर उसे पश्चात्ताप हुआ, उसने सब कबूल कर लिया और खूब पछताया। लेकिन बुवाके बारेमें तो वह अपनी बातपर अड़ा रहा। वह जो गवाह लाया था, वे भी साहसपूर्वक बुवाके सामने अपनी बातपर अड़े रहे। बुवाके विरुद्ध मेरा सन्देह बढता जा रहा है। बहुत विचित्र आदमी मालूम होता है। पिंगलेको लिखा पत्र और उसे भेजे जानेवाले कागज, जो राजकुमारीके साथ भेजे हैं, इसपर अधिक प्रकाश डालेंगे। किन्तु तुम जानते हो, यह काफी है। कागज पढनेके फेरमें मत पडना। ज०से यह सब कह सकते हो।

अगाथाने तो कल बात ही नही की। पोलकने एक-दो प्रश्न प्रकट रूपसे पूछे। बाकी समय गपशपमें बीता। सौभाग्यवश पोलक वगैरह देरसे यानी ४-३० बजे आये, अत तुमने कुछ खोया नही। पोलककी बातचीत निजी बातचीत थी, इसलिए उसका उल्लेख नही किया जा सकता। मिलोगे, तब तुम्हे हँसाऊँगा। अगाथा आज आई है, लेकिन मेरी ओर देख भी नही सकी। कल बातचीत करने आयेगी। तुम भी आओ और पूरा दिन यही बिताओ। दुर्गा, बावलो आना चाहे तो वे भी आ सकते हैं।

बापू

[पुनश्च :]

आजकी डाक राजकुमारीके साथ भेजना।

बरबेजको लिखना कि उनके पत्रका उल्लेख 'हरिजन' मे किया है। उसे नकल भी भेजना।

मेरा मौन देरसे यानी ९-४५ बजे समाप्त होगा, सो विद्यार्थी अगर बातचीत करना चाहते हो तो वह कल ही होगी।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५१६) से।

२३४. परिचय-पत्र : नरहरि द्वा० परीखको

सेगाँव
४ जनवरी, १९३७

श्री नरहरि द्वारकादास परीख, सत्याग्रह आश्रमके सदस्योमें से हैं। इस समय वे गुजरात विद्यापीठके महासचिव तथा हरिजन आश्रमके व्यवस्थापक है। वे गोसेवा सघके मन्त्री भी हैं। वे काठियावाडके राज्योको गोधनके संग्रह तथा सम्वर्धनके बारेमें कुछ सुझाव देनेके लिए भ्रमणको निकलनेवाले हैं। मुझे आशा है कि राज्य तथा अधिकारी श्री नरहरि परीखके सुझावोपर ध्यान देंगे और उनपर यथासम्भव अमल करेंगे। ऐसा होनेसे इस समय गोधनका जो नाश हो रहा है, वह थोड़े-बहुत अंशमें कम हो जायेगा।

मो० क० गांधी

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९१०३) से।

२३५. पत्र : नरहरि द्वा० परीखको

४ जनवरी, १९३७

चि० नरहरि,

तुमने जो पत्र[1] माँगा था, इसके साथ है। यही चाहिए था न? वह पुस्तिका मेरे पास बेकार पड़ी है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९१०२) से।

२३६. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

४ जनवरी, १९३७

भाई बापा,

मैं तो त्रावणकोर जानेके लिए तैयार हूँ, लेकिन मेरा उत्साह भंग हो गया है। मुझे विश्वास हो गया है कि सी० पी०[2] वहाँ मेरी हाजरी नहीं चाहते। मैंने उनसे सीधा सवाल पूछा, तो उसके जवाबमें लिखते हैं: हमारा काम मजेमे चल रहा है। हमे किसीकी मददकी जरूरत नहीं है। लेकिन आपको आना हो तो खुशीसे आइए और रवाना होनेका तार भेजिए। कोचीनमे आन्दोलन जारी है। राजाजी कहते है, वहाँ तो नही ही जाना चाहिए। ऐसी स्थितिमे मुझे डर है कि मेरा जाना काम बिगाड़ने-जैसा होगा। फिर भी मैंने दीवानसे तार देनेको कहा है। तार आया तो जाऊँगा। रामचन्द्रनको भी लिखा है कि राजाजीके साथ परामर्श करे। तुम क्या इससे भी अधिक कुछ चाहते हो? तुम्हारी भेजी पुस्तक पढ़ूँगा। राजाजीका लेख खोजूँगा।

मेरी वार्ता तो चल ही रही है। हममे राम होगा तो सब अच्छा ही होगा, और यदि हममे से राम निकल गया होगा तो अच्छा यही होगा कि हमारा नाश हो जाये। ऐसा समझकर यथाशक्ति कर्त्तव्य पालन करके निश्चिन्त रहता हूँ।

बापूके वन्देमातरम्

[पुनश्चः]

मैं यह लिख रहा हूँ और अमतुल सलाम मेरे पास बैठी सिलाई कर रही है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११७४) से।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर, त्रावणकोरके दीवान।

२३७. पत्र : महादेव देसाईको

[६ जनवरी, १९३७][1]

चि० महादेव,

अमतुल सलाम वहाँ आ रही है। हमारे साथ रवाना होगी और बम्बई जायेगी। इस समय लोगोंकी मलिनताकी खबरोंकी बाढ आ रही है। मडगाँवकरको तार देना: "धन्यवाद। कल पहुँच रहा हूँ।"[2] समय भी देना। ऐसा ही तार प्रेमलीला बहनको। एक तार मोरवीके दीवानको: "सुनता हूँ महाराज बहुत बीमार हैं। आशा है तबीयत अब सुधर रही होगी – गांधी।"[3]

शेष मिलनेपर।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५६१) से।

२३८. पत्र : अमृतकौरको

पर्णकुटी, पूना
८ जनवरी, १९३७

मूर्खारानी,

अब तो तुम इस उपाधिकी पात्रता प्राप्त करनेके लिए कुछ भी उठा नही रख रही हो। गुरुवारको वैसी छोटी बातको लेकर क्या तमाशा खडा कर दिया। और सो भी तब जब कि तुमने मुझे भरोसा दिलाया था कि ऐसी चीजोंकी ओरसे तुम उदासीन ही रहती हो! खैर, जो बीत गया सो तो बीत गया।

यह पत्र तुम्हे सिर्फ यह बतानेके लिए लिख रहा हूँ कि रामचन्द्रनका तार आया है कि तुम और खानसाहब मेरे साथ वहाँ जा सकते हैं। लेकिन मैं उस तारके भरोसे नही रहना चाहता। मैं तो सी० पी०से पुष्टिकी खबर आनेकी आशा करता हूँ।

आशा है, तुम्हारी यात्रा अच्छी रही और तुम्हे कोई कष्ट नही है। पथ्य-सम्बन्धी नियमोंका पालन करनेमें न चूकना।

सस्नेह,

अत्याचारी

१. अहमदाबाद मिल-उद्योग मजूरी-विवादके सरपंच, जी० डी० मडगाँवकरसे मिलने गांधीजी ७ जनवरीको पूना पहुँचे थे।

२ और ३. तारोंके मसौदे अंग्रेजीमें हैं।

[पुनश्च :]

श्रीमती स्वामिनाथनसे मेरा नमस्कार कहना।

श्री राजकुमारी अमृतकौर
मार्फत : श्री अम्मु स्वामिनाथन
गिलक्रिस्ट गार्डन्स
चेतपुर
मद्रास।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७६२) से; सौजन्य. अमृतकौर। जी० एन० ६९१८ से भी।

२३९. पत्र : एस० अम्बुजम्मालको

८ जनवरी, १९३७

चि० अम्बुजम,[1]

मैं पूनासे मद्रास सोमवारकी शामको पहुँच रहा हूँ। अनुमानतः मैं कार द्वारा वहाँसे सीधे मम्बालम पहुँचूँगा। निस्सन्देह, तुम और जानम्माल वहाँ रहोगी। आशा है, पिताजी स्वस्थ हैं और तुम्हारा मन शान्त है।

सस्नेह।

बापूके आशीर्वाद

मूल अंग्रेजीसे : अम्बुजम्माल पेपर्स; सौजन्य. नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय।

१. सम्बोधन और हस्ताक्षर हिन्दीमें है।

२४०. पत्र : पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासको

८ जनवरी, १९३७

भाईश्री पुरुषोत्तमदास,

आप खुशीसे अंग्रेजीमे लिखा करे, लेकिन मुझे गुजरातीमे लिखनेकी अनुमति दीजिए। मेरी लिखावट पढनेका अभ्यास अपने मेहताजीको करा दीजिए। उसे पढनेमें मैं आपका समय नष्ट नही करना चाहता। जैसे आप मेरे समयकी कीमत जानते है, वैसे ही आपके समयकी मैं जानता हूँ। मै जानता हूँ, मेरे अक्षर ऐसे नही होते कि एकदम पकड़मे आ जाये।

आपकी बात कैसे टालूं? लेकिन आप जानते है, मै किसी काममे विना सोचे-विचारे योही नही पडता। सभाओका अध्यक्ष-पद तभी स्वीकार करता हूँ जब उसके कार्यक्रमपर मेरा नियन्त्रण हो और कार्यक्रमके बारेमे मेरे मनमे श्रद्धा हो। इस एसोसिएशन[1]की स्थापनामे तथा इसकी मारफत गिरमिट प्रथा-विरोधी आन्दोलन चलाने मे मेरा कितना हाथ था, यह शायद आप नही जानते होगे। नटराजन्को शायद उसका इतिहास मालूम होगा। वझे उस समय वहाँ नही थे।

जजीबारके हिन्दुस्तानियोपर जो घोर अन्याय होनेवाला है, उसका मुझे भान है, किन्तु वह अन्याय एक सभा करने अथवा मेरे उसका अध्यक्ष बननेसे दूर नही होगा। उससे पहले थोडा काम मुझे स्वयं करना चाहिए। सरकारके साथ पत्र-व्यवहार शुरू करना चाहिए। बाइडर रिपोर्टका अध्ययन करना चाहिए। जजीबारके कोई प्रतिनिधि यहाँ हो, तो उनसे मिलना चाहिए। यहाँकी तरह वहाँ भी लोगोमे फूट है, स्वार्थपरता है, शिथिलता है। अगर उन लोगोसे कोई काम नही लिया जा सका, तो भी हम सफल नही होगे। इन सब बातोसे कैसे निबटा जा सकता है? मै समय कहाँसे निकालूं? मेरे लिए तो ऊँचे परधर्मसे विगुण स्वधर्म ज्यादा अच्छा है। "स्वधर्ममे निधन अच्छा, परधर्म भयावह है।"[2] मेरे लिए इस समय प्रवासी भारतीयोका काम परधर्म-जैसा है। इसमे मुझे क्यो डालते है? मेरे अध्यक्ष हो जानेसे कुछ नही होगा। मुझे अव्यावहारिक मानकर मेरा तर्क रद्द मत कर दीजिएगा। मेरा तर्क आपके गले उतर जाये और आप मुझे छुटकारा दे दें, मै यही चाहता हूँ। क्योकि इससे आपकी बात टालनेका दोष मुझे नही लगेगा।

१. ट्रांसवालकी ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन।
२. भगवद्गीता, ३-३५।

लेकिन यदि मेरा तर्क आपके गले न उतरे, तो आप मुझे वाइडर रिपोर्ट भेज दीजिए, और जो समझाने-लायक हो, वह मुझे समझा दीजिए, कोई पूरी बात जानने-वाला हो, तो उसे समझानेके लिए भेजिए। आपको फुर्सत हो और आना चाहे, तो आ जाइये। मुझे यहाँसे १० की शामको त्रावणकोर जाना है। यह पत्र आपको कल शनिवारको मिलेगा। उसी दिन आप अथवा आपके प्रतिनिधि आये, तो रातमें एक घंटा दे सकूँगा। रविवारको भी शायद एक घटा निकल सके। रविवारको कितना समय बचेगा, यह सर गोविंदरावके हाथमे है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]

सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास पेपर्स; सौजन्य . नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय।

२४१. जीनेका हक

ग्रीनवील, एस० सी०, संयुक्त राज्य अमेरिकासे एक सज्जनने निम्न पत्र[1] लिखते हुए साथमें अखबारकी कतरन भी भेजी है.

इस कतरनमे मेरी पिछले सालकी बीमारीका विवरण देनेके बाद अन्तमे निम्न-लिखित जानकारी दी गई है:

> गांधीने सारे आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञानकी ओरसे आँख मूँदकर और इन छोटे-छोटे कीड़ों-मकोड़ोंके कारण मरनेवाले असंख्य लोगोकी ओर कोई ध्यान न देकर कहा कि हमें इनकी जान लेनेका कोई हक नहीं है, और जीनेका उन्हें भी उतना ही हक है जितना कि हमें है।

मुझे लगता है, स्थिति ऐसी नही है कि पत्र-लेखक सज्जन जिस तरह मेरे पक्षका समर्थन करना चाहते हैं, उस तरह समर्थन करनेका सुख उन्हे मिल पायेगा। कारण, कतरनमे मुझपर जो बात कहनेका आरोप लगाया गया है वह मैंने सचमुच कही थी, यद्यपि उसे मैंने अपने एक कथनसे मर्यादित भी कर दिया था। वह कथन यह था कि आधुनिक युगकी और विशेष रूपसे खुद अपनी आजकी अज्ञानावस्थाके कारण मैंने भी चूहो, पिस्सुओ, मच्छरो आदिके नाशके लिए की गई कार्रवाइयोका मूक समर्थन किया है। लेकिन मै यह अवश्य मानता हूँ कि ईश्वरकी सृष्टिके समस्त प्राणियोको जीनेका उतना ही अधिकार है जितना हमे है। सो ज्ञानी लोग यदि सृष्टिके तथाकथित हानिकर प्राणियोके विनाशको मनुष्यका कर्तव्य बतानेके बजाय अपनी प्रतिभाका

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने उक्त कतरनमें दिये गये तथ्योंमें अपना अविश्वास प्रकट करते हुए कहा था कि अगर गांधीजी उन बातोंका प्रतिवाद कर दें तो वे उसे अमेरिकाके सभी अखबारोंमें प्रकाशित करवाकर उन बातोंके लिखनेवाले व्यक्तिको करारा जवाब देंगे।

उपयोग ऐसा तरीका ढूँढ निकालनेमे करते जिससे उन्हे मारे विना ही उनका कोई निराकरण हो जाता, तो हम ऐसी दुनियामे जी रहे होते जो मनुष्यके रूपमें हमारी गरिमाके सर्वथा उपयुक्त होती। क्योकि मनुष्य ही तो ऐसा प्राणी है जिसमें बुद्धि-विवेक है, अच्छे-बुरे, सही-गलत, हिंसा-अहिंसा, सत्य-असत्यमे से क्या ग्राह्य है, यह तय करनेकी क्षमता है। जिसे मै जीवनका मूलभूत सत्य मानता हूँ उसे सिर्फ कायर या मूर्ख कहे जाने अथवा इससे भी बुरे विशेषणोका भागी बननेके डरसे अस्वीकार कर दूँ, ऐसा नही हो सकता। भौतिक विज्ञानोके क्षेत्रमे हमने अद्‌भुत प्रगति की है, लेकिन वह तो वास्तवमे हमे और भी विनत बनाती है और हमे यह जाननेकी सामर्थ्य देती है कि प्रकृतिके रहस्योके बारेमे हम शायद ही कुछ जानते हो। आध्यात्मिक क्षेत्रमे हमारी प्रगति बहुत कम या कुछ भी नही रही है। हमारी भौतिकता हमारी आध्यात्मिकतापर छा गई है। आध्यात्मिकताका तो अस्तित्व भी स्वीकार करना हमे नही रुचता। लेकिन हिंसा-अहिंसाके प्रश्नका, दूसरे प्राणियोके[1] साथ मनुष्यके सम्बन्धकी समस्याका सम्बन्ध अध्यात्मकी दुनियासे ही है। इसका सही हल मिलनेपर निश्चय ही हमारे विचार, वचन और कर्ममे क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जायेगे। मेरी बुद्धि और हृदय, दोनो यह माननेको तैयार नही है कि तथाकथित अनिष्टकारी प्राणियोकी सृष्टि इसलिए की गई है कि मनुष्य उनका विनाश करे। ईश्वर बडा नेक और समझदार है। और यदि वह ऐसा है तो फिर निष्प्रयोजन ही किसी प्राणीकी सृष्टि करनेकी दुष्टता और नासमझी वह कैसे कर सकता है? बुद्धिमानी तो इसीमे अधिक है कि हम अपना अज्ञान स्वीकार करके यह मान ले कि हर प्राणीकी सृष्टिके पीछे कोई-न-कोई सत्प्रयोजन है और हमे धैर्यपूर्वक उस सत्प्रयोजन का पता लगानेका प्रयत्न करना चाहिए। मै सचमुच ऐसा मानता हूँ कि मामूली-से-मामूली कारणोसे भी अपने मानव-बन्धुकी हत्या कर बैठनेकी आदतने मनुष्यके विवेक को ऐसा कुण्ठित कर दिया है कि वह अन्य प्राणियोके साथ भी मनमाना बरताव करता है। लेकिन अगर वह वास्तवमे ईश्वरको प्रेम और दयाका सागर मानता होता तो वह वैसा करते हुए काँप उठता। मतलब यह कि मृत्युके भयसे मै भले ही शेर, साँप, पिस्सू, मच्छर आदिको मार दूँ, लेकिन प्रभुसे सदा मेरी यही प्रार्थना रहती है कि वह मुझे ज्ञानका प्रकाश दे ताकि मै मृत्युके समस्त भयका त्याग कर सकूँ और इस तरह जीव-हत्यासे आग्रहपूर्वक बचते हुए श्रेष्ठतर मार्गका अनुसरण करूँ, क्योकि "जो शक्ति निरन्तर मुझपर दयाकी वृष्टि करती है उसीसे मुझे उन सब [जीवो] पर दया करनेकी शिक्षा मिलती है।"[2]

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ९-१-१९३७

१. यहाँ मूल पाठमें छपाईकी एक भूल रह गई थी, जिसे सुधारकर अनुवाद किया गया है। देखिए "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत "एक महत्त्वपूर्ण भूल-सुधार", पृ० २८३।

२. वर्ड्‌सवर्थ की एक कविताका अंश।

२४२. चुनावोंका उपयोग कैसे करें

फैजपुरमे काग्रेस-सप्ताहके दौरान कहा गया था कि प्रान्तीय विधान-मण्डलोके उम्मीदवारोका चुनाव लगभग साढे तीन करोड मतदाता करेगे। हरिजन-सेवक चुनावोके इस अवसरका उपयोग मतदाताओको अस्पृश्यताकी समस्यासे अवगत कराने और उम्मीदवारोको ऐसी स्थितिमे ला खडा करनेके लिए कर सकते है जिससे यह बिलकुल स्पष्ट हो जाये कि अमुक उम्मीदवार अस्पृश्यताका विरोधी है अथवा समर्थक। वे उम्मीदवारोसे इस तरहके प्रश्न पूछ सकते है

क्या आप पूर्ण अस्पृश्यता-निवारणके पक्षमे है? क्या आप मन्दिर-प्रवेशपर रूढिके आधारपर लगे कानूनी प्रतिबन्धको समाप्त करने और ऐसा कानून बनवानेके पक्षमे है जिससे मन्दिरोके अधिकारियोको यह छूट मिल जाये कि जहाँ सवर्ण हिन्दुओ का मत अनुकूल हो चुका हो वहाँ वे हरिजनोके लिए मन्दिरोके द्वार खोल दे? क्या आप सार्वजनिक कुओ, स्कूलो आदिके हरिजनो द्वारा निर्बाध उपयोगके देशके सामान्य कानूनपर अमल करवानेके पक्षमे है?

एक सज्जनने मुझे लिखा है कि उम्मीदवारोने तो मानो एक तरहका षड्यन्त्र कर रखा है कि इस विषयपर चुप ही रहो। यदि बात ऐसी हो, तो उत्साही हरिजन-सेवक मतदाताओकी सभाओमें, जैसा मैंने सुझाया है, उस तरहके प्रश्न पूछकर इस चुप्पीको तोड सकते है। हिन्दू-धर्मको शुद्ध बनानेमे रुचि रखनेवाले प्रबुद्ध मतदाता भी जनताको वास्तविकतासे अवगत कराने और जनमतको वाछित दिशामे मोडनेमें बहुत योगदान कर सकते है। वैसे तो यह बड़ी दु:खद स्थिति है कि अस्पृश्यताकी समस्या परस्पर-विरोधी उम्मीदवारोके बीच या उम्मीदवारो और निर्वाचकोके बीच किसी भी तरहसे विवाद-विरोधका एक मसला बने। लेकिन दु:खद हो या न हो, हमे आजकी वास्तविकताओका सामना तो करना ही है।

[अग्रेजीसे]
हरिजन, ९-१-१९३७

२४३. बीरभूमका एक विनम्र ग्रामीण

शान्तिनिकेतनमे रहनेवाले वीरभूमके एक विनम्र ग्रामीणने दीनवन्धु एन्ड्रयूजकी मार्फत मेरे पास नीचे लिखे प्रश्न भेजे है:

१. आपकी मूल्यवान रायमें आदर्श भारतीय ग्राम कैसा होना चाहिए? हिन्दुस्तानकी मौजूदा सामाजिक और राजनैतिक हालतमें उस 'आदर्श'के अनुसार किसी गाँवका पुर्ननिर्माण करना कहाँतक सम्भव है?

२. कार्यकर्त्ताको सबसे पहले गाँवकी किस समस्याको हल करनेको कोशिश करनी चाहिए और किस प्रकार उसे उसकी शुरूआत करनी चाहिए?

३. छोटे पैमानेपर ग्रामीण प्रदर्शनियाँ आयोजित की जायें या संग्रहालय बनायें जायें तो उनके खास-खास विषय क्या हो और गाँवोके पुर्ननिर्माणमें इन प्रदर्शनियोका सबसे अच्छा उपयोग कैसे किया जाये?

१ आदर्श भारतीय ग्राम इस तरह वसाया जाना चाहिए जिससे वह आरोग्यकी दृष्टिसे विलकुल उपयुक्त हो। उसमे घर ऐसे बनाये जाये कि उनमे काफी प्रकाश और वायु आ-जा सके। उन्हे ऐसी चीजोसे वनाया जाये जो पाँच मीलकी सीमाके अन्दर उपलब्ध हो सकती है। हर मकानके आसपास या आगे-पीछे इतना वडा आँगन हो जिसमे गृहस्थ अपने लिए साग-भाजी लगा सके और अपने पशुओको रख सके। गाँवकी गलियो और रास्तोपर जहाँतक हो सके धूल न हो। अपनी जरूरतके अनुसार गाँवमे कुएँ हो, जिनका इस्तेमाल गाँवके सव लोग कर सके। सवके उपयोगके लिए प्रार्थना-गृह या मन्दिर हो, सभा वगैरहके लिए एक अलग स्थान हो, गाँवकी अपनी गोचर-भूमि हो, सहकारी ढगकी एक दुग्धशाला हो, ऐसी प्राथमिक और माध्यमिक शालाएँ हो जिनमे औद्योगिक शिक्षा सर्वप्रधान हो, और गाँवके अपने मामलोका निपटारा करनेके लिए एक ग्राम-पचायत भी हो। अपनी जरूरतोके लिए अनाज, साग-भाजी, फल, खादी वगैरह खुद गाँवमे ही पैदा और तैयार किया जाये। मोटे तौर पर आदर्श गाँवकी मेरी यही कल्पना है। मौजूदा परिस्थितिमे तो उसके मकान ज्योके-त्यो रहेगे, सिर्फ जहाँ-तहाँ थोडा-सा सुधार कर देना काफी होगा। अगर कही जमीदार हो और वह भला आदमी हो या गाँवके लोगोमे सहयोग और प्रेमभाव हो, तो वगैर सरकारी सहायताके ग्रामीण लोग — जिनमे जमीदार भी शामिल है — खुद अपने वलपर लगभग पूरा कार्यक्रम सम्पन्न कर सकते है। हाँ, नये सिरेसे मकानोको वनानेकी वात छोड दीजिए। और अगर सरकारी सहायता भी मिल जाये तव तो ग्रामोंकी इस तरह पुनर्रचना हो सकती है जिसकी कोई सीमा ही नही। पर अभी तो मुझे यही वताना है कि अगर ग्रामनिवासियोमे परस्पर सहयोगकी वृत्ति हो और

वे सारे गाँवके भलेके लिए मिलजुलकर मेहनत करनेको तैयार हो तो वे अपने लिए क्या-क्या कर सकते हैं। मुझे तो यह निश्चय हो गया है कि अगर उन्हें उचित मशविरा और मार्ग-दर्शन मिलता रहे तो वे गाँवकी — मैं व्यक्तियोकी बात नही करता — आय दूनी कर दे सकते है। व्यापारिक दृष्टिसे अखूट साधन-सामग्री हर गाँवमे भले ही न हो, पर स्थानीय उपयोग और लाभके लिए तो लगभग हर गाँवमें है ही। पर सबसे बडी बदकिस्मती तो यह है कि गाँववालोमे अपनी दशा सुधारनेकी कोई इच्छा ही दिखाई नही देती।

२. गाँवमें कार्यकर्त्ताको सबसे पहले गाँवकी सफाईके सवालको अपने हाथमें लेना चाहिए। जो समस्याएँ ग्राम-सेवकोके लिए परेशानीका कारण बनी हुई है और जो गाँवके लोगोंका स्वास्थ्य चौपट कर रही है तथा जिनसे गाँवोमे रोग फैलते है, उनमे यह समस्या सबसे अधिक उपेक्षित है। अगर ग्राम-सेवक सेवा-भावसे काम करनेवाला भगी बन जाये तो वह इस कामको मैला उठाकर उसकी खाद बनाने और गाँवके रास्ते बुहारनेसे शुरू करे। वह लोगोको बताये कि उन्हे पाखाना-पेशाब कहाँ करना चाहिए, किस तरह सफाई रखनी चाहिए, उससे क्या लाभ है, और सफाई न रखनेसे क्या-क्या नुकसान होता है। गाँवके लोग उसकी बात चाहे सुनें या न सुने, वह अपना काम बराबर करता रहे।

३. तमाम ग्रामीण प्रदर्शनियोमे प्रधान वस्तु चरखा हो, और उसीको धुरी बनाकर स्थानीय परिस्थितियोंके अनुसार जगह-जगह दूसरे उद्योग चलाये जायें। अगर ऐसी प्रदर्शनी आयोजित की जाये और उसके साथ-साथ प्रत्यक्ष प्रयोग तथा व्याख्यान भी चले और पर्चे भी बाँटे जायें तो ग्रामीण लोगोके लिए वह नि.सन्देह पदार्थ-पाठका काम देगी और खूब शिक्षाप्रद होगी।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-१-१९३७

२४४. टिप्पणियाँ

गाय और हरिजन

डॉ० मॉटके साथ अपनी बातचीतके दौरान मैंने कह दिया था कि "क्या आप किसी गायको ईसाई धर्मके सिद्धान्तोकी शिक्षा देंगे? और सच मानिए कि सोचने-समझनेकी शक्तिकी दृष्टिसे कुछ अस्पृश्य तो गायसे भी गये-बीते हैं। मेरे कहनेका मतलब यह है कि इस्लाम, हिन्दू-धर्म और ईसाई धर्ममे एक-दूसरेकी तुलनामे क्या गुण-दोष हैं, यह बात जिस तरह किसी गायकी समझमे नही आ सकती, उसी तरह उनकी समझमे भी नही आयेगी।"[1] कुछ मिशनरी मित्रोने इस तुलनापर आपत्ति प्रकट की है। मुझे तो इस तुलनाके औचित्यमे कोई सन्देह नही दिखाई देता

१. देखिए पृ० ४३।

और इसलिए इसपर अब भी मुझे खेद नही है। इसमे हरिजनोके मनको चोट पहुँचानेका कोई इरादा हो ही नही सकता था, क्योकि गाय तो स्वय ही एक पवित्र पशु मानी जाती है। मै तो अपनी माताकी तरह उसकी पूजा करता हूँ। दोनोसे हमें दूध मिलता है। और जहाँतक समझनेकी शक्तिकी बात है, मै निश्चय ही यह मानता हूँ — और उच्चतर वर्गके हिन्दुओके लिए यह घोर कलककी बात है — कि ऐसे हजारो हरिजन है जो विभिन्न धर्मोके गुण-दोषोको समझनेमे उसी प्रकार असमर्थ है जैसे गाय। इस सन्दर्भमे मेरे यह कहनेकी तो जरूरत ही नही है कि सुदीर्घ शिक्षण-प्रशिक्षणके फलस्वरूप, हरिजन अपनी बुद्धिका जिस तरह विकास कर सकते है, उस तरह गाय नही कर सकती।

एक युवककी दुविधा

एक विद्यार्थी पूछता है

> **कोई मैट्रिक पास या ऐसा युवक जो बी० ए० पास नहीं कर पाया है, अगर दुर्भाग्यसे दो-तीन बच्चोंका पिता हो गया हो, तो उसे अपनी आजीविका प्राप्त करनेके लिए क्या करना चाहिए? और उसकी इच्छाके विरुद्ध पच्चीस वर्षसे कम आयुमें ही उसकी शादी कर दी जाये तो उसे उस हालतमें याद करना चाहिए?**

मुझे तो सीधे-से-सीधा जवाब यह सूझता है कि जो विद्यार्थी यह नही जानता कि अपनी स्त्री और बच्चोका पोषण करनेके लिए उसे क्या करना चाहिए, अथवा जो अपनी इच्छाके विरुद्ध शादी करता हो, उसकी पढाई व्यर्थ है। लेकिन उसके लिए तो यह अतीतकी बात बन चुकी है। घबराया हुआ विद्यार्थी ऐसे उत्तरका पात्र है जो उसका सहायक हो सके। उसने यह नही बताया है कि उसकी जरूरते कितनी है। मैट्रिक पास होनेके कारण अगर वह अपनी जरूरते ऊँची न रखे और अपनेको साधारण मजदूरोकी श्रेणीमे रखे तो उसे अपनी आजीविका प्राप्त करनेमे कोई कठिनाई नही होगी। उसकी बुद्धि उसके हाथ-पैरोकी मदद करेगी, और इस कारण जिन मजदूरोको अपनी बुद्धिका विकास करनेका मौका नही मिला है उनकी अपेक्षा वह अच्छा काम कर सकेगा। इसका यह अर्थ नही है कि जिस मजदूरने अंग्रेजी नही पढी है, उसमे बुद्धि होती ही नही। दुर्भाग्यसे मजदूरोको उनकी बुद्धिके विकासमें कभी मदद नही दी गई, और जो स्कूलोमे पढते है उनकी बुद्धि कुछ तो विकसित होती ही है, यद्यपि यह विकास भी ऐसी बाधापूर्ण परिस्थितिमे होता है जैसी दुनियाके अन्य किसी हिस्सेमे देखनेको नही मिलती। लेकिन उनकी बुद्धिका यह विकास भी इस कारण उनके किसी काम नही आता कि स्कूलो और कालेजोका दोषपूर्ण वातावरण उनके अन्दर प्रतिष्ठाकी झूठी भावनाएँ भर देता है। इस कारण विद्यार्थी यह मानने लगते है कि कुर्सी-मेजपर बैठकर ही वे आजीविका प्राप्त कर सकते है। अत इस प्रश्नकर्त्ताको शरीर-श्रमका गौरव समझकर इसी क्षेत्रमे अपने परिवारके लिए आजीविका प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

और फिर उसकी पत्नी भी अवकाशके समयका उपयोग कर परिवारकी आमदनीको क्यो न बढाये? इसी प्रकार अगर लडके भी कुछ काम करने लायक हो तो उनको भी किसी उत्पादक काममे लगा देना चाहिए। पुस्तकोके पढनेसे ही बुद्धिका विकास होता है, यह खयाल बिलकुल गलत है। इसको दिमागसे निकालकर यह सच्चा खयाल मनमें जमाना चाहिए कि वैज्ञानिक रीतिसे कारीगरका काम सीखनेसे मनका विकास सबसे जल्दी होता है। हाथको या औजारको अमुक प्रकारसे क्यो चलाना पडता है, जब उम्मीदवारको कदम-कदमपर यह बात सिखाई जाने लगती है तो उसके मनके सच्चे विकासकी शुरूआत हो जाती है। विद्यार्थी अगर अपनेको साधारण मजदूरोकी श्रेणीमे खडा कर ले तो उनकी बेकारीका प्रश्न आसानीसे हल हो सकता है।

अपनी इच्छाके विरुद्ध विवाहके विषयमे मै इतना ही कह सकता हूँ कि अपनी इच्छाके खिलाफ जबरदस्ती किये जानेवाले विवाहका विरोध करने-जितना सकल्प-बल विद्यार्थियोको जरूर प्राप्त करना चाहिए। विद्यार्थियोको अपने बलपर खडे रहने और अपनी इच्छाके विरुद्ध कोई भी बात — खासकर व्याह-शादी — जबरदस्ती किये जानेके हर प्रयत्नका उचित तरीकेसे विरोध करनेकी कला सीखनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-१-१९३७

२४५. पत्र: अमृतकौरको

पूना
९ जनवरी, १९३७

मूर्खा रानी,

कल रा०[1]का दूसरा तार मिला। लिखा है कि तुमको और खा०[2]को मेरे साथ नही आना चाहिए। लेकिन मै तो अभी भी सीधे सी० पी०से 'हाँ' सुननेकी उम्मीद कर रहा हूँ। मगर हमें दोनो बातोके लिए तैयार रहना चाहिए।

मौसम अच्छा है — लेकिन वैसा ताजगी देनेवाला नही जैसा सेगाँवमे है।

सस्नेह,

अत्याचारी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७६३) से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ६९१९ से भी।

१ और २. रामचन्द्रन् और खान साहब; देखिए पृ० २३७-३८।

२४६. पत्र : मीराबहनको

९ जनवरी, १९३७

चि० मीरा,

दाहिने हाथको आराम देना ही है। यहाँ ज्यादा लिखनेका समय नही मिलता। आशा है, अब तुम बिलकुल स्वस्थ हो और मनसे प्रसन्न। मगनवाडी पहुँचा तो वहाँ फलोसे भरी एक टोकरी पडी थी। तुम्हे मिल गई होगी। बहरहाल तुम इस बातका ध्यान रखना कि तुम्हे, बालकृष्णको तथा और भी जिन लोगोको जरूरत हो उन्हे फल नियमित रूपसे मिलते रहें।

सस्नेह,

बापू

[पुनश्च]

कनुने कताई शुरू की या नही ?

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३७२) से, सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९८३८ से भी।

२४७. पत्र : मुन्नालाल जी० शाहको

९ जनवरी, १९३७

चि० मुन्नालाल,

इस बार तुम्हे मीराबहनसे प्रमाणपत्र प्राप्त करना होगा। भंगियोका सफाईका काम देखनेमे मीराबहनको साथ रखना। जरूरत पडनेपर उनके कपडे वगैरह धो देना।

बलवन्तसिंहको अलगसे पत्र नही लिख रहा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५९०) से। सी० डब्ल्यू० ७००७ से भी, सौजन्य मुन्नालाल जी० शाह।

२४८. पत्र : जयसिंहको

[१० जनवरी, १९३७से पूर्व][1]

अगर सिख सम्प्रदाय हिन्दू-सस्कृतिका ही एक अग है,—और मै तो मानता हूँ कि है—तो फिर धर्म और नाम बदलनेका कोई प्रयोजन ही नही रह जाता। और अगर वह हिन्दू-धर्मका अंग नही है, उसीसे फूटकर निकली एक शाखा नहीं है तो आप हरिजनोके बीच सिर्फ झगडा खडा कर रहे है और उससे कोई सदुद्देश्य भी सिद्ध नही होता।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १२-१-१९३७

२४९. भेंट : प्रो० मेजको[2]

[१० जनवरी, १९३७से पूर्व][3]

गांधीजी: 'अहिंसात्मक प्रतिरोध'को 'निष्क्रिय प्रतिरोध' कहना ठीक नही है क्योकि अहिंसात्मक प्रतिरोध हिंसात्मक प्रतिरोधकी अपेक्षा ज्यादा क्रियात्मक है। वह प्रतिकारकी ऐसी प्रत्यक्ष क्रिया है जो अविराम चलती रहती है; अलबत्ता, उसका तीन-चौथाई हिस्सा अदृश्य होता है और केवल एक-चौथाई दृश्य होता है। अपने दृश्य रूपमें वह प्रभावहीन दिखाई पड़ती है, उदाहरणके लिए चरखा, जिसे मैंने अहिंसाका प्रतीक कहा है। तो, अपने दृश्य रूपमे वह प्रभावहीन दिखाई पडती है, किन्तु सचमुचमे वह तब भी अत्यन्त तीव्र क्रिया कर रही होती है और अपने अन्तिम परिणाममे सबसे ज्यादा प्रभावपूर्ण सिद्ध होती है। मै इस रहस्यको जानता हूँ, इसीलिए अहिंसाके उपासक जिस तरह अपनी कताई कर रहे है उसके दोष मुझे नजर आ जाते है। मै उनसे और अधिक सजग और अनथक प्रयत्न करनेके लिए कहता हूँ।

१. साधन-सूत्रमें सम्बन्धित समाचारकी तारीख १० जनवरी दी गई है।

२. महादेव देसाईके "ए डिसकोर्स ऑन नॉन-वायलेन्स" शीर्षक लेखसे उद्धृत। प्रो० मेज डॉ० टॉबिआसके साथ वाई० एम० सी० ए० (ईसाई युवक-संघ) की समितियोंके विश्वसम्मेलनमें शामिल होनेके लिए भारत आये थे। वे अमेरिकी नीग्रो थे।

३. महादेव देसाईके अनुसार यह भेंट डॉ० टॉबिआससे मिलनेसे पहले हुई थी; देखिए "भेंट : डॉ० टॉबिआसको", पृ० २५७।

अहिंसाको अच्छी तरह समझकर उसका उपयोग किया जाये तो स्पष्ट हो जायेगा कि वह एक अत्यन्त क्रियाशील शक्ति है। हिंसक व्यक्तिकी हलचल जबतक रहती है, तबतक बहुत दृश्य होती है, किन्तु वह हमेशा क्षणस्थायी ही होती है। इटलीवालोंने अबीसीनियावालोका जो सहार किया उससे ज्यादा दृश्य भला क्या हो सकता है? यह प्रसग ऐसा था जिसमें एक छोटी हिंसक शक्ति एक बडी हिंसक शक्तिसे जूझ रही थी। लेकिन यदि अबीसीनियावाले युद्ध न करते और अपना सहार होने देते तो वैसे दिखता तो ऐसा कि वे कुछ नही कर रहे है, लेकिन उस समय दिखाई न देनेपर भी उनकी वह हलचल कही ज्यादा प्रभावकारी होती। यहाँ हिटलर और मुसोलिनी और वहाँ स्टालिन हिंसाका तात्कालिक प्रभाव अवश्य दिखा सकते है। लेकिन वह चगेज द्वारा किये गये सहारकी तरह चन्दरोजा ही होगा, जबकि बुद्धके अहिंसात्मक कार्यका असर अभी भी कायम है और सम्भवत समयके साथ-साथ बढता जायेगा। फिर उसपर जितना अमल होता है वह उतना ही अधिक प्रभावकारी और अक्षय सिद्ध होता है। और अन्तमे सारा ससार हक्काबक्का होकर चिल्ला पडता है कि 'अरे, यह तो चमत्कार हो गया।' जितने भी चमत्कार हुए है वे सब अदृश्य शक्तियोके चुपचाप और प्रभावकारी रूपमे काम करते रहनेसे ही हुए है। इनमे अहिंसा अत्यधिक अदृश्य और बहुत ज्यादा प्रभावोत्पादक है।

प्रो० : मेज : अहिंसाकी उच्चताके बारेमें मेरे मनमें कोई शंका नहीं है, लेकिन जिस प्रश्नको लेकर मेरा मन परेशान है वह यह है कि बड़े पैमानेपर इसपर अमल कहाँतक हो सकता है। व्यक्तियोंको तो प्रेमकी शिक्षा आसानीसे दी जा सकती है, किन्तु किसी जन-समुदायको उसकी दीक्षा देना कठिन है। जब वे भड़क उठें और अनुशासन भंग कर दें, तब हमारे पास क्या इलाज है? तब हम लौट पड़ें या आगे बढ़ते जायें?

गाधीजी . अपने आन्दोलनमे यहाँ हमें इस बातका अनुभव हो चुका है। खाली प्रचार करनेसे लोग इस कलामे दक्ष नही बनते। अहिंसा ऐसी चीज है जिसका प्रचार नही किया जा सकता। इसपर तो अमल करना पडता है। लोगोको हिंसाका अभ्यास बाह्य प्रतीकोके द्वारा कराया जा सकता है। पहले तख्तेपर निशाना लगाते हैं, फिर चाँदमारी होती है, उसके बाद जानवरोका शिकार करके आप नाशकी कलामे निपुण बन जाते है। लेकिन अहिंसक आदमीके पास कोई प्रत्यक्ष हथियार नही होता और इसलिए न केवल उसकी वाणी बल्कि उसका कार्य भी प्रभावहीन मालूम पडता है। मै आपसे हर तरहकी ऐसी मीठी बाते कर सकता हूँ जिन्हे करनेका मेरा कोई इरादा नही है। दूसरी ओर, आपके प्रति सच्चा प्रेम रखते हुए भी मेरा बाह्य व्यवहार नागवार-जैसा लग सकता है। इस प्रकार दोनो मामलोंमे जाहिरा तौरपर मेरा व्यवहार एक-सा होते हुए भी उसका असर अलग-अलग हो सकता है। हमारे कार्यका असर अकसर तब ज्यादा होता है जब उसके दृश्य रूपमे हम उससे अपरिचित होते है। इस तरह, मेरे ऊपर आप अनजाने जो असर

डाल रहे है, उसे सम्भव है मै कभी जान ही न सकूँ। मगर जान-बूझकर डाले जानेवाले असरसे वह स्थायी और कही ज्यादा होगा। हिंसामे तो 'अदृश्य' कुछ है ही नही। दूसरी ओर, अहिंसा तीन-चौथाई अदृश्य है, और इसलिए उसकी अदृश्यताके अनुपातमे उसका असर भी ज्यादा है। अहिंसा जब क्रियात्मक हो जाती है, तो वह असाधारण वेगसे फैलती है और आगे बढकर चमत्कारका रूप धारण कर लेती है। अत जनसाधारणके मनपर पहले अज्ञात रूपमे इसका असर होता है और फिर ज्ञात रूपमें। जब जनसाधारणका मानस ज्ञात रूपमे प्रभावित हो जाता है तो हम जाहिरा तौरपर अहिंसाकी विजय हुई देख सकते है। मेरे अपने अनुभवकी बात है कि जब जनता कमजोर होती मालूम पडती थी, तब भी मेरे अन्दर पराजयकी कोई भावना नही थी। सन् १९२२मे सविनय अवज्ञाका परित्याग करनेके बाद भी अहिंसाकी शक्ति में मेरा विश्वास पहलेसे कही ज्यादा था, और आज भी मेरे मनमे वैसा ही विश्वास है। यह सिर्फ भावुकताकी बात नही है। फर्ज कीजिए कि मुझे अरुणोदयका कोई चिह्न दिखाई न दे, तो क्या मुझे अरुणोदयके होनेका भरोसा छोड देना चाहिए? नही, मुझे अपना विश्वास नही छोड़ना चाहिए। हरेक चीज अपने उपयुक्त समय पर होती ही है।

यहाँपर हम भंगीका जो काम कर रहे है, उसके बारेमे अपने साथियोसे मेरी बातचीत हुई। वे कहते है, 'स्वराज्य मिल जानेके बाद हम इसे करे तो क्या हर्ज है? तब हम इसे कही अच्छी तरह कर सकेंगे।' लेकिन मैं कहता हूँ, 'नही, जो सुधार करना है वह आज ही करना चाहिए, स्वराज्यकी प्रतीक्षामें उसे रोक नही रखना चाहिए। सच तो यह है कि सच्चा स्वराज्य ऐसे काम करनेपर ही मिलेगा।' भगीका काम करनेसे स्वराज्यका क्या सम्बन्ध है, यह मै आपको नही बता सकता, यहाँतक कि मै अपने कुछ साथियोको भी शायद नही बता सकता। लेकिन अगर मुझे अहिंसात्मक रूपसे स्वराज्य प्राप्त करना है, तो इसके लिए यह जरूरी है कि अपने लोगोमे मैं अनुशासनकी भावना पैदा करूँ। अपाहिज, अन्धे और कोढी हिंसात्मक लडाईमे शरीक नही हो सकते। यही नही, बल्कि औरोके लिए भी सेनामे भरती होनेकी उम्र मर्यादित होती है। लेकिन अहिंसात्मक लडाईमे उम्रकी कोई कैद नही है; अन्धे, अपाहिज और रोगी भी उसमे शरीक हो सकते है, और न सिर्फ पुरुष बल्कि स्त्रियाँ भी। अहिंसाकी भावना जब लोगोमें छा जाती है और वास्तविक रूपमे काम करने लगती है, तब उसका असर सबके लिए दृश्य या प्रत्यक्ष हो जाता है।

अब आपकी परेशानीको ले। आप कहते है कि बहुत-से लोग ऐसे हैं जो आपकी तरह अहिंसामे विश्वास नही करते। तब क्या आप खामोश बैठे रहे? मित्रगण पूछते है 'अगर अभी नही तो आप कब कार्रवाई करेंगे?' उनके जवाबमे मैं कहता हूँ 'हो सकता है कि अपनी जिन्दगीमें मुझे कामयाबी न मिले, लेकिन इस बातमें मेरा विश्वास हमेशासे ज्यादा जोरदार है कि विजय अहिंसाके द्वारा ही होगी।' फैजपुरमें भाषण देते हुए जब मैने चरखेके बारेमे कहा, तो एक पत्रकारने मुझेपर चालाकीका आरोप लगाया। लेकिन मेरे दिमागमे तो ऐसी कोई बात नही थी। जब मैं सेगाँव

आया तो मुझसे कहा गया था कि यहाँके लोग शायद आपसे सहयोग न करे और मुमकिन है कि आपका वहिष्कार भी करे। मैंने कहा शायद ऐसा ही हो, लेकिन अहिंसात्मक कार्यका यही तो तरीका है। अगर मै ऐसे गाँवमे जाऊँ जो शहरोसे और भी दूर हो और एक तरफ भी हो, तो प्रयोग और अच्छी तरह होगा। यह वात अहिंसाकी कलाकी खोज करते हुए मुझे मालूम हुई है। और प्रतिदिन मुझे जो नये-नये अनुभव मिल रहे हैं वे मेरे इस विश्वासको और भी प्रखर वनाते हैं। इस विश्वासको सफल वनानेके लिए ही मैं यहाँ आया हूँ और अगर ईश्वरकी यही इच्छा हुई कि इसीमे मेरा प्राणान्त हो तो ऐसा करते हुए ही मैं मर भी जाऊँगा। अहिंसाका तभी कुछ महत्त्व हो सकता है जबकि उसे विरोधी शक्तियोके मुकावलेमे काम करना पडे। लेकिन मै ऐसी परिस्थितियोकी कल्पना कर सकता हूँ जब अकर्ममे ही कर्म हो और कर्म निष्क्रियतासे भी ज्यादा हानिकर सावित हो।

प्रो० मेज : क्या प्रेम-भावसे हिंसा करना सम्भव है ?

गाधीजी नही, कभी नही। अपने खुदके अनुभवका एक उदाहरण आपको वताता हूँ। एक वछडेकी टाँग टूट गई थी और उसके भयकर जख्म हो गये थे। यहाँ तक कि उससे कुछ खाया नही जाता था और वह वडी मुश्किलसे साँस लेता था। तीन दिनतक मैं अपने-आपसे और अपने साथियोसे उसके वारेमे तर्क-वितर्क करता रहा। इसके वाद मैंने उसे मरवा दिया।[1] मेरा वह काम अहिंसात्मक था, क्योकि वह विलकुल नि स्वार्थ भावसे किया गया था। ऐसा करनेमे मेरा एकमात्र उद्देश्य यही था कि वेचारा वछडा पीडासे मुक्त हो जाये। कुछ लोगोने मेरे इस कामको हिंसात्मक कहा है, लेकिन मैं तो उसे एक सर्जनका ऑपरेशन कहता हूँ। अगर मेरा पुत्र भी ऐसी बुरी हालतमे हो तो उसके साथ भी मै ठीक ऐसा ही करूँगा। मेरा कहना यही है कि ज्यो ही आप अपवादोकी वात करते है, हमारे जीवनमे अहिंसाका नियम सर्वोच्च नियम नही रह जाता।

प्रो० मेज : कोई अल्पमत किसी भारी बहुमतके मुकावलेमें क्या करे ?

गाधीजी मै कहूँगा कि बहुमतकी अपेक्षा अल्पमत अहिंसाका पालन कही ज्यादा कर सकता है। सिमड्स नामक मेरे एक अग्रेज मित्र थे। वे कहा करते थे, 'जवतक आप अल्पमत मे है तभीतक मै आपके साथ हूँ। जैसे ही आप बहुमतमे आ जायेंगे, मै आपको छोड दूँगा।' दक्षिण आफ्रिकामे अपने अल्पमतका नियन्त्रण मैं जिस आत्मविश्वासके साथ कर सका था, यहाँ बहुमतका नियन्त्रण करनेमे मै उतने आत्मविश्वासका अनुभव नही करता। किन्तु इसके आधारपर यह कहना विलकुल गलत होगा कि अहिंसा कमजोरोका हथियार है। क्योकि अहिंसात्मक व्यवहारमे तो हिंसात्मक व्यवहारसे भी ज्यादा वहादुरीकी जरूरत होती है। डैनियलने जव मीडो और प्राचीन ईरानवासियोके निग्रमोको भग किया, उस समय उसका कार्य अहिंसात्मक था।

१. इस घटनाके पूरे विवरणके लिए देखिए खण्ड ३७ पृ० ३२३-२७

प्रो० मेज: आपकी अहिंसाके फलस्वरूप शत्रुकी जो दुर्दशा हो सकती है, उसका खयाल करके क्या आप अपने अहिंसक प्रतिकारपर कोई पाबन्दी लगाना चाहेंगे?

गांधीजी: जरूर। ऐसी हालतमें आपको उसी तरह अपना आन्दोलन स्थगित करना पड़ेगा जैसे दक्षिण आफ्रिकामे यूरोपीय मजदूरोंके सरकारके विरुद्ध हो जाने पर मैंने किया था। यूरोपीय मजदूरोंने तो तब मिलकर सरकारसे संयुक्त मोरचा लेनेको कहा था, लेकिन मैंने इनकार कर दिया।

प्रो० मेज: और अहिंसा कभी उलटकर आपको नुकसान नहीं पहुँचायेगी, जबकि हिंसा स्वयं नष्ट हो जायेगी।

गांधीजी: हाँ, हिंसासे तो हिंसा ही पैदा होगी। लेकिन, मैं आपसे कहूँ, यहाँ भी मेरी दलीलका एक महापुरुषने खण्डन किया है। उसने कहा था: अहिंसाके इतिहासको देखो। ईसामसीह तो सूली चढ़पर गये, लेकिन उनके अनुयायी खून बहाते हैं।' लेकिन इससे कोई बात साबित नहीं होती। हमारे पास ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिसके आधारपर हम निर्णय कर सकें। हम तो ईसा मसीहकी सारी जिन्दगीके बारेमें भी नहीं जानते। उनके अनुयायियोंने कदाचित् अहिंसाके सन्देशको पूरी तरह हृदयंगम नहीं किया था। मगर मुझे आपको यह चेतावनी दे देनी चाहिए कि आप कहीं यह खयाल न कर बैठें कि अहिंसाके बारेमें मैं जो-कुछ कह रहा हूँ वही आखिरी बात है। मैं अपनी मर्यादाओंको जानता हूँ। मैं तो सत्यका एक विनम्र अन्वेषक-मात्र हूँ। और मैं इतना ही कहता हूँ कि मैंने जो भी प्रयोग किये, उनमें से हरेकने मेरे इस विश्वासको ज्यादा-से-ज्यादा गहरा किया है कि मनुष्य-जातिके पास अहिंसा ही सबसे जबरदस्त शक्ति है। और इसका व्यवहार सिर्फ व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सामूहिक रूपमें भी इसपर अमल किया जा सकता है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २०-३-१९३७

२५०. कांग्रेसका आगामी अधिवेशन

कांग्रेसके आगामी अधिवेशनके बारेमें अभीसे कुछ लिखना शायद ठीक न मालूम हो। लेकिन यह बात तो, राजनीतिके बारेमें लिखना हो, तभी लागू होगी क्योंकि राजनीतिमें नित्य परिवर्तन होता रहता है। पर मुझे तो सिर्फ इस विषयपर लिखना है कि कांग्रेसका अधिवेशन गाँवमें किस तरह किया जा सकता है। और यह बात ऐसी है कि चाहे जब इसकी चर्चा की जा सकती है, और इसकी तैयारियाँ तो आजसे ही होनी चाहिए।

इसमें कोई शक नहीं कि फैजपुर अधिवेशनकी व्यवस्था इतनी सन्तोषप्रद रही जितनी कि किसीने कल्पना भी न की होगी। फिर भी उसमें कुछ ऐसी अनिवार्य कमियाँ रह गई थीं जिन्हें भविष्यमें दूर किया जा सकता है और करना चाहिए।

फैजपुरमें जो-कुछ कमी हुई उसके लिए किसीको जिम्मेदार तो नही ठहराया जा सकता, क्योकि किसीको यह आशा न थी कि वहाँ इतने आदमी आयेगे। स्वयसेवकोसे इस बार जितना काम लिया गया उतना कांग्रेसके अन्य किसी अधिवेशनमे नही लिया गया। वस्तुत यह कहा जा सकता है कि फैजपुरमें कांग्रेसकी नाव ऐसे समुद्रमे डाल दी गई थी जिसका पहलेसे किसीको ज्ञान न था। फैजपुरके अनुभवसे मुझे जिन सुधारोकी जरूरत मालूम हुई है उन्हे सक्षेपमे यहाँ देता हूँ :

१. गाँव कितना ही छोटा क्यो न हो, इसकी परवाह नही। हाँ, वह रेलवे स्टेशनसे सात मीलसे ज्यादा दूर न होना चाहिए।

२. जितनी जमीनकी जरूरत हो वह मुफ्त मिलनी चाहिए।

३. गाँववालोका सहयोग होना चाहिए।

४. जमीन फैजपुरकी तरह चिकनी मिट्टीकी न होकर रेतीली होनी चाहिए जिसमे पानी तुरन्त जज्ब हो जाये।

५. पानीका काफी और जगह-जगहपर इन्तजाम होना चाहिए।

६. पाखाने और पेशावघर जगह-जगह और काफी तादादमे होने चाहिए।

७ गुजराती, हिन्दी, तमिल, तेलुगू, उर्दू आदि भाषाओमे और देखते ही पढी जा सकें, ऐसे मोटे अक्षरोमे छपी हुई इस तरहकी सूचना जगह-जगह लगी रहनी चाहिए कि 'पाखाने-पेशावके लिए जो जगह नियत है वही जाये, यह प्रार्थना है।' रास्तेके नम्बर या नाम नियत कर देने चाहिए। नम्बर हो तो ज्यादा अच्छा। हरेक रास्तेमे भंगी-स्वयसेवक घूमते रहने चाहिए, जिनके पास कांग्रेस-नगरका नक्शा हो और वे लोगोको सब-कुछ समझाते रहे। झाड, डोल और छोटा फावडा भी उनके पास रहना चाहिए। अनियमित जगह कोई पेशाव-पाखाना करता हो, तो उन्हे चाहिए, उसे सावधान कर दे और जो मैला पडा हो उसे तुरन्त उठाकर ठिकाने लगा दे। हरेक पाखाने-पेशावघरके पास भगी होने जरूरी हैं, जिनका काम यह हो कि जैसे ही कोई पाखाने-पेशावसे आये वैसे ही वे उसे साफ कर आये। टिनके डोल और फावड़े काममे लाये जा सकते है, क्योकि वे सस्ते होते है और बादमे भी उनका उपयोग हो सकता है। फावड़े सूपकी शक्लके रखनेसे सस्ते पडेगे और आसानीसे काममे लाये जा सकते हैं।

८. कांग्रेस-नगरमे जो अस्पताल हो वह अच्छा और मजबूत होना चाहिए। वह कच्ची ईंटोका बना होना चाहिए और उसका छप्पर खपरैलका होना जरूरी है। कम-से-कम बीस मरीजोके रहनेकी उसमे गुजाइश हो। स्त्रियोकी व्यवस्था अलग रहे।

९ भोजनालय एक नही बल्कि कई होने चाहिए। होशियार रसोइयोको रखा जाये तो बहुत आसानी होगी। सौ-सौ आदमियोके खानेके लायक प्रखण्ड रखे जाये तो बड़ी सुविधा हो जाये। पगतमे बैठकर खानेवाले और तैयार खाना ले जानेवालेसे अलग-अलग दरसे दाम लिये जाने चाहिए। भोजन ऐसा रहे जो सादा-से-सादा हो और सभी प्रान्तवालोके अनुकूल पडे। बहुत-से आदमियोको एक ही पगतमे बिठाकर खिलानेका लोभ छोड़ना होगा। सबको भोजन उनके अपने-अपने बरतनोमे परोसा

जाना चाहिए, क्योकि हजारो आदमियोको एक साथ खाना खिलानेकी सुविधा कही नही हो सकती।

१०. गायका घी-दूध तो फैजपुरमे मिल ही नही सकता था, ऐसा कह सकते है। लेकिन मुझे लगता है कि आर्थिक दृष्टिसे भी सब जगह नही तो काग्रेसके सम्मेलनोमें तो गायका दूध ही काममे लाना चाहिए। यह जरूर है कि हजारो आदमियोके लिए गायका दूध प्राप्त करना कोई आसान बात नही है। इसके लिए तो अभीसे इन्तजाम किया जाये तब कही काम चल सकता है।

११ आटा, धान आदि काग्रेस-नगरमे ही दले-कूटे जाने चाहिए।

१२. फैजपुरकी प्रदर्शनी, मेरी दृष्टिमें, आजतक हुई प्रदर्शनियोमे सबसे अच्छी थी। उसकी सफलता तो स्पष्ट दृष्टिगोचर हुई। लेकिन उसमे भी सुधारकी गुजाइश तो है ही।

अभी तो मुझे यही खास-खास बाते सूझ रही है। हाँ, दो परिवर्तन मुझे आवश्यक मालूम पडते है। नये विधानके अनुसार कार्य-समिति और अ० भा० काग्रेस कमेटीकी बैठके काग्रेसके अधिवेशनसे पहले होती है। इनकी देखादेखी अन्य सभा-सम्मेलन भी अब काग्रेसके अधिवेशनसे पहले होने लगे है। यह ठीक नही है। इससे स्वागत-समितिके ऊपर ऐसा बोझ आ पडता है जो उसपर नही पडना चाहिए और अधिवेशन तीन दिनके बदले दस दिनतक जारी रहनेकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अत या तो अन्य सभा-सम्मेलन काग्रेसके अधिवेशनसे पहले नही होने चाहिए या पहलेसे ही दस दिनकी भीडभाडकी व्यवस्था करनी चाहिए।

और काग्रेसका अधिवेशन गाँवमे ही करना हो तो उनका दिसम्बरमे होना जरूर बन्द करना चाहिए। क्रिसमसके इस सप्ताहमे रेल-भाडेकी जो सहूलियत मिलती है वह और समय नही मिलती और इस समय विधान-सभामे छुट्टी होती है, इससे काग्रेसका अधिवेशन दिसम्बरके आखिरमे ही करना चाहिए — इस तरहकी जो दलीले दी जाती है, उनमे जोर बहुत कम है। लाखो आदमियोकी सुविधापर ध्यान दे तो सर्दीका मौसम समाप्त हो जानेपर ही काग्रेसका अधिवेशन करनेके पक्षमें कही ज्यादा जोरदार दलीलें मिल सकती है। सर्दीमें लोगोको होनेवाली असुविधा, दिसम्बरमे किसानोका फसलकी कटाईमे व्यस्त होना और खडी फसलके कारण इस महीने गाँवमे जमीन मिलनेकी कठिनाई, ये तीन असुविधाएँ मुझे तो ऐसी लगती है जिनके सामने हमे पहली दो सुविधाओको भूल जाना चाहिए। मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि रेल-भाडा खर्च करके जो लोग फैजपुर आये थे, उनकी बनिस्बत उन लोगोकी सख्या कही ज्यादा थी जो आसपासके गाँवोसे पैदल अथवा बैलगाडियोमे आये थे। कुम्भ, माघ आदिके जो मेले भरते है, उनका रेलवेकी सुविधा-असुविधासे कोई सम्बन्ध नही होता। सुविधाएँ हो या नही, ये मेले तो अपने-अपने वक्तपर ही होते है और लाखो आदमी उनमे जाते है। काग्रेसका आकर्षण भी इन मेलोसे कुछ कम नही होना चाहिए।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १०-१-१९३७

२५१. अस्पष्ट भाषा

एक सज्जनको, जो 'हरिजनवन्धु' वारीकीसे पढते है, २७ दिसम्वरके अकका 'हिन्दू आचार-सहिता'[1] विपयक मेरा लेख पसन्द आया, लेकिन उसके १४वे अनुच्छेदसे उनको कुछ असन्तोष हुआ है। वह अनुच्छेद इस प्रकार है

> हमे कोई गाली दे या मारे या हमारी माँ-वहनके साथ दुराचार करे तो हमे वह निश्चय ही अच्छा नही लगेगा, इसलिए हम किसीको गाली न दे, अपनी स्त्री या अपने वाल-वच्चोको भी न दे।

इस लेखके वहुत-से अनुच्छेद एक-दूसरेसे सम्वन्ध रखते है। १४वे अनुच्छेदका सम्वन्ध १५वे, १६वें और १७वे अनुच्छेदसे है। उनको साथमे पढ़नेसे १४वे अनुच्छेदका मतलव ठीक समझमे आ जाता है। फिर भी मुझे यह कवूल करना चाहिए कि अगर अकेले १४वे अनुच्छेदको पढा जाये तो आदमी उससे उलझनमे पड सकता है। मै मानता हूँ कि इस अनुच्छेदकी भाषा अस्पष्ट और अनघड है। फिरसे पढनेपर मालूम पडता है कि मैने उसपर जरूरतसे ज्यादा वोझ लाद दिया है, जिससे उसके अर्थकी सरलता मिट गई। १४ वे अनुच्छेदमे लिखी वातोके स्पष्टीकरणके लिए ही १५, १६ और १७ वे अनुच्छेद लिखे गये है। १४वे अनुच्छेदका वोझा हलका करने और विचार तथा भापाकी स्पष्टताके लिए १४, १५ और १७ वे अनुच्छेदको नीचे लिखे अनुसार फिरसे लिखता हूँ। १६ वे अनुच्छेदमे सुधारकी गुजाइश नही है।

१४. हमे कोई गाली दे या मारे तो यह अच्छा नही लगता, तो फिर हम किसीको क्यो गाली दे? क्यो किसीको मारे?

१५. किसीको गाली न दे तो अपनी स्त्री और वच्चोको भी गाली न दे। वहुत-से पुरुष अपनी स्त्री और अपने वच्चोको अपनी मिल्कियत समझते है। यह वड़ी भारी भूल है। हमारे धर्ममे स्त्री पुरुपके समान ही मानी गई है। इसी कारण वह अर्धांगिनी कहलाती है, सहधर्मिणी भी कही जाती है, देवीके नामसे सम्वोधित होती है। माता-पिता लडकोके सरक्षक होते हैं। इस कारण उनके प्रति भी मृदुता, सहनशीलता और धीरजका व्यवहार करना चाहिए।

१६ हमारी स्त्री या हमारी माँ-वहनके साथ कोई दुर्व्यवहार करे तो वह हम सहन नही कर सकते। तो फिर हम दूसरोकी स्त्रीके साथ दुर्व्यवहार क्यो करे? किसी स्त्रीके ऊपर कुदृष्टि डालना, उसके साथ गन्दा मजाक करना, उसका स्पर्श करना, यह सब दुर्व्यवहार ही कहा जाता है। परस्त्री-मात्र हमारी माँ-वहनके सामान है।

[गुजरातीसे]
हरिजनवन्धु, १०-१-१९३७

1. देखिए पृ० २०९-१२।

२५२. पत्र : मीराबहनको

पूना
१० जनवरी, १९३७

चि० मीरा,

तुम्हारे दो पत्र एक साथ आये। पढकर रुलाई छूट गई। तुमको कैसे सान्त्वना दूं? अगर वहाँ तुम्हे शान्ति नही मिल सकती तो तुम निस्सन्देह कुछ दिन बरोडा या वर्धा जाकर रहो और वहाँ कुछ-उपयोगी काम करती रहो। मेरे पास कोई और आदमी नही है जिसे प्रबन्धक बनाऊँ। जबतक मैं मुन्नालालको साफ-सीधा आदमी मान रहा हूँ तबतक तो मुझे उसीसे सन्तोष करना है। मेरी अनुपस्थितिमे वहाँ शोर-गुल तो होता है, लेकिन जितना किसी आम भारतीय परिवारमे होता है उससे ज्यादा नही। अगर तुम अपना चित्त शान्त रख सको और इस शोरगुलको भी ऐसी बुराई मानो जिसको दूर करना है, तो तुम इन बातोका इलाज कर सकती हो। पागलोका प्रलाप सुनकर तो हम अधीर नही होते, क्योकि उसे रोग मानते है और जबतक उसका इलाज नही हो जाता तबतक उसे बरदाश्त करना फर्ज समझते है। सेगाँवके उस घरकी गडबड़ी और अव्यवस्थाको तुम ऐसी ही नजरसे क्यो नही देखती?

उम्मीद करता हूँ कि अब मै दोबारा सेगाँवसे जल्दी हटनेवाला नही हूँ। बेलगाँव जानेकी बात जरूर है, लेकिन वह तो अप्रैलमें।

आशा है, तुम्हारा पैर अब बिलकुल ठीक हो गया होगा। अगर न हुआ हो तो वर्धा जाकर सिविल सर्जनको दिखलाना चाहिए। डाक मँगवा लेनी चाहिए।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३७१)से; सौजन्य. मीराबहन। जी० एन० ९८३७ से भी।

२५३. पत्र : महादेव देसाईको

१० जनवरी, १९३७

चि० महादेव,

हकीमजी आज वहाँ आ रहे है। इनके इलाज राक्षसी नही है, गरीबोके लायक है और उनके बूतेके है। मेरी तो सलाह है कि दुर्गाको इन्हे दिखाओ। फिर इनका उपचार न कराना हो तो नही करायेंगे। मेहता और गौरीशकर शाही ढगसे इलाज करते है। ये तो गरीबोके हकीम है, और खुदापरस्त है। मै तो इन्हे सिखा रहा हूँ, और जल्दी जाने भी नही दूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५१७) से।

२५४. भेंट : डॉ० टॉबिआस[1]को

[१० जनवरी, १९३७][2]

डॉ० टॉबिआस : आपके अहिंसा सिद्धान्तने मेरे जीवनको बहुत अधिक प्रभावित किया है। क्या आपका इसमें अब भी उतना ही दृढ़ विश्वास है जितना पहले था?

गाधीजी : निसस्सन्देह, बल्कि वह लगातार बढ रहा है।

डॉ० टॉ० : अमेरिकाके नीग्रो लोगोकी संख्या १२ लाख है। वे मौलिक अधिकार पानेके लिए संघर्ष कर रहे हैं, जैसे — जनसमूहकी हिंसासे छुटकारा पाना, मताधिकारका अप्रतिबन्धित उपयोग, अलग बस्तियोमें रहनेकी बाध्यतासे छुटकारा पाना। आपने भारतमें जो संघर्ष किया है, उसके अनुभवोके आधारपर हमारा उत्साह बढ़ानेके लिए सलाहके तौर पर क्या आप कुछ कहेंगे?

गाधीजी . ऐसी ही कुछ बातोका प्रतिरोध मुझे दक्षिण आफ्रिकामे करना पडा था, यद्यपि वह बहुत छोटे पैमानेपर था। कठिनाइयाँ अभी समाप्त नही हुई

१. महादेव देसाईके "ए डिस्कोर्स ऑन नॉन-वायलेन्स" शीर्षक लेखसे उद्धृत। डॉ० टॉबिआस अमेरिकी नीग्रो थे। वह वाइ० एम० सी० ए० समितियोंके विश्व-सम्मेलनमें शामिल होने आये थे। यह भेंट-वार्ता मौनवारको हुई थी, इसलिए गांधीजीने उत्तर लिखकर दिये थे।

२. महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीके अनुसार।

है। मैं केवल यही कह सकता हूँ कि अहिंसाके अलावा और कोई रास्ता नही है। लेकिन वह रास्ता दुर्बलो और अज्ञानियोका नही, बलशाली और बुद्धिमान लोगोका है।

डॉ० टॉ० : त्रावणकोरसे पता चलता है कि आपकी अछूतोंके साथ एकात्मताके शुभ परिणाम दिखाई देने लगे हैं।[1] क्या आप समझते हैं कि त्रावणकोरके उदाहरणका अन्य राज्यों द्वारा निकट भविष्यमें अनुकरण किया जायेगा?

गांधीजी : मुझे ऐसा नही होनेपर आश्चर्य होगा।

डॉ० टॉ० : अपने नीग्रो भाइयोंको मैं उनके भविष्यके बारेमें क्या कहूँ?

गांधीजी : यदि वे सत्यको, जो उनके पक्षमे है, अपने साथ लेकर और अहिंसाको अपना एक मात्र शस्त्र चुनकर चलेंगे तो उनका भविष्य निश्चित रूपमे उज्जवल है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २०-३-१९३७

२५५. पत्र : मुत्तुलक्ष्मी रेड्डीको

११ जनवरी, १९३७

प्रिय बहन,

यह पत्र चलती ट्रेनसे लिख रहा हूँ। चुनावोंमे[2] मैं कोई हिस्सा नही ले रहा और न उनमे मेरी किसी तरहकी दिलचस्पी ही है। लेकिन आपकी यह बात स्वीकार करता हूँ कि स्त्रियोके साथ पुरुषोकी बराबरीका व्यवहार किया जाना चाहिए। मैं तो एक कदम आगे बढकर कहूँगा कि जहाँ वे योग्यतामे पुरुषोकी बराबरी की हो वहाँ प्राथमिकता उन्हींको मिलनी चाहिए। आपके साथ क्या हुआ है, मुझे मालूम नही, लेकिन उन लोगोके हाथोमे आप बिलकुल सुरक्षित है। पण्डित जवाहरलाल और सरदार पटेल किसी प्रकारका पक्षपात नही कर सकते। अलबत्ता, मनुष्य की बनाई सस्थाओमे कभी-कभी अनजाने ही अन्याय हो जाना अनिवार्य है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य : नारायण देसाई।

१. राज्यके सारे मन्दिरोंको हरिजनोंके लिए खोल देनेकी घोषणाकी ओर संकेत है।

२. गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट, १९३५के अधीन होनेवाले प्रान्तीय विधान सभाओंके पहले आम चुनाव।

२५६. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

मद्रास जाते हुए
११ जनवरी, १९३७

चि० कान्ति,

गोकुलभाईको पत्र[1] लिख रहा हूँ, तो तुझे भी लिखनेकी इच्छा हो आई। प्रभावती कहती है कि टिकट बचानेके लिए या अन्य कारणोसे अब तू मुझे क्वचित् ही लिखेगा। यह क्या बात है? लगता है तू अपने स्वास्थ्यके बारेमे भी लापरवाह हो गया है। मै तो इसे बडी भूल मानता हूँ। यदि शरीरको दुर्बल करके बहुत पढा तो उसका क्या उपयोग?

मुझे नियमपूर्वक और ब्योरेवार पत्र लिखनेका क्रम तो बनाये ही रखना। त्रिवेन्द्रममे तेरे पत्रकी राह देखूँगा। त्रावणकोरमे मुझे शायद नौ दिन रुकना पडेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७३११)से, सौजन्य कान्तिलाल गाधी।

२५७. पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासको

मद्रास जाते हुए
११ जनवरी, १९३७

भाईश्री पुरुषोत्तमदास,

वझेके साथ बातचीत की और कागज-पत्र भी पढे। वे समझ गये है कि मुझे इस काममे हाथ नही डालना चाहिए, और उन्होने बीडा भी उठाया है कि मुझे मुक्त कर देनेकी वकालत आपसे करेगे। मै आशा करता हूँ कि वे सफल हुए होगे। अगर मै इस कामके लिए तैयार होऊँ तो पहले मुझे बहुतेरे कागज-पत्र बाँचने पड़ेगे, तथा और भी काम करना पडेगा। यह कहाँसे होगा? समय कहाँ है? इस काममे हाथ डालूँ तो मुझे अपने कामकी दिशा ही बदलनी पडेगी। अपने स्वभावके अनुसार और किसी प्रकारसे मै इस काममे नही लग सकता। मै आशा करता हूँ कि आप यह समझ गये होगे और खुशीसे मुझे छुटकारा दे देगे। मुझे यह काम अच्छा तो लगता है, लेकिन मेरी लाचारी बहुत जबरदस्त है।[2]

१. पत्र उपलब्ध नही है।
२. देखिए पृष्ठ २३९-४० भी।

यह मै चलती गाड़ीमे लिख रहा हूँ।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]

पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास-पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय।

२५८. पत्र : इन्दु एन० पारेखको

त्रिवेन्द्रम् जाते हुए
११ जनवरी, १९३७

चि० इन्दु,

मुझे तो तेरा अन्तिम पत्र ही याद है, उसका जवाब चलती गाडीमें ही लिख पा रहा हूँ। तेरे जन्म-दिवसपर आशीर्वाद तो दे ही रहा हूँ। तेरे मनकी अस्वस्थता देख ही रहा हूँ। यदि तू कुसगमे न पडे और अपने अध्ययनमे लगा रहे तो सब ठीक ही होगा। यदि अपने मनके विचारो तथा विकारोको छिपाये नही, चोरीसे कुछ न करे तो सहज ही मनमें स्थिरता आ जायेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२५५)से।

२५९. पत्र : मीराबहनको

रेलगाडीमें
१२ जनवरी, १९३७

चि० मीरा,

यह पत्र त्रिवेन्द्रम्की गाडीमें बैठा लिख रहा हूँ। तुम्हारे दो पत्रोके बारेमें बहुत सोचता रहा हूँ। कल तुम्हे एक तार भेजनेका मन हो रहा था और आज भी। लेकिन मनको रोका। त्रावणकोर पहुँचनेपर तुम्हारा पत्र पानेकी आशा करता हूँ। आशा है, तुम्हारा पैर अब बिलकुल ठीक है और मानसिक अवस्था भी। तुमसे दलील नही करना चाहता। इसलिए बस, तुम्हारे लिए प्रभुसे प्रार्थना ही करता हूँ। कितनी तीव्र कामना है मेरी कि प्रभु तुम्हे शान्ति और प्रसन्नता दें–ऐसी जिसे कोई भी बात, वह चाहे जितनी प्रतिकूल दिखे, भग न कर सके। प्रभावती पूनामे मेरे साथ हो ली और राजकुमारी मद्रासमे।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३७३)से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९८३९ से भी।

२६०. भाषण: नागरिक स्वागत-समारोह, त्रिवेन्द्रममें[1]

१२ जनवरी, १९३७

अपने मानपत्रमे आपने बिलकुल ठीक कहा है कि मै त्रावणकोर या त्रिवेन्द्रममें कोई पहली बार नही आया हूँ। मै जब भी त्रावणकोर आया हूँ, लगभग हर बार सवर्ण हिन्दुओको अस्पृश्यताके अभिशापसे मुक्त करानेका प्रयत्न करनेवाले धर्म-योद्धाकी ही तरह आया हूँ। इस विषयपर मुझे यहाँ सवर्ण हिन्दुओ और अवर्ण हिन्दुओ (जिन्हे गलतीसे अस्पृश्य या दलित वर्गका कहा जाता है)के सामने भी बोलनेके अनेक अवसर मिले है। लेकिन इस बार मै महाविभव महाराजा, उनकी माता महारानी साहिबा तथा उनके सुयोग्य दीवानको बधाइयाँ देने एक विनम्र तीर्थ-यात्रीकी तरह आया हूँ। इनके सहयोगसे—और अगर इन तीन विशिष्ट व्यक्तियोके लिए त्रिमूर्ति शब्दका प्रयोग करनेमे कोई हर्ज न हो तो कहना चाहूँगा कि इस त्रिमूर्तिके सहयोगसे—यह महान् घोषणा तो हो ही चुकी है और अब इसको सफलतापूर्वक लागू किया जा रहा है। अबतक मन्दिरोके द्वार मेरे लिए—शायद मेरी ही इच्छासे—बन्द रहे है और मै नही कह सकता कि अगर मैंने उनमे प्रवेश करनेकी कोशिश की होती तो मुझे निकाल बाहर न कर दिया जाता। लेकिन, अगर मुझे उनमे प्रवेश करनेकी छूट होती तो भी हरिजनोके सुख-दु खका साझीदार बन जानेके बाद उस छूटका मै लाभ न उठाता। लेकिन चूँकि उनके द्वार हरिजनोके लिए भी खोल दिये गये है, इसलिए मै इस अवसरपर पहली बार आपके इस सुन्दर मन्दिरमे प्रवेश करूँगा। आपके मानपत्रको मै आपकी सद्भावनाका प्रतीक मानता हूँ। महाराजा साहबके इस सत्कार्यके विषयमे बोलनेके लिए मुझे बहुत-से अवसर मिलेगे, इसलिए अभी मै कोई इतनी लम्बी बात नही करूँगा जिसे भाषण कहा जा सके।

इस घोषणासे त्रावणकोरके लोगोके सिर एक भारी जिम्मेदारी आ गई है। राजा-महाराजा अच्छे कानून तो बना सकते है, लेकिन लोगोको उसपर ठीक तरहसे अमल करनेको मजबूर नही कर सकते। अपने शासितोके मनपर किसी तानाशाहका भी बस नही रहता। इस घोषणापर ठीक तरहसे अमल करना या न करना आपके मनपर निर्भर है। तो आपसे मै कहूँगा कि आप मन्दिरोमे तमाशबीनोकी तरह नही, बल्कि मनमे प्रार्थनापूर्ण भाव लेकर जाये। अगर सवर्ण लोग मनमें कोई दुराव लेकर मन्दिरमे जाते है तो इस घोषणापर ठीक तरहसे अमल न हो पायेगा। आप ऐसा आचरण करे जिससे यह घोषणा इस तथ्यकी उद्घोषक सिद्ध हो कि आजसे त्रावण-

१. त्रिवेन्द्रम स्टेशनपर गांधीजीके स्वागतमें नागरिकोंकी एक विशाल सभा हुई, जिसमें नगरपालिकाने उन्हें एक मानपत्र भेंट किया।

कोरमे सवर्ण और अवर्ण, स्पृश्य और अस्पृश्यका कोई भेद नही रह गया है। आपके धीरजकी परीक्षा अब और नही लूँगा। मुझे पूरी आशा है कि आपकी सद्भावनासे मैं त्रावणकोरकी यह तीर्थयात्रा सकुशल सम्पन्न कर सकूँगा। धन्यवाद।

[अंग्रेजीसे]
द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ १४४-४६।

२६१. भाषण : दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, त्रिवेन्द्रममें

१३ जनवरी, १९३७

मुझसे परीक्षामे सफल होनेवालोको प्रमाणपत्र और पुरस्कार देनेको कहा गया, इस बातकी मुझे बडी खुशी है। आप मेरी सरल हिन्दीको भी समझ सकेगे या नही, मै नही जानता। जिन लोगोको आज प्रमाणपत्र मिले है उनमेंसे कुछ एक उसे नही समझते, ऐसा तो मै देख रहा हूँ। लेकिन यह कोई शरमानेकी बात नही है। आप हिन्दीभाषी लोगोके बीच नही रहते, इसलिए बोली गई हिन्दी समझनेमें आपको कठिनाई होना स्वाभाविक ही है। खुशीकी बात तो यह है कि भारतके इस सुदूर दक्षिण प्रदेशके आप लोग हिन्दी सीखनेकी कुछ कोशिश कर रहे हैं। लेकिन याद रखिए कि आपका उद्देश्य केवल प्रमाणपत्र प्राप्त करना नही है, बल्कि हिन्दीकी कामचलाऊ जानकारी हासिल करना है। प्रमाणपत्रका तो इतना ही मतलब है कि आपको और भी प्रयत्न करनेकी प्रेरणा मिले, ताकि आप हिन्दीका अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिए गम्भीरतापूर्वक प्रयत्न करनेको प्रवृत्त हो। आपको सबसे पहले मनमे इस बातका खयाल रखना है कि आप भारतके है — भारत उसी तरह आपकी मातृभूमि है जिस तरह हिन्दीभाषी लोगोकी है। इसलिए आपको पश्चिममें अरब सागर और पूर्वमे पूर्वी घाटतक फैले क्षेत्रको नही, बल्कि उत्तरमे हिन्दूकुश, पश्चिममें कराची और पूर्वमें असम तक फैले क्षेत्रको अपना मानना है। अगर आप अपने देशके उन दूरस्थ क्षेत्रोमें जाये जहाँ लोग दूसरी भाषाएँ बोलते है तो आप हिन्दीके अलावा और किस भाषामें बातचीत कर सकते है? वहाँ आपको अंग्रेजी समझनेवाले ज्यादा लोग नही मिलेंगे। यहाँ महान् अनन्तपद्मनाभ नामक मन्दिरके पुजारी आज सुबह जब मुझे वह विशाल मन्दिर दिखा रहे थे, उस समय मैंने उन्हे बहुत अच्छी हिन्दी बोलते देखा। उनकी हिन्दी मेरी हिन्दीसे तो अधिक निर्दोष थी ही। उनसे बाते करते हुए मै क्षण-भरको यह भूल ही गया कि मै त्रावणकोरमे हूँ। मेरे मनमे सबसे प्रबल भावना यह नही है कि मैं गुजराती हूँ, बल्कि यह है कि मै भारतका हूँ।

महाविभव महाराजा और महारानी साहिबासे मैं अनुरोध करूँगा कि वे त्रावण-कोरमें हिन्दीकी शिक्षाके विकासमे योग दे और हिन्दी पढनेवालोको प्रोत्साहन दे।

त्रावणकोर यहाँके हर शिक्षित पुरुष और स्त्रीको हिन्दीका ज्ञान कराना अपना उद्देश्य बनाये, यही मेरी कामना है।

[अंग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ १४७-८।

२६२. भाषण : इलवा सभा, त्रिवेन्द्रममें

१३ जनवरी, १९३७

अगर आज मैं आपके सामने आप लोगोकी मातृभाषामे बोल सकता तो मुझे बडी खुशी होती। आप लोग जो सुमधुर भाषा बोलते है उसे मैं अभीतक सीख नही सका हूँ, इसका मुझे दु:ख है। इसी तरह, आप भारतकी राष्ट्रभाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी नही समझ सकते, यह भी मेरे लिए उतने ही दु:खकी बात है। इसलिए हमे भाषान्तरका अटपटा रास्ता पकडना पडेगा। पर अगर मुझे किसी हृदतक आपके हृदयतक पहुँचना है तो ऐसा करना अनिवार्य है। मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मै यहाँ कहने-भरके लिए कुछ नही कह रहा हूँ, और न मुझे अपनी आवाज आप सुननेका कोई शौक है। मैं जानता हूँ कि अकसर वाणीकी अपेक्षा मौन अधिक अच्छा होता है। पर मैं अपने अनुभवसे यह भी जानता हूँ कि ऐसे प्रसग भी आते है जब बोलना आवश्यक हो जाता है, आजका यह प्रसग शायद ऐसा ही है।

आपने मुझे इस महोत्सवकी सभाका अध्यक्ष बननेके लिए बुलाया है, इसके लिए मैं आपका बहुत-बहुत आभार मानता हूँ। आपने मुझे जो यह मानपत्र दिया है, इसके लिए भी मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। आप लोगोने महाराजा साहब, राजमाता और सचिवोत्तम सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरको हृदयपूर्वक धन्यवाद दिया है। आपके इस आह्लाद और कृतज्ञता-प्रकाशके प्रदर्शनमे मै पूरी तरहसे सम्मिलित होना चाहता हूँ। आपके पाससे न जाने कितने वर्ष पहले जो अधिकार छीन लिया गया था, वह आपको वापस मिल गया — इन पुनर्लाभका आनन्द इस सभाके इतने सारे लोगोके चेहरोपर मैं स्पष्ट देख रहा हूँ। त्रावणकोरके 'अवर्ण' हिन्दुओको मन्दिर-प्रवेशाधिकार दिलानेके लिए जो आन्दोलन चला था, उसका ऐतिहासिक विवरण देकर भी आपने अच्छा किया है, और आपने स्व० नारायणस्वामी गुरु तथा स्व० वीरात्मा माधवनकी जो प्रशंसा की है, उसमें भी मैं शरीक होना चाहता हूँ। इस सम्बन्धमे दूसरे दो नामोकी याद आपको और दिलाना चाहता हूँ — एक तो स्व० कृष्णस्वामीका, जो वाइकोम सत्याग्रहके दिनोमे विलक्षण रीतिसे 'गीतगोविन्द'की अष्टपदियाँ गा-गाकर प्रार्थना कराते थे। कट्टर ब्राह्मण और खासे धर्मनिष्ठ होते हुए भी उन्होने तमाम अवर्णोके सुख-दु:खको अपना सुख-दु:ख बना लिया था। और दूसरे श्री केलप्पन नायरको भी, जो अभी सौभाग्यसे जीवित है, मैं नही भूल सकता। इन वीर पुरुषोने, आज हम जो-कुछ देख रहे है, उस सबकी बुनियाद डाली थी।

पर मैं यह मानता हूँ कि जिन सनातनी लोगोंने इस समय हमारी सहायता की है, उन्हें भी हम नहीं भूल सकते, और इस सम्बन्धमें मैं रूढ़िवादी नम्बूदिरी ब्राह्मणोंका नाम अवश्य लूंगा। वर्षों पहले इस अत्यन्त स्पष्ट सत्यको उनके गले उतारना मुझे बहुत ही कठिन प्रतीत हुआ था, और इससे मुझे भारी दुःख भी हुआ था। उन्होंने और दूसरे सनातनी लोगोंने अगर युगधर्म को न पहचाना होता तो उन्होंने महाराजा साहबके कार्यको प्रायः असम्भव — और असम्भव नहीं तो कम-से-कम निष्फल तो अवश्य ही — बना दिया होता।

इस सम्बन्धमें कई वर्ष पहले बड़ी महारानी साहिबासे मेरी जो मुलाकात हुई थी, उसका भी यहाँ मैं स्मरण करना चाहता हूँ। वह मुलाकात वाइकोम सत्याग्रहके दिनोंमें हुई थी। मैंने उनसे पूरे आग्रहके साथ अनुरोध किया कि जो मुट्ठी-भर लोग प्राणपणसे इस संघर्षमें जुटे हुए हैं उनकी आप सहायता कीजिए, सभी मन्दिरोंके द्वार हरिजनोंके लिए खुलवा दीजिए और इस तरह एक नई 'स्मृति'का आरम्भ कीजिए। मुलाकातके समय महाराजा साहब भी वहाँ उपस्थित थे। दोनोंने उस आन्दोलनके प्रति सहानुभूति प्रकट की। उन्होंने बताया अवर्णोंकी मुक्तिके लिए त्रावणकोरमें चल रहे उस आन्दोलनसे वे प्रसन्न थे, लेकिन इतने बड़े राज्यके संचालनके दायित्वोंके बोझसे वे बुरी तरह दबे हुए थे और उनके विचारसे वह जबरदस्त कदम उठानेका समय तब नहीं आया था। महारानी साहिबाका विचार था कि अभी सवर्णों का मत जान लेने तथा उनका मन सुधारकी तरफ झुकानेकी जरूरत है। इस मुलाकातको हुए तो कई वर्ष बीत गये हैं। ईश्वरको धन्यवाद देना चाहिए कि इस बीच आप हाथपर हाथ धरे नहीं बैठे रहे। आपने इतने साल अवर्ण और सवर्ण दोनोंके ही लोकमतको जाग्रत करनेका अविरत प्रयत्न न किया होता, तो महाराजा साहबको चाहे जितना सद्भाव प्राप्त होता, यह घोषणा जारी करना अशक्य-सा लगता। मुझे आशा है कि त्रावणकोरमें आज जो महान् परिवर्तन हुआ है और अवर्ण तथा सवर्ण सभी इस घोषणाका जिस प्रकार हृदयसे स्वागत कर रहे हैं, उस सबसे बड़ी महारानी साहिबा आज अवश्य ही परम आनन्दका अनुभव कर रही होंगी। मैं यह भी आशा रखता हूँ कि त्रावणकोर राज्यमें यह महान् परिवर्तन होनेके बाद सवर्ण हिन्दुओंमें भी मन्दिरोंमें जानेका उतना ही उत्साह रहेगा जितना अवर्ण हिन्दुओंमें है। जो सवर्ण स्त्री-पुरुष नित्य प्रति इन मन्दिरोंमें आशीर्वाद माँगनेके लिए और यह आशा लेकर जाते हैं कि भगवान् उनकी प्रार्थना सुनेंगे, उन सबको मैं यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि इन मन्दिरोंमें जो प्रभाव था वह इस घोषणासे तिल-मात्र भी कम नहीं हुआ, बल्कि बढ़ा ही है। हमारे शास्त्रोंकी यह शिक्षा है — यह मैं आपसे कोई नया सत्य नहीं कह रहा हूँ — कि सच्चा प्रभाव तो हमारे हृदयकी श्रद्धामें है, पाषाणमें नहीं, चाहे उसे काट-तराशकर कितनी ही अच्छी मूर्ति क्यों न बनाई गई हो। आजतक आपके सहधर्मियोंका एक बहुत बड़ा हिस्सा उसी रीतिसे और उन्हीं मर्यादाओंके अधीन पूजा-अर्चना करनेके अधिकारसे वंचित था जिस रीतिसे और जिन मर्यादाओंके अधीन आप पूजा करते हैं। अब जब कि उन्हें उनका यह प्राचीन अधिकार वापस दे दिया गया है तो मुझे आशा है कि इससे आपकी श्रद्धा डिगेगी नहीं।

मै जबसे यहाँ आया हूँ, तबसे एक बात मेरे मनको व्यथित करती रही है, जिसका जिक्र मै यहाँ कर देना चाहूँगा। मै समझ नही पा रहा कि इस महोत्सवको आप इलवा मन्दिर-प्रवेश घोषणा समारोह क्यो कहते है। क्या जल्दी ही कोई अखिल त्रावणकोर पुलया-परया समारोह भी होने जा रहा है? मै जानता हूँ और इस बातको स्वीकार भी करता हूँ कि इलवा-समाज त्रावणकोरका एक महान्, विकासशील और महत्त्वपूर्ण समाज है। लेकिन क्या मैने यहाँके पुलयो और परयोको नही देखा है? जब कभी मुझे उनसे मिलनेका मौका मिला है, मै उनसे आँख नही मिला सका हूँ। मैने अपने-आपको बहुत ही लज्जित अनुभव किया है। वह दृश्य मै कभी नही भूल पाऊँगा जब लोगोने एक वृद्ध पुलयाको मेरे सामने लाकर खडा कर दिया था और जब वह अपने हाथका कागज, जो लोगोने उसे थमा दिया था, मुझे देने लगा तो मारे डरके थर-थर काँप रहा था। यह बात कोचीनकी है। वहाँ मै भीडके बीचसे होकर सडकसे गुजर रहा था, तभी लोग उसे मेरे सामने ले आये थे। उन्होने मुझे बताया कि उसके हाथमे एक मानपत्र था जो वह पुलया समाजकी ओरसे मुझे भेट करना चाहता था। सूखके ठठरी हुए उसके हाथ इतने काँप रहे थे कि वह खुद उक्त कागज मुझे देनेमे असमर्थ था। उसकी आँखोमे कही कोई चमक नही थी। मुझे तो उसकी गहरी धँसी आँखोमे आशाकी शायद एक किरण भी दिखाई नही दी। उसे यह भी नही मालूम था कि उससे लोग क्या करनेकी अपेक्षा रखते थे। वहाँ उपस्थित नम्बूदिरी स्वयसेवक, जो सुन्दर मलयायम बोल रहा था, उसे वह समझ सकता था या नही, मै यह भी नही कह सकता। पल-भरमे मै सारी स्थिति समझ गया। लज्जा और दु खसे मेरा सिर झुक गया और फिर उस कागजको उसके हाथोसे जल्दीसे ले लेना मुझे अपना कर्त्तव्य जान पडा। आजकी महोत्सव-समितिका सदस्य वह वृद्ध व्यक्ति क्यो नही है? मै जानता हूँ कि उसका नाम किसीको मालूम नही है। हो सकता है, उसकी मृत्यु भी हो गई हो। अगर वह जीवित है तो उसे शायद यह भी मालूम नही है कि आज त्रावणकोरमे क्या हो रहा है। इसलिए स्वभावत मेरे मनमे यह प्रश्न उठा कि महोत्सव-समितिके सदस्य, इस विशाल सभाके आप सभासद्-गण उस वृद्ध-जैसे लोगोका प्रतिनिधित्व करते है या नही। और मै आपके प्रति सम्पूर्ण सम्मान और विनयके साथ आपसे निवेदन करूँगा कि अगर यह विशाल सभा उन पुलयोका प्रतिनिधित्व नही करती तो यह निश्चित है कि आपके बीच मेरे लिए तो कोई जगह नही है। अगर यह एक विशुद्ध धार्मिक आन्दोलन है, अगर यह एक विशुद्ध धार्मिक पुनर्जागरण है, यदि इसे स्वार्थकी कोई भावना कहीसे कलकित नही कर रही है, तो आपका कर्त्तव्य है कि आप हमारे समाजके दीन-से-दीन, अधम-से-अधम लोगोके सच्चे प्रतिनिधि बनकर दिखाये, और यदि आप वैसा नही करते तो आप स्वय अपनेको वचित कर रहे है और इस महान् घोषणाके प्रभावपर पानी फेर रहे है।

सर सी० पी० रामस्वामीने आपके समक्ष कैसा ओजस्वी भाषण दिया, वह तो आपने सुना। महाराजा साहबने आपको एक नई 'स्मृति' दी है, लेकिन उसको

कार्यान्वित करना, उसमें प्राण फूंकना आपका काम है। लेकिन यदि आप अवसरके अनुकूल आचरण करते हुए इस बातके लिए अपनी पूरी शक्ति नही लगा देते कि त्रावणकोरके सभी अवर्ण और सवर्ण इस धार्मिक भावनासे आलोडित हो उठे, तो आप अपने उद्देश्यमे बुरी तरह असफल रहेगे। आपको यह बता दूँ कि अगर आप लोग ऊपरसे तो इस जबरदस्त कदमका अनुमोदन करे लेकिन मनमे प्रत्येक तरह-तरहकी दूसरी भावनाएँ रखे और इसे पूरे हृदयसे कार्यान्वित नही करे, तो यह घोषणा चन्द दिनोकी चमक-दमकवाली चीज बनकर रह जायेगी। इसलिए जहाँ इस घोषणापर आपका उल्लसित होना और आपके चेहरोपर साफ झलकती प्रसन्नता और उत्साहके साथ उत्सव मनाना आपके लिए सर्वथा उचित है, वहाँ मै चाहता हूँ कि आप इस बातको भी समझ ले कि यदि आप उस पूरे समाजके प्रति, जो अब तक बहिष्कृत रहा है, अपनी जिम्मेदारी अनुभव नही करेगे तो आप अपना कर्त्तव्य पूरा नही कर पायेगे।

मै देख रहा हूँ कि अब आप कुछ अधीर होते जा रहे है। मेरा इरादा आप लोगोको ज्यादा देरतक रोकनेका नही है। बस उतना ही समय लूँगा जितना बिलकुल जरूरी है। मै आपके सामने अभी अपने हृदयसे निकली बाते रख रहा हूँ और जब कोई इस तरह दूसरोसे अपने हृदयकी बाते कहता है तब वह यह अपेक्षा भी रखता है कि सुननेवाले भी उन बातोको अपने हृदयमे स्थान देगे। अब मै शायद आपका दस मिनटसे ज्यादा वक्त नही लूँगा। आजकी शाम मै आपसे जो बातें कहना चाहता था उनमे से बहुतोको मै छोड दूँगा और उनकी चर्चा किसी और मौकेपर करूँगा।

मैने महान पद्मनाभ मन्दिरमे जो-कुछ देखा, उसका उल्लेख मुझे अवश्य करना चाहिए। विशुद्ध और आध्यात्मिक पुनर्जागृतिके विषयमे मै जो-कुछ कह रहा हूँ, वह उसके उल्लेखसे सबसे अच्छी तरह उजागर होगा। माता-पिताने मुझमे जैसी श्रद्धा-भक्तिका सचार किया था, मनमे वैसी श्रद्धा-भक्ति लेकर ही युवावस्थामें मै मन्दिरोमे जाया करता था। लेकिन इधर कुछ वर्षोसे मै मन्दिरोमे नही गया हूँ और जबसे मै अस्पृश्यता-निवारणके काममें लगा हूँ, तबसे तो मै ऐसे किसी मन्दिरमे नही गया हूँ जो तथाकथित अस्पृश्योके लिए खुला न हो। इसलिए आज प्रात काल मैने मन्दिरमे जो-कुछ देखा उसमे मुझे ऐसी ही नवीनता दिखाई दी जैसी नवीनताके दर्शन उन बहुत-सी अवर्ण हिन्दुओको हुए होगे जो इस घोषणाके बाद मन्दिर मे गये है। कल्पनाके परोके सहारे मेरा मन प्रागैतिहासिक कालमे जा पहुँचा। मनुष्यमें ईश्वर-बोध जगा था और उसने पाषाणो और धातुओकी मूर्त्तियोमे उस बोधको अभिव्यक्ति देना आरम्भ किया था। मैने स्पष्ट लक्षित किया कि जो पुजारी अपनी सुन्दर हिन्दीमे मुझे प्रत्येक प्रतिमाका मर्म समझा रहा था वह मुझे यह नही बताना चाहता था कि इनमे से प्रत्येकमे ईश्वरका निवास है। लेकिन प्रतिमाओको वह विशेष व्याख्या दिये बिना उसने मुझे यह अनुभव करा दिया कि इनमे से प्रत्येक मन्दिर उस अदृश्य, अलख और वर्णनातीत शक्ति—ईश्वरसे, इस अगाध सृष्टिसागरमे तुच्छ बूंदोके समान पड़े हम मानवोका सम्बन्ध जोडनेवाला महासेतु है। हम सभी लोग तत्त्वचिन्तक

नही है। हम तो मिट्टीके पुतले है, मिट्टीमे लीन और अदृश्य ईश्वरके विषयमे चिन्तन-भर करनेसे हमे सन्तोष नही मिलता। चाहे जिस कारण भी हो, हम कोई ऐसी वस्तु चाहते है जिसका हम स्पर्श कर सके, जिसे देख सके और जिसके समक्ष श्रद्धापूर्वक विनत हो सके। वैसी वस्तु कोई पुस्तक है, या पत्थरोकी बनी सूनी-खाली कोई इमारत है, या ईंट-पत्थरोकी कोई ऐसी इमारत है जिसने अनेक प्रतिमाएँ है, इससे कोई फर्क नही पडता। कुछ लोगोको किसी पुस्तकसे सन्तोष मिलेगा, कुछको किसी खाली-सूनी इमारतसे और कुछ लोग तबतक सन्तुष्ट नही होगे जबतक कि उस इमारतमे उन्हे कुछ प्रतिमाएँ आदि भी देखनेको न मिले। तो मेरा कहना यह है कि आप इन मन्दिरोमे इन्हे अन्धविश्वासोका घर मानकर न जाये। अगर आप इनमे श्रद्धापूर्वक जायेंगे तो जितनी बार जायेंगे उतनी बार आप वहाँसे शुद्ध होकर और जीवन्त ईश्वरमे अपनी आस्थाको अधिक दृढ बनाकर बाहर आयेंगे।

जो भी हो, मैने तो इस घोषणाको एक विशुद्ध धर्म-कार्य माना है। अपनी इस त्रावणकोर-यात्राको मैने एक तीर्थयात्रा माना है और इन मन्दिरोमे मै एक ऐसे अस्पृश्यके रूपमे जा रहा हूँ जिसे अचानक स्पृश्यका दर्जा मिल गया है। यदि आप सब इस घोषणाको इसी दृष्टिकोणसे देखेंगे तो आप सवर्णो और अवर्णोके सारे भेदभावोको और जो भेद-भाव दुर्भाग्यवश स्वय अवर्णोके बीच आज भी मौजूद है उन्हे भी मिटाये बिना चैन नही लेगे। और अन्तमे, आप तबतक सन्तुष्ट नही होगे जबतक कि अपने उन भाई-बहनोको, जिन्हे सबसे दीन-हीन और दलित माना जाता है, उस ऊँचाईपर लाकर प्रतिष्ठित नही कर देगे जिसपर आप स्वय आसीन है। सच्चे आध्यात्मिक पुनरुत्थानमे तो आर्थिक उत्थान भी आ जाता है, तथा अज्ञानके अन्धकार और उन सभी बातोके विनाशका समावेश है जो मानवताकी प्रगतिमे बाधक है।

ईश्वर आपको ऐसी शक्ति दे कि महाराजा साहबकी इस घोषणामे निहित सम्पूर्ण सम्भावनाओको आप साकार कर दिखाये। इतने धीरजके साथ मेरी बात सुननेके लिए मै आप सबको धन्यवाद देता हूँ।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, २३-१-१९३७

२६३. भाषण : नैय्याटिङ्करेंमें

[१४ जनवरी, १९३७][1]

आपने जो तीन मानपत्र अभी अशत या पूर्णत. पढे उनके लिए मै आप लोगो को धन्यवाद देता हूँ। कितना अच्छा होता, अगर सभी मानपत्रोको पूरा-पूरा सुननेका वक्त होता। हिन्दीमे लिखा मानपत्र मैंने पूरा पढ लिया है और दूसरेको, जो वास्तवमें हरिजन-कार्यका ही विवरण है, मै पूरा-पूरा पढनेका वादा करता हूँ। कहनेकी जरूरत नही कि जिस घोषणापर त्रावणकोरके लोग खुशियाँ मना रहे है, उसको जारी करनेवाली त्रिमूर्तिको बधाइयाँ देनेमे आपके साथ मै भी शरीक हूँ, और मै यहाँके सवर्णोंको भी, जिन्होनें सर्वसम्मतिसे और हार्दिक रूपसे इस घोषणाका समर्थन किया है, बधाई देता हूँ। यह सच है कि सवर्ण और अवर्ण चाहे तो इस शोभन घोषणाको बिलकुल बेकार बना दे सकते है। अगर सवर्ण लोग इसपर मन-ही-मन कुढते रहे और अपने हृदयसे अस्पृश्यताके मैलको न मिटायें और अवर्ण लोग इसमें निहित शोभा और सदुद्देश्यको गलत समझते हुए सही भावनासे मन्दिरोमे न जाये, तो यह घोषणा किसी कामकी साबित न होगी। महाराजा साहब, महारानी साहिबा और दीवान साहबने यह घोषणा पूरे हृदयसे जारी की है, मनमे कोई दुराव रखकर या किसी अन्य प्रकारसे उन्होनें इसे मर्यादित नही किया है। इसलिए इसे जारी करके उन्होनें तो अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया है। अब अगर सवर्ण और अवर्ण अपने सच्चे धार्मिक आचरणसे यह सिद्ध कर दे कि वे राज्य द्वारा उठाये गये इस महान् कदमके योग्य है, तो आप सच मानिए कि इतिहासमे त्रावणकोरका नाम विनाशके कगारपर खडे हिन्दू-धर्मके त्राताके रूपमें अकित किया जायेगा। कारण, अस्पृश्यताके विरुद्ध इस सुदीर्घ सघर्षके दौरान मेरी नजरमे ऐसी कोई बात नही आई है जिसके आधारपर मै अपनी यह राय बदल लूँ कि अगर अस्पृश्यता बनी रही तो हिन्दू-धर्म मिट जायेगा। कितना अच्छा हो, अगर अपने इस विश्वासको मै आपके हृदयमे उतार सकूँ। अब मेरी यही कामना है कि आपमें से प्रत्येक अपने आचरण द्वारा यह सिद्ध कर दे कि आपके हृदयसे अस्पृश्यताका कलुष मिट चुका है।

[अंग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ १६१-२।

१. तारीख १६-१-१९३७ के बॉम्बे क्रॉनिकलसे ली गई है।

२६४. भाषण : वेंगनूरमें

१४ जनवरी, १९३७

अपनेको आपके बीच पाकर मुझे बडी खुशी हो रही है और जिस उपलक्ष्यमें मै आज त्रावणकोरका दौरा कर रहा हूँ उसके बारेमे सोचकर तो और भी ज्यादा खुशी हो रही है। मेरा मतलब उस महान् घोषणा से है जिसने त्रावणकोरमे अस्पृश्यताको लगभग मिटा दिया है। 'लगभग मिटा दिया है' ऐसा मैंने इसलिए कहा है कि इस घोषणाने यद्यपि चमत्कार कर दिया है पर सब-कुछ इसीसे नही हो जानेवाला है। इस राज्यसे — और इस राज्यसे ही क्यो, सारे हिन्दुस्तानसे — अस्पृश्यताको मिटा देना आपके और हमारे ऊपर निर्भर करता है।

अय्यन कालीके रूपमे, जिनको आप कुछ तो विनोदमे और कुछ प्रेमके कारण पुलया राजा कहते है, आपको एक ऐसा कार्यकर्त्ता प्राप्त है जो सेवा करते कभी थकता नही। मुझे मालूम हुआ है कि उनके नेतृत्वमे आप लोग धीरे-धीरे निरन्तर प्रगति कर रहे है, और मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नही है कि इस उदात्त घोषणासे आपकी प्रगतिमें और तेजी आयेगी। लेकिन मै आपको न तो ज्यादा देर रोके रख सकता हूँ और न खुद रुक सकता हूँ, क्योकि आज मै बहुत व्यस्त हूँ, मुझे अनेक कार्यक्रम निबटाने है। अगर मेरे पास समय होता तो मै बडी खुशीसे आपके साथ सारा दिन बिताता और आपमे से अनेक लोगोको निकटतासे जान पाता। मगर जैसी परिस्थिति है उसमे तो मुझे आपके प्रसन्नतासे चमकते चेहरोको देखकर और इन कुछ मिनटोमे आपसे जितना परिचित हो सकूं उतना परिचित होकर ही सन्तोष करना है। जानेसे पहले मैं आपसे बस एक बात कह देना चाहूँगा। मुझे आशा है कि मन्दिरोमें प्रवेशके इस अवसरका उपयोग आप समझदारीके साथ और अपने धार्मिक कल्याणके लिए करेगे। मन्दिरोमे जाकर हम कुछ प्राप्त करते है या नही, यह हमारी मानसिक अवस्थापर निर्भर करता है। मन्दिरोमें हमे विनयपूर्ण मनसे और प्रायश्चित्तकी भावनासे जाना चाहिए। ये मन्दिर ईश्वरके अनेक निधान है। वैसे तो ईश्वरका निवास प्रत्येक व्यक्तिमे, बल्कि सच पूछिए तो उसकी सृष्टिके प्रत्येक अणुमे, धरती के कण-कणमे है। लेकिन चूंकि भूल करनेके अभ्यस्त हम मर्त्यजन इस बातको नही समझते कि ईश्वरका निवास सर्वत्र है, इसलिए हम मन्दिरोको विशेष रूपसे पवित्र मानते है और मानते है कि उनमें ईश्वर निवास करता है। इसलिए मन्दिरोमे जाते हुए हमे अपने शरीर, मन और हृदयको शुद्ध कर लेना चाहिए और उनमे प्रार्थनापूर्ण मनसे प्रवेश करके ईश्वरसे यह विनती करनी चाहिए कि वह हमें और अधिक शुद्ध, निष्कलुष बनाये। और सच मानिए, अगर आप इस बूढेकी

इस सलाहपर चलेगे तो आपको जो यह शारीरिक मुक्ति मिली है वह आपकी आत्मिक मुक्ति सिद्ध होगी।

[अग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ १५७-५८।

२६५. भाषण: तेकलैमें

१४ जनवरी, १९३७

मानपत्रोके लिए मै आपको धन्यवाद देता हूँ। लेकिन मैं आपको याद दिला दूं कि मानपत्र सक्षेपमे और हिन्दी अथवा मलयालममे लिखे होने चाहिए। सच मानिए, अग्रेजीमे लिखे मानपत्रको, हम जिन आम लोगोकी सेवा करना चाहते है, उनमे से अधिकाश नही समझ सकते। अगर ये हिन्दीमे लिखे हुए हो तो हिन्दी और मलयालम दोनोमें प्रयुक्त कम-से-कम कुछ शब्दोके अर्थ तो वे समझ ही सकते है। आप शायद यह कहे कि जिस तरह ज्यादातर लोग अग्रेजी नही समझते उसी तरह हिन्दी भी नही समझते। लेकिन मै आपसे कहता हूँ कि ये दोनो चीजें एक-जैसी नही हैं। जो लोग अग्रेजी बिलकुल नही जानते, वे भी हिन्दीके कुछ शब्द तो समझ ही सकते है। और फिर आप इन मानपत्रोको भारी-भरकम फ्रेमोमे क्यो मढवाते है? मै इन सबको अपने साथ कैसे ले जा सकता हूँ? शीशे तो टूट ही जायेंगे। और इसका शीशा तो सचमुच टूट ही गया है। अब तो इसे साथ ले जाना खतरनाक हो गया है।

अब दो शब्द इस घोषणाके बारेमे, जिसकी खातिर मै यहाँ आया हूँ। मै जानता हूँ कि आपकी मौजूदगी इस बातकी सूचक है कि आप त्रावणकोरमें चल रहे समारोहमे भाग ले रहे हैं। आप सभीको इस घोषणाके मर्मको समझना चाहिए। अगर यहाँके सभी स्त्री-पुरुष अपने मनमे अस्पृश्यताकी भावना बनाये रखते है, तो समझिए कि उन्होने इस घोषणापर अमल नही किया। यह घोषणा तो त्रावणकोरके हर स्त्री-पुरुष और बच्चेसे यही कहती है कि त्रावणकोरमे अब अस्पृश्यता नामकी कोई चीज नही रह गई है तथा ईश्वर और मनुष्यकी निगाहमे नायर और नम्बूदिरी, इलवा और पुलया तथा परया सब-के-सब एक ही स्रष्टाकी सन्तान है, इनमें कोई भी छोटा-बडा नही, बल्कि सभी समान है। और जब इन सबको परम पवित्र स्थानमें, पूजनगृहमे, प्रवेश करनेका अधिकार मिल गया है तो समझिए कि भेद-भावकी अन्य सारी दीवारे अपने-आप ढह गई। इसलिए जो लोग अच्छी स्थितिमे हैं उनका यह धर्म है कि वे आर्थिक और सामाजिक दृष्टिसे पिछडे लोगोको ऊपर उठाये। और अगर आप सवर्ण होनेका दम भरते हो तो आपको चाहिए कि अवर्णोंको उनके घरोसे बाहर निकालकर उन्हे पूजा-पाठकी विधि बताये। लेकिन मुझे मालूम है कि सवर्ण भी आज पूजाकी विधिको भूल बैठे है। अब चूंकि इस घोषणासे वातावरण शुद्ध बन

गया है, इसलिए आपको यह कला अवश्य सीखनी चाहिए और अवर्णोको भी सिखानी चाहिए। मैं आशा करता हूँ और प्रभुसे प्रार्थना करता हूँ कि आप ऐसा अवश्य करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ १५९-६०।

२६६. भाषण : तिरुवट्टूरमें

१४ जनवरी, १९३७[1]

अभी कुछ ही वर्ष पहले मैं यहाँ आया था। तब ऐसा लगता था मानो इस मन्दिरकी भयावह-सी दिखनेवाली दीवारे कह रही हो, 'नही, अभी यह जगह तुम्हारे लिए नही है।' और अभी कुछ महीने पहले कौन सोचता था कि त्रावणकोरके महा-विभव महाराजा यह घोषणा जारी करेंगे और सभी मन्दिरोके द्वार अस्पृश्योके लिए खुल जायेंगे? सचमुच कलमके एक ही झटकेसे युगो-पुराने पाप मिटा दिये गये हैं। यद्यपि घोषणापत्रपर हस्ताक्षर करनेवाला हाथ महाराजा साहबका ही था, लेकिन इसके पीछे प्रेरणा भगवान पद्मनाभस्वामीकी थी। महाराजा साहबके सम्बन्धमे त्रावण-कोरमे प्रचलित सुन्दर किंवदन्तीकी जानकारी मुझे आज ही मिली। जैसा कि आप सब जानते है—बल्कि मैं समझता हूँ, त्रावणकोरका बच्चा-बच्चा जानता है—त्रावणकोरके महाराजाको पद्मनाभदास कहा जाता है। यहाँके हर महाराजा पद्मनाभ-स्वामीके प्रतिनिधि होते है और, जैसा कि मुझे कल मालूम हुआ, महाराजा साहबको प्रति-दिन उस मन्दिरमें जाकर अपने दिन-भरके कार्यके बारेमे पद्मनाभस्वामीसे निर्देश प्राप्त करने पडते हैं। यह सच है कि जैसा मैंने वर्णन किया उस तरह पद्मनाभस्वामी निर्देश देते हो और महाराजा उन्हे ग्रहण करते हो, ऐसी बात नही है। लेकिन इस उपाख्यानके पीछे जो भावना है, वह बडी भव्य है। इसका मतलब यह है कि महा-राजाको ऐसा-कुछ नही करना चाहिए जो गलत या पापमय हो और जिसपर ईश्वरकी सहमति न मिली हो। इसलिए, जैसा कि मैंने कहा, महाराजा साहबको वह महान् कदम उठानेके लिए प्रेरणा ईश्वरसे ही मिली। और मैं आप लोगोको, जिनके लाभ और कल्याणके लिए यह घोषणा की गई है, बधाई देना चाहता हूँ। यह एक महान् कार्य है और अभी, जबकि यह कार्य सम्पन्न ही हुआ है, हम इसके महत्त्वको नही समझ सकते। अपने पिछले दौरेमे मैंने इस मन्दिरकी उन दीवारोके बाहर, जो तब मुझे भयावह-सी लगी थी, एक सभामे भाषण दिया था। मैं अपनी इच्छासे अपनेको पुलया या परया, अधमो मे-अधम, हरिजनोमे हरिजन मानता हूँ। लेकिन जैसा कि अब मुझे मालूम हुआ है, स्वय महाराजाने भी हरिजनकी यह उपाधि धारण कर

१. तारीख १६-१-१९३७ के बॉम्बे क्रॉनिकलसे ली गई है।

रखी है, और वे बड़े गर्वके साथ अपने हस्ताक्षरमे इस उपाधिको अंकित करते है। निस्सन्देह हरिजनो — प्रभुके दासो — मे उनका स्थान प्रथम है, और हमें आशा करनी चाहिए कि इस स्थानके हकदार भी वे अपनी सेवाओके बलपर ही है। वे प्रभुओके प्रभु, स्वामियोके स्वामी नही है। सेवाका मार्ग तो स्पर्धाके लिए सदा खुला ही रहता है — और वह स्पर्धा भी ऐसी होती है कि उसमे शामिल होनेवाले लोग उससे पुण्य ही अर्जित करते है। उसमे किसी पुरस्कारकी, किसी प्रकारके सम्मानकी अपेक्षा नही की जाती। तो इस घोषणाको हम इसी दृष्टिसे देखे। अब त्रावणकोरके नम्बूदिरी आदि ब्राह्मण और तथाकथित उच्चवर्णके लोग समयके तकाजेको सुने और स्वेच्छासे हरिजनोमे हरिजन बनें, ईश्वरके दास बनें, और अपने आचरण द्वारा दुनिया को दिखा दें कि यह घोषणा इस सत्यकी स्वीकृति है कि ईश्वरकी दृष्टिमे न कोई छोटा है और न बड़ा, बल्कि सब समान है।

[अंग्रेजीसे]
द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ १६३–६४।

२६७. भाषण : सार्वजनिक सभा, नागरकोइलमें[1]

१४ जनवरी, १९३७

नागरकोइलके लिए, बल्कि यो कहिए कि त्रावणकोरके लिए, मै कोई अजनबी नही हूँ। नागरकोइलकी भीडके सम्मुख इस तरह उपस्थित होनेके अवसर आपने मुझे अनेक बार दिये है, आपने अनेक बार अपने असीम उत्साहका — चाहे केवल उपस्थिति के रूपमें ही क्यो न हो — परिचय दिया है। आपने मुझे जो मानपत्र भेंट करनेका सौजन्य दिखाया है, उन सबके विशद उत्तरकी अपेक्षा आप मुझसे नही करते होगे। सच तो यह है कि इस अवसरपर आपको मुझे कोई मानपत्र भेंट करनेकी जरूरत नही थी। निस्सन्देह मै यहाँ इस घोषणापर आपकी खुशीमे ही शरीक होने आया हूँ। लेकिन सबसे बढकर तो मै यहाँ प्रायश्चित्त करनेवाले तीर्थयात्रीके रूपमे आया हूँ। और इस समय इस घोषणाके कारण आपके सामने जो कर्त्तव्य उपस्थित हो गया है, उसके बोधसे मेरा मन इस तरह भरा हुआ है कि और किसी बातकी ओर मै ध्यान दे ही नही सकता। फिर भी, आपसे यह कहे बिना मै नही रह सकता कि हिन्दी प्रचारका काम करनेवाली दो सस्थाओ द्वारा दो अलग-अलग मानपत्र भेंट किये जानेपर मुझे आश्चर्य हुआ है। शक्तिके इस अपव्ययका कारण मै समझ नही पाया हूँ, लेकिन फिलहाल उसको जानने-समझनेके लिए मै थोड़ा भी समय देनेकी स्थितिमे नही हूँ।

१. सभामें कम-से-कम ५०,००० लोग उपस्थित थे। उसमें नगर-परिषद्, हिन्दी प्रचार सभा, नानजीनाड सम्बर संगम और हिन्दी-प्रेम सभाकी ओरसे गांधीजीको मानपत्र भेंट किये गये।

तो अब हम जिनके लिए यह घोषणा की गई है उनपर इसके कारण आये कर्त्तव्यका विचार करें। आप इस घोषणाको राज्यकी ओरसे उठाया गया एक ऐसा सामान्य कदम भी मान सकते हैं जिसके प्रति लोग अधिकाशत उदासीन रहते हैं, या चाहे तो इसे ऐसा असामान्य कदम भी मान सकते है जिसकी सफलता-विफलता पर हिन्दू-धर्मका भविष्य निर्भर है। और सच मानिए, अगर आप इसकी भावनाको ग्रहण कर लेते हैं तो उसका परिणाम केवल त्रावणकोरके लिए ही नही, बल्कि सम्पूर्ण भारतके लिए आश्चर्यजनक होगा। अस्पृश्यता हिन्दू-धर्मके उपवनमे उग आये अवाछनीय घास-पातकी तरह थी, जो इस तरह फैलती जा रही थी कि उससे इस उपवनके सुन्दरतम पुष्पोके कुम्हला जानेका खतरा पैदा हो गया था। इस घोषणाको मैं हिन्दू-धर्मको अस्पृश्यताके अभिशापसे मुक्त करनेका बहुत ही साहसपूर्ण — अद्वितीय — प्रयास मानता हूँ। यह घोषणा जारी करके महाराजा साहब और उनके सलाहकारोने अस्पृश्यताकी जडपर वार किया है। लेकिन अगर सवर्ण तथा अवर्ण हिन्दुओकी ओरसे इसका ठीक उत्तर न मिला तो इसका कोई मतलब नही रह जायेगा। जबसे मै त्रावणकोर आया हूँ, मन्दिरोमे जाकर दर्शन करनेके अलावा मैंने और कुछ नही किया है। ये वही मन्दिर हैं जो अभी कुछ ही दिन पहले मेरे लिए वर्जित स्थान थे, यद्यपि यह वर्जन मैंने अपनी इच्छासे स्वय ही स्वीकार किया था। जबतक त्रावणकोरके अधिकाश हिन्दुओके लिए इन मन्दिरोके द्वार बन्द थे, तबतक ये चाहे जैसे चल सकते थे। यह घोषणा हिन्दू-धर्मके शुद्धिकरणकी प्रक्रियाकी शुरूआत है और इस प्रक्रियामे सवर्णों और अवर्णों दोनोको अपनी-अपनी उचित भूमिका निभानी है। अगर कलके उन अस्पृश्योको अपने भाग्यके भरोसे छोड़ दिया जाता है, तो यह सवर्णोंके लिए कलकका विषय होगा। इसलिए मेरे और आपके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हम हिन्दू-धर्मके विकासमे मन्दिरोके सही महत्त्वको परखे पहचाने। हमे यह देखना है कि इन मन्दिरोमे क्या जीवन्त ईश्वरका निवास है। सच मानिये, अगर हम इस खोजमे अपना पूरा हृदय और मस्तिष्क नही लगा देते, तो वह व्यर्थ ही होगी। सम्पूर्ण विनम्रताके साथ मैं कहूँगा कि मैं समझता हूँ, मुझे यह मालूम है कि वह खोज किस प्रकार करनी है। लेकिन यह दौरा मैं बहुत जल्दीमे कर रहा हूँ और इन सभाओका आयोजन भी बहुत जल्दीमे किया जा रहा है, इसलिए इस खोजके बारेमे विस्तारसे चर्चा करना सम्भव नही है। अब किसी दूसरे और अच्छे अवसर पर इस खोजकी चर्चा करूँगा। फिलहाल तो अगर मैं उस खोजके लिए आपके मनमे कुछ भूख जगा पाया होऊँ, तो उतना ही काफी है। और अगर मै आपको यह समझा पाया होऊँ कि इस घोषणाको हमे कोई साधारण बात नही मानना चाहिए, तो यह मेरे लिए बहुत बडे सन्तोषका विषय होगा। यदि प्रत्येक स्त्री और पुरुष इस घोषणाको कार्यान्वित करनेके सम्बन्धमे अपने-अपने कर्त्तव्यको पहचान ले, तो इतना काफी होगा। अपने मनमे इस आकाक्षाको लेकर अब मैं आपसे विदा लेना चाहता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ १६५-६७।

२६८. पत्र : मीराबहनको

कन्याकुमारी
१५ जनवरी, १९३७

चि० मीरा,

तुम्हारे दो पत्र जो यहाँ धरतीके इस छोरपर, कन्याकुमारीमे, कल रात आ गये थे, मुझे मिल गये। और मैंने तुम्हारा, शान्ता और कुमारप्पाका समाचार जाननेके लिए जो तार भेजा था, उसके जवाबमे भेजा तार भी मुझे मिल गया। आशा है, तुमने सिविल सर्जनको अपना पैर दिखाया होगा। मुझे उसकी बडी चिन्ता है। तुम्हारे यहाँ तो कड़ाकेकी सर्दी पड रही है और इधर यह हाल है कि जरा-सी भाग-दौड़ हुई कि पसीनेसे लथपथ। आशा है, तुम्हारा चित्त शान्त होगा। मै इस पक्ष मे नही हूँ कि तुम चरखा बनानेके सम्बन्धमे नये प्रयोग करो। दो चक्रोवाला नमूना सबसे सादा और अच्छा है और अन्तत. सबसे सस्ता भी वही पडता है। लेकिन अगर तुम प्रयोग करना ही चाहो तो करो। पैसेके सवालका मेरे लिए कोई महत्त्व नही है। चिन्ता है तो इस बातकी कि इससे प्रशिक्षण पानेवाले लडकोकी प्रगति कुछ समयके लिए स्थगित हो जायेगी। सबसे ज्यादा गति तो 'पडे' चरखेपर ही आ पाई है। 'खड़ा' चरखा चलनेमे धीमा है। याद रखो कि तुम ऐसे-लडकोको प्रशिक्षित कर रही हो जिनको कताईका कोई अभ्यास नही है। अगर तुम्हारी जगह मै होऊँ तो मै तो उन्हे उसी चरखेपर ज्यादासे-ज्यादा सिद्धहस्त बनाऊँ जिसने कुल मिलाकर सबसे अच्छे कताई-यन्त्रके रूपमे अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दिखाई है।

बस इतना ही। पत्र-व्यवहारमे मुझे ज्यादा समय नही देना चाहिए, क्योंकि आज जितना समय मेरे पास है उसका उपयोग मैं 'हरिजन' के लिए करना चाहता हूँ।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३७४) से, सौजन्य. मीराबहन। जी० एन० ९८४० से भी।

२६९. त्रावणकोरकी तीर्थयात्रा

[१५ जनवरी, १९३७][1]

ये पक्तियाँ मै कन्याकुमारीसे लिख रहा हूँ। जिस जगह बैठकर लिख रहा हूँ वहाँ सामने तीन समुद्रोका यह सगम ऐसा दृश्य उपस्थित कर रहा है जो विश्वमे अन्यतम है। यह जहाजोके आवागमन और ठहरनेके लिए कोई वन्दरगाह नही है। और इसलिए यहाँका जल भी स्वय देवी कुमारीकी तरह स्वच्छ और निर्मल है। यहाँ कोई खास आबादी नही है। इसलिए यह स्थान ध्यान-चिन्तनके लिए विशेष रूपसे उपयुक्त है। मेरी तीर्थयात्राका यह तीसरा दिन है। मानसिक रूपसे और अपनी इच्छासे अस्पृश्य बन जानेके कारण मै उन मन्दिरोको अपने लिए वर्जित मानता रहा हूँ जिनके द्वार हरिजनोके लिए वन्द थे। इसलिए इस प्रतिवन्धके हटनेसे मै भी उन्हीकी तरह हर्षका अनुभव कर रहा हूँ। मनमें भक्ति, भीरुता और यथोचित श्रद्धाके भाव लेकर मैंने त्रावणकोरके भव्य मन्दिरमे प्रवेश किया। कौतूहलका भाव मिट चुका था और उसका स्थान वर्षोकी रिक्तताको भरनेके लिए जो-कुछ होने जा रहा था, उसके बोधने ले लिया था। यह लिखते हुए मेरे मनमें उस शान्तिकी स्मृति साकार हो उठती है जिसका उपभोग मैंने आजसे प्राय बीस वर्ष पूर्व मद्रासके गिरजाघरमे किया था, उस दिन प्रात.काल बिशप व्हाइटहेड मुझे वहाँ ले गये थे, और जहाँतक मुझे याद आता है उस समय गिरजेमे हम दो के अतिरिक्त और कोई नही था। त्रिवेन्द्रमके मन्दिरमे मेरे और मेरे साथियोके आगमनकी प्रतीक्षा हजारो लोग कर रहे थे। किन्तु वहाँ किसी प्रकारका कोलाहल या हलचल नही थी। कलके अस्पृश्य भी वहाँ शायद उतनी ही बडी सख्यामे एकत्र थे — शान्त और मौन। उनमे से कौन स्पृश्य थे और कौन अस्पृश्य, यह भेद मै नही कर सका। सबके शरीरपर एक-सा चन्दन-तिलक लगा था, सबके वस्त्र एक-जैसे थे। स्पष्ट है कि यहाँ मन्दिरोमे जाते समय विना सिले वस्त्र धारण करनेका चलन है। बस, एक लुगी बाँध ली और वहुत हुआ तो शरीरके ऊपरी हिस्सेपर एक चादर डाल ली। अधिकांश लोगोके शरीरके ऊपरी हिस्सेपर कोई वस्त्र नही था, पुजारियोके शरीरपर भी नही। इस विशाल जन समुदायके बीच भी मुझे लगा कि मै वैसी ही शान्तिका उपभोग कर रहा हूँ जैसी शान्तिका अनुभव मैंने मद्रासके गिरजाघरमे किया था। तथापि दोनो स्थानोकी शान्तिमे वडा अन्तर था। जो शान्ति मुझे मद्रासमे मिली थी उसकी कोई पृष्ठभूमि नही थी। पद्मनाभ मन्दिरमे मिलनेवाली शान्तिकी एक पृष्ठभूमि थी और यदि वह भीड कोलाहलमय होती या उन लोगोकी मन.स्थिति अध्यात्म-भावसे तनिक भी रहित होती, तो

१. गांधीजी इस तारीखको कन्याकुमारीमें थे।

मै वैसी शान्तिका अनुभव न करता। स्वच्छ लुगी धारण किये, खुले बदन, एकके-बाद-एक कई कतारे बनाकर पूर्ण रूपसे शान्त-मौन और श्रद्धा-विभोर खड़े उन लोगोकी मेरे मनपर जो छाप पडी वह यावज्जीवन अमिट बनी रहेगी। और मन्दिर-प्रवेशकी क्रिया भी आत्माको कुछ कम आलोडित करनेवाली नही थी। उस विशाल मन्दिरको अनेकानेक प्रतिमाएँ सुशोभित कर रही थी, जिनका परिचय हमारा मार्ग-दर्शन करनेवाले पुजारीने ऐसी सुन्दर हिन्दीमें दिया कि लगता था, मानो प्रतिमाएँ स्वय बोल रही हो। इसके बाद हम विशाल मुख्य प्रतिमाके निकट पहुँचे। वह सब दिवास्वप्न-जैसा लग रहा था। इस समय मै विशेष रूपसे त्रावणकोरके महाराजाओके लिए बनवाये गये मन्दिरमे दर्शन कर रहा था और सो भी अबतक घृणा और उपेक्षा सहते आये अस्पृश्योके साथ। इस तथ्यका बोध मुझपर उन प्रतिमाओ और उस परिवेशके प्रभावकी और भी अभिवृद्धि कर रहा था। त्रिवेन्द्रम और कन्याकुमारीके बीच मैंने जिन तीन मन्दिरोमे दर्शन किये उन सबमें मुझे वही शान्ति और मौन तथा पूजाकी भावना देखनेको मिली। और आज प्रातःकाल मैंने प्रसिद्ध कन्याकुमारी मन्दिर देखा। हम मन्दिरकी ओर जानेवाली सडकपर भजन गाते हरिजनोके दलके साथ आगे बढे। मन्दिरोकी तरह इस सडकपर भी पैर रखना हरिजनोके लिए वर्जित था। लेकिन अब तो हम बिना किसी विरोध-रुकावटके उस सडकसे होकर मन्दिरमे इस तरह पहुँच गये मानो हमपर कभी कोई प्रतिबन्ध रहा ही न हो। आज एक सपना साकार हुआ और सो भी ऐसे स्थानमे जहाँ अन्य स्थानोसे पूर्व उसका साकार होना प्राय· असम्भव प्रतीत होता था। लोग मुझसे कहा करते थे, 'उत्तर भारतमें आप भले ही हरिजनोके लिए मन्दिरोके द्वार खुलवा दे, लेकिन कट्टरपथियो के इन गढ़ो, कोचीन और त्रावणकोरमे तो कभी नही खुलवा पायेंगे।' लेकिन तथ्य यह है कि आज एक गढने आत्मसमर्पण कर दिया है—और सो भी कितनी उदारता और शोभाके साथ। इस उदारता और शोभाके पीछे जो सचाई थी उसने मानो समस्त विरोधको निरस्त कर दिया है। त्रावणकोरके महाराजाओके कार्योंके साथ जो अनुश्रुति जुडी हुई है, लोगोके हृदय-परिवर्तनमे उसका शायद यथेष्ट योगदान है। यहाँके महाराजा 'पद्मनाभदास' कहलाते हैं। ऐसा माना जाता है कि महाराजा प्रतिदिन प्रात काल मन्दिरमे जाकर (और मेरा खयाल है, जबतक वे त्रिवेन्द्रममे रहते हैं, वास्तवमें ऐसा करते भी हैं) दिन-भरके कार्यके लिए ईश्वरसे निर्देश प्राप्त करते है। इस प्रकार यह घोषणा ईश्वरका एक कार्य हुआ, जिसे उन्होंने अपने सेवक वर्तमान महाराजाके माध्यमसे सम्पन्न कराया। खैर, कारण चाहे जो हो, यह बात एक चमत्कारसे कम नही है कि सवर्णोंके एक बहुत बडे बहुमतने इस घोषणाको कार्य-रूप दिया है और अवर्णोकी बहुत बड़ी सख्या इसका लाभ उठा रही है।

लेकिन यह चमत्कार ही मेरे मनको ऐसी दायित्व-भावनासे भर देता है जिससे मै सहसा सयत हो उठता हूँ और मेरा उल्लास कम हो जाता है। आज जो-कुछ हो रहा है उसे यदि स्थायित्व प्रदान करना है, तो सवर्णो और अवर्णों दोनोको इस घोषणाका मर्म समझानेके लिए सभी सच्चे हरिजन-सेवकोको निरन्तर प्रयत्न करते

रहना होगा। अभी कुछ महीने पूर्वतक इस विषयकी चर्चा छिड़नेपर सवर्ण लोग ऐसा कह दिया करते थे कि अवर्ण तो मन्दिर-प्रवेश चाहते ही नही। इसी तरह अवर्णो मे से भी कुछ मुखर लोग जोर-शोरसे कहा करते थे, हमे मन्दिर-प्रवेशकी चिन्ता नही है, चिन्ता है तो केवल आर्थिक उन्नतिकी। ये दोनो तरहके लोग अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनके मर्मको नही समझ पा रहे थे। त्रावणकोरके अनुभवने उनकी आँखे खोल दी हैं। मन्दिर-प्रवेशके अधिकारने अस्पृश्यताको – उस अस्पृश्यताको जिसने हिन्दू समाजके एक वहुत वडे हिस्सेको शेष हिन्दुओकी तरह पूजा करनेके अधिकारसे वचित कर रखा था — एक ही प्रहारमे समाप्त कर दिया है। आर्थिक उन्नतिकी वात तो थी ही, किन्तु अवर्णोंमे जो अधिक-से-अधिक विचारशील लोग थे उन्हे इस अधिकारसे वंचित रहनेका दश वडा चुभता था। इसके कारण सवर्णोंकी ओरसे उनका मन बडा खट्टा हो गया था और उनकी उद्धततासे वे क्षुब्ध थे। अव वह सव वीत चुका है। आज अवर्णोंको स्वतन्त्रताकी आभाकी जैसी अनुभूति हो रही है वैसी पहले कभी नही हुई थी।

जो अद्भुत परिणाम प्रकट हुआ है उसे यदि उसकी स्वाभाविक परिणतितक नही पहुँचाया गया तो सम्भव है कि यह सहज ही विलकुल नष्ट हो जाये। अवर्ण लोग अपना अतीत भुला सके, इसके लिए उनमे इस वातका वोध जगाना आवश्यक है कि आज उन्हे क्या-कुछ प्राप्त हुआ है। मुक्तिका यह सन्देश छोटीसे-छोटी कुटिया तक ले जाना चाहिए। पुलया और परया लोगोके मनके द्वारको अकस्मात् प्राप्त हुई इस मुक्तिको ग्रहण करनेके लिए खोलना चाहिए। इसके लिए साक्षरताके किसी विशद कार्यक्रमकी आवश्यकता नही है। साक्षरताको तो आना ही है। लेकिन जो वात अभी आवश्यक है वह यह है कि लोग उनसे सीधा सम्पर्क करे। इसके लिए उपयुक्त स्वयसेवकोका एक विशाल दल खडा करना आवश्यक है। और जिस प्रकार इस मुक्तिके सन्देशको प्रत्येक अवर्णकी कुटियामे ले जाना है उसी प्रकार प्रत्येक सवर्णके घर भी ले जाना है।

फिर मन्दिरोमे आन्तरिक सुधार करनेकी भी समस्या है। यहाँ इस्लामकी तरह हिन्दू-धर्मकी भी अच्छाइयोमे विश्वास रखनेवाले एक मुसलमान मित्रके लम्वे पत्रका एक अश उद्धृत करना सवसे अधिक उपयुक्त रहेगा·

> जिन मन्दिरोके द्वार हरिजनोंके लिए खोल दिये गये है उनमें उनके प्रवेशका समारोह मनाने अव आप शीघ्र ही त्रावणकोर जायेंगे। यह सचमुच आगेकी ओर वढ़ाया गया एक कदम है। लेकिन हमें सवसे अधिक जरूरत इस वातकी है कि मन्दिरोमें हम पुनः प्राचीन कालवाली शुद्धता और पवित्रता प्रतिष्ठित करे। प्राचीन भारतके मन्दिरोमें दिव्य ज्ञानके दाता ऋषि-मुनि निवास करते थे। आज तो पुजारी लोग वहाँ वैठकर जीवनकी समस्याके समाधानके लिए सहायता और शिक्षाकी कामना रखने-वालोका रास्ता ही रोकते है। लेकिन किया भी क्या जाये।

आज सभी धर्मोंके पुजारी-पुरोहितोंको जनसाधारणसे भी अधिक शिक्षाकी आवश्यकता है।

ये शब्द बिलकुल सच है। मन्दिरोमे सुधारकी जैसी अनिवार्य आवश्यकता आज है वैसी पहले कभी नही थी। सौभाग्यसे त्रावणकोरके अधिकाश मन्दिर राज्यके हाथोमे है और उनके प्रबन्धकी विशेष व्यवस्था है। उन्हे साफ रखा जाता है और अकसर उनमे सुधार भी किये जाते रहते है और उनका विस्तार भी होता रहता है। ये कभी खाली नही रहते। ये एक ऐसी आवश्यकताकी पूर्ति करते है जिसे लोग सचमुच अनुभव करते है। यदि पुजारियोको अच्छी शिक्षा प्राप्त हो और उनमे लोगो की आध्यात्मिकताके सरक्षक बननेकी वृत्ति हो, तो ये मन्दिर पहलेकी ही भाँति पूजा-अर्चना और आध्यात्मिक शिक्षाके केन्द्र बन जाये।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २३-१-१९३७

२७०. खादी-शास्त्र क्या है?

मैंने अकसर कहा है कि खादी अगर एक सही आर्थिक योजना है, तो वह एक शास्त्र भी है और काव्य भी। मेरा खयाल है कि 'द रोमास ऑफ कॉटन्' (कपासका अद्भुत काव्य) नामक एक पुस्तक भी है, जिसमें कपासकी उत्पत्तिका इतिहास दिया है और यह बतलानेका प्रयत्न किया गया है कि कपासकी खोजसे सभ्यताकी धारा किस प्रकार बदल गई। यदि शास्त्र अथवा काव्यकी दृष्टिसे काम लिया जाये, तो हरएक विषयको शास्त्र या काव्य बनाया जा सकता है। कुछ लोग खादीकी खिल्ली उड़ाते है और जब कोई हाथ-कताईकी बात करता है तब अधीरता या अरुचि प्रकट करते है। लेकिन ज्यो ही आप यह कहते है कि उसमे भारतव्यापी आलस्य, बेकारी और उससे पैदा होनेवाली दरिद्रताको दूर करनेकी शक्ति है, वह अरुचि दिखाने या खिल्ली उडानेकी वस्तु नही रह जाती। वास्तवमे यह जरूरी नहीं कि वह इस त्रिविध दुःखका कोई अमोघ उपचार हो। उसे रसमय बनानेके लिए ईमानदारीके साथ इतना मान सकना काफी है कि उसमे वह शक्ति है। लेकिन यदि हम यह मान ले कि खादीमे वह शक्ति है, तो फिर इस कामको हम उस तरह नही कर सकते जिस तरह नादान और गरजमन्द कारीगर करते है। वे तो ओटाई, पिंजाई, कताई या बुनाई इसलिए करते है कि पेट ऐसा करनेको उन्हे मजबूर करता है। उसकी शक्तिमे विश्वास रखनेवाला उसे सोच-समझकर, बुद्धिमानीसे और व्यवस्थित ढगपर तथा शास्त्रीय भावनासे अपनायेगा। वह किसी चीजको योही मानकर नही चलेगा, हर बातकी परीक्षा करेगा, तथ्यो और आँकडोकी जाँच करेगा, हारसे घबरायेगा नही, छोटी-छोटी सफलताओसे फूलकर कुप्पा नही होगा और जबतक लक्ष्य-की प्राप्ति नही होगी, चैनकी साँस नही लेगा। स्व० मगनलाल गाधीको खादीकी

शक्तिमे जीवन्त श्रद्धा थी। उनके लिए वह अद्‌भुत रससे भरा एक काव्य था। उन्होने खादी-शास्त्रके मूल तत्वोको लेखबद्ध कर दिया। उनकी दृष्टिमे एक भी व्योरा नगण्य नही था; कोई भी योजना उन्हे दुष्कर मालूम नही होती थी। रिचर्ड ग्रेगमे भी ऐसी ही श्रद्धाकी ज्योति थी और है। उन्होने खादीको एक व्यापक अर्थ दिया है। उनकी 'इकनामिक्स ऑफ खद्दर' (खद्दरका अर्थशास्त्र) पुस्तक खादी आन्दोलन को उनकी एक मौलिक देन है। चरखेको वे अहिंसाका सर्वश्रेष्ठ प्रतीक मानते है। वह ऐसा प्रतीक हो या न हो, पर किसी भी रसपूर्ण विषयसे जो रस और आनन्द प्राप्त हो सकता है, वह रस और आनन्द मगनलाल गांधीकी श्रद्धा उन्हे देती थी और रिचर्ड ग्रेगकी श्रद्धा उन्हे दे रही है। शास्त्र तभी शास्त्र है जब वह शरीर, मन और आत्मा तीनोकी भूख मिटानेका पूरा मौका दे। शकाशील लोगोको आश्चर्य होता है कि खादीसे ऐसी त्रिविध तृप्ति कैसे मिल सकती है। दूसरे शब्दोमें, उनकी शका यह है कि जब मै 'खादीशास्त्र' शब्दका प्रयोग करता हूँ तो मेरा मतलब आखिर क्या होता है। इस प्रश्नका सबसे अच्छा उत्तर मै नीचे उन प्रश्नोकी नकल करके ही दे सकता हूँ जो मैने एक खादी-सेवकके लिए जल्दी-जल्दीमे बनाये थे। उसने कहा था कि मै उसकी परीक्षा लूँ। प्रश्न न तो तार्किक क्रमसे तैयार किये गये थे और न उनमे सारी बाते ही आती थी। उन्हे क्रमबद्ध किया जा सकता है और उनमें वृद्धिकी गुंजाइश भी है।[1]

भाग – १

१. हिन्दुस्तानमे कपास कहाँ और कितनी पैदा होती है? उसकी किस्में बताओ। इस कपासमे से कितना तो हिन्दुस्तानमे रहता है, कितना हाथसे काता जाता है, कितना इग्लैड जाता है, और कितना अन्य देशोमे जाता है?

२. (क) हिन्दुस्तानमे मिलोमे कितना कपडा बनता है? उसमे से कितना यहाँ इस्तेमाल होता है, और कितना बाहर जाता है?

(ख) उपर्युक्त कपडेमे से कितना स्वदेशी मिलके सूतका होता है और कितना विदेशी सूतका?

(ग) बाहरसे कितना कपडा हिन्दुस्तानमे आता है?

(घ) खादी कितनी पैदा होती है?

नोट. उत्तर चौरस गजमे और पैसेमे दिया जाये।

३. इन तीनो प्रकारके कपडोके गुण और दोष बताओ।

४. कुछ लोग कहते है कि खादी मँहगी पडती है, मोटी होती है, टिकाऊ नही होती। इन शिकायतोका उत्तर दो, और जहाँ शिकायते उचित हो, वहाँ उन्हे दूर करनेका उपाय बताओ।

१. यहाँ गाधीजीने यह सूचित किया है कि "मूल प्रश्न हिन्दीमें थे, लेकिन एक मित्रने उनका अंग्रेजी अनुवाद करके मुझे दिया", अतः २३-१-१९३७ के हरिजन-सेवकमें हिन्दीमें ये प्रश्न जिस रूपमें उपलब्ध हैं उसी रूपमें यहाँ दिये जा रहे हैं।

५. खादी-प्रवृत्तिमे कितनी कत्तिन वगैरहको धन्धा मिलता है, और इतने वर्षमें उन्हे कितना पैसा मिला है? इनके मुकाबलेमें स्वदेशी मिलोमे काम करनेवाले कितने कारीगरोको प्रति वर्ष क्या मिलता है?

६. (क) चरखा सघका कारोबार कैसे चलता है, उसकी व्यवस्थामें कितना पैसा खर्च होता है?

(ख) स्वदेशी मिलोके काममे कौन-कौन वर्ग हिस्सा लेते है, और उन्हे मजदूरोके मुकाबलेमे क्या वेतन मिलता है?

७. (क) जीवनकी जरूरियातमे कपडेका भाग कितना है?

(ख) जीवनकी मुख्य-मुख्य आवश्यकताएँ क्या है, और उनका परिमाण कितना प्रतिशत माना जाता है?

८. हिन्दुस्तान-भरमे देशी या विदेशी मिलका बुना हुआ कपडा अगर कतई न पहना जाये, तो कितने रुपये देशमे बचेगे? और वह पैसा किस-किसके पास रहेगा?

९. हिन्दुस्तानमे जो कपडा बाहरसे आता है उसकी कीमतके बदलेमे इस देशसे क्या-क्या चला जाता है? इस आयात-निर्यातसे हिन्दुस्तानको क्या-क्या हानि होती है?

१०. देशकी जनसख्याके कितने प्रतिशत मनुष्य कपडा खरीद सकते है?

११. अपना कपड़ा आप बना लेनेके लिए समय, सुयोग और साधन कितने प्रतिशत घरोमें है? और वह किस प्रकार?

१२. "खादी आर्थिक साम्यवाद [सतुलन] की स्थापना करेगी," यह वाक्य ठीक है क्या? कारण सहित उत्तर दो?

१३. खादीका सार्वत्रिक प्रचार हो जाये तो व्यापारपर, व्यवसायोपर और यातायातके साधनों वगैरहपर क्या-क्या असर पडेगा?

१४. मान लो कि भविष्यमे ५० सालतक खादीका प्रचार नही होता है, तो इतने समयमे हमारे देशकी आर्थिक दशापर उसका कैसा और क्या असर पड सकता है, इसका सविस्तार वर्णन करो।

भाग – २

१ हिन्दुस्तानमे आज जो चरखे प्रचलित है उनका वर्णन दो। उनमे सबसे उत्तम चरखा कौन है? प्रचलित चरखोमे से किन्ही भी चार चरखोके सब भागोका नाम बताओ, उनके चित्र दो, हरेकमे काम आनेवाली लकडीकी जाति, तकुवेके घेरे, और मालकी मोटाईका विवरण दो।

२. प्रचलित चरखेका मुकाबला यरवदा-चक्रके साथ गति, कीमत और सामान्य सहूलियतकी दृष्टिसे करो।

३. रुईकी परीक्षा किस तरह करनी चाहिए? सूतकी मजबूती और उसका अंक इत्यादि किस रीतिसे निकालना चाहिए?

४. तुम कितने अकका और कितनी मजबूतीका सूत कातते हो? तकलीपर और चरखेपर तुम्हारी गति कितनी है? सामान्यतया तुम कौन-सा चरखा काममे लाते हो?

५. एक पुरुषको कितना कपडा चाहिए? और एक स्त्रीको कितना चाहिए? इतना कपड़ा बुनवानेमे कितना सूत चाहिए, और इतना सूत कातनेमें कितने घटे लगेगे?

६. एक कुटुम्बके लिए कितना सूत चाहिए? इतने सूतके लिए कितनी कपास चाहिए? और इतनी कपास उगानेके लिए कितनी जमीन चाहिए?

(एक कुटुम्बमे स्त्री, पुरुष और तीन बच्चे — एक लडकी और दो लड़के (सात, पाँच और तीन वर्षके) हैं, ऐसा माना है।)

७. आज जो धुनकियाँ प्रचलित है और जो नई बनती हैं उनकी तुलना करो। तुम कितनी रुई धुनकते हो? तुम यह कैसे समझ सकते हो कि रुई ठीक-ठीक धुनी गई है? आध सेर रुईकी पूनियाँ बनानेमे तुम्हे कितना समय लगता है? एक तोला रुईकी तुम कितनी पूनियाँ बनाते हो?

८. एक घटेमे तुम कितनी कपास ओटते हो? हाथसे ओटनेके और साँचे[1]से ओटनेके गुण-दोष बताओ। जो हाथकी चर्खियाँ प्रचलित हैं, उनका वर्णन चित्रोके साथ दो।

९ २० अकके सूतकी ३६ इच अरजवाली एक गज खादीके लिए कितना सूत चाहिए? इतनी खादी बुननेमे सामान्यतया कितने मनुष्य चाहिए?

१०. गड्ढेवाले करघे (पिट लूम) और फटकावाले करघे (शटल लूम) की तुलना करो।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १६-१-१९३७ तथा हरिजन-सेवक, २३-१-१९३७ भी।

२७१. टिप्पणियाँ

खादी-संस्थाओसे

१९३६ का साल अभी पूरा हुआ है, इसलिए अच्छा होगा कि तमाम खादी-संस्थाएँ अपने साल-भरके कामके परिणामोकी शीघ्रता और सावधानीके साथ जाँच-पडताल करे और अपनी रिपोर्ट अखिल भारतीय चरखा सघके दफ्तरमे भेज दे। चरखा सघने गत वर्ष जो काम किया है — खासकर कताईकी बढाई गई मजदूरीकी नई योजनाके सन्दर्भमे — उसकी सक्षिप्त किन्तु सम्पूर्ण रिपोर्ट तैयार करनेके लिए मैंने चरखा सघके कार्यालयको कहा है। ऐसी रिपोर्ट तभी तैयार हो सकती है, जब चरखा सघकी सारी शाखाएँ और उससे सम्बद्ध विभिन्न सस्थाएँ तत्परताके साथ

१. तात्पर्य ओटाईके यन्त्रसे है।

इसमे सहयोग दे और अपने किये हुए काम और परिणामके बारेमें ठीक-ठीक ब्योरा प्रधान कार्यालयको भेज दे। चालू सालके लिए कामकी योजना और कार्यक्रम तुरन्त ही निश्चित करना है, और इसके लिए भी पिछले वर्षके कामकाजके सम्बन्धमें पूरी-पूरी जानकारी बहुत जरूरी है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि खादी-संस्थाएँ यह समझकर कि यह काम कितना जरूरी और जल्दीका है, सारी उपलब्ध जानकारी जल्दी-से-जल्दी चरखा संघके कार्यालयको भेज देंगी। इतना याद रहे कि इस काममे समयका महत्त्व अधिक है।

कतैयोंकी मजदूरी

अखिल भारतीय चरखा संघकी परिषद्ने यह तय किया है कि संघकी सभी शाखाओ और उसके द्वारा प्रमाणित संस्थाओको कताईकी मजदूरीका मान ऐसा रखना चाहिए जिससे कतैयेको आठ घंटेतक कुशलतापूर्वक काम करनेके एवजमे उसकी कपड़ेकी जरूरतोके अलावा पौष्टिक आहारकी आवश्यकता भी पूरी करने लायक मजदूरी मिल सके। इस निर्णयके अनुसार विभिन्न शाखाओ और संस्थाओने कताईकी मजदूरीकी उपयुक्त दरें तय की है, जिससे कतैया प्रति दिन दो से ढाई आने कमा सकेगा। लेकिन मजदूरीकी ये दरे कुशलतापूर्वक काम करनेसे जुडी हुई है और कतैये इन दरोके अनुसार मजदूरी तभी पा सकते है जब वे एक निश्चित मात्रामें एक खास स्तरका सूत कात सके। जो स्तर तय किया गया है वह ऊँचा होते हुए भी ऐसा नही है जिसतक पहुँचना कठिन हो। लेकिन यह स्वीकार करना होगा कि फिलहाल तो बहुत थोड़े ही कतैये इस स्तरतक पहुँच पाये है। इसका कारण कुछ तो यह है कि वे अपरिष्कृत ढंगके चरखो और घटिया दर्जेकी पूनियोका प्रयोग करते है और कुछ यह है कि उनमे कताई-कौशलकी कमी है। लेकिन इस योजनाका असली उद्देश्य केवल मजदूरीकी एक उचित दरें तय करना ही नही, बल्कि अधिकाश कतैयोको उसी दरसे कमाई करने योग्य भी बनाना है। इसलिए खादी-उत्पादनके कार्यमें लगे सभी कार्यकर्त्ताओका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि कतैयोको सन्तोषजनक चरखे और पूनियाँ सुलभ करानेके अलावा उनको आवश्यक कार्यकुशलता प्राप्त करनेमें भी सहायता देनेमे कुछ उठा नही रखे, ताकि वे वास्तवमे वांछित मजदूरी कमा सके। ऐसी आशा की जाती है कि खादी-कार्यकर्त्ता तबतक चैनकी साँस नही लेंगे जबतक कि वे अपने-अपने क्षेत्रके कतैयोको इस योग्य न बना देंगे कि वे सचमुच उतनी कमाई करने लगें जितनीका लक्ष्य रखा गया है। वे यह भी समझ ले कि यह उच्चतर दर अभी उस उच्चतम दरसे बहुत कम है जिसतक हम पहुँचना चाहते है। वर्तमान मूल्योको ध्यानमे रखते हुए, हमारा वास्तविक लक्ष्य ऐसी स्थिति लाना है जिससे सावधानी और कुशलताके साथ आठ घंटे कातनेके बदले हर कतैया आठ आने कमा सके। हो सकता है, वह दिन बहुत दूर हो। लेकिन यदि जल्दी ही दस पैसेकी मजदूरी उसी तरह एक आम बात नही हो जाती जैसी कि आज तीन पैसेकी है, तो वह दिन कभी नही आयेगा। यह भी याद रहे कि नई दरके अन्तर्गत जो वृद्धि

की गई है उसका पचास प्रतिशत तो अ० भा० च० स० अपनी ओरसे देगा। लेकिन शेष पचास प्रतिशतकी पात्रता कर्तैयोको अपने प्रयत्नोसे प्राप्त करनी होगी।

एक महत्त्वपूर्ण भूल-सुधार

मै जानता हूँ कि 'हरिजन'के ऐसे अनेक पाठक है जो समय-समयपर इसमे प्रकाशित होते रहनेवाले बहुत-से लेख पढते है। इस साप्ताहिकका प्रकाशन पाठकोका क्षणिक मनोरजन करने या उन्हे आनन्द देनेके लिए नही किया जाता है। इसका प्रकाशन इस उद्देश्यसे किया जाता है कि हरिजन-कार्यका जो व्यापकतम अर्थ हो सकता है उस अर्थमे यह उसमे एक महत्त्वपूर्ण योगदान साबित हो। इसलिए इसमे अकसर ऐसे लेख छपते है जिनका स्थायी महत्त्व होता है। इसलिए इसमे गम्भीर किस्मकी जो भूले रह जाये उन्हे सुधार देना आवश्यक है। एक ऐसी ही भूलका इसी ९ तारीखके अककी पृष्ठसख्या ३८२ पर दूसरे कालमकी दूसरी पक्तिमे पता चला।[1] वहाँ हचूमनको 'सब-ह्यूमन' पढे।

[अग्रेजीसे]
हरिजन, १६-१-१९३७

२७२. भाषण : शिवगिरि मठ, वर्कलामें

१६ जनवरी, १९३७

आपके बीच मै यह तीसरी बार आया हूँ और इस बातसे मुझे बडी खुशी हो रही है। जब पहली बार यहाँ आया था, तब मुझे आपके गुरु स्वामीजी[2]के दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपने मुझे अपने बीच रहकर उनकी कृतिका अध्ययन करनेको आमन्त्रित किया है। उसका अध्ययन तो, जब मै पहली बार यहाँ आया था, तब भी मैने पूरे उत्साहके साथ किया था। मैने उनके साथ ऐसे विषयोपर लम्बी और गम्भीर चर्चा की थी जिनमें हम-दोनोकी समान रुचि थी। तब वे जिन अनेक विषयोपर बोले थे उनमे से कईके सम्बन्धमे मै उनसे आसानीसे सहमत हो गया था। उस समय उनके प्रथम और विद्वान् शिष्योके साथ भी मेरी बातचीत हुई थी। उनका स्वर्गवास हो जानेके बाद उनके शिष्योने मुझे कई चीजे भेजी, जिनमें से एक स्वामीजीके वचनोका सग्रह भी था। ऐसे महान् व्यक्तिकी कृतिका अध्ययन जैसी श्रद्धासे करना चाहिए, वैसी ही श्रद्धासे मैंने उसका अध्ययन किया।

आपका यह कहना बिलकुल ठीक है कि मै जब भी यहाँ आया हूँ, अपने लिए कुछ-न-कुछ लेकर गया हूँ। मै यह स्वीकार करता हूँ कि 'महात्मा' होनेकी मुझमे कोई पात्रता नही है। इस उपाधिके कारण मै अकसर बडी अटपटी स्थितिमे पड़

१. देखिए पृ० २४१, पा० टि० १
२. नारायण गुरुस्वामी।

गया हूँ और कभी-कभी तो इससे मेरा दम घुटने लगा है। ऐसा तब हुआ है जब लोगोंने इस 'महात्मा'का नाम लेकर अशोभन कार्य किये हैं। मैं कोई नया धर्म नही दे रहा हूँ और न किसी नये सत्यका प्रतिपादन कर रहा हूँ। ऐसी कोई चीज मेरे पास नही है। मुझे तो शाब्दिक अर्थमे भी और आध्यात्मिक अर्थमे भी एक भंगीकी विनम्र भूमिका निभानी है। मैं बाहरी सफाईका — सडक, गली, सडास-पाखाना साफ करनेका — भी काम जानता हूँ और, जहाँतक मेरे लिए सम्भव है, आन्तरिक शुद्धिके लिए भी प्रयत्नशील हूँ, ताकि मैं सत्यको जिस रूपमे भी देख सकूँ उस रूपमें उसका एक सच्चा व्याख्याता बन सकूँ।

बेशक स्वामीजीकी शिक्षा और मेरी अपनी मान्यताओमें बहुत-सी बाते एक ही है। मैं भी मानता हूँ कि ससारमे केवल एक ही धर्म है, लेकिन तब मेरी यह मान्यता भी है कि यद्यपि यह एक ही विशाल वृक्ष है, लेकिन इसकी शाखाएँ अनेक है। यह बात मैंने स्वामीजीको भी समझानेकी कोशिश की थी और मुझे उसका स्मरण आज भी है। जिस प्रकार सभी शाखाएँ एक ही वृक्षसे सत्त्व प्राप्त करके बढती और विकसित होती है, उसी प्रकार सभी धर्म एक ही स्रोतसे सार प्राप्त करते है। अगर धर्म एक है तो ईश्वर भी बेशक एक ही हो सकता है और ईश्वर तो सम्पूर्ण और अखण्ड है, इसलिए उसकी शाखाएँ नही हो सकती। लेकिन वह अदृश्य है, समस्त परिभाषाओसे परे है, इसलिए यह कहना अक्षरश सही होगा कि पृथ्वीपर जितने मनुष्य है, उसके उतने ही नाम हो सकते है। उसे चाहे हम जिस नामसे जानें, वह तो वही है — एक और अद्वितीय। और अगर हम सब एक ही स्रष्टाकी सन्तान है तो स्वभावत. हममे कोई जात-पाँत नही हो सकती। हम सब एक ही भ्रातृ-भगिनी मण्डलके सदस्य है। इसलिए हममें ऊँच-नीचका कोई भेद नही हो सकता। कोई भी सवर्ण या अवर्ण नही है। या तो सभी सवर्ण है या सभी अवर्ण।

लेकिन हममे से प्रत्येकके लिए विशेष रूपसे निर्धारित एक धन्धा है। यह धन्धा जाति नही है, बल्कि हिन्दू-धर्ममे इसे वर्णके रूपमें जानते है। जातिका जो अर्थ आज हम लगाते है उस अर्थमे जातिसे वर्णका कोई सम्बन्ध नही है। जाति तो मनुष्य द्वारा शुरू की गई एक प्रथा है। इसके विनाशमें ही हमारा कल्याण है। किन्तु वर्ण दैवी नियम है। हम उसकी उपेक्षा करके अपना अहित ही कर सकते है, उसका पालन करनेसे हमारा कल्याण होगा। बढई, लोहार, राज, भगी, शिक्षक, सिपाही इन सबके अलग-अलग धन्धे है, लेकिन इनमे से कोई भी न ऊँचा है और न नीचा। और यदि हम एक-दूसरेके धन्धेमें दखल देने लगते है तो उससे वर्णोंका सकर खडा होता है। इसलिए जिस क्षण आप विभिन्न वर्णोंमें से भेदका अश दूर कर देते है उसी क्षण यह न केवल एक नियम बन जाता है, बल्कि इससे हमे वह काम करनेका अवसर भी मिल जाता जिसके लिए हम विशेष रूपसे योग्य है। हिन्दू-धर्म हमे यही शिक्षा देता है। सभी सच्चे धर्मोंकी यही व्याख्या है। विशुद्ध और निष्कलुष हिन्दू-धर्मकी मेरी यही व्याख्या है। जहाँतक मैंने स्वामीजीको समझा था, मेरा खयाल है, अभी-अभी मैंने जो दृष्टिकोण प्रतिपादित किया है उससे वे असहमत नही थे।

मुझे अपने बीच आ बसनेको आमन्त्रित करके आपने मेरे अन्दर एक खुशी-भरी हलचल पैदा कर दी है। प्रलोभन तो बहुत प्रबल है। यह भारतके सबसे अधिक मनोरम स्थानोंमें से है और यहाँकी आबोहवा भी बड़ी अच्छी है। मैं जानता हूँ कि अगर मैं यहाँ आ जाऊँगा तो मित्रोंके बीच ही रहूँगा और वे मेरी सारी जरूरतें अच्छी तरहसे पूरी करते रहेंगे। लेकिन जीवनका मार्ग — यदि कोई उसे धर्ममय निष्ठासे ग्रहण करे तो — बहुत तंग है, बहुत दुर्गम है। इसे खड्गकी धार कहा गया है। जहाँ आपने इधर-उधर देखा कि अपना पतन निश्चित समझिये। और गीताकी शिक्षा है कि जिसके लिए तुम्हारा जन्म नहीं हुआ है उस परधर्मसे स्वधर्म तुम्हारे लिए लाख गुना अच्छा है। इसलिए आपने जो प्रलोभन दिया है, वह यद्यपि बहुत प्रबल है, फिर भी अभी तो मुझे उसको न ही स्वीकार करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ १६८–७१।

२७३. भाषण : परिपल्लीमें

१६ जनवरी, १९३७

आपके बीच आकर मुझे बड़ी खुशी हो रही है। आपके मानपत्रसे, जिसे मैंने पहले ही पढ़ लिया है, ज्ञात होता है कि इस सभामें भाग लेनेके लिए बहुत-से लोग लगभग बाईस-बाईस मीलसे पैदल चलकर आये हैं। मुझे इस बातका दुःख है कि इस दौरेका प्रबन्ध करनेवालोंके लिए आपके पहाड़ी इलाकेके लिए भी मेरा एक कार्य-क्रम निश्चित कर पाना सम्भव नहीं हो सका।

श्रीयुत् रमण पिल्लै द्वारा कडकल और परिपल्लीकी पहाड़ी जातियोंके बीच किये गये महान् कार्योंकी कुछ जानकारी मुझे मिली है। अपनी सफेद दाढ़ीसे वे अगर मुझसे अधिक नहीं तो मेरी उम्रके तो लगते ही हैं। लेकिन जिस जोशके साथ उन्होंने इस सभामें भाषण दिया उससे मुझे लगा कि वे बूढ़े होते हुए भी जवान हैं। यह जानकर मुझे बड़ी खुशी हुई कि श्रीयुत् पिल्लैके रूपमें आपको एक कभी न थकने-वाला कार्यकर्त्ता, मार्गदर्शक और मित्र मिल गया है। यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि आपके हितके लिए बहुत-से कार्य किये जा रहे हैं। आपका यह कथन बिलकुल सच है कि इस गरिमामण्डित घोषणाने एक नये युगका सूत्रपात किया है और यह किसी ऐसे व्यक्तिको, जो उसका पात्र नहीं था, एकाएक प्राप्त हो जानेवाले उपहारके समान है। यह हमें जिस तरह एकाएक मिल गया है उससे प्रकट होता है कि यह कोई ऐसी चीज है जिसे प्राप्त करनेके लिए न आप तैयार थे और न मैं। ऐसा कुछ नहीं है कि हमें जो-कुछ मिला है वह हमें मिलना नहीं चाहिए था। लेकिन हम इस चीजसे इतने वर्षतक वंचित रहे थे कि जब यह मिली है तो लगता है, जैसे हम इसको प्राप्त करने-योग्य नहीं थे। लेकिन मैं अपने इर्दगिर्द जो-कुछ

देख रहा हूँ, उससे ऐसा लगता है कि आप इस वरदानके काबिल थे और अब जब कि यह वरदान आपको प्राप्त हो गया है, तो ऐसा लगता है कि इससे आप कभी वंचित थे ही नही। कारण, मैं जानता हूँ कि मै जहाँ कही मन्दिरोमे गया हूँ वहाँ हरिजन और गैर-हरिजन दोनो मौजूद रहे है, लेकिन मैंने दोनोके बीच कही कोई भेद-भाव नही देखा है। इन मन्दिरोंमें हरिजनोके आचार-व्यवहारको देखकर ऐसा लगता था मानो वे जन्मसे ही इसके अभ्यस्त रहे हो। वे बिलकुल साफ-सुथरे थे और उनके भक्ति-भावको देखकर तो यही लगता था कि उनमे कोई कमी है ही नही। उन सभी स्त्रियो और पुरुषोके अन्दर एक गरिमा थी, जो सचमुच मनको मुग्ध कर लेती थी।

लेकिन अगर हम यह सोचे कि अब हमारे करनेके लिए कुछ रह ही नही गया है, तो यह हमारी बहुत बडी भूल होगी। इस घोषणासे जो अवसर हमे मिला है, अगर हम उसका पूरा लाभ उठाते है तो समझना चाहिए कि हमारा भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल है। मुझे पूरी आशा है कि समयके इस तकाजेपर बहुतेरे सवर्ण हिन्दू सामने आयेंगे और घोषणाके सन्देशको अवर्णोतक पहुँचायेंगे, उन्हे उनकी झोपडियोसे बाहर लायेंगे, उन्हे मन्दिर जानेका अभ्यस्त बनायेंगे और घोषणाके गूढ अर्थको उन्हे समझायेंगे। अविश्वासियो और अधर्मियोके लिए मन्दिरोका कोई अर्थ नही है, लेकिन जो मन्दिरोमे विश्वास रखते आये है, वे इस तथ्यका अनुभव किये बिना नही रह सकते कि नित्य मन्दिर जानेसे जीवनके प्रति मनुष्यका सम्पूर्ण दृष्टिकोण बदल जाता है। ईश्वर करे ये सभी बातें तथाकथित अवर्णोंके बीच साकार हो!

[अंग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ १७२-७३।

२७४. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

क्विलोन
१६ जनवरी, १९३७

चि० ब्रजकिसन,

तुमारा खत मिला है तुमने अवश्य गलती की है इससे न भला हुआ है दामोदरका न हूआ है विश्वनाथका, तुमारा तो कहाँसे हो ही सकता था? लेकिन मेरा ऐसे कहनेसे दोषका निवारण नही होगा। न नमक छोड़ने पर। नमक त्यागको इस मोहरूप दोषके साथ कोई संबध नही है। मैंने तो तुमसे कह दिया है कि जो पैसे तुमको मिलते है उसका उपयोग निजी मोहके संतोषके लिये नही है तुमारे निर्वाहके लिये है और कुछ बचे तो सार्वजनिक सेवाके लिये है। दामोदर और विश्वनाथसे मै तो कोई आशा नही रखता हूँ। अब तो तुमने सोचा है सो ठीक ही है। पुस्तक बेच दो और ऐसी कोई दूसरी भी चीज हो तो उसे भी बेचो और कर्ज अदा करो।

बेचनेसे बाकी रहे सो कुछ परिश्रमसे पैदा हो सके तो अच्छा है अन्यथा धैर्य रखो। सबसे बडा प्रायश्चित्त यह होगा कि अबसे ऐसा दोष कभी न होने पाय और तुम सब बातोंमें सावधान बन जाओ।

पत्र वापिस करता हू। माता अच्छी होगी।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

मै शायद २४को वर्धा लौटूगा।

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २४५६) से।

२७५. भाषण : क्विलोनमें

१६ जनवरी, १९३७

यहाँ अपना मानपत्र[1] पढनेका अधिकार तो आपको था ही, लेकिन आपने यह अधिकार छोड दिया, इसके लिए मै आपका आभारी हूँ। इस तरह आपने अपना भी और मेरा भी समय बचाया है। इस स्थानके लिए मै कोई अजनबी नही हूँ। यहाँ मै पहले भी आकर रह चुका हूँ और उन दिनोकी सुखद स्मृतियाँ मेरे मनमे अभी बसी हुई है। जब पिछली बार मै यहाँ आया था, उस समय किसी अवर्णका मन्दिरमे प्रवेश करना एक अनधिकार चेष्टा समझा जाता था। लेकिन अब मै इस घोषणापर आपकी खुशीमे शरीक होने आया हूँ। यह वीरता, उदारता और शोभाका कार्य है और इसमे युवा महाराजाके उत्साह और उनकी माता महारानी साहिबाकी समझदारी और हिम्मतका सुन्दर सयोग हुआ है। आपको शायद मालूम हो कि इस बार मैने राजमहलमे जाकर पुनः उनसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त किया। सवर्णों और अवर्णों दोनोने इस घोषणाको जिस प्रकार ग्रहण किया है, उससे महारानी साहिबाका रानियोके-जैसा उदार और दयामय हृदय खुशीसे भरा हुआ था। और मैने देखा कि महाराजा साहबकी सहृदया माता जो-कुछ कह रही थी उस सबका वे सिर हिला-हिलाकर अनुमोदन कर रहे थे। इस राज्यसे प्रेम रखनेवाले भारतके एक छोरसे दूसरे छोरतक के सभी लोगोने इस बातकी साक्षी भरी है कि घोषणामें कही कोई कमी नही है। कलमके एक ही झटकेने इस राज्यके सभी मन्दिर, बिना किसी अपवाद या प्रतिबन्धके, उन तमाम लोगोके लिए खोल दिये है जो अपनेको हिन्दू कहते है। जैसा कि मैने अकसर कहा है, ऐसे कार्यके पीछे केवल कोई सासारिक हेतु नही हो सकता। बुद्धिमती माता और वीर पुत्रको इस कार्यके लिए प्रेरित करनेमे कही परमात्मा जरूर रहा होगा।

यहाँ रहते हुए एकके बाद एक कई मन्दिरोमे मैने शायद दसियो हजार स्त्री-पुरुषोको बिना किसी भेद-भावके मिलते-जुलते देखा है। उन सबके चेहरो

१. मानपत्र नगर-परिषद्के अध्यक्ष के० सी० परमेश्वर पिल्लैने भेंट किया था।

पर मैने प्रसन्नताकी आभा छिटकती देखी है, और मै यह स्वीकार करता हूँ कि इस दृश्यको देखकर मुझसे अपनी खुशीपर काबू रखते नही बना है। जो-कुछ त्रावणकोरमे हो रहा है उसे मैने एक महान् धार्मिक पुनरुत्थान कहा है। यह धार्मिक पुनरुत्थान प्रारम्भ तो कुछ वर्ष पहले ही हो गया था, लेकिन हमे उसका कोई स्पष्ट चिह्न, साफ गोचर प्रमाण दिखाई नही दे रहा था। लेकिन यह घोषणा इस पुनरुत्थानका ऐसा स्पष्ट प्रमाण है जिसे जो भी देखना चाहे देख सकता है। मेरे लिए यह हमारे प्राचीन धर्मके शुद्धिकरणका एक बहुत बडा चिह्न है। लगभग पिछली आधी शताब्दीसे मै यह मानता आया हूँ कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्मका सबसे बडा कलक है। इसलिए आप कल्पना कर सकते है — मै खुद तो नही बता सकता — कि इस घोषणासे मुझे कितनी प्रसन्नता हुई है। आप त्रावणकोरवासियोको अपने महाराजासे जो अमूल्य उपहार मिला है, उसपर मै आप सबको बधाई देता हूँ। मुझे आशा है कि इतना अच्छा आरम्भ करनेके बाद आप समापन भी ऐसा ही करेंगे, और जो प्रकाश त्रावणकोरमे फूटा है वह जबतक सम्पूर्ण भारतवर्षको उद्भासित नही कर देता, तबतक आप अपनी यात्रा समाप्त नही मानेंगे। महारानी, महाराजा और दीवान साहबने तो अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिखाया है। इससे ज्यादा वे कुछ कर भी नही सकते। लेकिन अगर इस प्रकाशको सारे भारतमे फैलना है तो वह इस घोषणाके प्रति आपके द्वारा दिखाये जानेवाले उत्साहके ही परिणामस्वरूप फैल पायेगा। राज्यने जो महान् कदम उठाया है, आपको उसके मर्मको समझना है, और उसके प्रति यथेष्ट उत्साहका परिचय देना है। लेकिन यह उत्साह औपचारिक नही होना चाहिए, बल्कि हृदयकी गहराईसे निकला सहज और सच्चा उत्साह होना चाहिए। यह सब होनेपर ही वह महान् हृदय-परिवर्तन स्पष्ट रूपसे सम्पन्न होगा जिसके लिए मै इतने दिनोसे लालायित रहा हूँ और आकुल मनसे प्रार्थना करता रहा हूँ।

अब जरा इस बातपर विचार करे कि हिन्दू-धर्मका मर्म क्या है, वह कौन-सी चीज है जिससे उन अनेक सन्त-महात्माओने प्रेरणा ग्रहण की जिनका इतिहासमें उल्लेख हुआ है। क्या कारण है कि इसने ससारको इतने सारे तत्त्वचिन्तक दिये? हिन्दू-धर्मने क्या है कि इसके भक्त सदियोसे इसपर न्यौछावर होते आये है? क्या इसमे अस्पृश्यताको देख-देखकर भी वे इसपर न्यौछावर होते रहे? अस्पृश्यता-विरोधी सघर्षके दौरान अनेक कार्यकर्त्ताओने मुझसे हिन्दू-धर्मका सार-तत्त्व जानना चाहा है। उनका कहना है कि हमारे पास न तो इस्लामकी तरह कोई 'कलमा'[1] है और न जैसे बाइबिलमे, ३–१६ सेट जॉनमे ईसाई धर्मकी केन्द्रीय मान्यताका उल्लेख हुआ है, वैसा कुछ है।[2] वे पूछते है, हमारे पास कोई ऐसी चीज है या नही जो अत्यन्त चिन्तनशील तथा दुनियादारीमे लगे — दोनो तरहके हिन्दुओको सन्तोष दे सके? कुछ लोगोका कहना है — और अकारण नही है — कि गायत्री मन्त्र ऐसा ही है।

१. "अल्लाहके सिवा कोई ईश्वर नहीं है और मुहम्मद उसका पैगम्बर है।"
२. "ईश्वरको संसारसे इतना प्रेम था कि उसने अपना एकमात्र पुत्र उसे दे दिया कि जो भी उसमें आस्था रखेगा वह नष्ट नहीं होगा, बल्कि अमर जीवन पायेगा।"

मैंने 'गायत्री मन्त्र'के अर्थको समझकर शायद हजारों बार उसका जाप किया है। लेकिन मुझे अब भी लगता है कि वह मन्त्र मेरी पूरी आध्यात्मिक पिपासाको तृप्त नही कर पाया। फिर, आप जानते ही है कि वर्षोंसे मै 'भगवद्गीता'का भक्त हूँ और मैंने कहा है कि इससे अपनी सभी समस्याओंका समाधान मुझे मिलता रहा है तथा शका और कठिनाईके सैंकडो प्रसगोंपर इसने मेरे लिए कामधेनुका, मार्गदर्शिका और सहायिकाका काम किया है। ऐसा कोई प्रसग मुझे याद नही आता जब इसने मुझे निराश किया हो। लेकिन यह ऐसी पुस्तक नही है जिसे मै यहाँ उपस्थित सभी श्रोताओंके सामने उनके स्वीकारार्थ रख सकूँ। प्रार्थना पूर्ण मनसे इसके गहन अध्ययन-मननके उपरान्त ही आत्माके लिए इसके पयोधरमे सचित परम पौष्टिक दूध हमें प्राप्त हो सकता है।

लेकिन एक मन्त्र ऐसा अवश्य है जिसमे मैंने हिन्दू-धर्मके समस्त सारको समाविष्ट माना है। वही मन्त्र मै आपको सुनाने जा रहा हूँ। मेरा खयाल है, आपमे से बहुत-से लोग 'ईशोपनिषद्'के बारेमे तो जानते ही होगे। वर्षो पूर्व इसे मैंने अनुवाद और टीकासहित पढा था। यरवदा जेलमें मैंने इसे कठाग्र कर लिया। लेकिन तब मै इसपर उस प्रकार मुग्ध नही हुआ था जिस प्रकार कि पिछले कुछ महीनोसे हो गया हूँ। और अब मै अन्तिम रूपसे इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि यदि सारे उपनिषद् तथा हमारे अन्य सारे धर्मग्रन्थ अचानक नष्ट हो जाये और यदि 'ईशोपनिषद्'का केवल पहला श्लोक हिन्दुओंकी स्मृतिमे कायम रहे तो भी हिन्दू-धर्म सदा जीवित रहेगा।

यह मन्त्र चार हिस्सोमें बँटा हुआ है। पहला हिस्सा है, "ईशावास्यमिद · सर्वं यत्किंच जगत्या जगत्।" मै इसका अर्थ इस प्रकार करता हूँ. विश्वमे हम जो-कुछ देखते है, सबमे ईश्वरकी सत्ता व्याप्त है। फिर दूसरा और तीसरा हिस्सा इस प्रकार है. "तेन त्यक्तेन भुजीथा।" इन्हे दो हिस्सोमे बाँटकर उनका अनुवाद इस तरह करता हूँ: इसका त्याग करो और इसका भोग करो। इसका एक दूसरा अनुवाद भी है, यद्यपि उसका भी अर्थ प्राय. वही है। वह दूसरा अनुवाद है: वह तुम्हे जो-कुछ दे, उसका भोग करो। इस अनुवादकी दृष्टिसे भी इसके दो हिस्से तो किये ही जा सकते है। इसके बाद आता है इसका अन्तिम और सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा: "मा गृध्र कस्यस्विद्धनम्।" इसका मतलब है किसीकी सम्पत्तिको लोभकी दृष्टिसे मत देखो। इस प्राचीन उपनिषद्के शेष सभी मन्त्र इस प्रथम मन्त्रके भाष्य है या यो कहिए कि उनमे इसीका पूरा अर्थ उद्घाटित करनेका प्रयत्न किया गया है। जब मै इस मन्त्रको 'गीता'को ध्यानमे रखकर या 'गीता'को इस मन्त्रको ध्यानमे रखकर पढता हूँ तो मुझे लगता है कि 'गीता' भी इसी मन्त्रका भाष्य है। मुझे तो लगता है, यह मन्त्र समाजवादियो और साम्यवादियो, तत्त्वचिन्तको और अर्थशास्त्रियो सबका समाधान कर देता है। जो लोग हिन्दू-धर्मके अनुयायी नही है उनसे मै यह कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि यह उन सबका भी समाधान करता है। और अगर यह बात सही है—मै तो मानता हूँ कि सही है—तो फिर आपको हिन्दू-धर्मकी ऐसी

किसी चीजको महत्त्व देनेकी जरूरत नही है जो इस मन्त्रके अर्थसे असगत हो या उसके विरुद्ध हो। कोई साधारण आदमी इससे ज्यादा और क्या जानना चाहेगा कि एक ही ईश्वर और जीवमात्रका एक ही स्रष्टा और नियन्ता विश्वके कण-कणमे व्याप्त है।

इस मन्त्रके तीन हिस्से सीधे पहले हिस्सेमे से फलित होते हैं। यदि आप यह मानते हैं कि ईश्वर अपनी समस्त सृष्टिमे व्याप्त है तो आपको यह भी मानना पड़ेगा कि आप ऐसी किसी वस्तुका उपभोग नही कर सकते जो उसकी दी हुई नही हो। और यह देखते हुए कि वह अपनी असख्य सन्तानोका स्रष्टा है, यह तो स्पष्ट ही है कि आप किसीकी भी सम्पदाको लोभकी दृष्टिसे नही देख सकते। अगर आप यह समझते हैं कि आप भी उसकी सृष्टिके असख्य प्राणियोमें से एक है तो सब-कुछका त्याग करके उसे उसके चरणोपर अर्पित कर देना आपका धर्म हो जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि त्यागका यह कार्य मात्र स्थूल त्याग नही है, बल्कि दूसरे या नये जन्मका प्रतीक है। यह कोई अज्ञानजनित नही, बल्कि विचारपूर्वक किया हुआ कार्य होता है। इसलिए यह एक नवजन्म ही होता है। चूँकि देहधारीको भोजन, पानी और वस्त्र चाहिए ही, इसलिए उसे जिस किसी वस्तुकी आवश्यकता होती है, वह ईश्वरसे ही माँगता है। और यह सब उसे अपने त्यागके स्वाभाविक पुरस्कार-स्वरूप प्राप्त हो जाता है। मानो इतना पर्याप्त न हो, इसलिए इस मन्त्रके अन्तमें एक भव्य विचार रखा गया है किसीकी संपदाको लोभकी दृष्टिसे न देखो। इस शिक्षाको अपने जीवनमें उतारते ही आप ससारके सभी प्राणियोके साथ शान्ति और सौहार्दके साथ रहनेवाले समझदार विश्व-नागरिक बन जाते हैं। यह मनुष्यकी इहलोक और परलोककी ऊँची-से-ऊँची आकाक्षाओको तृप्त करता है। अलबत्ता, जिनका ईश्वर और उसकी निर्विवाद सर्वोच्चतामें विश्वास नही है, उनकी आकाक्षाको यह तृप्त नही ही कर पायेगा। त्रावणकोरके महाराजाको बिना किसी मतलबके ही 'पद्मनाभदास' नही कहा जाता है। यह एक बहुत ही भव्य कल्पना है। हम जानते है कि ईश्वरने तो स्वयं ही दासानुदासका विरुद धारण किया है। यदि सभी महाराजा अपनेको ईश्वरका दास कहे तो यह सर्वथा उचित होगा, किन्तु प्रजाके सेवक बने बिना वे ईश्वरके दास नही बन सकते। और यदि जमीदार तथा पैसेवाले और सभी सम्पत्तिशाली लोग अपने-आपको अपनी-अपनी सम्पत्तिके न्यासी मानने लगे और मैंने जिस त्यागका वर्णन किया है वैसा त्याग करने लगें, तो वास्तवमें यह ससार स्वर्ग बन जाये।

इस मन्त्रके अर्थको अब और ज्यादा नही समझाऊँगा। मै जानता हूँ कि आपमेसे बहुत-से लोग बड़े विद्वान् है। मुझे संस्कृतका बहुत कम ज्ञान है और मै एक साधारण आदमी हूँ, जो किसी प्रकारकी विद्वत्ताका दावा नही करता। लेकिन मैंने थोड़ा-बहुत जो-कुछ भी पढ़ा है और जो-कुछ मुझे अच्छा लगा है उसे मैंने ग्रहण किया है। मेरा आपसे निवेदन है कि इस मन्त्रमे कोई भी बात दुर्बोध नही है। इसके अर्थको कोई भी समझ सकता है और तदनुसार आचरण कर सकता है। इसलिए

मै सम्पूर्ण श्रोता-समुदायसे अनुरोध करता हूँ कि आप सब इस मन्त्रका मलयालममे अनुवाद करके इसे घर-घरमे पहुँचाइये और अपने जीवनको इसके अनुसार ढालनेमे सबकी सहायता कीजिए। और मै यह कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि इतना कर लेनेके बाद वे अन्य कोई भी धर्मग्रन्थ पढे बिना अपनेको हिन्दू कह सकते है। विवाद और मतभेद तो तब खडे होते है जब लोग मोटे-मोटे ग्रन्थोको पढकर उनके विभिन्न सिद्धान्त-वाक्योकी तरह-तरहकी व्याख्याओकी चर्चा करने लगते है। लेकिन अब चूँकि इस घोषणाके फलस्वरूप त्रावणकोरमे ऊँच-नीचका भेद-भाव मिट गया है और न कोई अवर्ण रह गया है और न सवर्ण, इसलिए आप देखेंगे कि यह मन्त्र आपकी सभी जरूरते पूरी करेगा। अपने आचरणको इस मन्त्रकी भावनाके अनुसार ढालनेपर आप पायेंगे कि इस घोषणाकी भावनाके अनुरूप जीवन जीना कठिन नही है। यह बात मै अपने दायित्वको भली-भाँति समझते हुए कह रहा हूँ। अपने महान् महाराजाके इस कार्यको सफल या विफल बनाना आप त्रावणकोरवासियोपर निर्भर है। अपने धर्म या मानव-बन्धुओकी सेवाका अवसर आसानीसे नही मिलता। आपके सामने आज वह अचानक ही आ गया है। ईश्वर आपको इतना बुद्धि-विवेक दे कि आप इस घोषणाकी भावनाके अनुरूप जीवन जी सके।

[अंग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ १७४-८०।

२७६. गोरक्षा या गोहत्या?

हम देखते है कि हमारे बहुतेरे काम हमारे विश्वास और हमारी धर्म-भावनाके विरुद्ध होते है। हम मानते है कि सच बोलना चाहिए, किन्तु आचरण असत्यका करते है, व्यभिचार नही करना चाहिए, पर करते है, हिंसा न करनी चाहिए, पर प्रतिपल हिंसा करते है। हम चाहते है कि स्वराज्य प्राप्त करे, पर ऐसे बहुतेरे काम हम करते है जो स्वराज्यके प्रतिकूल होते है। खादीका काम भी नही करते, जो स्वराज्यके अनुकूल है। अगर मनुष्य-जाति सब मामलोमे अपने विश्वासके विरुद्ध ही आचरण करने लगे, तो उसका नाश हो जाये! अनगिनत लोग ऐसे है जो बिना सोचे-समझे न करने योग्य काम करते है। लेकिन ऊपरकी करुण कथा तो उन लोगोकी है जिन्हे विचार करनेकी आदत है।

हमारे धर्म-विरुद्ध आचरणमे गो-सेवाका अभाव भी शामिल है। हरेक हिन्दू मानता है कि गायकी सेवा करना उसका विशेष धर्म है। लेकिन गो-सेवाके जो सीधे-सादे और साधारण नियम है, उनका पालन करनेवाले मुट्ठी-भर ही हिन्दू पाये जाते है। बहुतेरे तो ऐसे है जो गोरक्षाके नामसे फेरी जानेवाली भिक्षा-पेटीमे दो पैसे डालकर समझ लेते है कि हमारा कर्त्तव्य पूरा हो गया। श्री पुरुषोत्तम नरहरि जोशीका —जो अपनेको गो-सेवक कहते है—एक पत्र पढते हुए ये विचार मेरे मनमे उठे है।

भाई पुरुषोत्तम जोशी भावनगर राज्यकी सरकारी गोशालाके प्रमुख हैं, यही नही, वह गोसंवर्धनके काममे दिलचस्पी लेनेवालोमे से हैं। उनका पत्र नीचे लिखे अनुसार है[1]

इस पत्रको पढ़कर कौन है जो कहेगा कि गो-रक्षाके बदले गो-हत्या नही हो रही है? यह नही कि जब हम छुरी लेकर किसीका खून करते है, तभी हत्यारे बनते है। दूसरोकी हत्याको अपनी आँखो होते देखना और उसे रोकनेकी ताकत होते हुए भी रोकनेकी कोशिश न करना, उनकी हत्या करनेके समान ही है। गो-सेवक जोशीकी बहुतेरी सूचनाएँ ऐसी है जिनपर हिन्दुस्तानके हर हिस्सेमे अमल किया जा सकता है। उन्होने अपना पत्र विशेषतः काठियावाडको ध्यानमे रखकर लिखा है, और उसमे भी वह खास करके काठियावाडके राजाओके लिए है, क्योकि राज्य चाहे तो बड़ी आसानीसे यह कार्य कर सकते है। प्रत्येक राज्य एक या एकसे अधिक दुग्धालयोका प्रबन्ध कर सकता है, प्रजाके उपयोगके लिए अच्छे साँड रख सकता है, सभी बछडोको खस्सी करवा सकता है, जिन्हे जरूरत है उन्हे अच्छी गाये दे सकता है, जो गोपालनकी कला सीखना चाहे उन्हे सीखनेकी सहूलियते दे सकता है, अपने राज्यमे गोचर-भूमियाँ छुड़वा सकता है और भैंसके पाडोकी नृशस निरर्थक हत्या रोक सकता है।

गोसेवा-सघकी गतिविधियोके बारेमे भाई जोशीने जो सुझाव दिये है, उनपर आगे कभी विचार करूँगा।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, १७-१-१९३७

२७७. भाषण: तत्तरनपल्लीमें

१७ जनवरी, १९३७

दर असल इस समय मै बोलनेकी स्थितिमे नही हूँ। त्रावणकोर आनेके बादसे ही मुझे सर्दी-जुकामने बुरी तरह जकड रखा है और मुझे लगता है कि अभी मै आपके सामने कोई सुविचारित भाषण नही दे सकता। यह जानकर खुशी हुई कि हिन्दी निरन्तर प्रगति कर रही है। मै चाहता हूँ कि अंग्रेजी जाननेवाला हर आदमी अपने लिए इसे घोर लज्जाकी बात समझे कि वह उतनी अच्छी तरह हिन्दी नही बोल सकता जितनी अच्छी तरह कि अंग्रेजी बोल सकता है। आपसे सच कहता हूँ, हिन्दी सीखनेमे आपको उतने वर्ष नही लगेंगे जितने अंग्रेजी सीखनेमे लगते है। अंग्रेजीकी

१. पत्रका अनुवाद नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने कहा था कि यद्यपि भारतके राष्ट्रीय जीवनमें गायका महत्त्वपूर्ण स्थान है, तथापि उसकी अवज्ञा हो रही है। उसने सुझाव दिया था, कि गो-सेवक सब गायकी स्थिति और गो-वंशका सुधार करनेके लिए एक योजना बनाये।

अपेक्षा इसके आसान होनेका एक कारण यह है कि इसके शब्द बहुत-कुछ मलयालमसे मिलते-जुलते हैं और भौगोलिक तथा जलवायुकी परिस्थितियोंकी तरह इस महान् देशकी धार्मिक परिस्थितियाँ भारतकी सभी भाषाओंको कई दृष्टियोंसे समान बना देती हैं। इन विभिन्न भाषाओंका स्वर हमारे कानोंको विदेशी भाषाओंके स्वरकी तरह विचित्र नहीं लगता। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि कन्नड, तमिल, मलयालम, उड़िया या बंगला भाषाकी ध्वनियोंमें मुझे कहीं भी किसी तरहके परायेपन या विदेशीपनका एहसास नहीं होता; और यद्यपि मैं ये भाषाएँ नहीं जानता, फिर भी अकसर इनका आशय समझ जाता हूँ, क्योंकि इन सभी भाषाओंके शब्दोंमें बहुत-कुछ समानता है। अगर मैं यह हिन्दी मानपत्र पढ़कर आपको सुनाऊँ तो आप पायेंगे कि इसके बहुत-से शब्द मलयालममें भी हैं। बंगलोरके भाषणमें मैंने लोगोंको यह बताया था कि हिन्दीके अधिकांश शब्द कन्नड़के शब्दोंसे मिलते-जुलते हैं।

यह सब मैंने आपसे निष्प्रयोजन नहीं कहा है। यह मानी हुई बात है कि पूरे भारतको ध्यानमें रखते हुए आपको हिन्दी सीखनी है। लेकिन इस बातका इस घोषणासे भी कुछ सम्बन्ध है। अगर सवर्णोंको इस घोषणाको कार्यान्वित करना है तो उन्हें अवर्णोंके सगे भाई बनना होगा और सगे भाई बननेके लिए उन्हें यहाँ-वहाँ अवर्णोंके बीच रहकर काम करना होगा। और अगर आपमें कोई आध्यात्मिकता है तो उसका प्रभाव कई दिशाओंमें फैलेगा। आज सुबह एक पुलया लड़की मेरे पास एक अर्जी लेकर आई। वह बहुत अच्छी लड़की थी, लेकिन अपनी अर्जी उसने बहुत खराब अंग्रेजीमें दी थी। वह अपनी अंग्रेजीकी पढ़ाईके लिए कुछ मदद चाहती थी। इस अर्जीको लिखनेवाले आदमीने बातें बिलकुल गलत ढंगसे रखी थीं, लेकिन मैं सही स्थिति जान नहीं पाया, क्योंकि वह लड़की न हिन्दी बोल सकती थी और न अंग्रेजी। उसकी अर्जी तो बेशक मैंने यहाँके हरिजन-सेवक संघको सौंप दी है। लेकिन अगर इस लड़कीको हिन्दी पढ़ाई गई होती तो मुझे पूरा विश्वास है कि वह मुझसे अच्छी तरह बातचीत कर पाती। मैं आपको यह बता दूँ कि तेरह साल की लड़कीको अपने-आपको केवल त्रावणकोरकी ही नहीं, बल्कि भारतीय कह सकना चाहिए। यदि वह हिन्दी जानती होती तो बिना किसी कठिनाईके भारतके एक छोरसे दूसरे छोरतक भ्रमण कर सकती थी। जरा कल्पना कीजिए कि हम हिन्दूकुश पहुँच गये हैं। लेकिन वहाँ उस लड़कीका क्या होगा? अपने हिन्दी-ज्ञानके कारण कश्मीर भी उसे घर-जैसा ही लगेगा। यही वह बात है जो मैं समझानेकी कोशिश कर रहा हूँ। मान लीजिए कि आपने मेरी बात समझ ली और अवर्णोंके बीच काम करनेका निश्चय कर लिया। तो उस स्थितिमें आपको उन्हें अंग्रेजी नहीं, बल्कि हिन्दी पढ़ानी होगी, क्योंकि इसी तरह आप अपना भी ज्ञान बढ़ा सकेंगे और उन लड़के-लड़कियोंका भी जिनकी शिक्षाका काम अपने हाथोंमें लेंगे, अपने दृष्टिकोणको भी व्यापक बना पायेंगे और उनके दृष्टिकोणको भी। उन्हें अंग्रेजी माध्यम देनेकी भयंकर भूल न करके आपको उन्हें सीधे तुलसी-साहित्यकी निधिसे परिचित कराना है। कारण, आप सच मानिए, अगर यह घोषणा विफल होगी तो वह महाराजा साहबकी गलतीके

कारण नही, बल्कि आपके दोषोके कारण — जो करना उचित है वह न करनेके और जिसे करना अनुचित है उसे करनेके दोपके कारण।

[अंग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ १८१-८३।

२७८. भाषण: हरिपादमें

१७ जनवरी, १९३७

पिछली रात क्विलोनकी सभामे मैने हिन्दू-धर्मके सन्देशकी चर्चा की थी। इस सभामे भी मै आपको उसीके सम्बन्धमे कुछ बतानेमे आपके चन्द मिनट लेना चाहूँगा। उस सभामे मैने यह कहनेकी धृष्टता की थी कि 'ईशोपनिषद्' के प्रथम मन्त्रमे सम्पूर्ण हिन्दू-धर्मका सार निहित है। वहाँ मैने यह भी कहा था कि अगर कही ऐसा हो कि तमाम हिन्दू धर्मग्रन्थ जलकर राख हो जाये और लोगोकी स्मृतिसे बिलकुल मिट जायें और केवल यह एक मन्त्र शेष रह जाये, तो इस विनाशसे वास्तवमें हमारी कोई क्षति नही होगी। हिन्दू-धर्म तब भी जीवित रहेगा। इस मन्त्रमे प्रयुक्त सस्कृत तो शायद इतनी सरल है कि इस भाषाको नया-नया सीखनेवाला भी इससे अधिक सरल सस्कृत देखनेकी कामना नही कर सकता। 'उपनिषदो'-के बारेमें ऐसी ख्याति है कि वे मूल वेदोका अग है। 'ईशोपनिषद्' हमारी जानकारीके सभी उपनिषदोमें सबसे छोटा है। लेकिन, जैसा कि मैने कहा है, यदि इस उपनिषद्का केवल पहला मन्त्र भी हमारे पास रह जाये तो वह हमारी सभी आवश्यकताओकी पूर्ति मजेमे करता रहेगा। तो अब मै वह मन्त्र आपको सुनाता हूँ, यद्यपि सस्कृतका मेरा उच्चारण बड़ा दोषपूर्ण है·

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्या जगत्
तेन त्यक्तेन भुजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।

थोड़ी-सी सस्कृत जाननेवाले लोग भी देखेगे कि इसमे अन्य वैदिक मन्त्रोकी तरह कुछ भी दुर्बोध नही है और इसका सीधा-सादा अर्थ सिर्फ इतना ही है विश्वमे छोटा-बडा जो-कुछ भी है उस सबमे, यहाँ तककी छोटेसे-छोटे अणुमे भी, ईश्वरकी सत्ता व्याप्त है — ईश्वरकी, जिसे हम स्रष्टा या प्रभुके रूपमें जानते है। ईशका मतलब है शास्ता और जो स्रष्टा है वह स्वभावत शास्ता तो बन ही जाता है। और इस श्लोकके रचयिता ऋषिने ईश्वरके लिए शास्ताके अतिरिक्त और किसी शब्दका प्रयोग नही किया है, और उसने वास्तवमे किसी भी वस्तुको उसके शासनकी परिधिसे बाहर नही रहने दिया है। उसका कहना है कि हम जो-कुछ भी देखते है, सबमे ईश्वर व्याप्त है, और इस अवधारणासे स्वभावत इस मन्त्रके शेष भाग फलित होते है। उनमे वह कहता है, सब-कुछका त्याग करो, अर्थात् केवल इस छोटे-से

भूतलपर जो-कुछ है उसीका नही, बल्कि अखिल ब्रह्माण्डमे जो-कुछ भी है उस सबका त्याग करो। वह हमसे सबका त्याग करनेको इसलिए कहता है कि हम लोग वास्तवमे ऐसे तुच्छ परमाणुओके समान है कि यदि हम किसी वस्तुको स्वायत्त करने की बात सोचते है तो वह हास्यास्पद ही होगा। इसके बाद ऋषि कहता है, इस त्यागका पुरस्कार है "भुजीथा.", अर्थात् तुम्हे जिस वस्तुकी भी आवश्यकता हो उसका उपभोग करो। लेकिन "भुंजीथा." शब्दका एक विपेश अर्थ भी है, हालाँकि वैसे आप इसका अर्थ 'उपयोग', 'खाना' आदि भी लगा सकते है। उसका विशेष अर्थ यह है कि जितना आपके विकासके लिए आवश्यक हो उससे अधिक कुछ न ले। इसलिए इस उपभोग या उपयोगपर दो मर्यादाएँ लगी हुई है। एक तो है त्याग या 'भागवत' के शब्दोमें कहे तो "कृष्णार्पणमस्तु सर्वम्"। भागवत धर्मके प्रत्येक अनुयायीको प्रतिदिन प्रात काल अपने समस्त विचार, शब्द तथा कर्म [मनसा, वाचा, कर्मणा] ईश्वरको अर्पित करनेका आदेश है और किसी भी दिन जबतक उसने यह त्याग या अर्पणका कार्य सम्पन्न न कर लिया हो, तबतक उसे किसी भी वस्तुका स्पर्श करने, यहाँतक कि थोडा-सा पानी भी पीनेका अधिकार नही है। और जब उसने त्याग और अर्पणका यह कार्य सम्पन्न कर दिया हो तो उसके पुरस्कार-स्वरूप उसे उस हदतक भोजन, जल, वस्त्र और आवासके उपभोगका अधिकार प्राप्त हो जाता है जिस हदतक ये चीजे उसके दैनिक जीवनके लिए आवश्यक है। इसलिए आप इसका अर्थ चाहे यह लगाये कि उपभोग अथवा उपयोग त्यागका पुरस्कार है या यह लगाये कि त्याग उपभोगकी शर्त है, इस तथ्यमे कोई अन्तर नही पडता कि त्याग स्वयं हमारे अस्तित्वके लिए, हमारी आत्माके लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है। और मानो इस मन्त्रमे बताई गई यह शर्त पर्याप्त न हो, ऋषि इसके तुरन्त बाद कहता है, "किसीकी सम्पदाको लोभकी दृष्टिसे मत देखो।" मैं तो आपसे यह कहूँगा कि ससारके सभी दर्शन या धर्म इस मन्त्रमे निहित है, और जो-कुछ धर्मविरुद्ध है उस सबका इसमे वर्जन किया गया है। धर्मग्रन्थोकी व्याख्याके नियमोके अनुसार, जो-कुछ श्रुतिके विरुद्ध है—और 'ईशोपनिषद्' एक श्रुति ही है— वह सब सर्वथा त्याज्य है।

अब मै इस मन्त्रको ध्यानमें रखकर इस बातपर विचार करना चाहूँगा कि राज्यके द्वारा की गई घोषणाके सन्दर्भमे खुद हमारी क्या अवस्था है। यो तो इस महान् घोपणापर आपके हर्षमे मै मुक्त हृदयसे सम्मिलित हुआ हूँ और महाराजा साहब, राजमाता तथा उनके दीवानको मैंने हार्दिक धन्यवाद और बधाइयाँ दी है। किन्तु इस मन्त्रकी दृष्टिसे तो मुझे कहना ही पडेगा कि इस घोषणाके द्वारा 'ईशोपनिषद्' के उक्त श्लोकमे दिये गये आदेशका पालन बहुत देरसे किया जा रहा है। अभी कलतक हम सब अपनेको हिन्दू कहने योग्य नही थे। कारण, ब्रह्माण्डमे जो-कुछ भी है, उस सबमे यदि ईश्वर व्याप्त है, अर्थात् यदि ब्राह्मण और भंगी, पण्डित और मेहतर, इलवा और परया आदि सभी जातियोके लोगोमे वह व्याप्त है तो इस मन्त्रकी दृष्टिसे न कोई ऊँच है और न नीच, बल्कि सभी समान है,

क्योकि सब एक ही स्रष्टाकी सृष्टि है। और यह धर्म या दर्शनका कोई ऐसा निगूढ तत्त्व नही है जिसका पात्र केवल ब्राह्मणो या क्षत्रियोको ही माना जाये, बल्कि इसके द्वारा तो एक सनातन सत्य उदघाटित हुआ है जिसमें कोई कमी करने या जिसको किसी भी तरहसे मर्यादित करनेकी कोई गुजाइश ही नही है। इसलिए स्वय महाराजा या महारानी भी त्रावणकोरके किसी भी व्यक्तिसे जौ-भर भी ऊँचे नही हैं। हम सब ईश्वरकी सन्तान, उसीके सेवक है। यदि महाराजा साहब सभी समान लोगोके बीच सर्वप्रथम हैं — और वे वास्तवमे सर्वप्रथम है भी — तो वे अपने राजत्वके कारण नही, बल्कि सबसे बडे सेवक होनेके कारण है। इसलिए यह बात कितनी उत्कृष्ट, कितनी शोभनीय है कि त्रावणकोरका प्रत्येक महाराजा 'पद्मनाभदास'[1] कहलाता है। यह एक गौरवपूर्ण उपाधि है और जिन्होने त्रावणकोरके महाराजाको यह उपाधि दी उन्हे मै बधाई देता हूँ। इसलिए जब मैने यह कहा कि महाराजा या महारानी हममे से किसीसे जौ-भर भी ऊँचे नही है तो वास्तवमे स्वय महाराजा और महारानी द्वारा स्वीकृत सत्यको ही आपके सामने रखा। और अगर यह बात सही है तो कोई भी अपनेको किसी अन्य व्यक्तिसे श्रेष्ठ माननेकी धृष्टता कैसे कर सकता है? इस-लिए मै आपसे कहूँगा कि अगर यह मन्त्र ठीक है और इसके बावजूद कोई ऐसा मानता है कि अवर्ण कहे जानेवालोके प्रवेशसे मन्दिर अपवित्र होता है, तो ऐसे व्यक्तिको मै गम्भीर पापका अपराधी घोषित करता हूँ। आपसे सच कहता हूँ, इस घोषणाने मन्दिरोको पवित्र बनाया है, उनपर लगे दागको धो दिया है।

मै चाहूँगा कि इस मन्त्रको सभी स्त्री, पुरुष और बच्चे अपने हृदय-मन्दिरमे प्रतिष्ठित करे और यदि इसमे — जैसी कि मेरी मान्यता है — हिन्दू-धर्मका सार समाहित है तो इस मन्त्रको सभी मन्दिरोके मुख्यद्वारपर खुदवा देना चाहिए। तब क्या आप यह नही समझते कि यदि हम उन मन्दिरोमें किसीके भी प्रवेशको वर्जित करेगे तो यह पग-पगपर इस मन्त्रको झुठलाना होगा। इसलिए यदि आप अपने-आपको इस उदारतापूर्ण घोषणाका योग्य पात्र सिद्ध करना चाहते है और अगर आप स्वय अपने प्रति ईमानदार तथा अपने भाग्यनिर्माताओके प्रति वफादार रहना चाहते है तो आप इस घोषणाको शब्दश भी और भावनासे भी कार्यान्वित करके दिखाये। मै तो इसे ऐसा महान् आध्यात्मिक कदम मानता हूँ कि इससे नास्तिकोके हृदयसे नास्तिकता दूर हो जानी चाहिए, हिन्दू-धर्म या धर्म-मात्रके सत्यको शकाकी दृष्टिसे देखनेवालोकी सभी शकाएँ मिट जानी चाहिए। यदि इसे ठीक-ठीक समझा जाये तो इससे तथाकथित नास्तिकोकी अज्ञानजनित नास्तिकता दूर हो जानी चाहिए। इस घोषणाकी तिथिसे त्रावणकोरके मन्दिर, जिनके बारेमे मैने कहा था कि वे ईश्वर के धाम नही है, वास्तवमे ईश्वरके धाम हो गये है, क्योकि जो लोग अस्पृश्य माने जाते थे उनमे से किसीके लिए भी इनमे प्रवेश अब वर्जित नही रहा है। इसलिए मै यह आशा करता हूँ और प्रभुसे मेरी यही प्रार्थना है कि त्रावणकोरमे ऐसा कोई

१. ईश्वरका सेवक।

भी पुरुष या स्त्री देखनेको न मिले जो केवल इस कारण मन्दिरोंमें न जाये कि उनके द्वार समाज-बहिष्कृत माने जानेवाले लोगोंके लिए खोल दिये गये हैं।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३०-१-१९३७

२७९. पत्र : मीराबहनको

हरिपाद
१७ जनवरी, १९३७

चि० मीरा,

कल भी तुम्हारा पत्र मिला था। यह जानकर खुशी हुई कि तुम्हारा चित्त अब पहलेसे कहीं ज्यादा शान्त है। ईमानदारीके साथ प्रयास करो तो अवश्य ही पूरी शान्ति प्राप्त होगी। व्यक्तिगत सेवाके दावेके बारेमें तुमने जो उल्लेख किया है, उसे मैं समझ नहीं सका। खैर, मिलनेपर जान-समझ लूंगा।

यात्रा सकुशल चल रही है।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३७५)से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९८४१ से भी।

२८०. पत्र : एस० अम्बुजम्मालको

१७ जनवरी, १९३७

चि० अम्बुजम,[1]

मैं वहाँ (डी० बी०) एक्सप्रेससे २२ तारीखकी सुबह पहुँच रहा हूँ। कोडम्बुकम्में दिन बितानेके बाद गंटूरके लिए शामको गाड़ी पकड़ूंगा।

यदि यह सम्भव हो तो मैं चाहूँगा कि तुम दिनमें किसी समय कनुको यह बताओ कि वीणा किस तरह बजाई जाती है। यदि सहज ही खरीदी जा सके तथा मँहगी न हो तो मैं क०के लिए एक वीणा खरीदना चाहूँगा। इसमें मेरा सबसे अच्छा मार्गदर्शन तुम ही कर सकती हो।

१. सम्बोधन व हस्ताक्षर हिन्दीमें हैं।

यात्रा ठीक तरहसे आगे बढ़ रही है। मुझे आशा है कि पिताजीका स्वास्थ्य ठीक होगा।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजीसे: अम्बुजम्माल-पेपर्स, सौजन्य नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय।

२८१. पत्र: मनु गांधीको

१७ जनवरी, १९३७

चि० मनुडी,

तेरा पत्र मिला। तूने जो लिखा है, वह मैं समझ गया। तेरी याद अनेक बार आती रहती है। तुझे साथ लानेका बहुत मन था, लेकिन लगा कि ऐसा करना उचित नहीं होगा। नीमूके पत्र आते होंगे। इच्छा तो है कि वहाँ २४ को पहुँच जाऊँ। देखें, क्या होता है। वहाँ ठंड पड़ रही है; यहाँ गजबकी गरमी लगती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १५६३)से, सौजन्य: मनुबहन एस० मशरूवाला।

२८२. पत्र: मुन्नालाल जी० शाहको

१७ जनवरी, १९३७

चि० मुन्नालाल,

तुम्हारा पत्र नहीं आया। तुमने मीराबहनको जीत लिया होगा। यह काम सरल है। फलोंके बारेमें कुछ गड़बड़ लगती है। इस पत्रका जवाब तो वहीं आकर मिलेगा। मेरा इरादा २४को वहाँ पहुँचनेका है। देखें, क्या होता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८३६०)से। सी० डब्ल्यू० ७००५ से भी; सौजन्य: मुन्नालाल जी० शाह।

२८३. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

१७ जनवरी, १९३७

चि० कान्ति,

आधे घटेकी नावकी यात्रा तीन-चार घटेकी हो गई है। इसलिए जो कागज हाथमे आया, उसीपर यह पत्र लिख रहा हूँ। हाथके बने कागजका आग्रह करूँ, तो तुझे लिखनेका इतना अच्छा समय कहाँ मिलेगा?

सरस्वती मेरे साथ तीन दिन घूमी। रामचन्द्रन्‌के पिताके यहाँ एक दोपहर बिताई। सरस्वती तथा रामचन्द्रन्‌के साथ भी बाते कर ली है। शान्ति निकेतनके बारेमे पूरी चर्चा की है। रामचन्द्रन् अभी तो सरस्वतीको शान्ति निकेतन भेजनेको तैयार नही है, यो कभी तैयार थे भी नही। यदि सरस्वती महिला-आश्रममे बनी रहती तो उसको वहाँका क्रम पूरा करनेके बाद भेजनेको तैयार हो जाते। अब तो रामचन्द्रन्‌की इच्छा है कि सरस्वती जबतक मैट्रिक न कर ले तबतक कही न जाये। सरस्वतीने शान्ति निकेतनका मोह छोड दिया है, ऐसा उसने मुझसे कहा। मैंने तो दोनोसे कह दिया कि यदि उनका विचार शान्ति निकेतनका हो तो मैं विरोध नही करूँगा।

मेरे यहाँ रहते हुए बा का विचार टीका करनेका था। लेकिन मैंने और रामचन्द्रन्‌ने सोचा कि जबतक तुम दोनो अलग-अलग हो और पढनेमें लगे हो, तबतक टीका करनेकी जरूरत नही है। इसलिए अभी तो रोक दिया है। रामचन्द्रन्‌के कहनेसे और सरस्वतीके साथ बात करके देखता हूँ कि यद्यपि उसकी बौद्धिक शक्ति कम है, तथापि तेरे सम्बन्धमे उसकी दृढतामे कोई न्यूनता हो, ऐसा नही है। ऐसी ही स्थिति रामचन्द्रन्‌के माता-पिताकी है। सरस्वतीके पिताके साथ भी बातचीत की और देखा कि अब कोई विरोध नही है। महादेवसे भी मैंने उनसे बाते करनेको कहा था। उसने बात कर भी ली है और वह तुझे लिखेगा। हाँ, एक बात उसने कही कि तू जरा-सी बातमे नाराज हो जाता है, और जहाँ बुरा माननेका कोई कारण न हो, वहाँ भी बहुत बुरा मानकर अपने स्नेहियोको दुःख देता है।

मेरी यह शिकायत है कि तू अपने शरीरकी परवाह नही करता। मैं तो तुझसे बार-बार कहता हूँ कि अपने स्वास्थ्यकी बलि देकर पढाई मत करना। हो सके उतना अवश्य कर। लेकिन सुख पानेकी पहली शर्त अच्छा स्वास्थ्य है, यह जाने रहना।

मुझे इस प्रकार लिखना कि वह २४को वर्धा पहुँचे। आशा करता हूँ, उस तारीखतक मैं वर्धा पहुँच जाऊँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७३१२) से, सौजन्य : कान्तिलाल गांधी।

२८४. पत्र : बलवन्तसिंहको

१७ जनवरी, १९३७

चि० बलवतसिह,

मेरी उमेद है अब तुमारा शरीर व्याधिमुक्त हुआ होगा। एक भी फोडा नही होना चाहिये।

यहा की गाय हमारी गाये से भी छोटी रहती है। दूध भी बहूत कम देती है। बाकी सब 'हरिजन-सेवक' से।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १८८९) से।

२८५. पत्र : लक्ष्मीदास आसरको

त्रावणकोर

१८ जनवरी, १९३७

चि० लक्ष्मीदास,

आनन्दी और पुरातनके पत्र उन्हे दे देना। मै समझता हूँ कि सब ठीक ही होगा। आनन्दीको इस तरह वर्धा भेजना कि वह वहाँ २४ को पहुँचे। मै एक दिन देरसे पहुँचा तो भी कोई हर्ज नही। दुर्गा तो मगनवाडीमे ही है। वेलाबहनके लिए पत्र भी इसके साथ है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५०६९) से; सौजन्य आनन्दीबहन पी० बुच।

२८६. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

१८ जनवरी, १९३७

चि० मणिलाल और सुशीला,

यह पत्र त्रावणकोरकी अनेक खाडियोमे से एकको पार करते हुए रातके ९-३० बजे लिख रहा हूँ। आधे घटेका रास्ता तीन घटेका हो गया है, और अभी न जाने कब पहुँचेगे। हाथके बने कागज साथमे नही लिये थे, इसलिए इसीसे काम चला रहा हूँ। अभी न लिखूँ, तो कौन जाने कब लिख पाऊँ। यात्रामे राजकुमारी, प्रभावती, महादेव, प्यारेलाल और कनैयो साथ है। यह तो एक प्रकारकी तीर्थयात्रा ही हो गई है। जितने मन्दिर मै इस समय देख रहा हूँ, उतने कभी देखे ही नही। और जिस भावनासे अव दर्शन करता हूँ, वह पहले नही थी। हरिजनोके लिए मन्दिर-प्रवेशका आन्दोलन छेड़नेके वाद त्रावणकोरके सैकडो मन्दिर खुल गये है, यह कोई साधारण वात नही है। यह सब तो तुम दोनो 'हरिजन' और 'हरिजनवन्धु' मे पढोगे। आशा है, २४ को वर्धा पहुँच जाऊँगा।

तुम्हारी गाडी ठीक चल रही होगी। सुशीला, तू ठीक हो गई होगी। गर्भपातका कारण जान लिया होगा। सीता भी मजेमे होगी।

उतरनेका स्थान आ गया, इसलिए अव पत्र लिखना वन्द करना ही पड़ेगा। इसे यही पूरा किये देता हूँ।

वापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८५९)से।

२८७. भाषण : चेर्तलामें[1]

१८ जनवरी, १९३७

आजकी शाम आपके बीच आकर मुझे अतीव प्रसन्नताका अनुभव हो रहा है। त्रावणकोरके महाराजा साहवके प्रति आपके इस कृतज्ञता-ज्ञापनमे मै हृदयसे शामिल हूँ, यह वताना मेरे लिए अब कोई जरूरी नही रह गया है। इसमे कोई सन्देह ही नही कि यदि महाराजा साहवको अपने पूर्वजोंके धर्मकी रक्षाकी चिन्ता न रहती, यदि महारानी साहिवाने अपना वुद्धिमत्तापूर्ण मार्गदर्शन न दिया होता और यदि सचिवोत्तम सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरकी योग्य सहायता न मिली होती, तो

१. यह भाषण इलवा लोगोंके प्रमुख संगठन एस० एन० डी० पी० योगम् द्वारा आयोजित मन्दिर-प्रवेश घोषणा समारोहमें दिया गया था।

आज हमे यह घोषणा-सुनने देखनेको न मिलती। लेकिन जो बात मै अन्यत्र पहले भी कई बार कह चुका हूँ उसे आपके सामने दोहराना चाहूँगा। मतलब यह कि यदि इसपर हस्ताक्षर करनेवाला हाथ महाराजा साहबका था तो उस हाथको जिसने हस्ताक्षर करनेकी प्रेरणा दी, वह स्वय ईश्वर था। अपनी बुद्धिमती माताके साहसपूर्ण मार्ग-दर्शनके बावजूद, अस्पृश्यताको, जिसने त्रावणकोरमे और भी भयकर रूपसे अपनी जड़े जमा रखी थी, कलमके एक ही झटकेसे समाप्त कर देनेका अभूतपूर्व निर्णय लेते हुए युवा महाराजाका हाथ अवश्य ही काँप जाता। लेकिन जहाँ अकेले मनुष्यके लिए बहुत-से कार्य असम्भव होते है, वहाँ ईश्वरके लिए कुछ भी असम्भव नही है। अपने अन्दरके दिव्य स्वरके आदेशपर महाराजा साहबने बहादुरीके साथ कलम उठाई और सचिवोत्तम द्वारा तैयार किये गये घोषणा-पत्रपर अपने हस्ताक्षर कर दिये। तो मै चाहता हूँ कि आप इस घोषणाको एक ईश्वरीय देन समझे और इसको सफल बनानेके लिए उसी भावनासे कार्य करे जिस भावनासे कि यह घोषणा आपको भेट की गई है।

इस घोषणाका अर्थ मै तो यह लगाता हूँ कि इससे ऊँच-नीचका युगो-पुराना किन्तु धर्म-विरुद्ध भेद-भाव समाप्त हो जाता है। जो ईश्वर हमारा स्रष्टा है, उसके समक्ष हम सब सर्वथा समान है। ईश्वरके इस समतामय न्यायमे मनुष्य ही अहकार-वश विघ्न डालता है। महाराजा साहबने अस्पृश्यताके कलकको मिटा दिया है और अपने सभी प्रजाजनोके सामने अन्तिम रूपसे घोषित कर दिया है कि मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमे सबको समान अधिकार है। और जब मन्दिर-प्रवेशके विषयमे सब समान है तो स्वभावत. जीवनके अन्य सभी क्षेत्रोमे भी वे समान ही है। जैसाकि मै पिछले दो-तीन दिनोसे हर अवसरपर कहता आया हूँ, यह घोषणा हिन्दू-धर्मके सार से सर्वथा सगत है। हिन्दू-धर्मका वह सार बहुत सक्षेपमे, किन्तु बडे ही आकर्षक ढगसे, 'ईशोपनिषद्'के प्रथम मन्त्रमे प्रस्तुत किया गया है। मै आपमें से प्रत्येकसे उक्त उप-निषद् या कम-से-कम उसके प्रथम मन्त्रको पढनेका अनुरोध करता हूँ। यहाँ मै उस मन्त्रका केवल स्वतन्त्र अनुवाद ही दूँगा। उसका अर्थ यह है. ब्रह्माण्डकी प्रत्येक वस्तुमे, यहाँतक कि परमाणुओमे भी, हमारे शास्ता और स्रष्टा की सत्ता व्याप्त है। ऐसा कुछ नही है जिसमे ईश्वरका निवास न हो। इस सत्यसे स्वभावत वह सब फलित होता है जो ऋषिने इस मन्त्रके दूसरे हिस्सेमे कहा है। अर्थात्, सब-कुछ सर्वशक्तिमान् ईश्वरके चरणोपर अर्पित कर दो, या 'गीता'के शब्दोमे कहूँ तो सब-कुछ का त्याग करो। लेकिन त्यागका मतलब आत्मविनाश नही हो सकता, न होना ही चाहिए। इसलिए इसके साथ ही वह ऋषि या तत्त्वदर्शी यह भी कहता है कि त्याग या अर्पण करके उपयोग या उपभोग करो। लेकिन उसे लगा कि शायद उसने अब भी पूरी बात इतने स्पष्ट ढगसे नही कही है कि उसे कोई बच्चा भी समझ ले, इसलिए अन्तमे वह कहता है: "किसीकी सम्पदाको लोभकी दृष्टिसे मत देखो।" इसलिए हमारा उपयोग या उपभोग दो शर्तोंसे मर्यादित है। पहली शर्त तो यह है कि हमे किसी भी वस्तुको, यहाँतक कि अपने शरीरको भी, अपना नही समझना चाहिए, क्योकि

हमे हर वस्तुको अपने शास्ता, ईश्वरके चरणोपर अर्पित करना है। दूसरी शर्त यह है कि हमे दूसरोंकी चीजे चुरानी नही चाहिए। 'न चुराने'का मतलव केवल यह नही है कि हम अपने पडौसीकी कोई चीज न चुराये, बल्कि यह है कि हम उसकी ओर लोभकी दृष्टिसे भी न देखे। जो-कुछ हम खाते है या पहनते-ओढते है, अथवा जहाँ रहते है उसका यदि हम सचमुच उपभोग करना चाहते है तो हमे अपने मनमे यह वात निश्चित रूपसे बैठा लेनी चाहिए कि इन चीजोका केवल इतना ही महत्त्व है कि इनके सहारे जीवित रहकर हम अपने स्रष्टाका गुणगान कर सकते है। फिर हम ईश्वरकी सृष्टि या सन्तानके रूपमे यह समझने लगेगे कि हम जो-कुछ खाते-पहनते है या जहाँ रहते है वह हमारा नही, बल्कि ईश्वरका है, और यह सलाह ईश्वरकी सृष्टिके कुछ चुने हुए खास-खास प्राणियोको ही नही, वल्कि सवको दी गई है। विचार करनेपर आप देखेंगे कि इस मन्त्रका सवसे प्रमुख अश वह है जिसमे कहा गया है कि कण-कणमे भगवान् वसता है। इसलिए त्याग या अर्पणकी सलाह उसकी समस्त सृष्टिको दी गई है। इसलिए ऐसा नही समझना चाहिए कि इसमे कुछ थोडे-से लोगोको कोई आदेश दिया गया है। दरअसल इसमे एक सार्वत्रिक नियम या सत्य उद्घाटित किया गया है। जरा कल्पना कीजिए कि यदि हम सव पूरी निष्ठासे अपने अस्तित्वके इस महान् नियमके अनुसार जीवन व्यतीत करने लगे तो यह ससार कितना सुखमय हो जाये। फिर न कही कोई आपसी ईर्ष्या-द्वेष रह जायेगा और न पारस्परिक कलह। और तव जिनके पास — यदि ऐसा कहना ठीक हो तो कहूँगा — प्रभुकी कृपासे कुछ सम्पत्ति है वे उन लोगोकी खातिर जिन्हे उसकी जरूरत है, उस सम्पत्तिके न्यासी वन जायेगे। जो नियम मैंने आपको समझानेकी कोशिश की है, उसके अनुसार अधिक धन-सम्पत्तिवाले लोग उसका उपयोग केवल अपनी सीमित जरूरते पूरी करनेके लिए ही करेंगे। और चूँकि त्रावणकोरके महाराजाओमे स्पष्टतः अपने-आपको 'पद्मनाभदास' माननेकी परम्परा चली आ रही है, इसलिए आजका चलन यह है कि महाराजा साहव मन्दिरमे जाकर अपने-आपको प्रभुके चरणोमे अर्पित कर देते है और फिर उसके प्रतिनिधिकी हैसियत से उससे अपने प्रतिदिनके कार्योंके सम्वन्धमे निर्देश प्राप्त करते है। यह तो सच ही है कि ये निर्देश कोई इस तरह दिये या लिये नही जाते जिस तरह एक व्यक्ति दूसरेको कोई निर्देश देता है और दूसरा उसे स्वीकार करता है। लेकिन जैसा कि मैंने आपसे कहा, जिस प्रकार यह कार्य करनेकी प्रेरणा महाराजाको ईश्वरने दी, उसी प्रकार यदि वे विनम्रतापूर्वक और मनमे शुद्ध प्रार्थनाका भाव लेकर मन्दिरमे जाते है तो वहाँसे ईश्वरकी प्रेरणा लेकर लौटते है। इसलिए मै स्वयको या आपके किसी प्रकारके अन्धविश्वासमे डालना नही चाहता। और ऐसा-कुछ कहनेकी तो मै कल्पना भी नही कर सकता कि महाराजासे कोई चूक कभी हो ही नही सकती या उनसे निर्णयकी कोई भूल होना असम्भव है। मुझे नही मालूम कि उनसे कभी कोई निर्णयकी भूल हुई है तो कैसी भूल हुई है। लेकिन यह मानते हुए कि वे भी साधारण मर्त्य जन है और उनसे भी निर्णयकी भूल हो सकती है, इस सत्यको स्वीकार करना चाहिए कि उन्हे उक्त मन्त्रको अपने जीवनमे उतारनेका प्रयत्न करना है।

त्रावणकोरके राजघरानेमे इस परम्पराको माना जाता है कि महाराजा साहब अपने-आपको प्रभुके चरणोमे अर्पित करे ताकि अपने प्रतिदिनके कार्योके सम्बन्धमे उनसे कोई भूल न हो। खैर, महाराजा साहबके कार्य-व्यवहारके सम्बन्धमे सचाई चाहे जो भी हो, इस चीजका उपयोग यहाँ मैंने एक दृष्टान्तके तौरपर यह समझानेके लिए किया है कि भारतमे यह नियम हमपर किस प्रकार लागू होता है। चाहे जितने अपूर्ण रूपमे हो, यह नियम हमारे कार्यों और हमारे जीवनमे जाने-अनजाने अभिव्यक्त होना ही चाहिए। आपके मन्दिरमे जानेका मतलब इसके अलावा और इससे कम कुछ नही है। यदि आप इस भावनासे मन्दिरोमे प्रवेश करेगे तो प्रतिदिन आपको एक नया जन्म मिलेगा, आपका एक नवसस्कार होगा। आजतक हिन्दुओकी जो एक बहुत बडी सख्या त्याग और अर्पणके इस अधिकारसे वचित थी, उसे भी आजसे यह अवसर प्राप्त होगा। इस घोषणाने इस गम्भीर असगति या दोषको अब दूर कर दिया है।

इस घोषणापर आपका खुशी मनाना बिलकुल ठीक है। महाराजा साहब और महारानी साहिबाको अपनी ओरसे निष्ठापूर्ण बधाइयाँ देना आपका कर्त्तव्य था। लेकिन यह तो इस कोषणाके सम्बन्धमे आपको जो-कुछ करना है उसका आरम्भ-मात्र है। अब आपको इस घोषणाके सम्पूर्ण महत्त्वको, पूरे मर्मको समझना चाहिए। जो अवसर आपको मिला है, उसका आपको आध्यात्मिक उपयोग करना है, और मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आपने इस घोषणाके गम्भीर आध्यात्मिक स्वरूप को हृदयगम कर लिया तो शेष सब उसी प्रकार सहज ढगसे सम्पन्न हो जायेगा जिस प्रकार रातके बाद दिनका आना निश्चित रहता है। आपकी निराशाका शिशिर बीत चुका है, आशाका वसन्त आपके सामने है, और यदि आप इस वसन्तमे पल्लवित-कुसुमित होना चाहते है और इस घोषणाके फलका रसास्वादन करना चाहते है तो आप हाथपर-हाथ घरे बैठे नही रहे, बल्कि 'ईशोपनिषद्' के प्रथम मन्त्रका जो अर्थ मैंने आपको बताया है उसके अनुसार अपने जीवनको ढाले और साथ ही — यह बात भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है — आशाके इस सन्देशको उन लोगोके पास ले जाये जो इस घोषणाके मर्मको नही जानते। ऐसे लोग शायद हजारो होगे जो आप-जैसे भाग्यशाली नही है, उन लोगोके पास यह सन्देश ले जाना आपका कर्त्तव्य है। अतीतमे आपने चाहे जो-कुछ किया हो, लेकिन मुझे पूरी आशा है कि अब आप इलवा और पुलया आदि लोगोके साथ किसी प्रकारका भेद-भाव करनेकी वह घातक भूल नही करेगे, बल्कि इस बातका दृढ निश्चय कर लेगे कि आपका विचार और कार्य अब ऐसा होगा जिससे वे सब-के-सब उस धरातलतक पहुँच सके जहाँ स्वय आप है।

आप मेरी इस बातको सच माने कि हिन्दू-धर्मका सार उस एक मन्त्रमे निहित है जो मैंने आपको अभी बताया है। आप इस बातको भी सच माने कि जो-कुछ उस मन्त्रके अर्थसे असंगत है, वह हिन्दू-धर्मका अग नही है। जिसे लोग हिन्दू-धर्मके नामसे जानते है उसमें इस मन्त्रसे असगत दूसरी कौन-कौन-सी बाते है, इसका

कोई महत्त्व नही है। मैं तो आपसे इतना ही कहूँगा कि अगर इस मन्त्रमे आपका विश्वास है तो इससे आपकी ऊँची-से-ऊँची आत्मिक और मानसिक आकाक्षाकी भी तृप्ति हो जानी चाहिए।

पिछली बार त्रावणकोर-कोचीनसे गुजरते हुए मुझे कई इलवा भाइयोसे मिलनेका सुख प्राप्त हुआ था। उनमे से अनेकके मनमे हिन्दू-धर्म और हिन्दुओके प्रति बड़ी कटुता थी। उन्हे अपनेको हिन्दूके वजाय नास्तिक कहनेमे गर्वका अनुभव होता था। वे हिन्दू-धर्मग्रन्थोके रूपमे स्वीकृत पुस्तकोको जला देनेको तैयार थे। मैं जानता हूँ कि इस घोषणाने उनकी डगमगाती आस्थाको स्थिरता प्रदान की है। जिन लोगोने उस समय मुझसे बातचीत की थी वे इस वातकी साक्षी देगे कि तब उनके विक्षोभके प्रति मैंने सहानुभूति ही प्रकट की थी। वे मानते थे कि सुधारका रास्ता सवर्णोने रोक रखा है, इसलिए उनके अन्दर कटुता और नास्तिकता होना स्वाभाविक था। सवर्णोकी मान्यताओ और आचरणको हिन्दू-धर्मकी सही अभिव्यक्ति मानना उनके लिए लाजिमी था। लेकिन अब वे जानते है कि सवर्णोका हृदय-परिवर्तन हो गया है। उनका हृदय-परिवर्तन हुआ है, तभी तो मैं इतने सारे स्थानोमे गया हूँ, लेकिन सवर्णो की ओरसे कही भी कोई विरोध देखनेको नही मिला। इस तीर्थयात्रामे मैं दसियो हजार लोगोसे मिला हूँ, लेकिन उन्हे मैंने आपसमे कोई भेद-भाव वरतते नही देखा। उन जन-समुदायोमे यदि हजारो भूतपूर्व अस्पृश्य लोग शामिल थे तो हजारो तथा-कथित सवर्ण भी शरीक थे। लेकिन क्षण-भरके लिए यह मान भी ले कि सवर्णोके हृदयमे कोई परिवर्तन नही हुआ है, तो भी क्या फर्क पड़ता है। हमारे धर्मको तो इस वातसे कोई सरोकार ही नही होना चाहिए कि हमारे प्रति दूसरोका व्यवहार कैसा है। कारण, धर्मका स्रोत तो हमारे अन्दर बैठा हमारा ईश्वर है, और यदि हम अपने ईश्वरके प्रति सच्चे रहना चाहते है तो हम कभी भी उस धर्मका त्याग नही करेगे जो हमे उससे प्राप्त हुआ है। हमारे एक-एक कार्यके मार्गदर्शक, अधीश्वर और शास्ताके रूपमे ईश्वर जब हमारे साथ है, तो हम सारी दुनियाके विरोधके बावजूद अपने धर्म पर अडिग रह सकते है। और मैं यह कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि अभी मैंने आपको जिस मन्त्रका अर्थ बताया है, वह ससारके किसी भी व्यक्तिकी ऊँची-से-ऊँची आकाक्षाकी तुष्टि करनेमे समर्थ है। मैं यही कामना करता हूँ कि वह आपकी भी आकाक्षा तुष्ट करे और ईश्वर आपको उसके अनुसार जीवन वितानेकी शक्ति प्रदान करे।

धन्यवाद।

[अग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ १८९-९५।

२८८. भाषण: सार्वजनिक सभा, वाईकोममें[1]

१८ जनवरी, १९३७

यह दूसरी वार और सो भी ऐसे शुभ प्रसगपर आपके बीच आकर मुझे कितनी प्रसन्नता हो रही है, मेरा खयाल है यह मेरे कहनेकी नही, आपके कल्पना करने की वात है। अभी कुछ वर्ष पूर्व इस भव्य मन्दिरको जानेवाली सडको तक को अवर्ण हिन्दुओके लिए खुलवानेके लिए भी कठिन सघर्ष करना पड रहा था। पुण्यस्मरण कृष्णस्वामी तथा केलप्पनकी सहायतासे भले आदमी माधवन्ने उस सघर्षकी नीव डाली थी। मेरे लिए — और आपके लिए भी — यह वडे दु खका विषय है कि आज हमारी खुशियोमे शामिल होनेके लिए न माधवन् हमारे वीच है और न कृष्णस्वामी।

इन दिनो मै तीर्थयात्रापर हूँ — त्रावणकोरके अपने इस दौरेको मैने तीर्थयात्रा ही कहा है। इस तीर्थयात्राके दौरान चन्द दिनोमे ही मै जितने मन्दिरोमे गया हूँ, मुझे याद नही आता कि इससे पहले पूरे जीवनमे भी मै उतने मन्दिरोमे गया होऊँगा, और अभी घटे-भरमे मुझे यहाँके मन्दिरके चारो ओर खडी उन दीवारोके अन्दर जानेका भी सौभाग्य प्राप्त होगा जो तब मुझे डरावनी-सी लगती थी। यह सब-कुछ इसलिए हो पाया कि महाराजा साहब और महारानी साहिबाने पद्मनाभ स्वामीकी प्रेरणासे इस पवित्र कार्यको सम्पन्न करनेका सकल्प कर लिया। लेकिन यदि त्रावणकोरके सवर्ण और अवर्ण इस घोषणाकी अपेक्षाओको पूरा करनेके लिए यथेष्ट उत्साह नही दिखाये तो घोषणा व्यर्थ भी सावित हो सकती है। सवर्ण और अवर्ण आजकी तरह मन्दिरोमे जाते रहे, इतना ही काफी नही है। अभीतक तो लोग मन्दिरोमे अपन अन्तरके विश्वाससे प्रेरित होकर जानेके वजाय अधिकाशत एक औपचारिकताके निर्वाहके खयालसे ही जाते रहे है। उन्होने अपने मनमे कभी इस बात पर विचार नही किया था कि उन्हे मन्दिरोमे जानेकी आवश्यकता क्यो है। मोटे तौरपर पूरे भारतमे मन्दिरोसे पुरुषोकी अपेक्षा स्त्रियोका सम्बन्ध अधिक रहा है। वे वहाँ मन्दिरोके देवताओसे कोई-न-कोई कृपा, वरदान प्राप्त करनेकी कामना लेकर जाती है। लेकिन अब अगर आपने इस घोषणाको और इसके असली मर्मको ठीक-ठीक समझ लिया है तो मै आपके मात्र एक औपचारिकताके निर्वाहके खयालसे मन्दिरोमे जानेसे सन्तुष्ट नही होनेवाला हूँ, बल्कि मै आपसे इससे बहुत अधिककी अपेक्षा रखता हूँ। मेरे विचारसे तो इस घोषणाके द्वारा त्रावणकोरके प्रत्येक हिन्दूको — चाहे वह सवर्ण हो या अवर्ण — आत्मशुद्धिके लिए आमन्त्रित किया गया है।

१. यह सभा सत्याग्रह आश्रमके प्रांगणमें हुई थी। महादेव देसाईके अनुसार सभामें २५ हजारसे अधिक लोग उपस्थित थे।

जिस प्रकारसे और जिस ईश्वरकी पूजा सवर्ण स्वयं करते है उसी प्रकारसे और उसी ईश्वरकी पूजा करनेका अपने सहधर्मियोका अधिकार आजसे हजार — या शायद हजारो — वर्ष पूर्व सवर्णोंने ही छीन लिया था। और इस बर्बरतापूर्ण अन्यायको — चाहे जिस उद्देश्यसे भी हो — उचित ठहरानेके लिए मानव-समाजके एक सम्पूर्ण वर्गको उन्होने अस्पृश्य करार दे दिया। खैर, अब तो कलमके एक ही झटकेमे यह पापमय भेद-भाव मिटा दिया गया है। सो आप किसी हदतक अवर्ण हिन्दुओके प्रति किये गये अन्यायोका मार्जन कर सके, इसके लिए आपको कुछ ऐसा काम करना है जिससे उन्हे लगे कि आप उनसे ऊँचे, उनसे बडे नही है और आप जो इतने वर्षोंसे उनकी तुलनामे अपनी उच्चताका दावा करते आये है वह गलत था। इसलिए मै सभी सवर्णोंसे मुक्तिके इस भव्य सन्देशको अवर्णोंके प्रत्येक घरतक पहुँचानेकी अपेक्षा करूँगा। यह काम आसानीसे हो सकता है और आप इसे बिना-किसी विशेष प्रयासके कर सकते है। केवल एक शर्त अनिवार्य है। आपको अपने हृदयकी गहराईसे यह मानना चाहिए कि यह घोषणा आवश्यक थी, और प्रत्येक हिन्दूको — चाहे वह सवर्ण हो या अवर्ण, स्त्री हो या पुरुष — अपना व्यक्तिगत कर्त्तव्य मानकर कोशिश करके कुछ अवर्णोंसे मिलना चाहिए, उन्हे इस घोषणाका सन्देश सुनाना-समझाना चाहिए और उनको मन्दिरोमे ले जाना चाहिए। और चूँकि व्यक्ति या राष्ट्रके आध्यात्मिक पुनरुत्थानमे जीवनके आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक आदि सभी क्षेत्रोका उत्थान अनिवार्यत शामिल है, इसलिए इन क्षेत्रोमें भी अब उत्थान होना निश्चित है। लेकिन अगर आप इस भ्रममे पडे हो कि इस घोषणासे ही यह सब हो जानेवाला है, तो यह आपकी भारी गलती है।

मै समझता हूँ कि जहाँतक अस्पृश्यताका सम्बन्ध है, यह घोषणा जारी करके महाराजा साहब और महारानी साहिबाने तो अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया है। यह एक जानी-मानी बात है कि इन वर्गोंके लोगोकी शिक्षा-दीक्षामे राज्यकी ओरसे आर्थिक सहायता प्रदान की जायेगी। लेकिन जिस पुनरुत्थानकी तसवीर मेरे मनमें उभरी है, वह इस सबसे कभी साकार होनेवाला नही है। उसके लिए जरूरी यह है कि सवर्ण हिन्दू, वर्गत., हृदयसे और खुशी-खुशी सहयोग करे। इसलिए जब मैने सुना — पता नही, इसमे कितनी सचाई है — कि कुछ स्त्रियाँ, बल्कि पुरुष भी इस घोषणाके बाद उन मन्दिरोमे जानेमे हिचक रहे थे जिनमे वे पहले नियमित रूपसे जाते थे, तो मुझे कितना दु.ख हुआ, यह आप समझ सकते है। अगर यहाँ भी ऐसे द्विधाग्रस्त लोग हो तो उनके मनकी द्विधाको दूर करनेके लिए मै आपके सामने एक ऐतिहासिक तथ्य रखना चाहता हूँ। यह बात तब की है जब मैं वाइकोम-सत्याग्रहके सिलसिलेमें यहाँ आया था। आपमे से कुछ लोगोको शायद याद होगा कि तब ऐसे कई शास्त्रियोसे मैने गम्भीर चर्चा की थी जो इन मन्दिरोकी चारदीवारीके अन्दर ही रहते थे और जिनका — जहाँतक मुझे याद है — इन मन्दिरोसे किसी-न-किसी प्रकारका सम्बन्ध भी था। आज मुझे उस चर्चाका जितना स्मरण है, उसके अनुसार मै आपको उसका बिलकुल ठीक-ठीक विवरण देनेकी कोशिश कर रहा हूँ। उनका

कहना था कि मन्दिरोतक जानेवाली सड़कोपर भी अवर्ण हिन्दुओका चलना निषिद्ध है, यद्यपि गैर-हिन्दुओंपर यह निषेध नही है। अपनी इस मान्यताके समर्थनमें उन्होने 'शकर स्मृति' नामका एक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। मैंने तो इस 'स्मृति'का नाम पहले कभी सुना ही नही था—पहले-पहल तभी सुना जब वाइकोममे उन लोगोने मेरे सामने उसका उद्धरण दिया। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जब मैंने उसका अनुवाद करवाया तो पाया कि उसमे कही भी ऐसा कुछ नही है जिसके आधारपर अवर्णोका इन सड़कों पर चलना निषिद्ध ठहराया जा सके। लेकिन मैं यह स्वीकार करता हूँ कि उनकी बातका समर्थन 'शकर स्मृति' करती है, इतना विश्वास करना ही उनके लिए काफी था। बहरहाल, उन्ही दिनो जब मैं तत्कालीन पुलिस आयुक्तके जरिये बड़ी महारानी साहिबाके साथ इस विषयपर वार्ता चला रहा था, मैंने इन शास्त्रियोंसे एक प्रश्न पूछा. मान लीजिए वार्ताके परिणामस्वरूप महारानी साहिबा इन सड़कोको अवर्ण हिन्दुओंके लिए खोल देनेका आदेश जारी कर देती हैं, तब आप लोगोका रवैया क्या होगा? इसपर बिना किसी झिझकके वे बोल उठे, "यह तो एक बिलकुल अलग बात होगी। किसी हिन्दू राजा या रानीको ऐसा आदेश जारी करनेका पूरा अधिकार है, क्योंकि उनके आदेश तो स्मृति-वचनके समान ही अनुल्लघनीय होते हैं।" उनका कहना था कि यह बात हिन्दू-धर्ममें निहित है, क्योकि हिन्दू राजा हिन्दू-धर्मके संरक्षक हैं और उन्हे ऐसे आदेश जारी करनेका पूरा अधिकार है जो श्रुतियोके विरुद्ध न हो। इसपर मैंने पूछा कि क्या यही बात मन्दिरोंके द्वार अवर्णोके लिए खोले जानेपर भी लागू होती है। उन्होने कहा, "बेशक" और मैं आपको बता दूं कि यह जवाब केवल इन्ही शास्त्रियोंने नही दिया। मैंने कोचीन और तमिल-नाडुके शास्त्रियोंसे भी यही सवाल पूछा और उनका जवाब भी यही था। सच तो यह है कि 'स्मृतियो' के ऐतिहासिक विकासका, बल्कि अठारह पुराणोके विकासका भी यही रहस्य है। उन सबका सृजन सम्बन्धित युगोकी माँगपर हुआ। उनमे बराबर शाश्वत सत्योको ही प्रकट नहीं किया गया है। शाश्वत सत्यका प्रतिपादन तो, जैसा कि मैं इन दिनो कहता रहा हूँ, 'ईशोपनिषद्'के एक मन्त्रमे हुआ है। मैं कहूँगा —और मुझे ऐसी कोई आशंका नही है कि मेरे इस कथनका कोई भी युक्तिपूर्वक खण्डन कर सकता है—कि इस मन्त्रमें विश्वास रखनेवाला प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण रूपसे, सच्चे अर्थोंमे हिन्दू है, और अगर वह इस मन्त्रकी शिक्षापर चलता है तो उसे इस जीवनमें भी और इस जीवनके बाद भी मुक्तिकी प्राप्ति होगी। सच्चे आनन्दका जो मार्ग 'ईशोपनिषद्'के इस प्रथम मन्त्रमें निर्देशित किया गया है, मेरी जानकारीमें, उससे श्रेष्ठ मार्ग अन्य कोई नही है। और अगर कोई हिन्दू राजा इस मन्त्रके गूढार्थो और इसकी शिक्षाके अनुरूप कोई घोषणा जारी करता है—जैसा कि त्रावणकोरके महाराजा साहबने किया है—तो वह ऐसे ही अधिकृत, धर्मसम्मत वचनकी कोटिमें मानी जायेगी। जिन लोगोको 'ईशोपनिषद्'का ज्ञान है उनसे मै कहता हूँ कि अगर वे चाहे तो बतायें कि क्या यह घोषणा किसी भी तरहसे इस मन्त्रसे असंगत है। यदि वे प्रार्थनापूर्ण भावसे अपने मनको टटोलकर देखें, तो वे पायेंगे कि इस

मन्त्रकी अपेक्षाओंको पूरा करनेके लिए जो-कुछ बहुत पहले किया जाना चाहिए था, वही इस घोषणाके द्वारा अब किया गया है। इसलिए मैं अपने पूर्ण गम्भीरताके साथ सभी द्विधाग्रस्त स्त्री-पुरुषोंसे यह कहना चाहता हूँ कि उनके मनमें जो भी द्विधा हो उसे वे त्याग दें और इस घोषणाका हृदयसे स्वागत करें, इसकी अपेक्षाओंको प्रसन्नतापूर्वक पूरा करें। इस विषयकी चर्चा अब और नहीं करूँगा, क्योंकि अब मैं एक दूसरा विषय आपके सामने लाना चाहता हूँ। इस विषयके सम्बन्धमें मैं अन्तमें इतना ही कहूँगा कि मुझे आशा है, आप इस घोषणाका बेमनसे नहीं बल्कि पूरे मनसे समर्थन करेंगे और आप इसको शब्दों और आन्तरिक भावना दोनों दृष्टियोंसे कार्यान्वित करेंगे।

अब मैं कल्पनाके पंखपर आप सबको कोचीन ले चलना चाहता हूँ। आज मैं कोचीनकी सीमाके यथासम्भव अधिक-से-अधिक निकट खड़ा हूँ, और मुझे मालूम हुआ है कि नदीके पार एक मीलसे भी कम की दूरीपर कोचीन राज्य स्थित है। मेरा खयाल है, पिछली बार जब मैं वाइकोम आया था, कोचीनके रास्तेसे ही आया था। लेकिन इस बार चूँकि मैं कोचीन नहीं जा रहा हूँ, इसलिए मैं समझता हूँ कि यहाँ अगर मैं कोचीनके बारेमें भी, जिसका त्रावणकोरसे इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है, दो शब्द कहूँ तो कोई हर्ज नहीं है। दोनों राज्योंकी परिस्थितियाँ एक-जैसी हैं, दोनोंके रीति-रिवाज समान हैं। सुना है, कोचीनके महाराजाको वाइकोम मन्दिरके सम्बन्धमें कुछ अधिकार और विशेष सुविधाएँ भी प्राप्त हैं। अपने मनकी यह बात मुझे आपको बता ही देनी चाहिए कि कोचीनके महाराजा साहब त्रावणकोर नरेशके चरण-चिह्नोंका अनुसरण करें, इसके लिए मैं बहुत व्यग्र हूँ। मैं महाविभवको किसी अटपटी स्थितिमें नहीं डालना चाहता। मैं तो खुद ही बूढ़ा आदमी हूँ — अब किसी भी दिन मेरे लिए यमराजका बुलावा आ सकता है। कोचीनके महाराजा साहब मुझसे छः साल बड़े हैं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जहाँ मुझे इस घोषणासे और त्रावणकोरमें चल रहे समारोहोंसे असीम प्रसन्नता हो रही है, वहाँ प्रत्येक सवर्ण हिन्दूके सिर आज जो दायित्व आ पड़ा है उसका स्मरण करके मेरा मन परेशान हो उठता है। मैंने 'सवर्ण हिन्दू' कहा, इसका मतलब यह नहीं कि आजतक उत्पीड़ित रहनेवाले अवर्ण हिन्दुओंके सिर कुछ कम दायित्व आया है। बात सिर्फ इतनी है कि अभी मैं जो-कुछ किये जानेकी अपेक्षा करता हूँ, वह सब सवर्ण हिन्दुओंको करना है और केवल वही कर सकते हैं। मैं चाहता हूँ कि आप कोचीनके महाराजा साहबके प्रति सम्मानपूर्ण और प्रार्थनामय रुख बनाये रखें। लेकिन, उनकी उम्र और पदके प्रति यथेष्ट सम्मानका भाव रखते हुए यदि हम उन्हें अपनी इच्छासे अवगत नहीं कराते तो हम सत्यके साथ दगा करेंगे, उस धर्मके साथ छल करेंगे जिसके अनुयायी हम भी हैं और महाराजा साहब भी। मेरा दावा है कि मैंने हिन्दू-धर्मकी मुख्य प्रवृत्तियोंको समझ लिया है और पिछले ५० वर्षोंसे, मुझ-जैसे अपूर्ण प्राणीके लिए जहाँतक सम्भव है वहाँतक, मैं उनके अनुरूप आचरण कर रहा हूँ। जब मैंने प्रत्येक मंचसे बार-बार यह कहा है कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्मका कलंक है तो मैंने एक-एक

शब्दको तोलकर वैसा कहा है, और अस्पृश्यताके प्रति मेरे विरोधका आधार हिन्दू-शास्त्र ही है, और कुछ नही। इसलिए मै कोचीनके महाराजा साहबसे यह निवेदन करनेकी धृष्टता करता हूँ कि अपनी माताके मार्गदर्शनमे त्रावणकोरके महाराजा साहबने जो-कुछ किया है, वह मात्र एक युवा नरेशके कुछ नया कर दिखानेके उत्साह का परिणाम नही है। मै वास्तवमे ऐसा मानता हूँ कि जब त्रावणकोरके विषयमे शेष सब-कुछ भुला दिया जायेगा तब भी भावी पीढियाँ महाराजा साहबके इस एक कार्यका स्मरण कृतज्ञतापूर्वक करेगी। मै मानता हूँ कि इस घोषणाका आरम्भ और अत त्रावणकोरकी सीमाओंमें बन्द नही रहना चाहिए।

अब मै आपको एक छोटी-सी राजकी बात बताऊँ। मै चाहता हूँ कि आप कल्पनाके पखपर कोचीन चले चले। इसका मतलब यह है कि आपके आचरणका सुप्रभाव कोचीनके महाराजा साहबपर पडे। प्रश्न यह है कि यह काम किया कैसे जाये। उत्तर यह है कि आप अपनी प्रार्थनापूर्ण और धर्ममय वृत्तिसे, जिसकी अभिव्यक्ति आपके व्यक्तिगत आचरणमें होनी चाहिए, महाविभव महाराजा साहबको प्रभावित कर सकते है। मै आपसे कोचीन-नरेशके पास प्रार्थना-पत्र भेजनेको नही कहता। खुद कोचीनके लोग चाहे तो प्रार्थना-पत्र भेजे, लेकिन आप त्रावणकोरके निवासी इससे कुछ बडा काम कर सकते है। बुद्धिके धरातलपर समझाने-बुझानेसे वृद्ध लोग अपना आग्रह कभी नही छोडते। आपको बता दूं कि बहुत-से नौजवान मुझे अपने विचारोसे सहमत करनेके लिए मेरे पीछे पडे हुए है, और वे पाते है कि ऐसा करना उनके लिए आसान नही है। लेकिन वृद्ध लोगोके हृदय बढती हुई उम्रके साथ अधिकाधिक सवेदनशील होते जाते है और इसलिए जब भी युवक या युवतियाँ मुझसे कुछ करवाना चाहती है तो उन्हे बुद्धिके रास्ते नही, बल्कि हृदयके रास्ते मुझतक पहुँचना पडता है। यही बात कोचीनके महाराजा साहबपर भी लागू होनी चाहिए। यदि आप किसी तरह महाराजा साहबके हृदयको छू सकते है, उन्हे प्रभावित कर सकते है तो अखबारी प्रचारके द्वारा नही, बल्कि इस घोषणासे प्राप्त स्वतन्त्रताके नये आयामोके अनुसार अधिक अच्छे हिन्दू बनकर, यह दिखाकर कि अवर्णोंको फिरसे मन्दिरोमे प्रवेशका अधिकार दे दिये जानेसे आप सवर्णोंकी धार्मिक भावनामें रच-मात्र भी कमी नही आई है और न मन्दिरोकी पवित्रता ही किसी तरह कम हुई है।

मैंने अकसर यह कहा है — और ऐसा मानता तो आया ही हूँ — कि हम अपने अस्पृश्य भाइयोकी जो अपराधपूर्ण उपेक्षा करते आ रहे है, उसके कारण मन्दिरोकी पवित्रता नष्ट होती जा रही है। इस घोषणाने आप पर जो दायित्व डाला है, उसे आप यदि समझ ले तो मेरी तरह सहज ही आप भी यह मानने लगेंगे कि आपके जीवनमे मन्दिरोका जो महत्व है, उसकी ओरसे आप उदासीन नही रह सकते, चाहे आप मन्दिरोमे जाये या न जाये। आपमे जो अच्छेसे-अच्छे लोग है, वे यदि मन्दिरोमे जाना जारी रखेगे और मन्दिरोके पुनरुद्धार तथा अवर्णोंके जीवनको पवित्र बनानेकी ओर ध्यान देंगे तो कोई भी महाराजा उस स्थितिसे प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। मै आपको बता दूं कि अगर आपने

इस घोषणाके मर्मको सचमुच समझ लिया है तो त्रावणकोरमे हिन्दुओंके जीवनमे एक ऐसी मूक क्रान्ति आयेगी जिसका वेग रोकना कठिन होगा और जो अपने प्रवाहमे न केवल कोचीन राज्यको, बल्कि हिन्दुस्तानके कोने-कोनेको समेट लेगी।

ईश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है कि जिस प्रकार उसकी कृपासे माधवन् तथा स्वर्गीय कृष्णस्वामी और केलप्पन-जैसे कार्यकर्त्ताओने यहाँ त्रावणकोरमे मन्दिर-प्रवेश आन्दोलनकी नीव डाली, उसी प्रकार अब उसकी अनुकम्पासे वाइकोम हिन्दू-धर्मके शुद्धिकरणकी भी नीव डाले और इस तरह कोचीनके महाराजा साहबको इस बातके लिए प्रेरित करे कि वे अपने राज्यके सभी मन्दिरोके द्वार हरिजनोंके लिए खोलकर, त्रावणकोरके महाराजा साहबके समान ही, हिन्दू-धर्मकी महान् सेवा करनेका श्रेय प्राप्त करे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ६-२-१९३७

२८९. भेंट: वाइकोम मन्दिरके एक न्यासीको[1]

[१८ जनवरी, १९३७][2]

मै मन्दिर नही जाता रहा हूँ, लेकिन अब जब कि अचानक मुझे मन्दिरमे जानेकी छूट मिल गई है, मुझे इसके प्रति एक खास खिंचाव महसूस हो रहा है। मन्दिरके प्रागणमे अश्वत्थ वृक्षके नीचे हुई प्रार्थना-सभामे जो दिव्य शान्ति छाई थी वह मुझे लोगोको मन्दिरोकी ओर आकर्षित करनेके नये उपाय ढूँढनेको प्रेरित कर रही है। मेरा मन्दिरमें जाना कोई बेमतलब नही है। जीवनकी इस उपयुक्त घडीमे मुझे जो यह सुयोग मिला है, इसे मै एक पावन वस्तु मानता हूँ।

प्रश्न: क्या आप पूजाकी विधिके बारेमें कुछ कहना चाहेंगे?

उत्तर. मै उसकी आलोचना तो नही करूँगा। यह नई चीज मेरे लिए ऐसी नवीनता लेकर आई है जिसने मुझे विनयसे भर दिया है। इसकी ओर मै आलोचककी दृष्टिसे देखनेको तैयार नही हूँ। एक बात जरूर मैंने लक्ष्य की है — वह यह कि पुजारियोमे वह समझदारी और भक्तिभाव नही है जो अपेक्षित है।

[अंग्रेजीसे]
द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ ६६-६७।

१. जिस न्यासीसे गांधीजीकी बातचीत हुई थी, उसने पहले हरिजनोंके लिए मन्दिरोंके द्वार खोले जानेका विरोध किया था। अब वह, जो-कुछ हुआ था, उसपर अपना सन्तोष व्यक्त करने आया था।
२. इस तारीखको गांधीजी वाइकोममें थे।

२९०. भाषण : रट्टुमानूरमें

११ जनवरी, १९३७

संस्कृतमें, चुने हुए सुन्दर शब्दोंमें लिखे, आपके मानपत्र और सिनकोनाकी छालके इस कपड़ेके उपहारके लिए मैं हृदयसे आपका आभारी हूँ। मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैं इस कपड़ेको धारण करने जा रहा हूँ। एक बात तो यही है कि इतना महँगा कपड़ा मैं धारण नही कर सकता। लेकिन ग्रामोद्योगके नमूनोंका जो संग्रहालय हमने मगनवाडीमें स्थापित किया है, उसकी शोभा यह जरूर बढायेगा।

जिस समय लोग मुझे घुमाकर यह मन्दिर दिखला रहे थे, उस समय जब मैं इसके केन्द्रीय हिस्सेमें पहुँचा तो उन्होंने मेरा ध्यान एक पुलया लडकेकी ओर दिलाया। वह लडका निस्संकोच मेरे साथ जीनेपर चढ़ गया। कुछ ही महीने पहले मैं यह सोच भी नहीं सकता था कि मेरे जीवन-कालमें यह बात सम्भव है। लेकिन जो बात मनुष्यके लिए प्राय. असम्भव होती है, उसीको ईश्वर सहज ही सम्भव बना देता है। जैसा कि मैंने पिछली रात कहा था और अन्य अनेक सभाओंमें कहा है, इस घोषणामें मुझे महाराजा साहबके माध्यमसे ईश्वरकी प्रेरणा काम करती दिखती है। मनुष्यके रूपमें वे चाहे जितने उच्च पदपर आसीन हों, आज मैं त्रावणकोरमें चारो ओर जो चमत्कार देख रहा हूँ वह चमत्कार वे नही कर सकते थे। अगर वे अपनी प्रजाकी भावनाओंका खयाल न रखनेवाले सर्वथा निरकुश शासक होते, तो वे ऐसी घोषणा तो जारी कर सकते थे, लेकिन लोगोंके हृदयपर उसका प्रभाव उससे कोई अधिक नही होता जितना कि अगर यह घोषणा मैं आपके पास भेज देता तो होता। उस हालतमें उनकी घोषणा दसियो हजार सवर्णोंको तथाकथित अवर्णोंके साथ निस्संकोच मिलने-जुलने और उनके साथ श्रद्धामय भावनासे मन्दिरोंमें जानेको प्रेरित नही कर पाती। यह हृदय-परिवर्तन — और इसे मैं हृदय-परिवर्तनके अलावा और कोई नाम नही दे सकता — केवल ईश्वरकी कृपासे ही हुआ है। अभी कुछ ही वर्ष पहले तो मैं यहाँ आया था। तब मैंने हजारो लोगोंके कठोरतासे भरे चेहरे देखे थे और लाख कोशिश करनेपर भी मैं उनको अस्पृश्यताके गढ़में से टस-से-मस नही कर पाया था। तब वह गढ़ कठोरतम लोहेसे भी अधिक कठोर जान पडता था। और अगर ईश्वरमें मेरी जीवन्त श्रद्धा न होती तो मैं तो कभी भी आपके हृदयको छू सकनेकी आशा खो बैठता। लेकिन स्पष्ट है कि अभी चमत्कारोंका युग समाप्त नही हुआ है। आज मैं उन्हीं कठोर हृदयोंको पिघलकर मोम बना देखता हूँ। पिछली रात मैं एक नम्बूदिरी शास्त्रीसे मिला। वाइकोम-मन्दिरसे उनका निकटका सम्बन्ध है। उनसे बातचीत करते हुए मैंने लक्ष्य किया कि ये तो वही सज्जन हैं जिनसे वाइकोमके मन्दिर-प्रवेश सत्याग्रहके समय मेरा

वाद-विवाद हुआ था। मैंने उनसे पूछ भी लिया कि हमारे बीच उस समय जो बात-चीत हुई थी वह आपको याद है न। मेरा मतलब उसी बातचीतसे है जिसका विवरण मैंने कल शामके अपने भाषणमें दिया है। खैर, तो इन चन्द वर्षोमे ही उनका हृदय त्रावणकोरके इस [घोषणा-रूपी] सूर्यके सामने वर्फके समान पिघल गया, और पिछली रात हम-दोनो दो अलग-अलग दृष्टिकोणोका पक्ष-पोषण करनेके बजाय एक ही साथ इस घोषणापर सरकारको बधाइयाँ दे रहे थे।

लेकिन बधाइयाँ देना ही काफी नही है। अगर आप महाराजा साहब और महारानी साहिबा दोनोको बधाई न देते तो यह बहुत बुरी बात होती। ऐसे महान अवसरपर आप हजारोकी सख्यामे एकत्र होकर बिना किसी भेद-भावके मन्दिरमे प्रवेश करे, यह भी काफी नही है। उल्लासका यह प्रदर्शन, सवर्णो और अवर्णोके हृदयोका यह सगम क्षणिक उत्साहका विषय नही होना चाहिए। इस सिलसिलेको दुगनी शक्तिके साथ कायम रखना चाहिए, ताकि त्रावणकोरको ऐसा राज्य बतानेका दुर्भाग्य किसीको प्राप्त न हो जिसमे ऐसे लोग रहते है जिनको छूना, देखना या पास फटकने देना पाप समझा जाता है। पुलयो और परयोपर लिखा गया साहित्य अतीतकी वस्तु बन जाना चाहिए; अगर उसका कोई स्मरण करे भी तो अतीतके अवशेषोके ही रूपमे करे। और आप सच मानिए, अगर जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमे यह परिवर्तन सम्पादित नही किया गया, तो अपने उद्देश्यकी दृष्टिसे यह घोषणा विफल मानी जायेगी। महाराजा साहब और महारानी साहिबाने तो अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया है। अब यह तो त्रावणकोरके आप सवर्ण स्त्री-पुरुषोका काम है कि आजतक हम जिन्हे समाज-बहिष्कृत कर सताते आये है, उनके पास जाकर उनके साथ भाईचारा कायम करे और उन्हे अपने परिवारके सदस्योकी तरह अपनाये। आप इस घोषणाको स्वीकार कर रहे है तो वह सच्ची, हार्दिक और पूरी ईमानदारीसे दी गई स्वीकृति होनी चाहिए — ऐसा नही कि आप मनमे कुछ और भाव रखे और ऊपरसे अपनी स्वीकृति दे दे। इस घोषणाको कोई व्यर्थका कागजका टुकडा सिद्ध नही होने देना है। यह घोषणा इसलिए जारी भी नही की गई है कि इसकी कोई ऐसी गति हो। महाराजा साहब और महारानी साहिबा तथा दीवान साहबसे मैंने बातचीत की है। दोनो ओरसे कोई दुराव नही था। मैंने भी अपनी बात दिल खोलकर कही और उन्होने भी। इस बातचीतमें मैंने पाया कि वे चाहते है, इस घोषणाको पूर्ण रूपसे कार्यान्वित किया जाये। इसलिए इसे आप हिन्दू-धर्मको शुद्ध बनानेके लिए किया गया सच्चा भगीरथ प्रयत्न माने। शुद्धिकरणकी यह प्रक्रिया किसी एक व्यक्तिका काम नही है। यह तो यहाँ उपस्थित आप लोगोमे से प्रत्येकका काम है। ईश्वर आपको इस घोषणाके पीछे छिपे उद्देश्यको पूरा करनेकी शक्ति दे।

[अंग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ २०५-७।

२९१. भाषण: कुमारनेल्लूरमें[1]

१९ जनवरी, १९३७

आज सुबह इस मन्दिरमे आकर और यहाँ जो-कुछ देखनेको मिला है उसे देखकर मुझे एक विशेष प्रकारके आनन्दकी अनुभूति हो रही है। यह मनुष्यको सहज ही आध्यात्मिक ऊँचाईपर ले जानेवाला प्रसग है और इसकी उम्मीद मै पहलेसे ही कर रहा था। लोगोने मुझे बताया था कि यह सबसे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण निजी मन्दिरोमे से है, यह सम्पूर्ण रूपसे नम्बूदिरियोकी सम्पत्ति है, और लोगोका खयाल था कि जब इस मन्दिरके द्वार हरिजनोके लिए खोल दिये जायेंगे, तब हरिजनोके मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें करनेको कुछ रह ही नही जायेगा। लेकिन यहाँ आकर मैंने जो-कुछ देखा उससे जितनी खुशी अन्यथा होनी चाहिए थी, उससे बहुत अधिक खुशी हुई। यहाँ मेरे पीछे मन्दिरके न्यासी महोदय बैठे हुए है। ये मुझे बड़े स्नेहसे मन्दिर दिखाने ले गये। यह सौजन्य भी अप्रत्याशित नही था, क्योंकि इस पूरे दौरेमे इस प्रकारके व्यक्तिगत स्नेहके अनुभवका विरल सौभाग्य मुझे बराबर मिलता रहा है। लेकिन जिस बातको देखकर मेरा हृदय हर्षसे पुलकित हो उठा वह यह थी कि मुझसे भी पहले इन्होने अवर्णोको मन्दिरमे प्रवेश करनेको आमन्त्रित किया। और इनके इस कार्यमे कोई कृत्रिमता नही थी, बल्कि वह बिलकुल स्वाभाविक था। मेरी तीर्थयात्राके इन सात दिनोमें ऐसा कही देखनेको नही मिला। बेशक, जहाँ ऐसा नही किया जाता, वहाँ भी मुझे इसकी कमी खलती नही, क्योकि अवर्ण लोग, या जिस नामसे उन्हे मै प्यारसे सम्बोधित करता हूँ उसका प्रयोग करूँ तो कहूँगा कि हरिजन लोग, सब जगह बेरोकटोक दूसरोके साथ घुलते-मिलते दिखाई देते है, और उन्हे मन्दिरोमें प्रवेशको प्रेरित करनेके लिए इससे अधिककी जरूरत भी नही है। लेकिन यहाँ यह देखकर मैं बडा प्रभावित हुआ कि हमारे मित्र ये न्यासी महोदय तो तभी सन्तुष्ट हो पाये जब इन्होने सकोच करते अवर्णोको आगे लाकर बिलकुल मेरी आँखोके सामने खड़ा कर दिया। उस समय मुझे लगा कि इस घोषणाको कार्यान्वित करनेका सचमुच यही उचित तरीका है। घोषणामें यह नही कहा गया है कि अबतक अहंकारमे चूर रहनेवाले नम्बूदिरियोको अवर्णोको बाँह पकडकर आगे लाना चाहिए और मन्दिरोंमे उन्हे प्रमुख स्थान देना चाहिए। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि घोषणाकी भावना उस सबकी अपेक्षा रखती है जो इन भाईने आज सुबह किया है। लेकिन कोई भी राजा अपनी प्रजाके हृदयपर

१. यहाँ नम्बूदिरियोंके एक लगभग दो हजार वर्ष पुराने निजी मन्दिरके द्वार हरिजनोंके लिए खोले जा रहे थे। उस अवसरपर गांधीजीको विशेष रूपसे आमन्त्रित किया गया था।

तो जबरदस्ती कोई आदेश थोप नही सकता। हृदयकी प्रतिक्रिया तो स्वभावत अपने सहज रूपमे ही प्रकट होगी। इन मित्रके इस कार्यमे, जो इनके लिए भ्रातृत्वकी भावनाकी अभिव्यक्तिका एक स्वाभाविक तरीका-भर था, मुझे इस घोषणाकी भावनाका सर्वथा उचित पालन होता दिखाई दिया। अगर ये लोग इस घोषणाके प्रति अपने मनमे उदासीनताका भाव रखते, तो यह सर्वथा निष्प्रभ बन सकती थी। लेकिन यहाँ इस निजी मन्दिरमे, जो कट्टरपथी नम्बूदिरियोका गढ है, स्पष्ट ही इस घोषणाको इसके शब्दोकी दृष्टिसे भी और इसमे निहित भावनाकी दृष्टिसे भी कार्यान्वित किया जा रहा है।

अब यहाँ मै आपको एक छोटी-सी राजकी बात बता दूँ। मै त्रावणकोर आनेमे बहुत हिचक रहा था और मुझे सेगाँवसे चलनेको राजी करनेमे श्रीयुत् गोविन्दन् और श्रीयुत रामचन्द्रन्को काफी यत्न करना पडा, और एक अवसर तो ऐसा आया जब लगता था कि उनके सारे किये-करायेपर पानी फिर जायेगा। लेकिन कुछ ऐसी बातें हुई जिनसे मेरा हृदय पसीज गया और आज हाल यह है कि रामचन्द्रन् और उनके साथियोके इशारेपर मै किसी निरीह व्यक्तिकी तरह यहाँ-वहाँ नाचता फिर रहा हूँ। लेकिन यहाँ मुझे जो उत्साहवर्धक अनुभव हुआ है, उससे लगता है कि अगर मै त्रावणकोर न आता — और किसी कारण नही तो कम-से-कम इस मन्दिरको और हरिजनोके इसमे इतने शोभनीय ढगसे प्रवेशके दृश्यको देखनेके लिए ही — तो वह मेरी भारी मूर्खता होती। तो मेरी यही कामना है कि यह सभी नम्बूदिरियो और अन्य सवर्णोके लिए एक अनुकरणीय उदाहरण साबित हो। जब मै इन तमाम सभाओमे जा-जाकर यह कहता हूँ कि सवर्णोको इस घोषणाको पूर्ण रूपसे कार्यान्वित करना है तब मेरा आशय क्या होता है, यह यहाँकी इस घटनासे बहुत अच्छी तरह उजागर हुआ है। आपको यह समझना चाहिए कि जिन अवर्ण हिन्दुओको कुछ शिक्षा-दीक्षा मिली है, उनको छोडकर शेषको यह मालूम नही है कि यह घोषणा क्या है और उनके लिए इसका क्या अर्थ है। हमारे अज्ञान और भूलोके ही कारण आज वे समाजसे दूर पृथक् और उपेक्षित बस्तियोमे रह रहे है। उन्हे उन उपेक्षित बस्तियोसे निकालकर सूर्यके प्रकाशमें लाना और उन्हे मन्दिरोमे प्रवेश कराकर उनके हृदयोको स्निग्ध उष्णताका अनुभव कराना सवर्णोका काम है। आप त्रावणकोरके बारेमे किसीको यह कहनेका मौका न दें कि यहाँकी सबसे ऊँची जातिके माने जानेवाले नम्बूदिरियोने जो-कुछ कर दिखाया, उसे शेष लोग नही कर पाये। और अवर्ण भाइयो और बहनोको उनकी अँधेरी गुफाओसे निकालकर प्रकाशमे लानेका दायित्व जितना पुरुषोके सिर है, स्त्रियोके सिर भी उससे कुछ कम नही है। मुझे आशा है और प्रभुसे मै यही प्रार्थना करता हूँ कि त्रावणकोरके सभी सवर्ण हिन्दू इस घोषणाको अधिक-से-अधिक पूर्णताके साथ कार्यान्वित करके यदि हिन्दू-धर्मके त्राता नही, तो कम-से-कम मुक्तिदाता कहे जानेके पात्र तो बने ही।

[अग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ २०८-१०।

२९२. भाषण : तिरुवारप्पुमें

१९ जनवरी, १९३७

मुझे यह जानकारी मिली है कि यह स्थान किसी समय सत्याग्रह और कष्ट-सहनका केन्द्र था। आज हम उन कष्टोका स्मरण सहर्ष कर सकते है, क्योंकि यह घोषणा हमारे लिए वह खुशी लेकर आई है जिसकी सत्याग्रहियोने वे कष्ट सहते समय आशा नही की थी। मेरे पास आज लम्बा भाषण देनेका वक्त नही है और न आपको लम्बे भाषणकी जरूरत ही है। मुझे जो-कुछ कहना था और जो-कुछ मै कह सकता था, अधिकाशत पहले ही कह चुका हूँ। लेकिन इतना कहे बिना नही रह सकता कि अगर आपको घोषणाके अच्छे फलका रसास्वादन करना है तो आपमे से हरएकको व्यक्तिगत रूपसे इसके लिए काम करना होगा। बहुत-से नियम-विनियम फाइलोमे ही रखे रह जाते है। इस घोषणाका वह हश्र नही होने देना चाहिए। यह घोषणा सभी अवर्णोंके लिए स्वतन्त्रताका घोषणापत्र है, और इससे सवर्णोका वह पाप धुल गया है जो उन्होने अवर्णोंके प्रति किया था। लेकिन वास्तवमे इससे उनका पाप तभी धुल सकता है जब वे इस घोषणाके मर्मको भली-भाँति समझे। अत सवर्णोंको चाहिए कि वे अवर्णोंके साथ भाईचारेका व्यवहार करे। केवल दिखावेके लिए नही, बल्कि सच्चे दिलसे। यदि आप ऐसा करेगे तो देखेगे कि त्रावण-कोर भारतके सभी हिन्दुओके लिए एक तीर्थ-स्थल बन गया है और हिन्दू-धर्मके इतिहासमे उसने एक नवयुगका सूत्रपात किया है। हिन्दू-धर्मके सन्देशको हरएक आदमी तक पहुँचानेका दायित्व सवर्णोंके सिर है। और याद रखिए, ऐसा आप तबतक नही कर पायेगे जबतक आप इस घोषणाको पूरे हृदयसे ग्रहण नही करेगे। ईश्वर इस कामको करनेके लिए आपको यथेष्ट बुद्धि और शक्ति दे।

[अंग्रेजीसे]
द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ २११-१२।

२९३. भेंट: बिशप मूर, बिशप अब्राहम और अन्य लोगोंको[1]

१९ जनवरी, १९३७

बिशप मूरने गांधीजीका स्वागत हृदयसे किया। उन्होंने मन्दिर-प्रवेशकी घोषणा पर खुशी जाहिर करते हुए उसे एक महत्त्वपूर्ण घटना बताया। उन्होंने पूछा कि क्या सवर्ण हिन्दुओं और ब्राह्मणोंने उसका स्वागत किया है, या उनकी ओरसे कोई विरोध किया जा रहा है।

गांधीजीने बतलाया कि मुझे विरोधके कोई लक्षण दिखलाई नहीं पड़े। मैं लाखों लोगोंसे मिला हूँ, अनेक मन्दिरोंमें गया हूँ और मैंने देखा है कि सवर्ण और अवर्ण दोनों पूर्ण मैत्री-भावसे मन्दिरोंमें प्रवेश करते हैं।

बिशप अब्राहमने पूछा कि क्या इलवा लोग अपनेसे नीची जातियोंके दलित वर्गोंके साथ समानताका बरताव करनेके लिए तैयार हैं।

गांधीजीने कहा कि मैं पूरे विश्वासके साथ तो नहीं बतला सकता, लेकिन मैं हर जगह इसी बातपर जोर देता रहा हूँ और मुझे आशा है कि घोषणाका पालन इसी भावनाके साथ किया जायेगा।

बिशप मूरने . . . . . कहा कि मेरे सुननेमें आया है कि आप त्रावणकोरमें मिशनरियोंके कामके बारेमें प्रकाशित विवरणोंको लेकर काफी चिन्तित हैं। उस सिलसिलेमें यदि कोई गलतफहमी हो और यदि मैं उसको दूर कर सकता हूँ तो मैं इसके लिए तैयार हूँ।

गांधीजीने कहा कि बिशप पिकेटने इंग्लैंडमें अपने एक भाषणमें और चर्च मिशनरी सोसाइटीकी ओरसे ईसाई धर्मका काम आगे बढ़ानेके लिए अर्थदानकी अपील करते हुए एक बयानमें जो यह दावा किया है कि तेलुगुभाषी प्रदेशमें और त्रावणकोरमें हजारों लोग अपना धर्म बदलकर ईसाई बन गये हैं, उसपर सचमुच मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरी समझमें नहीं आता कि कोई भी जिम्मेदार ईसाई ऐसा बेतुका बयान कैसे दे सकता है कि हजारों लोगोंने अपने अन्दर आध्यात्मिक जागृतिका अनुभव किया है और ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया है। दोर्नाक्कल के बिशपने तो यहाँतक कह डाला है कि उन हजारों लोगोंमें दलित वर्गोंके ही लोग नहीं, तथाकथित सवर्ण भी एक बड़ी संख्यामें शामिल हैं। गांधीजीने कहा कि मैंने

१. यह भेंट कोट्टयममें बिशप मूरके निवासपर कुछ भ्रमोंके निवारणार्थ हुई थी।

'हरिजन'[1] के स्तम्भोंमें उन दावोंकी सचाई सिद्ध करनेके लिए चुनौती दी है और सम्बन्धित व्यक्तियोंको आमन्त्रित किया है कि वे मेरी बातका खण्डन करनेके लिए आगे आयें। मैंने आन्ध्रमें काम करनेवाले नेताओंसे भी मुलाकात की है और उनसे कहा है कि वे उन बेतुके दावोंकी सचाईके बारेमें जाँच-पड़ताल करें।

इसपर बिशप मूरने कहा कि मैंने न तो दानके लिए की गई वह अपील और न बिशप पिकेटका भाषण ही पढ़ा है और इसलिए मैं उनके बारेमें कोई राय नहीं दे सकता। फिर भी मेरे तई इतनी बात पक्की है कि जिम्मेदार किस्मकी किसी भी ईसाई पत्रिकाको कभी भी ऐसे वक्तव्य प्रकाशित नहीं करने चाहिए जो सर्वथा तथ्योंपर आधारित न हों। लेकिन मैं आपको आश्वस्त करना चाहता हूँ कि जो बिशप-क्षेत्र मेरे अधीन है उसकी ओरसे कोई गलत जानकारी कभी नहीं दी गई है और मैं केवल अपने ही क्षेत्रके लिए जिम्मेदार हो सकता हूँ, उसीके बारेमें कुछ कह सकता हूँ।

पिछले वर्ष हम ५३० लोगोंको ईसाई धर्मके आंग्ल सम्प्रदायके अधीन बपतिस्मा दे सके।

बिशप अब्राहमने कहा, आन्ध्र प्रदेश तो मैं स्वयं गया था और वहाँ मैंने अपनी आँखोंसे देखा कि वहाँके मध्यवर्गीय सवर्णोंमें भी एक जबरदस्त जागृति आई है।. . . वहाँ मैंने ऐसी सभाओंमें भाषण किये, जिनमें उच्च वर्णके लोग भी उपस्थित थे।

गांधीजी: लेकिन इसका तो कोई खास अर्थ नहीं लगाया जा सकता। डॉ० स्टैनली जोन्सको सुनने सैकड़ों विद्यार्थी उनकी सभाओंमें जाया करते थे, लेकिन उनके बारेमें यह तो नहीं कहा जा सकता कि वे ईसाई धर्म स्वीकार करना चाहते थे। यह कहना एक बात है कि ईसाई धर्म-प्रचारकोंकी सभाओंमें सैकड़ों लोग उपस्थित थे, पर यह कहना एक बिलकुल ही दूसरी बात हो जाती है कि सैकड़ों लोगोंने ईसाका सन्देश स्वीकार कर लिया है और भारी संख्यामें लोगोंके ईसाई बननेकी सम्भावना है, इसलिए अर्थ-दान दीजिए।

श्री कुरुविलाने पूछा कि क्या आपको इसपर कोई आपत्ति है कि हम लोग जनताकी आध्यात्मिक जिज्ञासाको जगायें और उसका समाधान करें।

गांधीजीने कहा कि चर्चाके विषयको देखते हुए आपका प्रश्न सर्वथा असंगत है।

बिशप अब्राहमने कहा कि हम लोग जनताकी आध्यात्मिक जिज्ञासाका समाधान ही कर रहे हैं। आपको इसपर क्या आपत्ति हो सकती है?

गांधीजीने कहा कि आध्यात्मिक जिज्ञासाके समाधानपर मुझे कोई आपत्ति नहीं, बशर्ते कि जिज्ञासा सच्चे हृदयसे महसूस और व्यक्त की गई हो। लेकिन चर्चाका विषय तो जिम्मेदार व्यक्तियों द्वारा जारी किया गया बेतुका बयान है और यह

१. देखिए "चमत्कार कैसा होता है?", पृ० १६९-७१।

प्रश्न उससे कोई ताल्लुक नहीं रखता। उन्होंने विशप मूरसे कहा कि मैं आपको चर्च मिशनरी सोसाइटीकी ओरसे जारी किये गये बयानकी एक नकल दूंगा और जानना चाहूंगा कि आप उसके बारेमें क्या कहते हैं।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १३-३-१९३७

२९४. भाषण : स्त्रियोंकी सभा कोट्टयम्में[1]

१९ जनवरी, १९३७

मुझे इस बातकी बहुत खुशी है कि अपनी इस तीर्थयात्रामे मुझे यह पहली बार स्त्रियोकी सभामे बोलनेका अवसर मिल रहा है। स्त्रियोकी सभामे बोल रहा हूँ, इसलिए उचित तो यह होता कि मैं आपको ज्यादा समय देता और आप लोगोका, जो यहाँ इतनी बड़ी सख्यामे उपस्थित हुई है, ज्यादा परिचय प्राप्त करनेकी कोशिश करता। आप लोगोको ज्यादा समय देना इसलिए भी जरूरी मालूम होता है कि इस सभामे पहली बार एक बहनने अपना स्वागत-भाषण हिन्दीमे दिया है। मैं आप लोगोको, आपने मेरा जो स्वागत किया है उसके लिए तथा हिन्दी-मानपत्रके लिए धन्यवाद देता हूँ। मैं तो आपसे राजकीय घोषणाके सम्बन्धमे ही दो-चार शब्द कहकर सन्तोष कर लूंगा। पर मेरे बाद राजकुमारी अमृतकौर बोलेगी और वे अवश्य स्त्रियोकी समस्याओके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करेगी। कारण, शायद आप जानती हो कि वे अखिल भारतीय महिला परिषद्‌की मत्री है।

मैंने अकसर कहा है कि अस्पृश्यताकी प्रथा हिन्दू-धर्मका एक बडा कलक है और यह एक ऐसी बुराई है जिसके कारण हिन्दू-धर्मका अस्तित्व ही खतरेमे पड़ गया है। त्रावणकोरके महाराजाकी यह घोषणा इस कलकको धो डालनेमे हमारी मदद करनेके लिए बहुत ही उपयुक्त अवसरपर आयी है। लेकिन यह समझ लीजिए कि घोषणा अपने बलपर इस कलकको नही धो सकती। महाराजाका काम तो घोषणा जारी करनेके बाद पूरा हो गया। अब इस घोषणाको कार्यान्वित करके अस्पृश्यताका मूलोच्छेद आपको करना है। आत्मशुद्धिकी इस क्रियाको इसकी परिणति तक पहुँचानेका काम मुख्यत सवर्ण हिन्दुओका है। मैंने अकसर कहा है कि धर्मकी रक्षा तो केवल स्त्रियाँ ही कर सकती हैं, क्योकि लोगोकी नैतिक शुचिताकी रक्षक वे ही हैं। यह खासकर स्त्रियोका कार्य है, क्योकि धर्मकी शुद्धि अन्तत. तो अपने-अपने हृदयकी शुद्धि है। और यदि स्त्रियोने इस घोषणाकी भावनाको आत्मसात् कर लिया है तो पुरुषोकी अपेक्षा वे उसे ज्यादा अच्छी तरह कार्यान्वित कर सकती है। अभीतक हम अवर्णोंको अपने घरो और मन्दिरोमें ही नही अपने हृदयोमे भी

१. गांधीजीने यह भाषण हिन्दीमें दिया था।

अस्पृश्य मानते रहे हैं। अब हमें उन्हें अपना पारिवारिक बन्धु मानना है। इसलिए यदि आप लोगोमें से किसीका यह खयाल हो कि इस घोषणाको जारी करके महाराजा ने हिन्दू-धर्मको और मन्दिरोको भ्रष्ट कर दिया है, तो मुझे कहना होगा कि वह मानवताके और अपने सिरजनहारके विरुद्ध द्रोह कर रही है। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि जबतक इन मन्दिरोके द्वार हरिजनोके लिए बन्द थे, तबतक ये मन्दिर ही अपवित्र थे। इस घोषणाने इन्हे शुद्ध बनाया है। इसलिए आप ऐसा कदापि न मानें कि इस घोषणाके फलस्वरूप ये भ्रष्ट हो गये हैं और न ऐसा मानकर इनमें जाना ही बन्द करें। मैं आशा करता हूँ कि आप अपने मनसे इस वहमको निकाल देंगी और हरिजन स्त्रियोके साथ अपनी बहनोकी तरह मिलेंगी तथा उनका सामाजिक दर्जा ऊँचा उठानेमें उनकी सक्रिय सहायता करके उन्हे सामाजिक दृष्टिसे अपने ही स्तरतक ले आयेंगी।

[अंग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ २१३-१५।

२९५. भाषण: सार्वजनिक सभा, कोट्टयम्में[1]

१९ जनवरी, १९३७

मैं जानता हूँ कि यह विशाल सभा त्रावणकोरकी जनताको महाविभव महाराजा द्वारा भेंट की गई घोषणापर जो हर्ष हो रहा है उसीकी एक निशानी है। वैसे तो यह स्वाभाविक ही था, और आपका कर्त्तव्य भी था, कि आप महाराजा साहब, महारानी साहिबा और दीवान साहबको बधाइयाँ दें। लेकिन अगर आप इन समारोहोंसे ही अपने कर्त्तव्यकी इति मान लेते हैं तो यह बिलकुल गलत होगा। महाराजा साहब और महारानी साहिबाको दी गई आपकी बधाइयाँ आपके इस संकल्पका प्रतीक होनी चाहिए कि आप इस घोषणाको, जहाँतक मनुष्यके बसमें है, सफल बनानेके लिए कुछ भी उठा नहीं रखेंगे। जैसाकि मैंने विभिन्न सभाओमें बताया है, इस घोषणाको सफलतापूर्वक कार्यान्वित करनेका मुख्य दायित्व उन्हीं लोगोको उठाना चाहिए जो सवर्ण माने जाते हैं। मुक्ति और आशाका यह सन्देश अवर्णकी गलत संज्ञासे अभिहित लोगोके उजडे घरोतक उन्हींको ले जाना है। अपने तथाकथित अवर्ण भाइयो और बहनोके झोपडोमें जाकर विनम्रतापूर्वक और प्रार्थनापूर्ण मनसे इस सन्देशको उनतक पहुँचानेका सौभाग्य और कर्त्तव्य उन्हींका है। यदि ऐसा किया जाता है तो उसका मतलब होगा कि आजतक वे जिन्हे दबाकर रखते आये हैं उनके साथ किये गये उनके अन्यायोका — देरसे ही सही — थोडा-बहुत प्रतिकार हो गया है। वे जिनके

१. कृष्ण-मन्दिरके सामने आयोजित इस सभामें लगभग १०,००० लोग उपस्थित थे। २०-१-१९३७ के हिन्दूमें भी इस भाषणकी रिपोर्ट छपी थी।

दिन-दिन अधिकाधिक पतितावस्थामे पहुँचते जानेमें योग देते आये है, आज उन्हे ऊपर उठानेके लिए खुदको तनिक झुकाना उनका गौरवमय कर्त्तव्य है और होना चाहिए।

मुझे यह पता है कि कोट्टयम त्रावणकोरके ईसाइयोका गढ है। ईसाई जानते हैं कि उनके और मेरे बीच स्नेहका अदृष्ट किन्तु अटूट बन्धन है। इसलिए भारतीय ईसाइयोको, चाहे वे जन्मसे ईसाई हो या हालमे ईसाई धर्ममे दाखिल हुए हो, मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि आप लोग तमाशबीनोकी तरह अलग न खड़े रहे, बल्कि जिस हेतुसे यह घोषणा की गई है उस हेतुको सफल बनानेमे भाग ले। यह कहनेका मेरा क्या आशय है, इसे मैं बहुत सक्षेपमे समझा देता हूँ। हिन्दुस्तानके दूसरे हिस्सोकी तरह त्रावणकोरमे जो ऊँच-नीचका भेद-भाव चल रहा था, उसे इस घोषणाने नष्ट कर दिया है। आज यदि मनुष्य द्वारा जारी किये गये किसी दस्तावेजके बलपर सभी अवर्ण एकाएक सवर्णोका दर्जा प्राप्त कर सकते हैं — और इस घोषणा के फलस्वरूप वास्तवमे उन्होने ऐसा दर्जा प्राप्त कर लिया है — तो इस राज्यके ईसाइयोका हिन्दुओके प्रति कुछ कर्त्तव्य है और उस कर्तव्यकी उपेक्षा करना उन्हे शोभा नही देगा। आप मेरी ही तरह अगर यह मानते हैं — और मैं जानता हूँ कि आज बहुतेरे ईसाई ऐसा मानते हैं — कि दुनियाके सभी महान् धर्म सच्चे हैं, तो इस घोषणाके अनुसार सवर्ण हिन्दुओको जो पश्चात्ताप और दलित वर्गकी आजतक हुई क्षतिकी जो पूर्ति करनी है, उसमे आप लोग उनकी मदद करे।

जब कुछ हरिजन हिन्दू-धर्मसे तग आकर किसी दूसरे धर्ममे चले जानेकी बात सोचते थे, तब मुझे बेशक बहुत दु ख होता था। भिन्न-भिन्न धर्मोंके लोग उन हरिजनोको मानो झपट लेनेके लिए, और जिस धर्ममें वे सैकडो वर्षोंसे रह रहे हैं उसमे से उन्हे खीच लेनेके लिए जो प्रयास करते थे, उसके विषयमें सुनकर भी मुझे उतना ही दु:ख होता था। अगर आप ऐसा मानते है — और मुझे मालूम है कि आपमें से कुछ लोग ऐसा मानते हैं — कि हिन्दू-धर्म तो तरह-तरहके घिनौने रिवाजो और अन्धविश्वासोका ढेर-भर है, वह मनुष्यको धोखा देनेवाला एक जाल है, तो आप अवर्ण और सवर्ण हिन्दुओकी इससे बड़ी कोई सेवा नही कर सकते कि उस "धोखेबाजी"को खोलकर सामने रख दें। जो लोग ऐसा मानते हैं, उनके विचारसे तो यह घोषणा ऐसी है जिसका विरोध करना उनका धर्म है और महाराजाको यह बता देना उनका कर्त्तव्य है कि मुक्तिकी यह घोषणा जारी करके वे इस व्यथाकी अवधिको और बढ़ा रहे हैं और जिन अन्धविश्वासोका स्वाभाविक रूपसे अपनी मौत मर जाना निश्चित था, उन्हे जीवन-दान दे रहे हैं। लेकिन मैं जानता हूँ कि सारे हिन्दुस्तानमे बहुत-से ईसाई ऐसा नही मानते कि हिन्दू-धर्म मानवताको धोखेमे डालनेवाला जाल है और तरह-तरहके घिनौने रिवाजो और अन्धविश्वासोका ढेर-भर है। जिस धर्मने रामकृष्ण, चैतन्य, शंकर और विवेकानन्दको पैदा किया है, वह धर्म केवल अन्धविश्वासो का ढेर नही हो सकता। आप यह जानते होंगे — और न जानते हो तो आपको मैं बता देना चाहता हूँ — कि मेरी अपनी मान्यता तो ऐसी है कि संसारके सभी धर्म न केवल सच्चे हैं, बल्कि वे सब समान भी है।

मैंने 'बाइबिल' का एक निष्ठावान ईसाईकी दृष्टिसे, और 'कुरान' का एक निष्ठावान मुसलमानकी दृष्टिसे अध्ययन करनेका प्रयत्न किया है। और इन दोनो ही धर्मग्रन्थोमे मुझे जो-कुछ अच्छा जान पडा, उसे ग्रहण करनेमे मुझे कभी कोई सकोच नही हुआ। मैंने दुनियाके दूसरे धर्मोके ग्रन्थोको भी पढा है, इन दोके नाम तो मैंने दृष्टान्त-रूपमे दिये है। इसपर आप यह पूछ सकते है कि मै यदि सभी धर्मोको एक समान सच्चा और आदरणीय कहता हूँ, तो मेरे हिन्दू बने रहनेका क्या अर्थ है? इसका कारण मै आपको बताता हूँ। इधर मैंने हजारो स्त्री-पुरुषोकी जिन सभाओमे भाषण दिये है, उनमे मैंने जिसे मै हिन्दू-धर्मका सार समझता हूँ उसे समझानेका प्रयत्न किया है, और इस सिलसिलेमे मैंने उनके सामने 'ईशोपनिषद्' का एक अत्यन्त सीधा-सादा मन्त्र रखा है। आप यह तो जानते ही होगे कि जो उपनिषद् वेदो के समान ही पवित्र माने जाते है, 'ईशोपनिषद्' उन्हीमे से एक है। 'ईशोपनिषद्' के पहले ही मन्त्रका अर्थ यह है: इस विश्वके कण-कणमे ईश्वर व्याप्त है। इस मन्त्रमे ईश्वरको स्रष्टा, ईश और विश्वका अधिष्ठाता कहा गया है। इस मन्त्रके द्रष्टा ऋषि को केवल इतना ही कहकर सन्तोष नही हुआ कि विश्वके कण-कणमे ईश्वर व्याप्त है। अत. उसने आगे चलकर यह कहा "ईश्वर सर्वव्यापी है, इसलिए यहाँकी किसी भी वस्तुपर — यहाँतक कि अपने शरीरपर भी — तुम्हारा स्वामित्व नही है। तुम्हारे पास जो-कुछ है, ईश्वर उस सबका निर्विवाद स्वामी है"। इसलिए अपनेको हिन्दू कहनेवालेको द्विजत्व, या ईसाइयोके शब्दोमे कहूँ तो 'नवजन्म', प्राप्त करनेके लिए उन सारी वस्तुओको ईश्वरार्पित या उनका त्याग कर देना पडता है जिन्हे वह अज्ञानवश अपनी सम्पत्ति कहता आया है। ईश्वरार्पण या त्याग करनेके बाद उससे कहा जाता है कि इसके पुरस्कारस्वरूप ईश्वर अन्न, वस्त्र, आश्रय आदिके सम्बन्धमे उसकी सारी आवश्यकताओकी पूर्तिका पूरा-पूरा ध्यान रखेगा। इसलिए जीवनकी आवश्यक वस्तुओको भोगने या उनका उपयोग करनेके लिए शर्त यह है कि उन्हे ईश्वरार्पित कर दिया जाये या उनका त्याग कर दिया जाये। और यह अर्पण या त्याग रोज करना चाहिए, अन्यथा कही ऐसा न हो कि इस माया-मोहवाले ससारमे हम जीवनकी यह सबसे मुख्य बात भूल जाये। यह सब कह चुकनेके बाद मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहता है . "किसीके धनको लोभकी दृष्टिसे न देखो।" मै आपसे कहना चाहता हूँ कि इस छोटे-से मन्त्रमे भी जो सत्य समाया हुआ है, वह प्रत्येक मनुष्य की इहलौकिक और पारलौकिक दोनो तरहकी ऊँची-से-ऊँची आकाक्षाओको तृप्त कर सकता है। ससारके धर्मग्रन्थोमे सत्यकी खोज करते हुए मुझे ऐसी कोई बात नही मिली, जिसे इस मन्त्रमे जोडनेकी जरूरत हो। धर्मग्रन्थोका जो थोडा-बहुत अध्ययन मैंने किया है — और मै मानता हूँ कि मेरा यह अध्ययन बहुत सीमित है — उसपर दृष्टि डालते हुए मुझे लगता है कि सभी धर्मग्रन्थोमे जो-कुछ अच्छा है, उसका इस मन्त्रसे ही उद्भव हुआ है। यदि विश्वबन्धुत्व — केवल विश्व-भरके मानवका नही, बल्कि जीव-मात्रका बन्धुत्व — देखना हो तो वह मुझे इस मन्त्रमे मिल जाता है। यदि प्रभु और जगन्नियन्तामे — या हम उसे जो भी नाम दे — अविचल

श्रद्धा चाहिए, तो वह मुझे इस मन्त्रमे मिलती है। ईश्वरके प्रति सम्पूर्ण समर्पण और अपनी सारी आवश्यकताओकी पूर्तिके लिए उसीपर निर्भर रहनेकी कल्पनाके दर्शन करने हो, तो मै फिर कहता हूँ कि मुझे इस मन्त्रमे उसके दर्शन भी हो जाते है। चूँकि ईश्वर हमारे और आपके, सबके रोम-रोममे, कण-कणमे, हरेक श्वास-उच्छ्वासमे व्याप्त है, अत इससे मै जगत्के सर्व जीवोकी समानताका सिद्धान्त निकालता हूँ, और इससे उन सभी लोगोकी आकाक्षाओकी भी तृप्ति होनी चाहिए जो चिन्तनके स्तर पर समतावादी है। यह मन्त्र मुझे बताता है कि जो चीज ईश्वरकी है उसे मै अपनी मानकर अपने पास नही रख सकता, और यदि मेरा जीवन और इस मन्त्रपर आस्था रखनेवाले सभी लोगोका जीवन सम्पूर्णत: ईश्वरार्पित होना है, तो निष्कर्ष यह निकलता है कि वह जीवन जीव-मात्रकी सतत सेवाका जीवन होना चाहिए।

यह है मेरी श्रद्धा और मै कहता हूँ कि यही अपनेको हिन्दू कहनेवाले सभी लोगोकी श्रद्धा होनी चाहिए। मै अपने ईसाई और मुसलमान भाइयोसे भी यह कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि यदि वे अपने-अपने धर्मग्रन्थोको उलटकर देखेंगे तो उनमें उन्हे इससे अधिक कुछ नही मिलेगा। मै चाहता हूँ कि त्रावणकोरके हिन्दुओको इस मन्त्रमे निहित उच्चादर्शको साकार करनेमे ससारके सभी लोग, चाहे वे मुसलमान हो या ईसाई अथवा और कुछ, सहायता करे। मै आपसे यह बात छिपाना नही चाहता कि हिन्दू-धर्मके नामपर चलनेवाले अनेकानेक अन्धविश्वासो से मै अनभिज्ञ नही हूँ। हिन्दू-धर्मके नामपर चलनेवाले उन तमाम अन्धविश्वासोसे मै अवगत हूँ और मुझे इसका बडा दु ख है। चोरको चोर कहनेमे मुझे कोई हिचक नही है। अस्पृश्यताको सबसे बडा अन्धविश्वास बतानेमे मैने कभी कोई हिचक नही दिखाई। लेकिन उन तमाम अन्धविश्वासोके बावजूद, मै हिन्दू ही बना हुआ हूँ। कारण, मै नही मानता कि ये अन्धविश्वास हिन्दू-धर्मके अग है। हिन्दू-धर्ममें धर्मग्रन्थोके वचनोकी व्याख्याके जो नियम बताये गये है, उन्हीसे मैने यह सीखा है कि जो-कुछ भी उस सत्यसे, जिसका प्रतिपादन अभी मैने किया है और जो उक्त मन्त्रमे निहित है, असगत है उसे मै निस्सकोच ऐसा मानकर त्याग दूँ कि वह हिन्दू-धर्मका अग नही है। और आप गैरहिन्दू भाई-बहनोसे मै यह प्रार्थना करता हूँ कि आप तथाकथित सवर्ण हिन्दुओकी इस सत्यको उन लोगोके बीच प्रचारित करनेमें सहायता करे जिन्हे वे आजतक ऐसे लोग मानते आये है जिनका स्पर्श या पास आना अथवा जिनको देखना मनुष्यको अशुद्ध बनाता है।

मुझे लगा कि जो सत्य मुझे प्राणोके समान प्रिय है उसे कहनेके लिए अगर मै तैयार नही हूँ, तो इस विशाल सभाके प्रति, खासकर ईसाइयोके इस गढमें हुई सभाके प्रति, मै न्याय नही कर सकता। हम सब, जाने या अनजाने, पृथ्वीपर शान्ति और मानव-जातिमे परस्पर सद्भाव स्थापित करनेको लालायित है और उसके लिए प्रयत्न करते है। मेरा दृढ विश्वास है कि हम विभिन्न धर्मोंके अनुयायियोके कलह और वाद-विवाद द्वारा दुनियामें न शान्ति स्थापित कर सकते है, न सद्भाव। तुच्छ-से-तुच्छ मनुष्यके पास भी जब हम मनमे प्रार्थनाका भाव लेकर जायेंगे, तभी

हमें सत्य, शान्ति और सद्भावकी प्राप्ति हो सकेगी। जो भी हो, इस विशाल सभामें उपस्थित ईसाइयोंसे मेरी यह विनम्र प्रार्थना है। यह ऐसा स्वर्ण अवसर है जो आपमें से बहुतोंको इस जीवनमें शायद फिर न मिल पाये। जैसा कि मैंने दूसरी सभाओं में अनेक बार कहा है, घोषणापर सही करनेवाला हाथ तो महाराजाका था, किन्तु उसके पीछे प्रेरणा ईश्वरके अदृश्य हाथकी ही थी। प्रभुसे हमारी यही प्रार्थना है कि वही अदृश्य हाथ अब त्रावणकोरके सभी लोगोंको इस घोषणाके मर्मको समझनेकी और उस उद्देश्यको सफल बनानेकी प्रेरणा दे जिसके लिए यह घोषणा की गई है।

आपने जैसी अभूतपूर्व शान्तिमें मेरी बातें सुनीं, उसके लिए मैं आपको हृदयसे धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३०-१-१९३७

२९६. भाषण : चंगनाचेरीमें

२० जनवरी, १९३७

आप यहाँ जो अपना एक मानपत्र पढ़ सके, वह त्रावणकोर हरिजन सेवक संघके अध्यक्षके पक्षपातके कारण ही। इस पक्षपातपर मुझे कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि चंगनाचेरी उनका अपना स्थान है। लेकिन फिर मैं देखता हूँ कि यह मानपत्र भी बड़ा मोहक है, क्योंकि यदि इसमें सचमुच आपके विचार व्यक्त हुए हैं तो अध्यक्ष महोदयके इस पक्षपातको आसानीसे माफ किया जा सकता है। अपने मानपत्रमें आपने जो एक बात कही है उससे मनको बड़ा सन्तोष मिलता है। मेरा मतलब आपके इस कथनसे है कि "हमारा धर्म इस तरह शुद्ध हो गया है।" आपने आगे कहा है, "सभी सामाजिक भेद मिटा दिये गये हैं। ईश्वर हम सबका पिता है और मानव-मात्र परस्पर एक-दूसरेके भाई हैं, इस तथ्यको प्रतिष्ठित कर दिया गया है और हम सब हर तरहसे रामराज्यकी पुण्यभूमिमें पहुँच गये है।" अब इसपर मेरा कहना यह है कि अगर मैं चंगनाचेरीका निवासी होता और यह मानपत्र मेरे नामसे पढ़ा जाता और मुझसे इसपर हस्ताक्षर करनेको कहा जाता, तो मैं इसपर सोचते हुए कितनी ही रातें आँखोंमें ही काट देता और तब अगर मेरे मनको मंजूर होता तभी इसपर हस्ताक्षर करता। यदि आपने सिर्फ इतना कहकर सन्तोष मान लिया होता कि ये सारी बातें उस घोषणामें समाई हुई हैं जिसका वर्णन आपने इतने उत्साहमय शब्दोंमें किया है, तो यह सर्वथा उचित होता और मैं कहता कि इस घोषणासे आपका यह सब अर्थ निकालना बिलकुल ठीक है और इन अर्थोंको अपने जीवनमें साकार कर दिखानेमें ईश्वर आपकी सहायता करे। लेकिन आपने, अपने दायित्वके उचित बोधके साथ, इससे आगे जाकर वे सब दावे किये हैं जो मैंने

अभी आपको पढकर सुनाये है। मै जानता हूँ कि ये दावे आपने उत्साहके आवेगमे किये है और ऐसा उत्साह क्षम्य है। लेकिन अब मैं आपसे यह अनुरोध करूँगा कि आप अपनी इन बातोपर कायम रहे और अपने योग्य आचरण द्वारा उन दावोकी सत्यता सिद्ध करें जो आपने यहाँ किये है। यदि आप अपने दावोको सत्य सिद्ध कर दिखायें तो मुझे कोई आश्चर्य नही होगा, क्योकि, जैसा कि आपने मुझे बताया है, यह नम्बूदिरियोका गढ है और जिस मन्दिरके द्वार उन्होने हरिजनोके लिए उदारताके साथ पूरे हृदयसे खोल दिये हैं वह उनका निजी मन्दिर है। इनमे से प्रत्येक दावेको सही सिद्ध करनेका तरीका यह है कि हर व्यक्ति अपने जीवनमें यह सब करके दिखाये, और सच मानिए, सच्चे अर्थोमे अध्यात्ममय जीवन जीनेका प्रभाव जितना सक्रामक होता है उतना सक्रामक तो पृथ्वीके सभी कीटाणुओका मिला-जुला प्रभाव भी नही हो सकता। जहाँ हम कीटाणुओके सक्रमणसे भय खाते हैं और उनसे बराबर बचना ही चाहेगे, वहाँ अध्यात्ममय जीवनके संक्रमणका तो हम सदा स्वागत ही करेगे।

मैं आशा करता हूँ और प्रभुसे प्रार्थना करता हूँ कि इस मानपत्रमे आपने जो-कुछ कहा है वह सब त्रावणकोरमे सत्य सिद्ध हो और अगर त्रावणकोरमें हुआ तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वह सब सारे भारतमें भी सत्य सिद्ध होगा।

[अग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ २२२-२३।

२९७. भाषण: तिरुवल्लामें[1]

२० जनवरी, १९३७

कही मैं अपने गुणोको भूल न जाऊँ, इसलिए आपने मुझे उनकी याद दिलानेकी मेहरबानी की है। अगर ये गुण मुझमें होते तो सचमुच उनकी हिफाजतके लिए आपको उनकी याद दिलानेकी जरूरत नही पड़ती, वे अपनी हिफाजत आप कर लेते। मुझे उनकी याद दिलाई गई, इससे मुझे कुछ लाभ तो हुआ नही। लेकिन हाँ, जो एक चीज वाकई जरूरी थी वह-तो आप भूल ही गये। मेरे गुणोकी याद दिलानेके बाद आप इस घोषणापर अपने आह्लादका वर्णन करने लग गये। लेकिन आपने यह तो बताया ही नही कि इस घोषणाके सिलसिलेमे आपका इरादा क्या करनेका है। जैसा कि हर सभामे मैं कहता रहा हूँ, हरिजनोकी अन्धकारमें डूबी झोपड़ियोमें जाकर उन्हे उनसे बाहर लाना और समाजमें जो दर्जा और स्तर आपका

१. तिरुवल्लामें दिये गये अनेक मानपत्रोंके जवाबमें गांधीजीने यह भाषण दिया था।

है वही उन्हे भी दिलाना, महाराजका काम नही, बल्कि त्रावणकोरके हर पुरुष और स्त्रीका काम है। और जबतक आप यह-सब नही कर दिखाते, तबतक यह नही माना जा सकता कि इस घोषणाके कारण आपपर जो कर्त्तव्य आ पडा है उसे आपने पूरा कर लिया है।

[अंग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ २२५।

२९८. भाषण: चेंगन्नूरमें

२० जनवरी, १९३७

आपके इस मानपत्र[1]के लिए मैं आपका आभारी हूँ। मुझे आप मानपत्र दे, यह तो बडी अच्छी बात है। लेकिन मानपत्रोका कोई महत्त्व तभी होता है जब वे ठीक शब्दोमे लिखे गये हो और उनको भेंट करनेके पीछे सही भावना हो। ठीक शब्दोमे लिखे होनेसे मेरा मतलब यह है कि उनमे उस भावनाकी अभिव्यक्ति होनी चाहिए जिसे आप सबने अपने हृदयमे सचमुच सँजो रखा हो। उनमे अभिनन्दित व्यक्तिकी उबा देनेवाली प्रशंसा करनेके बजाय उसे इस बातकी जानकारी दी जानी चाहिए कि आपने क्या किया है या क्या करने जा रहे हैं। आजके इस हर्षका मुख्य कारण चूँकि महाराजा साहब द्वारा की गई सुशोभन घोषणा है, इसलिए स्वभावतः आपको उसीके सन्दर्भमें अपनी आकाक्षाओ और कार्योपर प्रकाश डालना चाहिए। मानपत्र छोटे-छोटे बच्चोकी ओरसे दिया जाये अथवा आम हिन्दुओकी ओरसे या युवक-सघकी तरफसे, इससे कोई फर्क नही पडता। आपने अपना मानपत्र वास्तवमे उस ढगसे तैयार नही किया है, लेकिन उसकी कोई बात नही। आज आपसे महाराजा साहब और महारानी साहिबा ही नही, बल्कि सारा भारत किन बातोकी अपेक्षा कर रहा है, यह मैं बताता हूँ। अभी पूरा देश वास्तवमे स्तम्भित है। उसकी समझमे नही आ रहा कि ऐसी बात क्या इस युगमे हो सकती है। कट्टरपथिताकी नीव हिल गई है। परिणामोके विषयमे सोच-सोच कर वह काँप उठती है — लेकिन किसी प्रकारके विरोधकी भावनासे नही। इसके विपरीत, निश्चय ही वह शका और आश्चर्यकी भावनामे डूब-उतरा रही है। उसके सामने सहज ही यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ है कि क्या अस्पृश्यता सचमुच एक पाप और मानवताके प्रति किया गया अपराध नही था। अब मैं आपको बताता हूँ कि कट्टरपथियोके मनमे समा गई इस शकाका कुल परिणाम क्या हो सकता है। इसका एक परिणाम तो अवश्य होगा और वह पूर्ण रूपसे [यहाँके] सवर्ण हिन्दुओपर निर्भर करेगा। यदि वे लोग यह देखेंगे

१. यह तृल्मान मठम् मन्दिरके नम्बूदिरियों द्वारा भेंट किया गया था।

कि त्रावणकोरके सवर्णोंने अस्पृश्यताके पापसे मुक्ति पा ली है, तो उनकी शंकाएँ उसी प्रकार मिट जायेंगी जैसे सूर्योदय होते ही सुबहकी कुहेलिका छँट जाती है। इसके विपरित, यदि वे यह देखेंगे कि आपका व्यवहार ईमानदारीका नहीं है और आपके हृदयमें अस्पृश्यताकी भावना अब भी मौजूद है, तो वे भी अपना रुख कड़ा करेंगे। आप यह तो स्वीकार करेंगे कि यह परिणाम प्रकट होने पर जो स्थिति सामने आयेगी वह आजकी स्थितिसे भी बुरी होगी। इसलिए आपको ऐसा आचरण करना है जिससे आपने जो उत्साह दिखाया है वह इन समारोहोंके समाप्त होते ही धुएँके गुबारकी तरह छँट न जाये। आपको ऐसे कार्य करने चाहिए जिससे लोग कह सकें कि इस उत्साहसे उद्भूत शक्तिका सदुपयोग आपने हिन्दू-धर्मकी शुद्धिके लिए किया है। आपसे विदा लेते हुए मैं अपने मनमें यह मानकर खुश हो रहा हूँ कि आपको मैं एक ऐसी कुंजी दिये जा रहा हूँ जो आपके हृदयमें उठनेवाली तमाम शंकाओंका समाधान करेगी। वह कुंजी यह है कि आप 'ईशोपनिषद्' के प्रथम मन्त्रको याद रखें और अन्य धर्मग्रन्थोंके बारेमें सब-कुछ भूल जायें। धर्मग्रन्थोंके नामसे जाने जानेवाले साहित्यके समुद्रमें तो आप सचमुच डूब जायेंगे और आपका दम घुटने लगेगा। विद्वानों और मनीषियोंके लिए वे ठीक हैं, वे उनका अध्ययन विनयपूर्ण मनसे करेंगे। लेकिन मेरा निश्चित मत है कि साधारण लोगोंके लिए वे बोझके सिवा और कुछ नहीं हैं। और यह बात मैं नहीं कह रहा हूँ, बल्कि स्वयं उन धर्मग्रन्थोंके रचयिताओंकी भी यही मान्यता है। इसलिए इस मन्त्रका एक स्वतन्त्र अनुवाद प्रस्तुत करके मैं यहाँसे विदा लूँगा। उसका सीधा-सादा मतलब सिर्फ यह है कि "हम जो-कुछ भी देखते हैं, ईश्वर सबमें व्याप्त है।" इस प्रकार पाश्चात्य वैज्ञानिकों का यह कथन अक्षरशः सही है कि प्रकृतिको रिक्तता असह्य है। कारण, वास्तवमें संसारमें ऐसा कुछ नहीं है जिसमें ईश्वरका निवास नहीं है। और जब सब-कुछ उसीका है तो फिर हमारा कुछ भी नहीं है। इसलिए इस मन्त्रमें आगे कहा गया है, "सब-कुछका त्याग करो।" लेकिन उसमें यह नहीं कहा गया है कि "सब-कुछका त्याग करके अपना नाश कर डालो।" इसके विपरीत कहा, यह गया है कि "यदि तुम जीना चाहते हो तो सब-कुछका त्याग करो।" कारण, तुम्हारे उस त्याग या ईश्वरार्पणके परिणामस्वरूप तुम्हारे भोजन-पान, आवास-वस्त्र सबका दायित्व ईश्वर स्वयं अपने ऊपर ले लेगा। और अन्तमें यह सुन्दर परामर्श या आदेश दिया गया है : "किसीकी सम्पदाको लोभकी दृष्टिसे मत देखो।" इसका मतलब यह नहीं है कि जब मैं इन मानपत्रोंको नीलाम करूँ तो आप इन मानपत्रोंको न लें। इसका मतलब तो यह है कि आपकी दृष्टि शुद्ध और सम होनी चाहिए, अन्यथा आप अपराधी कहे जायेंगे। यह बात हमारी सभी वस्तुओं, यहाँतक कि हमारे शरीरके अंगोंपर भी लागू होती है। अगर आप मेरी कही बातोंका ध्यान रखेंगे तो इस घोषणाके सन्दर्भमें काम करना आपके लिए आसान हो जायेगा। यदि आप हिन्दू-धर्मके इस सूत्रको — तमाम ऋषि-मुनियोंकी ज्ञानराशिके इस निचोड़को — समझ लेंगे तो निश्चय ही आप हरिजनोंके साथ भ्रातृवत् व्यवहार करेंगे और उन्हें

अन्धकारमय गह्वरोसे निकालकर समाजमे उस स्थानपर प्रतिष्ठित करेगे जहाँ स्वय आप आसीन है।

[अंग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ २२५-२८।

२९९. पत्र : मीराबहनको

आरनमुला
२० जनवरी, १९३७

चि० मीरा,

तुम्हारे दो लम्बे पत्र मिले। तुमने जो-कुछ कहा है, उसे मै समझता हूँ। कह नही सकता कि अभी ग्राम-कार्यके लिए मै जितना समय दे रहा हूँ, उससे अधिक दे सकूँगा। मेरे जीवनको, इसके साथ जो आश्चर्यजनक मर्यादाएँ लगी हुई है, उनके साथ स्वीकार करना चाहिए। इतना काफी है कि मै गाँवमे रहता हूँ और गाँवको ध्यानमे रखकर ही हर बात सोचता हूँ। जब जैसा अवसर आये, मुझे उसीके अनुसार काम करना चाहिए।

रसोईमें हरिजनो के काम करनेपर मुझे कोई आपत्ति नही है। हम जैसा व्यवहार अपने परिवारके सदस्योके प्रति करते है, बेशक, हरिजनोके प्रति भी हमारा व्यवहार उत्तरोत्तर वैसा ही होता जाना चाहिए। मुझे सन्तोष है कि उनका रवैया इसी तरहका है। बस, उसपर उत्तरोत्तर अधिक जोर देनेकी जरूरत है।

जहाँतक मुन्नालालकी बात है, जो काम उसके सामने आता है उससे अगर वह सन्तुष्ट नही रहता तो वह चला जायेगा। मुझे धैर्यसे काम लेना है।

इस बातकी खुशी है कि तुम पहलेसे ज्यादा चुस्त हो गई हो। २४ तक वहाँ पहुँचनेकी मुझे अब भी उम्मीद है।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३७६) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९८४२ से भी।

३००. भाषण : आरनमुलामें

२० जनवरी, १९३७

इस सभामें जो दृश्य उपस्थित है वह इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि मेरा यह दौरा तीर्थयात्राके अतिरिक्त और कुछ नही है। सामने पम्पा नदी है, वह मन्दिर है और यहाँ इस घोषणापर हर्ष व्यक्त करनेके लिए हजारो लोग एकत्र हुए है। तीर्थयात्रा करते हुए हमें भारतमे सर्वत्र ऐसे ही दृश्य दिखाई देते है। लेकिन यदि तीर्थयात्राओसे निस्सन्देह हमारी आत्माको उल्लास पहुँचता हो — तो उनसे हमे बराबर यह सीख भी लेनी चाहिए कि अपने स्रष्टाको प्रसन्न करनेके लिए हमें निरन्तर अपनी शुद्धिके लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। महाविभव महाराजा द्वारा हमे भेट की गई इस घोषणाके बाद तो यह बात और भी जरूरी हो जाती है।

मै जानता हूँ कि इस सभामे हरिजन भी है और गैर-हरिजन भी। लेकिन उनमें कही कोई अन्तर दिखाई नही देता, सब एक है। यदि इसी तरह हमारे हृदय भी एक है तो यह बड़ी अच्छी बात है। लेकिन अगर हमारे हृदय एक नही है और अपने मनमे हम अब भी उन भेद-भावोको पाल रहे हो जो हिन्दू-धर्मको युगोसे कलंकित करते आये है, तो कहना होगा कि हम लोग इस महान् घोषणाके सर्वथा अयोग्य पात्र है। जो लोग आजतक अपने-आपको उच्चतर जातियोके मानते आये है, उनके सिरपर आ पड़ी जिम्मेदारी सचमुच बहुत बड़ी है। यह घोषणा ऐसे लोगो को उस उच्चासनसे नीचे उतरनेको आमन्त्रित कर रही है जिसपर आजतक बैठे रहकर उन्होने कोई अच्छा काम नही किया है, बल्कि स्वयं अपने-आपको और उस धर्मको भी कलंकित किया है जिसके वे वास्तवमें बहुत ही अधम कोटिके अनुयायी है। इसलिए मै आशा करता हूँ और प्रभुसे प्रार्थना करता हूँ कि सवर्ण हिन्दू कहे जानेवाले सभी लोग इस बातका सकल्प ले कि वे अस्पृश्यताकी भावनाको अपने हृदयसे निकालकर उन लोगोके सुख-दुःखके सच्चे भागीदार बनेंगे जिन्हे वे आजतक दबाकर रखते आये है।

मेरी यह तीर्थयात्रा अब जल्दी ही समाप्त होनेवाली है, इसलिए मै आपके सामने 'ईशोपनिषद्'का एक मन्त्र रखूँगा। आप इसपर विचार कीजिए और इसे अपने हृदयमें प्रतिष्ठित कीजिए। पिछले चार-पाँच दिनोसे मै सभी सभाओमे लोगोके सामने यह मन्त्र रखता आ रहा हूँ। आप इस मन्त्रको अपने प्रत्येक कार्य-व्यवहारका मार्गदर्शक और उसकी प्रेरणा बनाइए। इस मन्त्रका अर्थ तो कोई बच्चा भी समझ सकता है। वह इस प्रकार है: "इस विशाल ब्रह्माण्डका कण-कण ईश्वरमय है" और यह देखते हुए कि हम जिस चीजकी भी कल्पना कर सकते है और जो-कुछ भी

ब्रह्माण्डमें है, सबका एकमात्र शास्ता और स्वामी वही है, हमसे सब-कुछ उसीको अर्पित कर देनेकी अपेक्षा की जाती है। हम अपने अज्ञानवश ऐसा सोचते हैं कि अमुक वस्तुएँ हमारी अपनी हैं और उनपर और किसीका कोई हक नही है। जबतक हमारे मनमे ऐसे किसी विचारके लिए स्थान है, हम सच्चे हिन्दू नही हैं, भले ही हिन्दू माता-पिताकी सन्तान होनेके कारण हम अपनेको हिन्दू कहे। इसलिए सच्चे अर्थोंमें तथा विचार और विवेकपूर्वक हिन्दू होनेके लिए हमे सम्पूर्ण उपनिषदो और सम्पूर्ण हिन्दू-धर्मके इस मूल मन्त्रके अनुसार आचरण करना है, और वह आचरण यह है कि हम सब-कुछका, अपने शरीर और अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तुका भी त्याग करके उसे प्रभुके चरणोपर अर्पित कर दें। इसके बाद मन्त्रमे कहा गया है कि "अगर तुम ऐसा करोगे तो — बल्कि ऐसा करोगे तभी — ईश्वर तुम्हे खानेको रोटी, तन ढँकनेको कपडा और रहनेको घर देगा।" मन्त्रमे आगे कहा गया है, चूँकि ईश्वर सर्वशक्तिमान है और उसके लिए कुछ भी असम्भव नही है, और तुमने सब-कुछ उसके चरणोपर अर्पित कर दिया है, इसलिए वह तुम्हारी उपेक्षा नही करेगा। इसलिए तुम किसी दूसरेकी सम्पदाको, सूईतक को लोभकी दृष्टिसे मत देखो।

अब आप यह बात आसानीसे समझ सकते है कि ईश्वरके समक्ष, इस ब्रह्माण्डके शास्ताके समक्ष — उसके समक्ष जो सृष्टिके कण-कणमे और जिन्हे हम अधम मानते है उनमे भी व्याप्त है — सभी समान है। इसलिए आप समझ सकते है कि महाविभव महाराजा साहबके लिए यह घोषणा जारी करना कितना आवश्यक था, क्योकि उन्हे हिन्दू राजा कहे जानेकी सार्थकता सिद्ध कर दिखानी थी।

अब आपसे विदा लेते हुए मैं इस मन्त्रको आपके पास एक भेंटके रूपमे छोड जाना चाहता हूँ। अगर कोई आपको चुनौती दे और हिन्दू-धर्मके नामपर कोई ऐसी बात कहे जो इस मन्त्रके विरुद्ध हो, तो आप उससे कह सकते है कि मै हिन्दू धर्मको अच्छी तरह जानता हूँ और जिस रूपमें जानता हूँ उसके विरुद्ध पडनेवाली कोई भी चीज हिन्दू-धर्मका अग नही है।

[अंग्रेजीसे]
द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ २२९-३१।

३०१. भाषण: एलन्तूरमें

२० जनवरी, १९३७

इस गाँवमे हमें गाँवोकी सभी विशषताओकी एक झाँकी मिली है। राजकीय घोषणा जारी किये जानेसे पूर्व ही अपनी ओरसे पहल करके अस्पृश्यतासे छुटकारा पा लेनेके लिए मैं आप सबको बधाई देता हूँ। इस घोषणासे अब आपके कार्यपर मान्यताकी मुहर लग गई है और वह पूरे त्रावणकोरके लिए स्वीकार्य हो गया है। मानपत्रमे आपने जितना बताया है, अगर सचमुच आपका गाँव उतनी प्रगति कर चुका है, तो मैं यह आशा करूँगा कि इस घोषणाके सन्दर्भमे यहाँ बहुत शानदार परिणाम देखनेको मिलेगे। आपसे मेरी क्या-क्या अपेक्षाएँ है, सो मैं आपको बताता हूँ। अपनेको सवर्ण कहनेवाले इक्के-दुक्के हिन्दू ही उन लोगोके साथ, जिन्हे वे अवर्ण कहते है, मिलते-जुलते है। इतने से ही मुझे सन्तोष होनेवाला नही है और न आपको ही होना चाहिए। अब तो मैं केवल आपसे ही नही, बल्कि गाँवके सारे लोगोसे तथा आसपासके गाँवोसे भी यह आशा करूँगा कि सब लोग इलवा, पुलया, परया आदिका भेद-भाव भूल जाये तथा अपने हृदयमे भी इस तरहकी किसी भावनाको स्थान न दे। अगर आप लोगोसे बने तो मैं यह भी आशा करूँगा कि यहाँ ऐसा एक भी हरिजन देखनेको न मिले जो भोजन, वस्त्र या शिक्षाके अवसरोके अभावमे जिन्दगीकी लाश ढो रहा हो। मैं यह भी आशा करूँगा कि आपके स्कूलोमे हरिजनो की तादाद उतनी ही हो जितनी गैर-हरिजनोंकी है। मुझे आशा है, यह सब आप शीघ्रातिशीघ्र कर दिखायेंगे।

अगर इस घोषणासे तथाकथित सवर्णोका हृदय इस तरह परिवर्तित हुआ है मानो कोई जादू हुआ हो, तो तथाकथित हरिजनोकी सामाजिक, नैतिक और आर्थिक प्रगति ऐसी मामूली नही होगी कि उसको देख पानेके लिए कोशिश करने की जरूरत पडे। तब तो उनकी प्रगति इतनी जबरदस्त और असाधारण होगी कि किसी राह चलते आदमीको भी साफ दिखाई देगी। मेरे विचारसे इस घोषणाका असली अर्थ यही है, और कुछ नही। क्या मैं आशा करूँ कि आप इसके वास्तविक अर्थका सार अपने जीवनमे ढाल लेगे।

[अंग्रेजीसे]
द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ २३२-३३।

३०२. भाषण: पंदलममें[1]

२० जनवरी, १९३७

त्रावणकोरमें जो अनेक शानदार सभाएँ हुई है उन्होंने मुझे विशाल समुदाय और पूर्ण शान्तिका अभ्यस्त बना दिया है। सभाओकी विशालता और उनकी पूर्ण नीरवतासे मुझे अब वैसा आश्चर्य नही होता। अपनी इस तीर्थयात्रामे मुझे यह एक अपूर्व बात देखनेको मिली है। इससे पहले मै तीन बार त्रावणकोर आ चुका हूँ। और उन अवसरोपर मैंने जिन सभाओमे भाषण दिये थे, उनकी स्मृति मेरे मनमे भली-भाँति बनी हुई है। मै यह तो कहूँगा कि वे सभाएँ बड़ी व्यवस्थित थी और उनसे मुझे बहुत सन्तोष मिला था। लेकिन मेरी यह यात्रा, मेरे विचारसे, चूँकि किसी-न-किसी प्रकार एक प्रायश्चित्त करनेवाले विनम्र व्यक्तिकी तीर्थयात्रा है, इसलिए मुझे वातावरणमे पूर्ण शान्तिकी आवश्यकता बहुत अधिक महसूस होती रही है और अपनी प्रार्थनाओका मुझे पूरा प्रतिदान मिला है।

कोट्टयम्मे कल शाम लगभग इसी समय मैंने अपने सामने इतने सारे स्त्री-पुरुषोको उपस्थित देखा कि उनकी सख्याका अनुमान लगाना किसीके लिए भी मुश्किल था। ऐसा लगता था, मानो कोई मानव-समुद्र उमड़ आया हो। मैंने डरते-काँपते उससे अपनी बात कहनी शुरू की, क्योकि दुर्भाग्यवश माइक्रोफोनकी कोई व्यवस्था वहाँ नही थी। सयोजकोने उसकी व्यवस्था करनेकी पूरी कोशिश की थी, लेकिन कर नही पाये। लेकिन आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस कमीके बावजूद उस सभामें, जिसमें शायद इस सभासे दस-गुने लोग एकत्र रहे होगे, घटेभर या इससे भी अधिक समयतक अद्भुत शान्ति छाई रही। उस विशाल सभामे उपस्थित हजारो स्त्री-पुरुषोंकी इस सर्वथा अप्रत्याशित शान्ति और धैर्यको देखकर मैं चकित रह गया। ये बाते मैं किसी व्यर्थके कौतूहलको शान्त करने या किसी तरह समय बितानेके लिए नही कह रहा हूँ। इसका उल्लेख मै इस तथ्यकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट करनेके लिए कर रहा हूँ कि इन सभाओका एक धार्मिक स्वरूप है, और मैं आशा करता हूँ कि इन विशाल जन-समुदायोके व्यवहारसे मेरा ऐसा निष्कर्ष निकालना गलत नही होगा कि वे अनजाने ही एक प्रकारकी धार्मिक भावनासे ओतप्रोत रहे है। आपके द्वारा प्रदर्शित इस दिव्य शान्ति और मौनका वास्तविक कारण चाहे जो हो, मेरे लिए तो इसका वही अर्थ है जो मैंने बताया है।

इस घोषणाको मैंने ईश्वरका कार्य माना है, यद्यपि बाह्यत. यह एक महान् महाराजाका कार्य है। ऐसे घोषणा-पत्रके पक्ष और विपक्षकी युक्तियोपर विचार

१. इस भाषणकी एक रिपोर्ट ६-२-१९३७के *हरिजन*में भी प्रकाशित हुई थी।

करने पर, उसपर हस्ताक्षर करते हुए कोई भी व्यक्ति — वह युवा महाराजा और बुद्धिमती राजमातासे भी अधिक साहसी होता तो भी — काँप उठता। लेकिन तथ्य यही है कि इन्ही युवा महाराजाने उस घोषणापर हस्ताक्षर कर दिये जो उस उद्देश्य के लिए, जिससे कि वह जारी की जा रही थी, सर्वांगपूर्ण थी। इसीलिए मैंने अकसर कहा है कि यद्यपि उसपर हस्ताक्षर महाराजा साहबने किये, किन्तु वास्तवमें उनके माध्यमसे वह काम ईश्वरने किया। अतएव, इस घोषणाको इस दृष्टिसे देखते हुए और इस तीर्थयात्राका आरम्भ डरते-काँपते करते हुए, मैं इस बातके लिए लालायित रहा हूँ कि आप अपने-अपने हृदयके बन्द द्वार खोल दें। अपनी बात आपकी बुद्धिको सुनानेका मैंने कोई सजग प्रयत्न नही किया है। लेकिन आपको आपके हृदयके धरातलपर जाग्रत करके, उसकी गहराईतक पहुँचकर अपनी बात कहनेका सजग प्रयत्न जरूर किया है, और यदि यह मेरे मनका भ्रम ही न हो तो मैं समझता हूँ कि मैं किसी हदतक अपनी बात आपके हृदयतक पहुँचा पाया हूँ। मैं चाहे ऐसा कर पाया होऊँ या नही, जो बात मैंने पहलेकी सभाओमें कही है वह आपके सामने भी दोहराना चाहता हूँ। वह बात यह है कि इस घोषणाको उसके शाब्दिक अर्थ और आन्तरिक आशय दोनोका ही खयाल रखकर पूरी तरह कार्यान्वित करनेका भार सवर्ण हिन्दुओके सिरपर है। और इसका मतलब स्पष्टत. यह है कि सवर्ण हिन्दुओको हिन्दू-धर्मके सम्बन्धमे अपनी गलत धारणाओका त्याग करना है और अबतक वे अपने और अवर्ण हिन्दुओके बीच जो भेदभाव करते आये हैं उसे भूलना है। इस घोषणाका स्पष्ट अर्थ है कि किसीका स्पर्श करने या उसे पास आने देने अथवा उसको देखनेम जो पाप माना जाता रहा है, वह अब अतीतकी चीज बन चुका है। जो हिन्दू अहंकारवश अपनेको दूसरोसे बडा मानते आये हैं, वे यह भूल जायेंगे कि वे किसी भी तरहसे दूसरे लोगोंसे ऊँचे हैं। इसके बजाय वे यह याद रखेंगे कि वे भी उसी एक ईश्वरकी सन्तान है तथा सवर्ण और अवर्ण दोनो हर दृष्टिसे समान है। यह घोषणा सभी हिन्दुओके लिए है, और आपमे से प्रत्येकसे यह सिद्ध करनेकी आशा की जाती है कि आपने इसके मर्मको समझ लिया है तथा जिन लोगोको आप आजतक समाज-बहिष्कृत मानते रहे हैं उनके साथ अपने दैनिक व्यवहारमें आप इसमे कही गई बातोपर अमल करेंगे। आजकी रात सवर्ण हिन्दुओसे अपने इस निवेदनको तो मैं यही समाप्त करता हूँ।

महाराजा साहबको यह घोषणा जारी करनेके अलावा और कुछ नही करना था। जहाँतक कोई अस्पृश्यताके सम्बन्धमे उनकी राय जानना चाह सकता है, वहाँतक यह शत-प्रतिशत सचाईसे प्रेरित है और, जहाँतक मैं समझता हूँ, इस घोषणाके अर्थको और स्पष्ट करनेकी कोई बात नही है। इसलिए आपकी उपस्थितिमे मैं महाराजा, राजमाता और उनके सलाहकारोके लिए दो शब्द कहना चाहूँगा।

यह घोषणा तो महान् है ही और इसे जारी करनेमे निहित पुण्य भी उतना ही महान् है, लेकिन इससे भी महान वह दायित्व है जो महाराजा साहब और उनके सलाहकारोने इस घोषणाको जारी करके अपने सिर लिया है। वैसे तो प्रत्येक

सवर्ण हिन्दूके प्रयत्नके विना यह घोषणा सर्वथा व्यर्थ सिद्ध हो सकती है, लेकिन साथ ही मुझे यह भी कहना पड़ेगा कि यदि राजकीय कार्रवाइयो द्वारा इसको बरावर सहारा न दिया जाता रहेगा तो भी यह अपना पूरा प्रभाव दिखानेमे असमर्थ रहेगी। जहाँतक मै समझता हूँ, इस घोषणाका यह तकाजा है कि जीवनके सभी क्षेत्रोमे राज्य अपनी ओरसे कुछ-न-कुछ अवश्य करे। इनमें मै सवसे पहले धार्मिक क्षेत्रको लेता हूँ, क्योकि दूसरे सभी क्षेत्रोमे राज्यकी प्रवृत्तियाँ इसीमें से फलित होनी है। स्त्रियो की तो एकमात्र पूँजी ही ईश्वरके प्रति श्रद्धा है, सो वे तो मन्दिरोमे जाती है। उनके अलावा, कुछ पुरुष भी जाते है, लेकिन उनका उद्देश्य विशुद्ध आध्यात्मिक नही होता, उसके पीछे भौतिक हेतु भी हुआ करता है। किन्तु, इन्हे छोड़ दे तो हम देखेंगे कि समाजका शेष हिस्सा मन्दिरोकी ओरसे उदासीन ही रहा है। जिसे हम वौद्धिक वर्ग कह सकते है, उसने तो इसकी पूरी उपेक्षा कर रखी है। फलत. हिन्दू-धर्मके सरक्षक-केन्द्रोके रूपमे आज उनकी लगभग कोई भी उपयोगिता नही रह गई है और इस धर्मके अनुयायियोको उनसे किसी प्रकारका आध्यात्मिक वल मिलना बन्द हो गया है। उनके अन्दर और आसपास आध्यात्मिकताकी जो साफ-साफ पहचानी जा सकनेवाली सुवास फैली होनी चाहिए, वह आज विलकुल देखनेको नही मिलती। इसलिए मै यह निवेदन करनेकी धृष्टता करता हूँ कि राज्यका — या अगर राज्य और महाराजा साहवमे कोई अन्तर है तो अधिकाश हिन्दू मन्दिरोके सरक्षक होनेके नाते महाराजा साहवका — यह कर्त्तव्य है कि वे मन्दिरोका आध्यात्मिक कायाकल्प करने और कभी वे निस्सन्देह जिस सत्ता और पवित्रताके प्रतीक थे, वह सत्ता और पवित्रता उनमे पुन. प्रतिष्ठित करनेकी ओर ध्यान दे। मै मानता हूँ कि उन्हे पुन. अपनी गौरवशाली स्थितिमे तभी लाया जा सकता है जव उनका भार ऐसे पुजारियोको सौपा जाये जो यह जानते हो कि उन्हे क्या करना है, जिन्हे उनकी पवित्रता और अपने कर्त्तव्योका कुछ बोध हो। दूसरे शब्दोमें, पुजारी ऐसे अज्ञानी लोगोको नही बनाना चाहिए जो मात्र जीविकोपार्जनके उद्देश्यसे यह काम एक पेशेकी तरह करते हो। ये पद ऐसे लोगोको दिये जाने चाहिए जिन्हे मन्दिरोमें जानेवालोको ईश्वरके सन्देशसे अवगत करानेके अपने महत् कार्यके गौरवका बोध हो और जो अपने आचरण और जीवनसे यह दर्शाएँ कि ये मन्दिर ईश्वरके धाम है।

फिर, मन्दिरोमे सही ढगकी धार्मिक शिक्षा देनेकी व्यवस्था होनी चाहिए। जब हरिजन लोग वहाँ जाये तो मन्दिरके किसी कार्यकर्त्ताको ही उन्हे हाथ पकडकर अन्दर ले जाना चाहिए और उन्हे बतलाना चाहिए कि मन्दिरमे पूजा करनेसे उन्हे क्या-कुछ प्राप्त हो सकता है। आधुनिक दृष्टिसे तो निस्सन्देह इसका मतलब मन्दिरोके रख-रखाव और सचालनमे क्रातिकारी परिवर्तन लाना है। लेकिन, स्वय यह घोषणा भी तो उस दृष्टिसे किसी क्रान्तिसे कम नही है, और अगर उस क्रान्तिको हिन्दुओके जीवनका स्पर्श करना है — और करना चाहिए भी — तो स्वभावत मन्दिरोको सोने या किसी अन्य धातुकी मूर्तियोका निवास-स्थान नही, बल्कि जीवन्त ईश्वरका धाम होना चाहिए। इसके वाद मै यह भी चाहता हूँ कि इन मन्दिरोका एक ऐसा इतिहास,

जिसे साधारण जन समझ सके, ऐसे सभी लोगोके बीच मुफ्त या सस्ते दामोपर वितरित किया जाये जो यह जानना चाहते हो कि ये मन्दिर वास्तवमें क्या है। इस सबका मतलब यह हुआ कि एक प्रशिक्षणशाला भी होनी चाहिए, जिसमे लोगोंको धार्मिक शिक्षा देनेवाले शिक्षक प्रशिक्षित किये जाये। अगर इस तरह की कोई बात नही होती तो मुझे ऐसी आशका है कि इस घोषणाका प्रयोजन ही विफल हो जायेगा, अर्थात् तब न हम यह आशा कर सकते है कि लाखो हरिजन अपनी इच्छासे इन मन्दिरोमे जायेंगे और न उनको इसके लिए हम प्रेरित ही कर सकते है।

इतना तो हुआ धार्मिक क्षेत्रके बारेमे। अब आर्थिक क्षेत्रको लीजिए। हरिजनोके आर्थिक जीवनको वर्तमान दुर्दशासे उबारना ही है। मै तो यह मानता हूँ कि यदि आर्थिक कार्यक्रमको सूझ-बूझके साथ कार्यान्वित किया जाये तो थोडे ही समयमें बहुत कम पूंजीसे उसे इस तरह चलाया जा सकता है कि हरिजन ईमानदारीसे दो पैसे कमाना सीखकर आसानीसे अपना निर्वाह कर सकेंगे। फिर राज्यको उनके मानसिक अर्थात् साहित्यिक शिक्षणकी भी उपेक्षा नही करनी चाहिए। अपने दु.खद अनुभवोसे मैने यह जाना है कि आज किसी पुलया या परयासे आप लगातार थोडी देर भी सिलसिलेवार बातचीत नही कर सकते। जीवनकी मामूली बातोके सम्बन्धमे किये गये सवालोके जवाब तक वह जल्दीसे नही दे सकता।

इसी तरह राज्यको इन लोगोका सामाजिक दर्जा ऊपर उठाना है। उन्हे दरबार आदि सभी राजकीय प्रसगो और समारोहोमे आमन्त्रित करना चाहिए। उन्हे यह महसूस नही करने देना चाहिए कि ऐसे समारोहोके द्वार उनके लिए बन्द है और ऐसा सामाजिक दर्जा प्राप्त करनेके लिए उन्हे एक और आन्दोलन करना पडेगा जिससे उन्हे इन समारोहोका निमन्त्रण प्राप्त करने या इनमे शामिल होनेका अधिकार मिल सके। लेकिन यदि इस घोषणाका अर्थ वही है जो मैने लगाया है तो हरिजनोको जिस प्रकार देखते-देखते मन्दिर-प्रवेशके रूपमे अपना उचित धार्मिक दर्जा प्राप्त हो गया है, उसी प्रकार उनका सामाजिक उत्थान भी ऐसी तेजीसे हो जाना चाहिए मानो कोई जादू हो गया हो।

तो इस राज्यके हरिजनोके उत्थानका यह चतुर्विध कार्यक्रम मै सुझा रहा हूँ और मेरी विनम्र सम्मतिमे इसमें मैने ऐसा-कुछ नही सुझाया है जिसे पूरा करना त्रावणकोर-जैसे राज्यके सामर्थ्यके बाहर हो या जिसे पूरा करनेके साधन उसके पास न हो।

लेकिन राज्यसे पूर्ण विनम्रताके साथ चन्द शब्दोमे यह निवेदन कर लेनेके बाद मैं फिर आपकी ही तरफ आना चाहता हूँ। राज्य भले ही यह सब करनेका निश्चय कर ले, लेकिन उसके निश्चय कर लेने-भरसे यह सब करनेके लिए आवश्यक आदमी तो नही मिल जायेंगे। मैने महाराजा साहब और महारानी साहिबा तथा उनके सलाहकारोके लिए जो चन्द शब्द कहे है उनसे यदि आप यह सोचने लगे हो कि आखिर यह-सब तो उन्हीको करना है और आप लोगोको कुछ करना ही नही है,

तो मैं कहूँगा कि मेरा सारा प्रयत्न व्यर्थ गया। इस सबके लिए आवश्यक मानव-शक्ति तो आप लोगोको ही जुटानी है, और एक अनुभवी व्यक्तिके नाते मैं आपसे कहूँगा कि रुपया-पैसा देनेसे मानव-शक्ति सुलभ नही हो जाती। उदाहरणके लिए, जिनमे मन्दिरकी व्यवस्थाका काम सँभालनेकी क्षमता हो, ऐसे लोग सैकडो रुपयेकी वृत्तियाँ देनेसे ही नही मिल जायेंगे। कारण, ऐसे लोगोमे धार्मिक भावना और अपने कार्यके प्रति प्रेम होना आवश्यक है और इसलिए उन्हे निर्वाह-भरके लिए पारिश्रमिक लेकर ही काम करनेके लिए तैयार रहना चाहिए। यह प्रशिक्षण प्राप्त करके अपने जीवनके इस सबसे बडे कार्यके योग्य बनना उनके लिए परम सौभाग्य और गौरवका विषय होना चाहिए। इसी प्रकार जबतक राज्यको हरिजनोको शिक्षा देनेके लिए आवश्यक लोग नही मिल जाते, तबतक वह स्वय कुछ नही कर सकता।

त्रावणकोरके महाराजाओने अपने लिए जो उपाधि चुनी है — पद्मनाभदास — वह आखिर एक बहुत बड़ा अर्थ रखती है। वे अपनेको पद्मनाभदास — ईश्वरका सेवक कहनेमें गर्वका अनुभव करते है। लेकिन इसका मतलब दरअसल यह है कि वे जनताके भी सेवक है। इसलिए, जैसा कि मैंने त्रावणकोरकी एक सभामें कहा था, अपनी प्रजाके बीच इस राज्यके महाराजाओकी स्थिति सर्वोच्च स्वामियोकी नही, बल्कि सेवकोके बीच सर्वोच्च सेवकोकी है। लेकिन यदि प्रजाजन, जो उस सर्वोच्च सेवकके सहयोगी सेवक ही है, उसे सुयोग्य सहायता न दे तो वह अपने दायित्वका ठीक निर्वाह नही कर पायेगा। इसलिए महाराजा साहब जो प्रतिदिन श्री पद्मनाभस्वामीके मन्दिरमे जाकर उनसे अपने दैनिक कर्त्तव्योके बारेमे निर्देश प्राप्त करते है, उसका मतलब यह है कि उनके प्रजाजन स्वय अपने आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक कल्याणके निमित्त ठीक ढगसे उनकी सहायता करे, उनके साथ सहयोग करे।

[अंग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ २३४-४०।

३०३. भाषण: कोट्टारक्करामें

२१ जनवरी, १९३७

इस निजी मन्दिरके द्वार हरिजनोके लिए खोलनेके निमित्त मुझे आमन्त्रित किया गया, यह मेरे लिए बड़ी खुशीकी बात है। हमारे मित्र श्रीयुत के० एम० एम० नारायण नम्बूदिरीपाद मेरी हार्दिक बधाईके पात्र है; और मुझे उम्मीद है कि उन्होंने महाविभवके महान् उदाहरणका जो अनुकरण किया है, उसके लिए मेरे साथ आप सब भी उन्हे बधाई देंगे। वे हिन्दू-धर्मकी सर्वोत्तम परम्पराओका ही पालन कर रहे है। अत. अपने अधीनस्थ इस मन्दिरको तथा दूसरे सत्रह मन्दिरोको हरिजनोके लिए खोलकर वे हिन्दू-धर्मकी शुद्धिके कार्यमे महान् योगदान दे रहे हैं। तो अब मैं प्रसन्नतापूर्वक यह घोषणा करता हूँ कि इस मन्दिरका द्वार सबके लिए खुला हुआ है।

[अंग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ २४१।

३०४. भाषण: सार्वजनिक सभा, कोट्टारक्करामें

२१ जनवरी, १९३७

यह मेरी त्रावणकोरकी तीर्थयात्राकी बिलकुल अन्तिम अवस्था है। मैंने एक जगह कहा था कि मै यहाँ बहुत झिझकते और डरते-काँपते हुए आया हूँ। और अगर मुझे श्रीयुत गोविन्दनका अत्यन्त आग्रहपूर्ण तार न मिलता तो आज मैं यहाँ आप लोगोके सामने न होता। तार श्रीयुत गोविन्दन और श्रीयुत रामचन्द्रन दोनोके हस्ताक्षरोसे भेजे गये थे। लेकिन रामचन्द्रन तो साबरमतीकी ही सन्तान हैं, इसलिए उनके अनुरोधपर शायद मैं ध्यान न भी देता। लेकिन त्रावणकोरके एक भूतपूर्व न्यायाधीश और, उससे भी बढकर, इलवा जातिके एक नेताके हस्ताक्षरसे मैं खौफ खा गया। और इसलिए अन्तमें बहुत हिचकिचाहटके साथ मैंने हथियार डाल दिये। लेकिन ऐसा कर चुकनेके बाद आज मैं निस्सकोच कहता हूँ कि उस हारपर मुझे अतीव प्रसन्नता हो रही है। मैं अपने मनमे यहाँसे ऐसी आध्यात्मिक स्मृतियाँ सँजोकर लौट रहा हूँ जिनकी मैंने कल्पना भी नही की थी। आपके ये भव्य मन्दिर मेरे लिए, स्वय मेरी ही इच्छासे, उसी प्रकार बन्द थे जिस प्रकार ये इलवा, पुलया या परया जातिके बडे-से-बडे लोगोके लिए बन्द थे, क्योकि अभी कलतक तो ये जातियाँ सवर्ण हिन्दुओके तिरस्कार और घृणाकी ही पात्र थी। लेकिन महाविभव महाराजाकी घोषणाके

परिणामस्वरूप जब मैने देखा कि इन मन्दिरोंके द्वार उन सभी जातियोके लिए खोल दिये गये है तो मैने इनमे वैसे ही हर्षके साथ प्रवेश किया जैसे हर्षका अनुभव उन हजारो इलवा, पुलया और परया जातिके लोगोको हुआ होगा जो इस घोषणाके बाद निश्चय ही मन्दिरो मे गये है। जबसे मैने लोक-सेवाके जीवनमें प्रवेश किया, तबसे मै मन्दिरोमे कभी भी नियमित रूपसे जाता रहा होऊँ, ऐसा मै नही कह सकता। लेकिन इस बार इन मन्दिरोके दर्शनके बाद आध्यात्मिक और भक्तिभाव लेकर मन्दिरोमे जानेसे आध्यात्मिक विकासकी सम्भावनाएँ मेरे मनमें जितनी अधिक उजागर हुई उतनी पहले कभी नही हुई थी। लेकिन कहनेकी जरूरत नही कि अगर कोई मन्दिरोमे जाकर अधिक-से-अधिक शान्ति-सन्तोष और आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त करना चाहता है तो यह जरूरी है कि उसके मनकी वृत्ति उसके लिए उपयुक्त हो। खैर, अभी मै एक निजी मन्दिरका द्वार खोलनेका समारोह सम्पन्न करके आया हूँ। वह मन्दिर श्रीयुत के० एम० एम० नारायण नम्बूदिरीपादका है। इस मन्दिरके द्वार खोलनेका समारोह त्रावणकोरके उनके अन्य मन्दिरोके द्वार खोलनेके ही बराबर था। उस मन्दिरके द्वार खोलनेका सौभाग्य प्राप्तकर मैने अतीव आनन्दका अनुभव किया। इससे पहले भी मै कई मन्दिरोके द्वार खोल चुका हूँ, लेकिन मै यह नही कह सकता कि उन्हे खोलते हुए मुझे इतने अधिक हर्षका अनुभव हुआ हो। उन मन्दिरोमे मुझे ईश्वरकी उपस्थितिकी अनुभूति नही हुई। उनके द्वार खोलनेमे मुझे एक प्रकारकी कृत्रिमताका अनुभव हुआ। इसके विपरीत, यहाँ मै जहाँ भी गया हूँ, मुझे लोगोमे ऐसा सहज उत्साह देखनेको मिला है जिसकी आशा मैने नही की थी। मुझे यह उम्मीद भी नही थी कि इस तरह हजारो लोग मेरे मन्दिरमें प्रवेश करनेका इन्तजार कर रहे होगे। निस्सन्देह वे यहाँ एक अजीबोगरीब प्राणीको देखने आये होगे। लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि हजारो लोग जो यहाँ आये और पूर्ण भक्ति-भावसे शान्तिपूर्वक खड़े रहे, उसमे उनका मशा केवल उस अजीबोगरीब प्राणीको देखनेका ही नही था। कोई धर्मनिन्दक या शकालु व्यक्ति आसानीसे भ्रममें पड सकता था और वह कह सकता था कि यह सब तो आपकी कल्पनाकी उडान है और सचाईसे इसका कोई वास्ता नहीं है। लेकिन अगर बात सचमुच ऐसी हो तो मै आप लोगोको बता देना चाहता हूँ कि मेरा पूरा जीवन और विकास ऐसी ही कल्पनाकी उडानोका परिणाम है, और कम-से-कम मेरे सम्बन्धमे तो यह कहना सच होगा कि अपने विकास के लिए मुझे ऐसी उडानोकी जरूरत रही है। फिर कल्पना कोई ऐसी निन्द्य वस्तु तो है नही कि इहलौकिक जीवनमे आप उसका पूरा त्याग करके ही चले।

बात चाहे जो भी हो, मै आपसे इतना कहे जाता हूँ कि अगर आप पद्मनाभ-स्वामीके मार्ग-दर्शनमे महाविभव महाराजा द्वारा जारी की गई इस घोषणाको कार्यरूप देना चाहते हैं तो आपको सबके साथ अपना पूर्ण तादात्म्य स्थापित करना होगा, और ऊँच-नीच, सवर्ण-अवर्णके सारे भेद मिटा देने होंगे। और इस काममे आपको सहायता देनेके लिए मै आपके सामने उस मन्त्रका अनुवाद करना चाहता हूँ जो मै लोगोको पिछले चार-पाँच दिनोसे सुनाता रहा हूँ। उस मन्त्रका अर्थ इस प्रकार है

"हमारे शास्ता, स्वामी और प्रभु ईश्वरकी सत्ता ब्रह्माण्डके कण-कणमे व्याप्त है।" इसका मतलब यह हुआ कि वह केवल मेरे या आपके हृदयमे ही नही वास्तवमें और पूर्ण रूपसे हमारे रोम-रोममें विद्यमान है। इसलिए वह हमारे प्रिय-से-प्रिय लोगो की अपेक्षा भी हमसे अधिक निकट और हमारा अधिक प्रिय है। तो हिन्दू-धर्मका पहला मुख्य तत्त्व तो यह है कि जिस प्रकार हम यह समझते है कि अभी हम यहाँ बैठे है और आप लोग मेरी बाते सुन रहे है, उसी प्रकार स्पष्ट रूपसे हम इस भव्य उक्तिके सत्यका भी अनुभव करे। इस सत्यकी अनुभूति कर लेनेके बाद मन्त्रद्रष्टा आगे कहता है कि चूंकि ईश्वर हमारे इतना निकट है और हमारे सभी कर्मोंका नियामक है, इसलिए जिन्हे हमने अपना माना है उन सारी वस्तुओका त्याग हमें स्वेच्छासे करके उन्हे प्रभु-चरणोमें अर्पित कर देना चाहिए। लेकिन सजग और सुविचारित त्याग और समर्पणके इस कार्यके बाद भी हमें खानेको भोजन, पहननेको कपडे और रहनेको घरकी जरूरत तो होगी ही। इसलिए मन्त्रदृष्टा कहता है, इस समर्पणके बाद ही आप जीवनके लिए इन आवश्यक वस्तुओका उपभोग ऐसा मानकर कर सकते है कि यह सब आपको स्वय ईश्वरने दिया है। इसके लिए उसी विश्वास, उसी श्रद्धा और उसी प्रेमकी आवश्यकता है जैसा विश्वास, श्रद्धा और प्रेम कोई बालक तर्कबुद्धिसे कुछ सोचे बिना सहज रूपसे अपने माता-पिताके प्रति रखता है। वह कभी भी ऐसा तर्क नही करता कि जबतक उसके माता-पिता है और उसकी आवश्यकताओको स्वयं ही समझकर उनकी पूर्त्ति कर रहे है तबतक सब ठीक है। हमारे माता-पिता हमारी ही तरह मर्त्यजन है, इसलिए यह विश्वास रखना तो और भी युक्तियुक्त और आवश्यक हो जाता है कि ईश्वर हमारी आवश्यकताओको समझकर उनकी पूर्त्ति स्वय ही करेगा। हमसे ये तीन बातें कहनेके बाद वह मन्त्रदृष्टा हमें सावधान करता है कि किसीकी सम्पत्तिको लोभकी दृष्टिसे मत देखो। तो अब आप समझ सकते है कि यदि हम इस मन्त्रमें विश्वास करते है, और इसमें विश्वास करना प्रत्येक हिन्दूका अनिवार्य कर्त्तव्य है, तो उस तरहका कोई भेद-भाव हमारे बीच नही रह जायेगा जो हिन्दू-धर्म और हिन्दू जातिकी जडको ही खोखला बनाता जा रहा है।

अब आप यह बात भी आसानीसे समझ सकते है कि मन्दिर हमारे जीवनका अभिन्न अग क्यो है और होने चाहिए। हम अपने दायित्वोको इतनी जल्दी भूल जाते है कि ईश्वरके प्रति अपनी श्रद्धाकी प्रतिज्ञाको प्रतिदिन दोहराना, त्याग और समर्पण का कार्य हर दिन सम्पन्न करना हमारे लिए जरूरी हो जाता है। ये मन्दिर ईश्वर की शक्ति और सत्ताके प्रत्यक्ष प्रतीक है। इसलिए मन्दिरको ईश्वरका घर और प्रार्थना का स्थान कहना सर्वथा उचित ही है। स्नानादि नित्य क्रियासे निवृत्त होकर हम सबसे पहले प्रतिदिन प्रातःकाल प्रार्थनापूर्ण भावसे मन्दिरमें जाते है और वहाँ त्याग और समर्पणकी क्रिया सम्पन्न करते है। धर्मनिन्दक और शकालु लोग कह सकते है कि इस तरह प्रतिमाओमे ईश्वरको देखना तो मनकी कल्पना-मात्र है। इन लोगोसे मैं यही कहूँगा कि हाँ, बात ऐसी ही है। मुझे यह स्वीकार करते हुए किसी प्रकारकी

लज्जाका अनुभव नही होता कि कल्पनाका जीवनमे एक बहुत बड़ा स्थान है। कोई मन्दिर, उदाहरणके तौरपर कहिए, मेरी गायके लिए तो ईश्वरका घर नही है, यद्यपि गाय भी उसी प्रकार मेरी एक सह-प्राणी है जिस प्रकार मनुष्य है। लेकिन ईश्वरने गायको कल्पनाका प्रसाद नही दिया है और इसलिए उसके मन्दिरमे जानेसे भी उसपर कोई असर नही होता। लेकिन मेरे वहाँ जानेका तो मुझपर ऐसा प्रभाव होता है जिसे स्पष्ट रूपसे समझाया जा सकता है। इसका कारण सिर्फ यही तो है कि मैंने ऐसी कल्पना कर ली है कि मन्दिरमे ईश्वरका निवास है।

इसलिए मै यहाँसे जाते हुए आपको यह मन्त्र देकर जाना चाहूँगा और आपसे कहूँगा कि जो-कुछ इस मन्त्रसे असंगत हो उसे आप तुरन्त हिन्दू-धर्मसे बाहरकी चीज मानकर अस्वीकार कर दीजिए। और इस मन्त्रमे जो-कुछ है, उस सबको हृदयगम करनेके बाद आपको हिन्दू धर्मग्रन्थ मानी जानेवाली दूसरी पोथियोकी चिन्ता करनेकी कोई जरूरत ही नही रह जाती। मगर इसका मतलब यह नही कि शेष सब व्यर्थ या हानिकर ही है। हिन्दू शास्त्रोके नामपर बहुत-सी निरर्थक बाते भी जरूर चल रही हैं, लेकिन इन ग्रन्थोमे अमूल्य निधियाँ भी छिपी पडी है। किन्तु आपके या मेरे पास उन सबका अध्ययन करनेका समय कहाँ है? और अगर आपके पास है भी तो मै आपको आगाह कर देना चाहता हूँ कि यदि उनके अध्ययनसे आपके मनमे उलझन पैदा होती है तो आपके लिए बेहतर यही होगा कि आप उन्हे पड़ा रहने दीजिए और सब-कुछको छोडकर इसी मन्त्रसे सम्पूर्ण सन्तोष प्राप्त कीजिए।

और अब त्रावणकोरके अपने सुखद अनुभवके विषयमें दो शब्द कहने और एक अतिथिके रूपमे अपने आतिथेयोके प्रति अपना दायित्व पूरा करनेके बाद मै इस सभाकी कार्यवाहीको समाप्त करूँगा।

मेरी इस तीर्थयात्राको वर्तमान परिस्थितियोमें यथासम्भव अधिक-से-अधिक सुविधाजनक बनानेके लिए सयोजकोने कुछ भी उठा नही रखा। इसके लिए मै और मेरे साथी उनके हृदयसे आभारी है। महाविभव महाराजा और सचिवोत्तम सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरने राजकीय तौरपर मेरा तथा मेरे साथियोका जो स्वागत-सत्कार किया उसके लिए मै उनका हृदयसे कृतज्ञ हूँ। स्वभावतः इस आतिथ्यके फलस्वरूप त्रावणकोरकी मेरी यह यात्रा — जिसमे मैंने बहुत शीघ्रता बरती है — निर्बाध रूपसे सम्पन्न हो गई है और इसमे मुझे ऐसी सुविधाएँ मिलती रही है जो अन्यथा नही मिल सकती थी। लेकिन इन बडे-बडे लोगों और तीर्थयात्राके सयोजकोसे भी कही अधिक धन्यवादके पात्र वे लोग है जो वास्तवमें मेरे प्रतिदिनके कार्यक्रममे मेरे सहायक थे। उदाहरणके लिए, हमे जो तीन मोटरगाडियाँ दी गई थी उनके चालकोने निरन्तर हमारी सुविधाका ध्यान रखा, और मै आपको प्रसन्नतापूर्वक यह सूचित कर रहा हूँ कि उन्होने अपना काम पूरा करते हुए एक भी अवाछनीय घटना नही होने दी। दिन है या रात, इसकी परवाह किये बिना उन्होने खुशी-खुशी अपना काम किया। ऐसा ही अच्छा काम रसोइयोने किया। आप सच मानिए, एक जगहसे दूसरी जगह चलकर हमारे लिए खाना पकाना वास्तवमे एक कठिन काम था। लगभग

निरपवाद रूपसे प्रतिदिन नाश्ता एक जगह करना पडता था तो दोपहरका खाना दूसरी जगह और रातका किसी तीसरी जगह खाना पडता था। इन सबकी देखरेख करनेवाला एक अधिकारी भी था जो त्रिवेन्द्रमसे ही हमारे साथ चल रहा था। वह हर चीजका पूरा-पूरा ध्यान रखता था। उसने भी निरन्तर उसी मनोयोग से अपना दायित्व निबाहा और हमारे प्रति उसका व्यवहार अत्यन्त शिष्टतापूर्ण रहा। इन सभी मित्रोके हार्दिक सहयोगके बिना हम लोग इस तीर्थयात्राको इस तरह सकुशल सम्पन्न नही कर पाते कि इस दौरान एक भी आदमी अस्वस्थ नही हुआ।

फिर मुझे हर स्थानपर हमारी हर प्रकारकी सहायता करनेके लिए तत्पर तहसीलदारोंको भी नही भूलना चाहिए। वे अन्य लोग भी मेरे धन्यवादके पात्र हैं जिनका उल्लेख मैंने अनजानमें नही किया है।

हाँ, कानूनके उस अनिवार्य अग, पुलिसको तो मै भूलता ही जा रहा था। भारतमें पुलिसके रग-ढंगके बारेमें हमारी जो कल्पना है, यहाँके पुलिसवालोने उस ढगसे काम नही किया। उन्होने सचमुच बहुत ही भद्र तरीकेसे व्यवहार किया, वैसी ही भद्रताके साथ जिसके लिए इंग्लैंडकी पुलिस विश्व-भरमें विख्यात है। जो अग्रेज भारतमे है वे चाहे जैसे हो, वहाँकी पुलिसका सिपाही सचमुच बड़ा भद्र होता है। मुझे मालूम हुआ है कि प्रतिदिन प्रात काल जब उसे कामपर भेजा जाता है उससे इस सूत्रको दोहरानेकी अपेक्षा की जाती है कि वह जनताका स्वामी नही, बल्कि सेवक है। जिन असख्य लोगोसे उसका वास्ता पडता है, उन सबसे उसे शिष्टतासे पेश आना पड़ता है और दुर्व्यवहार तो वह अपराधियोके साथ भी नही कर सकता। अन्य सभी देशोके कानूनकी तरह इग्लैंडके कानून की भी यह अपेक्षा है कि जबतक कानूनन किसी व्यक्तिका अपराध सिद्ध न हो जाये तबतक उसे अपराधी न माना जाये। इसलिए इग्लैंडमें पुलिसवालोंको ऐसे लोगोंके साथ भी शिष्टतासे पेश आना सिखाया जाता है जो हत्याके अपराधी हो और रँगे हाथो पकड़े गये हो। इसलिए आप समझ लीजिए कि यहाँके पुलिसवालोके बारेमें यह कहकर कि उन्होने लन्दनके पुलिसवालोकी तरह शिष्टतापूर्ण व्यवहार किया, मै उनकी कितनी बड़ी प्रशसा कर रहा हूँ। स्वभावत, वे भी वैसे ही धन्यवादके पात्र है जैसा धन्यवाद मैंने उपर्युक्त अन्य लोगोको दिया है।

और अन्तमें मै यहाँ उपस्थित आप सब लोगोको धन्यवाद देता हूँ और आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप यह न भूलें कि इस घोषणाको कार्यान्वित करनेकी जिम्मेदारी आपमे से हरएकके सिर है।

[अंग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, पृष्ठ २४१-४८।

३०५. मन्दिरोंमें दिये गये भाषणोंका सार[1]

[१२/२१ जनवरी, १९३७][2]

मेरा खयाल है, यह बात सच है कि भारतके – उत्तर भारत और दक्षिण भारतके भी — प्रत्येक मन्दिरमें एक आँगन होता है, जहाँ भजन-मण्डलियाँ भजन करती है और पण्डित-पुरोहित प्रवचन देते है। लेकिन मेरा यहाँ जो-कुछ करनेका इरादा है और कुछ दिनोंसे जो-कुछ करता आया हूँ वह, ऊपर मैंने जो बाते बताई है, उनसे कुछ भिन्न है।

मै जबसे भारत लौटा हूँ तबसे आश्रममे या जहाँ-कही भी मै गया हूँ वहाँ प्रत्येक सन्ध्या इस समय हम प्रार्थना करनेका नियम निभाते रहे है, और इस तीर्थ-यात्राके कारण मेरे मनमें इतना अधिक उत्साह और उल्लास भर गया है कि मै आपके इन भव्य मन्दिरोकी छायामे प्रार्थना करनेको लालायित रहा हूँ। इसलिए मैंने इस मन्दिरके, जिसमें मै जीवनमें पहली बार आया हूँ, न्यासियोसे पूछा कि क्या इसके प्रमुख देवताके समक्ष प्रार्थना-सभा कर सकता हूँ। उन्होने मुझे तत्काल इजाजत दे दी, जिसके लिए मै उनका बडा आभारी हूँ।

अब मै आपको, हम हर शाम जो प्रार्थना करते है, उसके विभिन्न हिस्से समझाऊँगा। आरम्भ 'ईशोपनिषद्' के उस प्रथम मन्त्रसे करता हूँ, जिसे मै विभिन्न सभाओमें समझाता रहा हूँ। इस मन्त्रको मै हिन्दू-धर्मका मूलाधार मानता हूँ। इसके बिना हिन्दू-धर्म कुछ नही है और जब उसमे यह है तो उसे और किसी चीजकी जरूरत नही है। अतः, मै आपको उस मन्त्रका सार बता दूं। वह इस प्रकार है. ईश्वर, हम सबका स्रष्टा और शास्ता, ब्रह्माण्डके छोटे-से-छोटे कण-कणमें व्याप्त है, और चूँकि यह सब-कुछ ईश्वरका है और सबमे ईश्वरका निवास है, इसलिए हमे सब-कुछका त्याग कर देना चाहिए, सब-कुछ उसीके चरणोपर अर्पित कर देना चाहिए और फिर प्रतिदिन वही खाना चाहिए, उसीका उपभोग या उपयोग करना चाहिए जो-कुछ वह हमे दे। मन्त्रके अन्तमे कहा गया है: "किसीकी सम्पत्तिको लोभकी दृष्टिसे मत देखो।" ससारके किसी भी धर्मग्रन्थमे इतना सन्तोष देनेवाली, इतनी सुन्दर बात कही नही मिलती। इस मन्त्रमे एक विश्वव्यापी सत्यका प्रतिपादन किया गया है और वह सत्य सबपर लागू होता है।

१. महादेव देसाई कहते हैं: "जब कभी सायकाल हम किसी मन्दिरके पास होते थे, तो अपनी सायकालीन प्रार्थना हम उसीके अहातेमें करते थे। गांधीजी हर जगह प्रार्थनाके विभिन्न हिस्सोंका अर्थ समझाया करते थे। इन प्रार्थना-सभाओंमें उन्होंने जो बातें कहीं, वे यहाँ दी जा रही है।"

२. गांधीजी १२ जनवरी से २१ जनवरी तक त्रावणकोरमें थे।

इसके बाद 'भगवद्‌गीता' के दूसरे अध्यायके अन्तिम १९ श्लोकोंका पाठ किया जायेगा। इन श्लोकोमें यह बताया गया है कि सच्चा हिन्दू बननेके लिए हमें क्या करना चाहिए, हमे परस्पर एक-दूसरेके साथ और स्वय अपने साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए।

फिर, चूँकि सभी सस्कृत नही समझ सकते, इसलिए हम अपने देशके किसी सन्तका कोई भजन शामिल कर लेते है। सन्तोने हमे हिन्दू-धर्मके सारसे परिचित करानेके लिए यह सुन्दर माध्यम ढूँढ निकाला। कबीर, तुलसीदास, सूरदास, नानक, मीराबाई, त्यागराज, तुकाराम तथा अन्य भारतीय सन्तोकी कृतियोके अक्षय भण्डारसे हम भजनोका चुनाव करते है।

लेकिन बहुत-से लोग ऐसे है जो इन सरल भजनोको भी नही समझ सकते। इसलिए उनका मन ईश्वरकी ओर लगानेके लिए हम सिर्फ राम-नामका जाप करते है।

और फिर हालमें जबसे हमने गाँवोके अन्तरंगमे प्रवेश किया है, तबसे हम तुलसीदासकी 'रामायण' का भी पाठ करते हैं। यह हमारे धार्मिक साहित्य-भण्डारका एक रत्न है। उत्तर भारतके करोडो ग्रामवासी इससे परिचित है और इसका सगीत इतना अच्छा है कि इसकी धुन सुननेसे भी मनुष्यकी वृत्तियाँ ऊर्ध्वमुखी हो जाती हैं।

आशा करता हूँ कि अब आप लोग प्रार्थनाको कुछ ज्यादा अच्छी तरह समझ सकेगे।

[अंग्रेजीसे]

द एपिक ऑफ त्रावणकोर, २४९-५१।

३०६. भेंट : 'हिन्दू' के प्रतिनिधिको

मद्रास
२२ जनवरी, १९३७

त्रावणकोरकी यात्रा मेरे लिए हर तरहसे एक तीर्थयात्रा रही है। हरिजनोके निमित्त किये गये अपने उड़ीसाके दौरेको मैंने तीर्थयात्रा अवश्य कहा था। लेकिन वह तीर्थयात्रा शब्दके पारम्परिक अर्थमे तीर्थयात्रा नही था। हाँ, अगर नन्दनारकी भाषाका प्रयोग करे तो उसे तीर्थयात्रा कह सकते हैं। कारण, कहते है, अपनी कल्पनाके मन्दिरमे ईश्वरके साक्षात् दर्शन करनेके लिए वे मीलो पैदल चले थे, यद्यपि उन्हे मालूम था कि मन्दिरके द्वार उनके लिए बन्द होगे। लेकिन अन्तर इतना ही है कि जहाँ वे मन्दिरमें प्रवेश करनेमें सफल हो गये, मै उड़ीसामें बुरी तरह विफल रहा।

त्रावणकोरकी यात्रा मैंने एक पारम्परिक तीर्थयात्रीकी तरह की। मुझे मालूम था कि जिन मन्दिरोके द्वार हरिजनोके लिए बन्द होनेके कारण मेरे लिए भी बन्द

थे, उन मन्दिरोके द्वार अब मेरे और उनके लिए भी खुले हुए है। इस दृष्टिसे मेरे जीवनकी यह पहली तीर्थयात्रा थी। यद्यपि जिन मन्दिरोके द्वार हरिजनोके लिए बन्द है उनमे कभी भी न जानेका निश्चय करनेसे पहले मै कुछ मन्दिरोमें गया था, लेकिन वह कोई तीर्थयात्रा नही थी। वह तो खादी और खिलाफत-जैसे उद्देश्योके लिए किये गये दौरोका ही एक हिस्सा था। लेकिन इस बार मैने निश्चित रूपसे त्रावणकोरके अनेक मन्दिरोमे जानेके लिए यात्रा की। और मुझे कहना होगा कि मेरी बड़ी-से-बडी आशाएँ भी वहाँ फलीभूत हुईं।

मै जहाँ भी गया, मैने हजारो तथाकथित सवर्णों और अवर्णोको बिना किसी भेद-भावके आपसमे मिलते-जुलते पाया। उन्होने उन अनेक मन्दिरोमे बेरोकटोक प्रवेश किया। पुजारियोने बिना किसी झिझकके पूजा-अर्चना की और उनके बीच फूल, चन्दन और प्रसाद बाँटा। उनके चेहरोपर मैने कोई खिन्नता नही देखी। सब-कुछ मुझे उस घोषणाके प्रति सहज उत्साहसे प्रेरित जान पडा और लगा कि वह सब इस बात की एक स्वीकृति है कि घोषणाने दीर्घकालसे महसूस होती आ रही एक आवश्यकता की पूर्ति की है। मुझे ऐसी आशका थी कि हरिजन लोग इतनी बडी सख्यामें मन्दिरो मे नही जायेगे। मुझे यह डर भी था कि दीर्घकालसे उपेक्षित-वचित रहनेके कारण उनमे कही मन्दिरमे पूजा करनेके प्रति, बल्कि शायद स्वय धर्मके ही प्रति, उदासीनताका भाव न आ गया हो। लेकिन स्पष्ट ही ऐसा-कुछ नही हुआ था। जिस पूजाके अधिकारसे उन्हे वंचित कर दिया गया था, लेकिन जिसका उपभोग दूसरे हिन्दू, अर्थात् सवर्ण लोग कर रहे थे, उसके लिए उनके मनमे जाने-अनजाने एक ललक अवश्य रही होगी। इसलिए मुझे लगा कि उन्होने बड़ी सहज रीतिसे अपना उचित स्थान पुन. ग्रहण कर लिया है, और इसलिए भक्ति-भाव क्या है या पूजा कैसे करनी चाहिए, इसे जानने-समझनेमें उन्हे कोई कठिनाई नही हुई।

हजारो लोग मन्दिरोमे आये और उनतक जानेवाली सडकोपर पक्तिबद्ध खडे रहे। उन्होने जैसी शान्ति बनाये रखी वह सबके लिए अनुकरणीय है। इस चीजने मेरे हृदयको अत्यन्त अभिभूत कर दिया। फलत अपने भाषणोमे मैने बरबस इससे सम्बन्धित कुछ उद्गार प्रकट किये। मेरे हृदयमें जो भावनाएँ उठ रही थी, उनमे से वे बाते सहज ही फूट निकली। कई सभाओमे मै बिना किसी तैयारीके गया था। सयोजकोने मुझे यह सोचनेका समय ही नही दिया कि मुझे क्या कहना है। इसलिए जब मैने यह कहा कि यद्यपि इस घोषणापर हस्ताक्षर युवा महाराजाने किये, किन्तु उसके पीछे प्रेरणा ईश्वरकी थी, तब वास्तवमे मेरा आशय भी अक्षरश: यही था।

अब तो मै यही आशा करता हूँ कि अपनी माताके बुद्धिमत्तापूर्ण मार्गदर्शनमे और अपने दीवानके परामर्शसे महाराजा साहबने जो महान् कदम उठाया है, कोचीन तथा भारतके अन्य राज्य, बल्कि ब्रिटिश भारत भी उसका अनुकरण करे। इसलिए 'हिन्दू' के कलके अकमे मुझे यह समाचार पढकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि प्रोफेसर के० सुन्दररमणने, जो एक जाने-माने सनातनी है, सुझाव दिया है कि ब्रिटिश भारतमें समर्थकारी कानून (एनेब्लिंग लेजिस्लेशन) पास करके ट्रस्टियोको यह अधिकार दिया

जाये कि जहाँ भी उन्हे वाछनीय और आवश्यक प्रतीत हो, वहाँ जो मन्दिर उनकी देख-रेखमें हो उनके द्वार वे तथाकथित अस्पृश्योके लिए ठीक उन्ही शर्तोंपर खोल दे जिन शर्तोंपर उनमे आज दूसरे हिन्दुओको प्रवेशकी सुविधा है।

इस तरहका कानून जितनी जल्दी बना दिया जायेगा, हिन्दू-धर्म और हिन्दूजाति के हकमे उतना ही अच्छा होगा। आज जो-कुछ त्रावणकोरमें हो रहा है, उसके सारे देशमे होनेकी सम्भावना है, क्योकि त्रावणकोरके हिन्दुओका स्वभाव शेप भारतके हिन्दुओसे भिन्न नही हो सकता। अभी कुछ महीने पहले क्या कोई सोचता था कि त्रावणकोरमे इतनी बडी बात हो जायेगी? तब तो वास्तवमें लोग यह सोचते थे कि इस दिशामे त्रावणकोर कभी पहल नही करेगा, बल्कि उसके भव्य मन्दिरोके द्वार अगर हरिजनोके लिए कभी खुले भी तो सबमे अन्तमे ही खुलेगे। लेकिन जो बात अप्रत्याशित थी वही घटित हो चुकी है। यह वास्तवमे आधुनिक युगका एक चमत्कार है। त्रावणकोरने रास्ता दिखा दिया है और अब अगर, जैसा कि मैंने कहा है, भारतके सभी देशी राज्य और — जैसा कि प्रो० सुन्दररमणने सुझाया है — ब्रिटिश भारत उस रास्तेपर नही चलता तो यह बडे दुःखकी बात होगी।

'हिन्दू' के प्रतिनिधिने गांधीजीसे सनातनियोके लिए दो शब्द कहनेका अनुरोध किया। इसपर गांधीजीने कहा :

बेशक, सनातनियोके लोकमतके बलपर बहुत-कुछ सम्भव है। देखता हूँ, तमिल-नाडुमें इस घोपणासे असहमति प्रकट करनेके लिए कुछ सभाएँ की गई हैं। लेकिन मुझे आशा है कि यह असहमति आम सनातनियोकी रायकी द्योतक नही है। उन्हे कालके सकेतको पहचानना चाहिए। कोई भी सच्चा धर्म आदमी-आदमीके बीच किसी प्रकारका भेद-भाव बरदाश्त नही कर सकता। इसलिए सनातनी लोग जितनी जल्दी परिवर्तनकी आवश्यकता समझ जायेंगे, उस धर्मके हकमें उतना ही अच्छा होगा जिसका वे अपने-आपको विशेप सरक्षक मानते हैं। इसलिए मुझे आशा है कि जो मार्ग प्रो० सुन्दररमणने दिखाया है, वे उसका अनुसरण करेंगे।

अपने पंदलम्के भाषणमें गांधीजीने यह इच्छा व्यक्त की थी कि अब इस घोषणाके बाद राज्यको अमुक कार्य करने चाहिए। उसके सम्बन्धमें प्रश्न पूछने पर उन्होंने कहा :

यह कोई बहुत भारी कार्यक्रम नही है। मुझे इस बातमे तनिक भी सन्देह नहीं है कि इसे पूरा किया जा सकता है। बस, करनेकी इच्छा-भर होनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २२-१-१९३७

३०७. भाषण: हरिजन उद्योग-शाला, कोडम्बकममें

२२ जनवरी, १९३७

गांधीजीने कहा कि आपके बीच चन्द घंटे रहनेकी मुझे बड़ी खुशी है। अगर आप लोग समझदार-सयाने हैं तो आपको अपनी संस्थाके इमारत- अहातेको साफ-सुथरा रखना चाहिए। मैंने छतोंमें मकड़ीके बहुत-से जाले और अहाते में छोटे-छोटे गड्ढे देखे हैं। यहाँ रहकर शिक्षा पानेवाले लड़कोंको इन दोषोंको दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिए। प्रबन्ध-मण्डल इमारतका बड़ा भारी किराया देता है— ४० रुपये प्रति-मास। अगर छात्रगण इस स्थानका ठीक उपयोग करे तो इसमें से इतना पैसा वे निकाल सकते हैं। जो दूसरी बात मेरी दृष्टिमें आई वह यह कि यहाँ कताई-बुनाईका काम नहीं किया जाता। अगर आप लोग प्रति-दिन, समझ लीजिए, यही कोई घण्टे-भर कताई-बुनाई करे तो उससे आपको दोहरा लाभ होगा। इस तरह आप अपनी जरूरतका कपड़ा तो बना ही लेंगे, बेचनेके लिए कुछ ज्यादा भी तैयार कर सकते हैं। अब इस संस्थाके कर्ता-धर्ता लोग यह सोचें कि मेरे इस सुझावको स्वीकार करना व्यवहार्य है या नहीं। मैं छात्रोंसे भी ये दो बातें याद रखनेको कहूँगा।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २३-१-१९३७

३०८. भाषण: कोडम्बकममें

२२ जनवरी, १९३७

त्रावणकोरमें जब मैं बडी-बडी सभाओंमें भी प्रार्थना कर रहा होता था, उस समय वहाँ पूरी शान्ति छाई रहती थी। वातावरणमें एक आलौकिक शान्ति व्याप्त रहती थी। लेकिन यहाँ तो इस छोटी-सी सभामें भी वैसी शान्ति नही है। मैं नही समझता कि त्रावणकोरमें मुझे जो तन्मयता देखनेको मिली, उसका कारण आकस्मिक उत्साहका अतिरेक था। यदि आपमें भी, एक सीमातक ही सही, वैसी धार्मिक भावना हो तो यहाँ भी आपको प्रार्थना-सभाओंमें वैसी ही शान्ति देखनेको मिल सकती है। आशा है, आप इस बातको ध्यानमें रखेंगे। यदि हिन्दू-धर्मको विश्वके एक महान् धर्मके रूपमें जीवित रहना है तो त्रावणकोर-जैसी धार्मिक जागृति पूरे भारतमें लानी होगी। मैं आप सबको इसके पक्षापक्षको व्यक्तिगत आचरण द्वारा परखकर देखनेको आमन्त्रित करता हूँ।

अब मैं यहाँ जो प्रार्थनाएँ की गईं, उनके सम्बन्धमें दो शब्द कहूँगा। सबसे पहले तो 'भगवद्गीता' के दूसरे अध्यायके अन्तिम उन्नीस श्लोकोंका पाठ किया गया। सायंकालीन प्रार्थनाओंमें इन श्लोकोंका गायन इसलिए किया जाता है कि इनमें प्रत्येक हिन्दूको यह याद दिलाया गया है कि उसे संसारमें कैसा आचार-व्यवहार करते हुए जीना चाहिए। प्रार्थनाके दूसरे भागमें प्राचीन सन्तोंके भजनोंका गायन किया जाता है। ये भजन विशेष रूपसे उन लोगोंके लिए हैं जो संस्कृत नहीं समझते। और चूंकि इस देशमें करोड़ों लोग ऐसे हैं जो भजनोंका भी गायन नहीं कर सकते, इसलिए हमारे पूर्वजोंने एक और तरीका सोच निकाला। वह है केवल ईश्वरके नामका जाप करना। यह तो आपकी इच्छापर निर्भर है कि आप उसे किस नामसे स्मरण करते हैं — रामके नामसे या कृष्णके नामसे अथवा अन्य हजारों नामोंमें से किसी एकसे। और अन्तमें तुलसीकृत 'रामायण' का पाठ किया गया। इसे प्रार्थनाओंमें बादमें चलकर शामिल किया गया था। ग्रामोद्धार आन्दोलन आरम्भ होनेपर ग्रामवासियोंके पास ऐसी कोई चीज ले जाना आवश्यक पाया गया। तुलसीदासकी रामायणसे विन्ध्य पर्वत-मालाके उत्तरकी ओरके करोड़ों भारतीय परिचित हैं। इस रामायणको मैं मानवताकी समृद्धतम आध्यात्मिक निधियोंमें गिनता हूँ। इसका संगीत दिव्य है, भाषा भी उतनी ही दिव्य है।

सोनेके लिए विस्तरपर जानेसे पहले किसी-न-किसी प्रकारकी सायंकालीन प्रार्थना आवश्यक है। जिस प्रकार हमें अपने शरीरके लिए आहारकी आवश्यकता है, उसी प्रकार आत्माके लिए भी प्रार्थनारूपी आहारकी जरूरत है, क्योंकि हम यह जानते हैं और इस बातको स्वीकार करते हैं कि शरीरसे परे भी कोई चीज है। यदि आप कुछ समयतक ईमानदारीसे प्रार्थना करके देखेंगे तो मेरी ही तरह आपको भी लगने लगेगा कि शारीरिक आहारके बिना तो आप कुछ समयतक अपना काम चला सकते हैं, बल्कि एक सीमातक उससे आपको लाभ भी पहुँच सकता है, लेकिन आध्यात्मिक आहारके बिना रह पाना आपको स्वीकार्य नहीं होगा। अगर आप प्रातः-सायं दोनों समय प्रार्थना करेंगे तो जल्दी ही आपको पता चल जायेगा कि कभी प्रार्थना करनेमें चूक जानेपर आपका मन कितना खिन्न हो जाता है।

अन्तमें गांधीजीने लोगोंसे हरिजन संस्थानके लिए, जो हरिजनोंके लिए बहुत अच्छा काम कर रहा है, चन्दा देनेका अनुरोध किया।

लोगोंने उनको छोटी-मोटी राशियाँ, आभूषण, घड़ियाँ और कलमें भेंट कीं। गांधीजीने श्री सत्यमूर्तिकी पुत्री श्रीमती लक्ष्मीसे विनोदपूर्वक पूछा, "तुम क्या देने जा रही हो?" इसपर श्रीमती लक्ष्मीने अपनी कलाइयोंसे सोनेकी दो चूड़ियाँ उतारकर तुरन्त गांधीजीको भेंट कर दीं।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २३-१-१९३७

३०९. भेंट: एक मिस्रवासीको[1]

[२२ जनवरी, १९३७][2]

प्रश्न: साम्यवादके बारेमें आप क्या सोचते हैं? क्या आपके खयालसे यह, हिन्दुस्तानके लिए हितकर होगा?

उत्तर: रूसी ढंगका साम्यवाद, वैसा साम्यवाद जो जबरदस्ती लोगोंपर थोप दिया जाये, भारतको कभी स्वीकार नहीं होगा। मैं अहिंसक साम्यवादमें आस्था रखता हूँ।

प्रश्न: पर रूसी साम्यवाद तो निजी सम्पत्तिके खिलाफ है। क्या आप निजी सम्पत्ति रहने देना चाहते हैं?

उ०. अगर साम्यवाद बगैर किसी तरहकी हिंसात्मक प्रवृत्तिके आये तो उसका स्वागत होगा। क्योंकि तब जनताकी ओरसे जनताके लिए ही सम्पत्तिपर कोई अधिकार कर सकेगा। किसी लखपतिके पास लाखकी सम्पत्ति भले रह जाय, पर वह सम्पत्ति जनताकी ही होगी। और जब-कभी सर्व-साधारणके हितके लिए उसकी जरूरत होगी, राज्य उसे अपने अधिकारमें ले सकेगा।

प्र०: समाजवादके बारेमें आपके और जवाहरलालजीके बीच क्या कोई मतभेद हैं?

उ०: हाँ, है तो, पर वह इतना ही कि वे उसके इस अंगपर जोर देते हैं, तो मैं उसपर। वे शायद परिणामपर जोर देते हैं, और मैं साधनपर। मैं शायद उनके खयालसे अहिंसापर जरूरतसे ज्यादा जोर दे रहा हूँ। वे भी अहिंसामें विश्वास तो करते हैं, पर अगर अहिंसाके द्वारा समाजवाद लाना सम्भव न हो तो वे अन्य साधनोंको भी काममें लानेके पक्षमें हैं। बेशक अहिंसापर मेरा जोर देना मेरे लिए एक सिद्धान्तका सवाल है, और सिद्धान्तको कभी छोड़ा नहीं जा सकता। मुझे तो अगर कोई यह भी विश्वास दिला दे कि हिंसासे आजादी मिल सकती है तो मैं उसे लेनेसे इनकार कर दूँगा, क्योंकि वह सच्ची आजादी नहीं होगी।

प्र०: पर क्या आपका यह खयाल है कि आपके अहिंसात्मक आन्दोलनके परिणामस्वरूप अंग्रेज हिन्दुस्तानको आपके हाथोंमें सौंपकर चुपचाप यहाँसे चले जायेंगे?

उत्तर: बेशक, मेरा यही खयाल है।

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

२. महादेव देसाईके अनुसार "यह मुलाकात रातमें उस समय हुई थी जब गांधीजी जल्दी ही सोनेकी तैयारी कर रहे थे, क्योंकि सुबह ३ बजे ही उन्हें तूफानग्रस्त क्षेत्रोंका दौरा करने निकलना था। तूफानग्रस्त क्षेत्रोंका दौरा उन्होंने २३ जनवरीको शुरू किया था।

प्रश्न : पर आपकी इस आस्थाका आधार क्या है?

उत्तर : मेरी आस्थाका आधार ईश्वर और उसका न्याय है।

प्रश्न : हम तथाकथित ईसाइयोंसे कहीं बड़े ईसाई आप है। मैं इन शब्दोको मोटे अक्षरोमें अंकित करूँगा।

उत्तर : अवश्य करे, अन्यथा ईश्वर प्रेमका देवता नही, वल्कि हिंसाका देवता वन जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-२-१९३७

३१०. भाषण : आन्ध्र प्रदेशके एक गाँवमें[1]

[२३ जनवरी, १९३७][2]

मै चाहता हूँ कि आप मेरे साथ नितान्त ईमानदारीका व्यवहार करे और मुझे बिलकुल ठीक बताये कि इस आपत्तिसे आप लोगोमे से कितनोको नुकसान उठाना पड़ा है और कितने उससे बच गये है। आपत्तिग्रस्त क्षेत्रोमे काम करनेका अवसर मुझे कई बार मिला है, उदाहरणके लिए, बिहारमें लोगोको यहाँकी तुलनामे अनन्तगुनी क्षति उठानी पड़ी थी, किन्तु वहाँ भी कुछ लोग तो ऐसे थे जो उससे बच गये थे। कई हजार लोगोको कष्ट भोगना पड़ा था तो कई सौ उससे बच भी गये थे। अब मैं जिन्हे सचमुच क्षति उठानी पड़ी है उनसे हाथ उठानेको कहता हूँ।[3] आपकी सचाईसे मैं खुश हूँ और मैं यह भी जानता हूँ कि जिन्हे सचमुच कष्ट झेलना पड़ा है वे इन सभाओमे नही आये होगे। उनके पास तो मुझे ही जाना होगा। तो कृपया अब आप लोग आरम्भ कीजिए। जिन लोगोको इस आपत्तिमे कोई कष्ट नही झेलना पड़ा है, वे कृपया पीडितोके लिए अपनी शक्ति-भर जितना दे सकते हो, उतना दे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-२-१९३७

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। महादेव देसाईके कथनानुसार "गांधीजीसे अनुरोध किया गया था कि. . .एक दिन वे तूफान-पीड़ित क्षेत्रके लिए दें। गांधीजी इस अनुरोधको नहीं टाल सके. . .और उन्होंने निडुबरोलसे बेजवाडातक १२९ मीलका रास्ता तीव्र गतिसे तय करते हुए उक्त क्षेत्रका तूफानी दौरा किया।" रास्तेमें अनेक गाँवोंमें रुकते हुए उन्होंने आपत्तिग्रस्त क्षेत्रके लिए चन्दा भी इकट्ठा किया।

२. गांधीजीकी दिनवारीके अनुसार गांधीजी आन्ध्रमें इसी तारीखको थे।

३. बहुत कम हाथ उठे।

३११. भाषण: आन्ध्र प्रदेशके एक गाँवमें[1]

[२३ जनवरी, १९३७]

साढे छ बजेसे ही मै तूफानग्रस्त इलाकेका दौरा कर रहा हूँ, फिर भी मै यह नही कह सकता कि मैने काफी-कुछ देख लिया है। अगर मै सचमुच तूफानग्रस्त इलाकेका दौरा करना चाहता था तो मुझे रईसोकी तरह मोटरगाडीमे बैठकर नही, बल्कि पैदल ही इन इलाकोमे घूमना चाहिए था। लेकिन मेरे पास चन्द घटोका ही समय था, स्थितिका अध्ययन करने-जैसे कार्यके लिए मेरे पास वक्त बिलकुल नही है। यहाँ अगर मै कुछ कर सकता हूँ तो बस यही कि आपसे सान्त्वनाके कुछ शब्द कहूँ। मुझे यह मालूम है कि मेरी आवाज सरकारतक नही पहुँच सकती। उसके ऊपर मेरा कोई प्रभाव नही है और न उन लोगोपर ही है जो यहाँके कर्ता-धर्ता है। लेकिन यह बात मै जरूर कह सकता हूँ कि भले ही हर आदमी आपको त्याग दे, पर ईश्वर ऐसे लोगोका परित्याग कभी नही करता जो मुसीबतमे होते है। बहुत साल पहलेकी बात है जब मै तमिलका अध्ययन कर रहा था तो मैने एक कहावत पढी, जिसे मै कभी भूल नही सकता। वह इस तरह है "टिक्कात्रावाम्रुक्कु दैवामेतुनाइ।" इसका अर्थ है, जो असहाय है उनकी सहायता ईश्वर करता है। लेकिन यह कहनेकी ही बात नही होनी चाहिए, इसे तो हमे अपने दिलोमे उतारना चाहिए। फिर चाहे कितने भी तूफान क्यो न आये, हम अन्दरसे आनन्दका ही अनुभव करते रहेगे। इसका यह भी मतलब नही कि हम हाथपर हाथ धरे बैठे रहे। जो व्यक्ति ईश्वरमे आस्था रखता है वह चौबीसो घटे कार्यरत रहता है, क्योकि ईश्वरने हमे इसीलिए हाथ-पैर दिये है। और अगर हम इनका उपयोग करते है तो वह हमें खाने-पहननेको भी जरूर देगा। अत मुझसे आप यह आशा न करे कि मै आपके साथ मिलकर रोऊँ। मेरा काम तो रोतोको हँसाना और उनके दु खोको भुलवाना है। और मुझे पता है कि हँसनेकी कला आपको मालूम है। लेकिन अच्छी तरह वही हँस सकते है जिन्हे यह मालूम है कि अपने हाथ-पैरोसे दूसरोके लिए किस तरह परिश्रम किया जाता है — और खासकर इस-जैसी जगहमें तो हँस वही सकते है जो दूसरोको अपनी खुशकिस्मतीका हिस्सेदार बनाये। अगर सत्ताधारी लोग हमारी मदद करते है तो हम कृतज्ञताके साथ उसे स्वीकार कर ले। पर अगर यह सहायता नही मिलती तो हमे आत्महत्या नही कर लेनी चाहिए, न उन शक्तियोको कोसना चाहिए और न ही मानवप्रेमीके बदले मानवद्वेषी बन जाना चाहिए। इसलिए आपको निश्चय ही प्रसन्न रहना चाहिए और जो आपसे कम नसीबवाले है, उनकी मदद करनी चाहिए।

१. महादेव देसाईके "वीकली लैटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

मैं एक ऐसे स्थानसे आ रहा हूँ जहाँ एक सज्जनने हरिजनोके लिए छ. एकड जमीन दी है। जो लोग धनी-मानी है, मैं आशा करता हूँ, वे इस उदाहरणका अनुकरण करेंगे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-२-१९३७

३१२. भाषण : गुंटूरमें[1]

[२३ जनवरी, १९३७]

क्षतिका ठीक-ठीक अन्दाजा तो मैं नही दे सकता, लेकिन इतना जरूर कह सकता हूँ कि मैंने देखा है, वहुत-से मकान विलकुल नष्ट हो गये है, इससे भी ज्यादा मकानोके छत-छाजन उड गये है, बहुत-सारी झोपडियाँ तीन महीने वाद भी रहने लायक नही है। वडे-वडे पेड जडसे झुक गये है और न जाने कितने खेतोकी फसलें वरवाद हो गई है। सरकारने जो सहायता दी है और आम लोगोने सहायता-समितिको जो-कुछ भेजा है, वह सव मुझे तो इस विपत्तिके लिए सर्वथा अपर्याप्त ही लगता है। विनय आश्रममे, अँधेरा हो जानेके वाद भी, सैकडो स्त्री-पुरुष व्यग्रतासे मुझसे मिलनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे, और जव मैंने उनसे चन्दा माँगना शुरू किया तो वहाँ ऐसा कोई नही बचा जिसने कुछ-न-कुछ न दिया हो। कुछ वहनोने अपने गहने भी उतारकर दे दिये। सरकारपर मेरा कोई असर नही है। उससे तो मैं अपील ही कर सकता हूँ, वशर्ते कि मेरी आवाज उसतक पहुँच पाये।

[अग्रेजीसे]
हरिजन, १३-२-१९३७ और हिन्दू, २५-१-१९३७

३१३. भाषण: विजयवाड़ामें[2]

[२३ जनवरी, १९३७]

आरम्भमें महात्माजीने हालके तूफानसे गुंटूर जिलेके एक भागको हुई भारी क्षतिका जिक्र किया और समयाभावके कारण क्षतिग्रस्त इलाकोमें अपने दौरेका अनुभव वताने की असमर्थतापर अफसोस जाहिर किया। उन्होंने कहा कि गुंटूरके क्षतिग्रस्त होनेसे आन्ध्र देशके लोगोंने ऐसा मान लिया कि सारा आन्ध्र प्रदेश ही क्षतिग्रस्त हो

१. महादेव देसाईके "वीकली लैटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

२. महादेव देसाईके "वीकली लैटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। गाधीजीने अपना भाषण अग्रेजीमें दिया था, जिसका तेलुगूमें अनुवाद किया गया था।

गया है। इसीलिए तूफान-पीड़ित सहायता-कोषमें पर्याप्त चन्दा नहीं आ पाया है। उन्होंने आगे कहा:

मैं इसे सच नहीं मानता। मैंने तो विनयाश्रम तथा दूसरे प्रभावित इलाकों तक में चन्दा एकत्र करना शुरू कर दिया था। ईश्वरकी व्यवस्था ऐसी है कि अधिक-से-अधिक विपत्तिग्रस्त क्षेत्रोंमें भी कुछ लोग कष्टसे बच ही जाते हैं। ये लोग पीड़ितोंकी सहायताके लिए दान दे सकते हैं। जैसा कि लाजिमी था, तूफानकी चपेटसे बचे इलाकोंसे भी लोग मुझसे मिलने आये और, जैसा कि आन्ध्र प्रदेशमें आम तौरपर होता है, उन लोगोंने दिल खोलकर चन्दा दिया। मैं बहुत भाग-दौड़में हूँ, इसलिए चन्देकी राशि गिननेका वक्त मेरे पास नहीं है। बहुत-सी महिलाओंने तो अपने आभूषण दे दिये। मोटे तौरपर इतना कह सकता हूँ कि मैंने १,५०० रु० एकत्र किये हैं। मेरे पास अगर और समय होता तो मैंने और ज्यादा एकत्र किया होता। चूँकि उस मुसीबतको आये कई सप्ताह गुजर चुके हैं, इसलिए ऐसा न समझें कि अब सहायताकी जरूरत है ही नहीं। कई मामलोंमें तो ऐसी भारी क्षति हुई है कि उसकी पूर्ति हो ही नहीं सकती। कुछ ऐसी झोपड़ियाँ भी हैं, जिन्हें तत्काल पर्याप्त सहायता-की जरूरत है। धनकी कमीकी वजहसे अभीतक वे ज्यों-की-त्यों पड़ी हैं। कुछकी छतें नहीं रह गई है और कुछकी दीवारें। पैसा मिलनेपर ही उनकी मरम्मत होगी। मैं चाहता हूँ कि इस सभामें आप अपनी सामर्थ्य-भर अधिक-से-अधिक दान दें। इसके बाद भी आप तूफान सहायता-कोषमें उदारताके साथ धन भेजते रहें। आन्ध्र देशके लोगोंके बारेमें यह कहनेका मौका न दें कि घर बरबाद हो गये, खेती उजड़ गई, वृक्ष उखड़ गये, मनुष्य और पशु काल-कवलित हो गये और आन्ध्र देशके किसी भी व्यक्तिने सहायताकी व्यवस्था करनेके लिए कुछ नहीं किया। इस प्रदेशके एक हिस्सेपर विपत्ति आई है, इसलिए कोई यह न कहे कि सारा-का-सारा प्रदेश ही विपत्तिग्रस्त हो गया है। यह आशा करना बिलकुल गलत होगा कि बम्बईके लोग पीड़ितोंके कष्ट दूर करेंगे। बम्बईके लोग इस विनाशकारी दृश्यको देखने नहीं आयेंगे। आप कुछ मील जाकर ही इस दृश्यको देख सकते हैं। पहले आप जितना-कुछ कर सकते हैं, कर दिखायें; फिर सहायताके लिए दूसरे प्रदेशोंकी ओर देखें।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १३-२-१९३७, तथा *हिन्दू*, २५-१-१९३७ से भी।

३१४. तीन प्रश्न[1]

एक साथीने निम्नलिखित प्रश्न पूछे है:

(१) अगर आज हरिजनोको मन्दिर-प्रवेश मिल जाता है, तो कल ऐसा आन्दोलन उठ सकता है कि जहाँ पुजारी जा सकते है वहाँ स्वच्छ होकर सब लोग क्यो नही जा सकते? इसको रोकना मुश्किल है। दलीलसे यह नही समझाया जा सकता।

(२) जिस मन्दिरमे हरिजनोका प्रवेश नही उस मन्दिरमे ईश्वरका वास नही, यह कथन मुझे एकपक्षीय लगता है। ईश्वर मन्दिरोमे ही है, अन्यत्र नही, यह कहना जितना मिथ्या है उतना ही मिथ्या यह भी है कि जिस मन्दिरमे हरिजन नही जा सकते उस मन्दिरमें ईश्वरका वास नही।

(३) महात्माजी कहते है कि अगर अस्पृश्यताका नाश न हुआ तो हिन्दू-धर्म नष्ट हो जायेगा। हजारो वर्षोसे आजतक अस्पृश्यता टिकी हुई है, तब भी हिन्दू-धर्मका नाश नही हुआ, सो अब नाश किस प्रकार हो सकता है? जिस हिन्दू-धर्ममे अस्पृश्यता है उसी हिन्दू-धर्मसे महात्माजीको शान्ति मिली है।

श्रद्धावान मनुष्यको भविष्यमें आनेवाली कठिनाइयोके भयसे अपना वर्तमान कर्त्तव्य नही छोड़ना चाहिए। जैसे हम है वैसे ही हरिजन है, ऐसा समझकर व्यवहार करना उचित है। हमे ऐसा विश्वास रखना चाहिए कि जो दलीले हम समझते है उन्हे हरिजन भी समझ लेगे, जितनी मर्यादाकी रक्षा सवर्ण करते है उतनीका पालन हरिजन अवश्य करेगे। आजतक का अनुभव यही बतलाता है। सवर्ण-अवर्णका भेद अथवा अवर्णो के अन्दर जो उपभेद है उन्हे वे नही समझेंगे, क्योकि ऐसा भेद अस्पृश्यता-सूचक है, बुद्धि उसे स्वीकार नही करती। बुद्धिका विषय होनेसे वह श्रद्धाका विषय नही हो सकता।

(२) जिस मन्दिरमे हरिजनोका प्रवेश नही उस मन्दिरमे ईश्वरका वास नही, यह वचन अवश्य एकान्तिक है। एकान्तिक अर्थात् अमुक दृष्टिसे सत्य। इस अर्थमे लगभग सभी वचन एकान्तिक होते है। पर इससे इस प्रकारके वचन दूषित नही ठहरते। व्यवहारके लिए दूसरा रास्ता ही नही। भगवान कहाँ बसते है इस प्रश्नके उत्तरमें श्री रामजीने कहा है कि भगवान सन्तके हृदयमें वास करते है, असन्तके हृदयमें नही। यह वचन भी एकान्तिक है। तो भी इससे उलटा या यह कहना कि 'भगवान दुर्जनके हृदयमे भी बसते है' अधिक शास्त्रीय भले ही हो, पर व्यवहार-दृष्टिसे हानिकारक है। शास्त्रीय दृष्टिसे हत्यारेके खंजर और सर्जनके नश्तर दोनोमे

१. इसका अंग्रेजी अनुवाद हरिजन, २०-२-१९३७ में प्रकाशित हुआ था।
२. मूलमें यहाँ 'सवर्ण' शब्द है।

ही ईश्वर है, पर प्राकृत और व्यवहार-दृष्टिसे एकमे देव है, दूसरेमे असुर। एकका प्रेरक राम है, दूसरेका रावण, एकमे खुदा है, दूसरेमे शैतान; एकमें अहुरमज्द है, दूसरेमे अहरीमान। इसलिए मै तो अपने कथनसे अब भी चिपटा हुआ हूँ कि जहाँ हरिजनको स्थान नही वहाँ हरिको भी नही।

(३) इस वचनमे कुछ तथ्य नही जान पडता। हिन्दू-धर्मका नाश तो हमारी आँखोके सामने हो रहा है; और उसका एक मुख्य कारण अस्पृश्यता है। जो मुर्देकी नाई जी रहा है, वह जीता नही है। मुझ-जैसोको हिन्दू-धर्मसे शान्ति मिलती है, तो इसका कारण यह है कि अस्पृश्यताको मै हिन्दू-धर्मका अग जरा भी नही मानता। प्रश्नकार ऐसा कह सकता है कि मेरा नाश-विषयक वचन भी एकान्तिक है। ऐसा ही है, पर वह सार्थक है। हिन्दुओका नाश हो जाये तो हिन्दू-धर्मका नाश ही समझना चाहिए। मै अकेला उसका साक्षी रहूँ इसका मुझे भले ही सन्तोष बना रहे, पर जिसका नाश हो रहा हो उसके लिए क्या कहा जाये?

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २४-१-१९३७

३१५. काठियावाड़के हरिजन-आश्रम

इन आश्रमोके लिए चन्दा उगाहनेमे मेरी सहायताकी अपेक्षा की जा रही है। मुझे खेदपूर्वक कहना पडता है कि मेरी स्थिति उतनी ही दयनीय है जितनी "दूधका जला छाछ को फूंककर पीनेवाले"की होती है। इसका यह मतलब नही कि किसीको उन आश्रमोकी मदद नही करनी चाहिए। मै जिस तरह सहायताके लिए सिफारिश किया करता था, किसीको लिखा करता था, वैसा अब मुझसे नही हो सकता। ऐसा करनेकी मेरी हिम्मत ही नही पडती। किन्तु जो लोग इन आश्रमोको निभाते आये है, वे अपने सन्तोषके लिए जाँच-पड़ताल कर ले और यदि उन्हे सन्तोष हो जाये तो सहायता करते रहे। इस दुनिया मे किसी संस्थाके बारेमे आजतक ऐसा कभी नही हुआ कि उसके सभी कार्यकर्त्ता अच्छे ही निकले हो। इस कारण सार्वजनिक प्रवृत्तियाँ बन्द नही होनी चाहिए। कुछ कार्यकर्त्ता खोटे सिक्के सिद्ध होते है, तथापि अधिकाश अपना कार्य नीतिपूर्वक करते आ रहे है और अपनी सस्थाओको शोभान्वित करते रहे है। हरिजन-सेवाका कार्य तो चलता ही रहेगा और चलना चाहिए। आवश्यक सिर्फ इतना ही है कि जो संगठनकर्त्ता मुझपर निर्भर रहते आये है, वे मेरी आशा छोड दे। मै तो आज हूँ, कल नही। इस शरीरका कहाँतक भरोसा किया जा सकता है? अत. मेरी दयनीय स्थितिसे लाभ उठाते हुए कार्यकर्त्ता स्वतन्त्र हो जाये और अपनी-अपनी सस्थाओको शोभान्वित करे। जो लोग हरिजन-सेवा या किसी अन्य सेवाके कार्यमे लगे हुए है, वे अपने कार्य या अपनी श्रद्धाको कदापि न त्यागे।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २४-१-१९३७

३१६. पत्र : अमतुस्सलामको

[२४[1] जनवरी], १९३७

प्यारी बेटी अमतुल सलाम,

आज हम आ गये। कान्ति सरस्वती को लेकर पूना गया। बम्बई सरस्वती के साथ आ जायेगा। पापरम्मा बगलौर गई थी, लेकिन यहाँ नही आ सकी।

शर्मा तुमको मिल गया। सरस्वतीको मिलने के लिए आना चाहती है तो आ सकती है।

बापू की दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९७) से।

३१७. पत्र : अमतुस्सलामको

सेगाँव, वर्धा
२५ जनवरी, १९३७

चि० अमतुल सलाम,

मेरी यात्राके कारण शायद तूने पत्र नही लिखा होगा। हम कल लौटे। तू अपना हाल लिखना। यदि आना चाहे तो आ जाना। सकोच मत करना। मैडम वाडियाका पत्र मिला है। उसने पत्र-प्राप्तिकी सूचना दी है। प्रभा मेरे साथ है। सरस्वती आनन्दपूर्वक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७३) से।

१- तारीख पढ़ी नहीं जाती। किन्तु गांधीजी २४ जनवरीको सेवाग्राम पहुँचे थे।

३१८. पत्र : लीलावती आसरको

२५ जनवरी, १९३७

चि० लिली,

इस बीच तेरे पत्र नही आये। हम लोग यात्रासे वापस लौट आये। नानावटीका पत्र आया था, उससे मालूम हुआ कि तेरे भाईकी तबीयत अभीतक सुधरी नही कही जा सकती। मेरा आखिरी पत्र तुझे मिला होगा और तू उसमे दिये सुझावोपर अमल कर रही होगी।

नानावटी वहाँ हो तो उससे कहना कि उसने २५ के आसपास यहाँ पहुँच जानेकी बात लिखी थी, इसलिए मैंने उसके पत्रका जवाब नही दिया। तू अपनी छोटी कैंची साथ ले गई है या यहाँ छोड गई है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३५४) से। सी० डब्ल्यू० ६६२९ से भी; सौजन्य : लीलावती आसर।

३१९. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२५ जनवरी, १९३७

भाई घनश्यामदास,

नही त्रावणकोर जाने मे हिचकिचाता था लेकिन जाने से अच्छा ही हुआ। दूसरोको तो क्या मिला प्रभु जाने। मुझे तो बहुत धन मिला। थोडा वर्णन तो 'हरिजन' में देखोगे। उसे कम-से-कम दुगुना किया जाय तब कुछ पता मेरे कहने का लग जायगा।

महाराजा और महाराणी से मिला था। मुलाकात अच्छी हुई। पेट-भर के बिना सकोच सब बातें हुई। हरिजनो का जागति इतनी और ऐसी ओर किसी प्रकार से असभव थी।

मेरा तो विश्वास दृढ़ होता जाता है कि केद्र से शाखा को धन नही लेकिन नैतिक सहाय और प्रतिष्ठा मिल सकती है। यदि इससे शाखाओ को सतोष न मिले तो भले बंद हो जाय अथवा स्वतत्र चले। ऐसी अवस्थामें एजन्सी द्वारा जो-कुछ हो सकता है हम करे। जिन शाखाओ मे अपने खर्च के लिये द्रव्य इकट्ठा करने की शक्ति नही है, वह निकम्मी मानी जाय। इस बारे मे कुछ एक वर्षतक ठहर जाने की

आवश्यकता मैं महसूस नही करता हू। अब हरिजन-निवास के बारे मे जो-कुछ परिवर्तन आज करना आवश्यक समजा जाय उसे एक वर्ष तक न रुका जाय। आज से क्यों फिजूल खर्च कम न किया जाये? हा, ठक्कर बापा की सम्मति चाहीये सही। मलकानीसे भी मशविरा करना आवश्यक है।

दिनकर को खीचने की कोशिश कर रहा हू। दिनकर को खत तो लिखा ही है।

परमेश्वरी से बात चल रही है। एक और खत उसके पाससे चाहीये, आ जाने पर मै लिखुगा। उसको नयी संस्था निकालने की परवानगी देनेपर मैं राजी हो गया हूं और जबतक अपना काम चलता रहे तबतक जो करना है उसके पास रहे। शर्त यह है कि मौजुदा मिलकत से बगैर करजा किये हुए मौजूदा काम जारी रखने की ताकद हो।

समय मिलनेपर थोडे दिनो के लिये आ जाना अच्छा होगा।

बापुके आशीर्वाद

सी० डब्ल्यू० ८०२८ से, सौजन्य घनश्यामदास बिडला।

३२०. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

सेगांव, वर्धा
२६ जनवरी, १९३७

चि० कान्ति,

तेरा पत्र मिला। तुझे रसिकके मार्गपर चलना पसन्द है, तेरा यह कहना शोभा नही देता। यदि तू समझता है कि तू अपने स्वास्थ्यकी चिन्ता करता है तो फिर मुझे कुछ कहना नही है।

तूने जो लिखा कि तू चाहता है कि उडकर पापरम्माके पास पहुँच जाये, तो मैंने समझा था कि तूने मजाक किया है। लेकिन अनायास बात चली तो प्रभावतीने कहा, "नही, कान्तिभाई सचमुच उडकर विमानसे त्रिवेन्द्रम् जाना चाहते हैं।" यदि यह ठीक हो तो यह ऐसी बात है, जो मुझे अच्छी नही लगेगी। विमान गरीबोके लिए नही है। विमान धैर्यवान्के लिए नही है। मुझे तो मोटर भी अच्छी नही लगती, यह तू जानता होगा। मजबूरीसे उसमें बैठता जरूर हूँ। यह मेरा दोष कहा जा सकता है। और अगर तू विमानमे बैठकर गया तो उसके लिए पैसे कहाँसे आयेंगे? यदि कोई मित्र दे तो मैं तो उन पैसोको त्याज्य मानूंगा। पैसा पापरम्मासे आये तो उसे भी त्याज्य मानूंगा। तू भिक्षुक बन जाये, यह मुझे असह्य होगा। लेकिन यह तो मेरी फिलॉसफी हुई। विमानसे जानेके लिए तुझे मुझसे इजाजत लेनेकी जरूरत नही है। तू स्वतन्त्र है, और स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवहार करे, यही मुझे अच्छा लगेगा। मेरे विचारोको समझदारीके साथ अथवा श्रद्धापूर्वक मान्यता दे, यह दूसरी बात है।

इससे तेरी स्वतन्त्रता खण्डित नही होती। लेकिन मुझे अच्छा लगनेके खयालसे अथवा मेरे डरसे तू कुछ करे, तो वह मुझे अच्छा नही लगेगा। इससे तेरा कल्याण नही होगा। मेरे जो विचार तुझे सहज ही भले लगें, उन्हीका तू अनुसरण करे, यह मेरी इच्छा है। मेरे विचार तुझे अच्छे न लगें तो तू क्या कर सकता है? उसके लिए मैं तुझे दोष दूँ, तो मैं ही दोषी ठहरूँगा। अत. उडकर विमान द्वारा त्रिवेन्द्रम् जानेके बारेमे जैसा तुझे ठीक लगे, वैसा करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७३१३) से; सौजन्य · कान्तिलाल गांधी।

३२१. तार: विट्ठलदास कोठारीको

वर्धागंज
२७ जनवरी, १९३७

विट्ठलदास कोठारी
गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

पुरातन[1] को फौरन भेज दें।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७६९९) से।

३२२. पत्र: एच० एस० एल० पोलकको[2]

२७ जनवरी, १९३७

प्रिय हेनरी,

त्रावणकोरकी यात्राके कारण तुम्हे अबतक पत्र नही लिख सका। तुम्हारा सवाल यह है कि क्या मेरे विचार आज भी वही है जो १९३१ की गोलमेज परिषद्के समय थे। उस वक्त तो मैंने कहा ही था, आज भी मैं उसीको दोहराता हूँ कि औपनिवेशिक स्वराज्य वेस्टमिंस्टरके कानूनके अनुसार, अर्थात् इच्छा होते ही

१. पुरातन बुच, एक खादी-कार्यकर्ता।
२. अपनी बातचीतके दौरान पोलकने गांधीजीसे पूछा था कि 'पूर्ण स्वराज्य' से आपका क्या मतलब है। उन्होंने बादमें गांधीजीसे अनुरोध किया था कि यह बात वे लिखकर बतायें।

साम्राज्यसे अलग हो जानेकी स्वतन्त्रताके साथ दिया जाता है तो उसे मैं बिना किसी हिचकके स्वीकार कर लूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,
भाई

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १-२-१९३७

३२३. पत्र : क० मा० मुंशीको

२७ जनवरी, १९३७

भाई मुन्शी,

मेरा दायाँ हाथ बेकार हो गया है, और बायेंसे लिखनेमें समय अधिक लगेगा। इतना समय दिया जाये, आज ऐसी स्थिति नहीं है।

राजाजीको मैंने नहीं लिखा। अखबार इन दिनों झूठ लिखनेकी कला बहुत अच्छी तरह साध रहे हैं। राजाजीके उम्मीदवार होनेकी खबर पहले-पहल पढ़ी तो महादेवने और मैंने उसे हँसकर उड़ा दिया। अपनी अनुमतिकी बात पढ़कर तो मैं भौचक्का रह गया। वे इस निश्चयपर कैसे पहुँचे, यह राजाजीने मुझे मद्रासमें समझाया जरूर था। उनका मैदानमें आना अच्छा ही हुआ, यह माननेको मैं तैयार नहीं हूँ। उनके निर्णयोंके बारेमें मेरे मनमें आदर है, इससे यह निर्णय देशके लिए लाभदायक सिद्ध होगा, ऐसी आशा तो जरूर करता हूँ। लेकिन इससे अधिक मेरा मन मुझसे मनवा ले, ऐसी बात नहीं है।

स्वर्गीय नरसिंहरावके मामलेमें मुझे मुक्ति दे सको तो अच्छा हो। उनके परिवारके सदस्योंको मैं अपनी श्रद्धांजलि भेज चुका हूँ। उनके प्रति मेरे मनमें बड़ा आदर था, और वह प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। भगवान के प्रति उनकी श्रद्धा मुझे बहुत भली लगती थी। 'लीड काइन्डली लाइट' का अत्यन्त मधुर अनुवाद उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार करके कर दिया था। यही हम दोनोंकी पारस्परिक घनिष्ठताका कारण था।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७६११) से; सौजन्य : क० मा० मुंशी।

३२४. पत्र : सी० ए० अय्यामुत्तुको

सेगाँव, वर्धा
२८ जनवरी, १९३७

प्रिय अय्यामुत्तु,

शकरलाल बैंकरने मुझे तुम्हारे पत्रकी नकल भेजी है। तुम्हारे पत्रको मै पागल आदमीका प्रलाप मानता हूँ। मैंने तुम्हे यह गौरव दे रखा था कि तुममें विनोदकी समझ है, लेकिन लगता है कि मैंने वडी भूल की। चेलास्वामीको वडा ही बेअकल होना चाहिए, क्योकि जब उसने कहा कि वह अय्यामुत्तु नही है तो जो शब्द वास्तवमे तुम्हारी प्रशसाके लिए मैंने कहे, उन्हे वह समझ ही न पाया। तुम्हारी प्रशसा यह थी कि तुमने तिरुपुरमे अपना काम छोडकर फैजपुर[1] भागना जरुरी नही समझा। चेलास्वामीके साथ मैंने सारी बात हँसी-मजाकमे की थी। जहाँतक मुझे याद है मैंने कुछ ऐसा ही कहा था कि "अय्यामुत्तु यहाँ क्यो आयेंगे? उन्होने तुम्हे तो यहाँ भेज दिया और खुद तिरुपुरमें आवारागर्दी कर रहे है।" चेलास्वामीकी बेअकली मै माफ कर सकता हूँ, लेकिन तुम्हारी नही कर सकता। तुम्हे चेलास्वामीसे एकदम कहना चाहिए था कि "तुम बापूका मतलब नही समझे।" उन्होने तो फैजपुर न जाकर मैंने जो संयम दिखाया उसकी प्रशसा की है।

अब कहो तुम्हे मेरी यह बात समझमे आई या नही और तुम्हारा सन्ताप दूर हुआ या नही? और अब तुम्हे दुनिया-भरके कवियोकी यह उक्ति भी समझमे आई होगी कि 'मनुष्य अपने सुख-दु खका स्रष्टा खुद है।

तुम्हारा,
बापू

श्रीयुत सी० ए० अय्यामुत्तु
अखिल भारतीय चरखा-संघ खादी-भण्डार
तिरुपुर, द० भारत

अंग्रेजीकी नकलसे. प्यारेलाल-पेपर्स, सौजन्य : प्यारेलाल।

१. २२ से २९ दिसम्बर, १९३७ तक होनेवाले कांग्रेस-अधिवेशनमें।

३२५. पत्र : कालिदास नागको

सेगाँव, वर्धा
२९ जनवरी, १९३७

प्रिय कालिदास नाग,

होनोलुलू जाते हुए जहाज परसे लिखा हुआ आपका पत्र प्राप्त हुआ। यदि स्वत अहिंसासे कोई सन्देश नही मिलता तो मेरे पास किसीको देने लायक कोई और प्रेरणादायक सन्देश नही है। लेकिन मैं अपने लगभग पचास वर्षके अनुभवके आधारपर कह सकता हूँ कि मानव जातिको ज्ञात ऐसी कोई दूसरी शक्ति नहीं है, जो अहिंसाके तुल्य हो। अलबत्ता, इसे पुस्तके पढकर नही सीखा जा सकता। इसे तो जीवनमें उतारना जरूरी होता है।

आप किताबोके नाम जानना चाहते हैं। उपर्युक्त कारणोसे केवल अहिंसाकी व्याख्या करनेवाली पुस्तकोका नाम बताना कठिन है। रिचर्ड ग्रेगकी "पावर आफ नॉनवायलेस" (अहिंसाकी ताकत) पढकर लाभ उठाया जा सकता है। टॉल्स्टॉयकी बादकी रचनाओसे भी अहिंसा-सम्बन्धी चिन्तनमे मदद मिलती है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत कालिदास नाग
द्वारा हवाई विश्वविद्यालय
होनोलुलू

अंग्रेजीकी नकलसे . प्यारेलाल-पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल।

३२६. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

२९ जनवरी, १९३७

चि० कान्ति,

तू क्या कर रहा है? क्या तूने त्रिवेदीजीसे सौ रुपये माँगे हैं? देवदासको बहुत दुःख हुआ है। उसकी आज्ञाके बिना क्या तुझे इस तरह पैसा माँगना चाहिए? मुझे तूने क्या वचन दिया था? उसका क्या हुआ? तुझे सौ रुपयोकी क्या जरूरत है? क्या तू मेरे आगे अपना दिल नही खोलेगा? मै बहुत चिन्तित हो गया हूँ। क्या तू मुझे चिन्ता और भयसे मुक्त नही करेगा? तुरन्त जवाब लिखना, देवदासको भी लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७३१४) से, सौजन्य कान्तिलाल गाधी।

३२७. एक ईसाईका पत्र

त्रावणकोरकी मेरी तीर्थयात्रामे राजकुमारी अमृतकौर मेरे साथ थी। [ईसाई होनेके कारण] वे मन्दिरोमे तो नही जा सकती थी, लेकिन अन्य सभी प्रकारसे वे तीर्थयात्रामे शामिल रही। इस तीर्थयात्रामे उन्होने जो-कुछ देखा उससे उनका हृदय अभिभूत हो गया। उन्होने मुझे एक पत्र लिखकर दिया है, जिसे पाठकोके समक्ष रखनेका लोभ मै सुवरण नही कर पा रहा हूँ। पत्र निम्न प्रकार है[1]

> . . . मेरी राय है कि मिशनरियोंने नेक-से-नेक इरादा रखते हुए भी — क्योकि इतना तो हमें मानना ही चाहिए कि उनका इरादा साफ है — भारतीय ईसाइयोंके साथ अनेक प्रकारसे अन्याय किया है। यहाँके बहुत-से नव ईसाईयोको उनकी भारतीयतासे वंचित कर दिया गया है। उदाहरणके लिए, कई लोगोके नामतक यूरोपीय रखे गये हैं। उन्हे बताया गया है कि उनके पूर्वजोके धर्ममें सच्चा प्रकाश नहीं है। अपने पूर्वजोंके प्राचीन धर्मग्रन्थोंकी उन्हें कोई जानकारी नहीं है। . . . भारतीय ईसाई समाजमें अस्पृश्यताका जो कलष आज भी विद्यमान है, उसे मिटानेका कोई भी सजग प्रयास नहीं किया गया है,

१. यहाँ केवल इसके कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

किन्तु हिन्दू-धर्ममें मौजूद अस्पृश्यताका इतना नाजायज फायदा उठाया गया है कि उसके बहाने दलित वर्गोको बहुत भारी संख्यामें ईसाई तो बना लिया गया है, पर उनकी ईसाईयत नामकी ही है। ऐसा मैं बहुत सोच-समझकर कह रही हूँ, क्योंकि मैंने इन बेचारोंमेंसे जितने भी लोगोंसे बातचीत की — और मैं बता दूँ कि ऐसे बहुत-से लोगोंसे बातचीत की — उनमें से कोई भी अपने इस धर्मान्तरणके आध्यात्मिक महत्त्वके बारेमें मुझे कुछ नहीं बता सका। यह सही है कि वे अपने पूर्वजोंके धर्मसे भी उतने ही अनभिज्ञ हैं और उनके समाजने उनकी ऐसी उपेक्षा की है कि देखकर दुःख होता है। लेकिन यह तो कोई ऐसी बात नहीं है जिसके कारण उनको अपनी मिट्टीसे हटाकर ऐसी भिन्न प्रकृतिवाली मिट्टीपर ला खड़ा किया जाये जहाँ कभी उनकी जड़ ही न जम पाये। . . .

प्रायश्चित्तकी भावनासे की गई त्रावणकोरकी आपकी तीर्थयात्रामें आपके भाषण सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती रही है। विशेषकर कोट्टयमके ईसाई समाजको आपने जो सन्देश[1] दिया उसपर मुझे अतीव हर्षका अनुभव हो रहा है। आपने एक बार फिर सभी धर्मोंकी समानताको स्वीकार करके ईसाइयोंको सोचनेका अच्छा मसाला दे दिया है, और मेरी यह आशा है और प्रभुसे प्रार्थना है कि यह हिन्दू समाजके ही समान उनके लिए भी आत्मशुद्धिके युगका आरम्भ साबित हो। क्या हम सब-के-सब हिन्दके होनेके कारण हिन्दू ही नहीं है? क्या हिन्दू-धर्ममें ईसाके लिए कोई स्थान नहीं है? अवश्य होना चाहिए। मैं तो यह नहीं मान सकती कि जो लोग ईश्वरकी उसके परात्पर और विश्वानुग रूपमें आराधना करना चाहते हैं, वे किसी भी महान् धर्मकी परिधिसे बाहर हैं, क्योंकि इन सभीको प्रेरणा तो उसीसे — ईश्वरसे ही — प्राप्त होती है जो समस्त सत्यका उद्गम-केन्द्र है। मुझे विश्वास है कि मैं ऐसी अकेली हिन्दुस्तानी नहीं हूँ जो जन्मसे ईसाई होते हुए भी ऐसे विचार रखती है। बल्कि मैं तो मानती हूँ कि अगर ईसाकी शिक्षा और उनके व्यक्तिगत उदाहरणसे हमें अपने देशके जीवनको समृद्ध करना है, तो भारतीय ईसाइयोंको आत्म-निरीक्षण करना चाहिए और विनय तथा सहिष्णुताकी भावनासे समाजकी सेवा करनेकी कोशिश करनी चाहिए, क्योंकि ये दो गुण तो सभी सच्चे धर्मोका सार हैं और इनके बिना धरतीपर एकता और शान्ति तथा सद्भावना कभी स्थापित नहीं हो सकती।

भारतीय ईसाई अपने इस विशिष्ट कर्त्तव्यको पूराकर दिखायें, इसमें क्या आप उनकी सहायता नहीं करेंगे? आप कर सकते हैं, क्योंकि आपने 'गिरि-

१. देखिए भाषण: सार्वजनिक सभा, कोट्टयममें, पृ० ३२०-२४।

प्रवचन' [सरमन ऑन द माउन्ट] में निहित ईसाकी अमर शिक्षासे प्रेरणा ग्रहण की है। हमें निश्चय ही मार्ग-दर्शनकी आवश्यकता है।

राजकुमारी अमृतकौरका मुझसे बहुत निकटका सम्बन्ध है, इसलिए इसे प्रकाशित करनेमे मुझे हिचक हो रही थी। लेकिन फिर जब मैंने सोचा कि जो बात मुझसे अन्य ईसाई मित्रोने कही, वही बात यहाँ बहुत ही अपूर्ण रीतिसे इन्होने भी कही है, तो मेरी हिचक दूर हो गई। लेकिन मुझे नही लगता कि मै भारतीय ईसाइयोका मार्ग-दर्शन करने योग्य हूँ। अलबत्ता, जैसा कि मैंने कोट्टयमके अपने भाषणमे किया था और उससे पहले जैसा मैं इन पृष्ठोके माध्यमसे करता आया हूँ, मै उनसे अपील जरूर कर सकता हूँ। राजकुमारीने जो अपना यह विश्वास व्यक्त किया है कि हिन्दू-धर्ममे ईसाके लिए भी स्थान है, उससे तो मै और भी आश्वस्त भावसे अपनी सहमति प्रकट करते हुए यह कह सकता हूँ कि हाँ, ईसाके लिए इस धर्ममे पर्याप्त स्थान है — ठीक उसी तरह जैसे मुहम्मद, जरथुस्त और मूसाके लिए है। मेरी दृष्टिमे विभिन्न धर्म एक बगीचेमे खिले सुन्दर फूलोके समान या एक ही विशाल वृक्षकी अलग-अलग शाखाओकी तरह है। इसलिए वे सब-के-सब समान रूपसे सत्यमय है, और चूंकि वे हमे मानवोके माध्यमसे प्राप्त हुए है और हमारे लिए उनकी व्याख्या भी मानवने ही की है, इसलिए वे सब अपूर्ण भी समान रूपसे है। भारतमे तथा अन्यत्र जिस ढगसे लोगोका धर्मान्तरण किया जा रहा है, उसे किसी भी तरहसे उचित मान सकना मेरे लिए असम्भव है। यह हमारी एक ऐसी भूल है जो ससारके शान्ति-पथपर अग्रसर होनेमे शायद सबसे अधिक बाधक है। "परस्पर युद्धरत धर्म," ऐसे शब्दोका प्रयोग करना अपने-आपमे धर्मकी निन्दा करना है। लेकिन आज भारतमे, जिसे मै धर्म या धर्मोकी जननी मानता हूँ, जो स्थिति विद्यमान है, उसका वर्णन करनेके लिए इन शब्दोका प्रयोग सबसे उपयुक्त रहेगा। यदि वह सचमुच धर्मोकी जननी है, माता है, तो आज उसका मातृत्व कसौटीपर है। कोई ईसाई किसी हिन्दूको ईसाई बनाना क्यो चाहे या कोई हिन्दू किसी ईसाईको हिन्दू बनाना क्यो चाहे? यदि हिन्दू नेक हिन्दू है और ईश्वरपरायण है, तो इतनेसे उसको सन्तुष्ट क्यो नही रहना चाहिए? यदि मनुष्यके शील और नैतिकताका कोई महत्त्व नही है, तो किसी गिरजाघर या मसजिद अथवा मन्दिरमे किसी पद्धति विशेष से पूजा करनेकी बात भी एक थोथी रीतिके अतिरिक्त और कुछ नही है। बल्कि सम्भव है कि यह व्यक्ति या समाजके विकासमे बाधक-ही हो। किसी विशेष पद्धति पर आग्रह रखना या किसी धार्मिक मान्यताको बार-बार दोहराना ऐसे उग्र झगडोका प्रबल कारण बन सकता है जिनसे अन्तमे भीषण रक्तपात मच जाये और फलत. धर्मसे अर्थात् ईश्वरसे ही लोगोका विश्वास बिलकुल उठ जाये।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३०-१-१९३७

३२८. सम्यक् प्रयत्नका अभाव

त्रावणकोरमे अखिल केरल युवजन संघ (ऑल केरल यंग फोक्स लीग) नामक एक सस्था है। 'हमारा धर्म सेवा है'—यह है उसका उच्च और उदात्त आकाक्षासे भरा आदर्श-वाक्य। 'दया सघ' (लीग ऑफ पिटी) नामकी उसकी एक शाखा भी है, जिसके अन्तर्गत वह अपनी इस कोटिमे आनेवाली प्रवृत्ति चलाता है। मै जो नौ दिन त्रावणकोरमे रहा, उस दौरान इतनी भागदौड रही कि मै सघके सदस्योको साथ बैठकर चर्चा करनेका समय न दे सका। फलत उन्होने एक पत्र भेजा, जिसका एक अश मै नीचे दे रहा हूँ·

> लड़कों और लड़कियों दोनोको कोई-न-कोई दस्तकारी सीखनेके लिए प्रोत्साहित किया जाता है, जिससे वे कुछ पैसा कमा सकें। आपको यह बताते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि हमारे बहुत-से लड़कोंने कताईको एक शौककी तरह अपना लिया है। हमने इस क्षेत्रमें अभी कदम ही रखा है, इसलिए हमारे सामने बहुत-सी समस्याएँ आती रहती हैं जिन्हें हल करना है और बहुत-सी मुश्किलें आती रहती है जिनका हमें सामना करना है। कताईके सम्बन्धमें हम जिस एक बातको लेकर परेशान हैं, वह है सूतकी खपतकी समस्या। हम यह मानते हैं कि हमारे लड़के-लड़कियाँ जो सूत कातते हैं वह घटिया किस्मका होता है और उसकी अच्छी खपत नहीं हो सकती। लेकिन अच्छी किस्मके सूतके सम्बन्धमें भी हमारी कठिनाई यह है कि हम उसे ऐसी कीमतपर नहीं बेच सकते जिससे हमें कुछ लाभ हो सके। इसलिए हमारे बहुत-से सदस्य इस शौकको छोड़ने लगे हैं। अगर आप सूतको खपानेका कोई उपाय बतायें तो बड़ा आभार होगा। उससे सदस्योंको जो पैसा मिलता है उसमें से कुछ गरीबोंको दे दिया जाता है।
>
> ओनमके दिन हमारे सभी सदस्य—चाहे वे किसी भी जाति या धर्मके हों—एक स्थानपर एकत्र होकर सद्भावना-दिवस मनाते हैं। उस दिन हम अस्पृश्यतारूपी दानवका घास-फूसका पुतला बनाकर सार्वजनिक रूपसे जलाते हैं। फिर, सायंकालीन सामूहिक भोजनके साथ उस दिनका हमारा कार्यक्रम समाप्त हो जाता है।

सघका कार्यक्रम बडे-बड़े मनसूबोसे भरा हुआ है और उसका आदर्श-वाक्य भी उच्च और उदात्त आकाक्षाकी घोषणा करता है। मगर मुझे लगता है कि वे जो भी काम करे उसे जबतक वे सम्यक् रूपसे नही करेंगे, तबतक न तो अपना कोई हित साध सकेंगे और न समाजकी कोई सेवा कर पायेंगे। अपने कामको सम्यक्

३२९. पत्र: सुशीला गांधीको

सेगाँव, वर्धा,
३० जनवरी, १९३७

चि० सुशीला,

तू बहुत बड़ी जिम्मेदारी उठा रही है। ईश्वर तेरी सहायता करे। लेकिन तू अपनी सहायता आप करेगी तभी ईश्वर तेरी सहायता करेगा। यदि तेरा स्वास्थ्य अच्छा न रहे, सीताका भी न रहे, तो कहाँतक टिक सकेगी। तेरी सेहत अच्छी रहे तो तू बहुत कार्य-भार उठा सकती है। लेकिन तू सयमका पालन नही करती। तुझे गर्भपात क्योकर हुआ? तुम दोनो कोई बच्चे नही हो। जीवन विचारमय होना चाहिए। इन्द्रियोपर अकुश होना चाहिए। इन्द्रियाँ हमे क्यो बहा ले जाये? इससे ज्यादा शर्मकी बात और क्या हो सकती है? तू यदि अपने खाने-पीनेमें, नहाने-धोनेमें सयमसे काम ले तो तेरी काया नीरोग रह सकती है और तुम-दोनो सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हो। तू मणिलालका बहुत काम अपने पर ले सकती है।

सीताको गुड़िया न बनाकर उसे अभीसे घरके काम-काजकी शिक्षा दी जानी चाहिए। तेरा जीवन यदि व्यवस्थित हुआ तो वह इससे स्वयमेव बहुत-कुछ सीख लेगी। तुझे और सीताको दोनो तरहका कूने-स्नान करना चाहिए, कसरतके लिए सैर करनी चाहिए। खूराकमे तुम्हे फल, गेहूँके आटेसे बनी चीजे, ताजा दूध और हरी सब्जियाँ लेनी चाहिए। दूध यदि ताजा मिले तो घीकी ज्यादा जरूरत नही रह जाती। इसमे अनुभवके आधारपर फेर-बदल किया जा सकता है।

शान्तिका दुःख न मानना। जो जितनी सेवा करे उतनेसे ही सन्तोष मानना। यदि हम अपने कर्त्तव्यमें चूक न करे तो हम तमाम कठिनाइयोको लाँघ सकते है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

अब मैं मणिलालको अलगसे पत्र नही लिखूँगा। लिखना तो चाहता था, लेकिन अब समय नही है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८६०)से।

३३०. उदारताकी आवश्यकता[1]

एक मुसलमान भाईने एक लम्बा खत लिखा है, जिसे मैं संक्षिप्त करके नीचे दे रहा हूँ :[2]

१. मांसाहारके कारण निरपराध पशु-पक्षियोकी निर्दय हत्याका असर हृदय पर होते-होते अन्तमे मैंने उनपर गुजरनेवाले अन्यायसे छूटनेका इरादा किया। इस्लाम-धर्ममे तो मासाहारकी छूट है, तो भी बरसोसे मैंने मासाहार त्याग दिया है। किन्तु घरमे बाल-बच्चो पर बल-प्रयोग करके उन्हे मासाहारसे रोकनेके लिए मेरा मन तैयार नही हुआ। ... नतीजा यह हुआ कि आजतक उनके लिए मास खरीदना ही पडता है। फिर भी कई बार यह सवाल खडा हो जाता है कि क्या मैं उलटे रास्ते नही चल रहा हूँ? यदि कल मेरे लड़के चोरी या लूटपाट-जैसे दुष्ट कर्मके लिए ललचायें तो क्या मैं मौन धारण किये हुए देखता रहूँ?

२. चायके बारेमे भी मेरी यही स्थिति है। मैंने सालोसे चाय पीना छोड दिया है। लेकिन घरमे बच्चोके लिए चायका सारा सामान जुटाना पड़ता है। पान-सुपारी, सोडा-लैमन वगैरह तमाम चीजोका भी यही हाल है।

३. मै व्यापारी वर्गका आदमी हूँ, इसलिए व्यापारमें जो अनुचित व्यवहार चलता है, उस सबसे मैं वाकिफ हूँ। एक ही प्रकारकी और एक ही भावसे खरीदी हुई वस्तु एक भावसे बेचनेके बजाय, किसीको एक भावसे तो किसीको दूसरे ही भावसे चिपका दी जाती है। इस व्यवहारके प्रति वर्षोंसे मुझे अरुचि पैदा हो गई है। इसे स्व० एनी बेसेंटने 'सफेद लूट' की उपमा दी थी। पर लाचार हूँ कि देशमे और विदेशमे हम भारतीय व्यापारी शराफतके साथ व्यापार करना समझते ही नही। ...

४. आप हमारे इस्लाम-धर्मके संस्थापक मोहम्मदको खुदाका पैगम्बर मानते हैं। उन्हे आप इज्जतकी नजरसे देखते हैं। अकसर उनका बखान करते है। मैंने सुना है और पढा भी है कि आपने 'कुरान'का अध्ययन किया है। मुझे ताज्जुब होता है कि आप-जैसे महान् निष्पक्ष नेता ऐसा किस तरह करते होगे? हिन्दू-धर्मशास्त्रोमे लिखे हुए एक भी अनिष्ट और अन्यायको आप स्वीकार नही करते; वैसे कार्योंको आप प्रमाणकी कोटिमे नही लेते। तब हमारे इस्लामी धर्मशास्त्र 'कुरान' मे बताये हुए अनिष्टोको आप किस तरह प्रमाणभूत मानते होगे? कभी भी आपको इस्लाम-धर्मके अन्यायी फरमानो पर प्रहार करते नही देखा। इसका कारण क्या है? जहाँतक मुझे याद है,

१. इसका अंग्रेजी अनुवाद *हरिजन*, १३-३-३७ में प्रकाशित हुआ था।

२. यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

मुझे १८-२० वर्षकी उम्रसे हमारे इस्लाम-धर्मके अन्दर पाये जानेवाले अन्याय चुभते रहे हैं। परिपक्व बुद्धि होनेके बाद भी मेरी इस धारणामे कोई फेर-फार नही हुआ।

जहाँतक हो सका, पत्र-लेखककी भाषा मैंने कायम रखी है। कुछ शब्दो और वाक्योको नरम बना दिया है, पर उनका अर्थ वैसा ही रहने दिया है।

इन भाईने मास वगैरह छोड दिया है, यह तो स्तुत्य ही है। पर वे अपने कुटुम्बियोको इस कर्त्तव्यका पालन करनेके लिए बाध्य नही कर सकते। उनकी बुद्धिको समझाकर, उनके हृदयको पिघलाकर भले ही वे उनसे अपने-जैसा करानेका प्रयत्न करे। लेकिन यदि वे इससे कुछ अधिक करते है तो उसमे बलात्कार होनेकी सम्भावना है। आजतक जो वे खुद करते आये है, जिसे उन्होने इस्लामके विरुद्ध नही समझा, जिसे समाज करता है, कुटुम्बियोसे उसका एकाएक त्याग करवाना तो ज्यादती समझी जायेगी। वे खुद काफी विचार और मन्थन करनेके बाद मासादिका त्याग कर सके होगे। वह त्याग दूसरे लोग तुरन्त करे, ऐसी आशा अगर वे रखते है तो इसमे अधीरता है। इसलिए नीतिका नियम तो यह है कि मनुष्यको अपनी परीक्षा कडी-से-कडी करनी चाहिए, पर दूसरोके प्रति उसे उतनी ही उदारतासे काम लेना चाहिए। अनुभव ऐसा कहता है कि मनुष्य अपने साथ चाहे जितना सख्त हो तो भी अन्तमे उदार ही होता है। क्योकि अपनी शक्तिके बाहर वह शायद ही जाता है। दूसरोके हृदयकी उसे खबर नही होती। उसका जाननहार तो केवल ईश्वर ही है। इससे दूसरोसे अपने-जैसा करानेमे बहुत उदारतासे काम लेते हुए भी अधीर होनेकी पूरी सम्भावना रहती है। इसलिए अपनी बात दूसरोके गले उतारनेमे उदारतापूर्वक काम लेनेसे शीघ्र सफलता मिलनेकी सम्भावना है और इस तरह जो सफलता मिलेगी उसके स्थायी होनेकी अधिक सम्भावना तो रहेगी ही।

मासादिके त्यागके साथ-चोरी या हत्याकी तुलना-हो ही नही सकती। चोरी और हत्या सर्वमान्य दोष है। और कानूनमे चूँकि ये अपराध माने जाते है, इससे सख्त सजा मिलती है। ऐसा होते हुए भी हम अपने सगे-सम्बन्धियोको भी बलात्कार-पूर्वक चोरी या खून करनेसे रोक नही सकते। पर चोरी या खून करनेवाला सार्वजनिक अपराध करता है। यहाँ अपराधकी बात नही है। जिसको लेखक आज दोष मानता है वह कलतक उसकी नजरमें दोष नही था, और आज भी वह उसके स्नेही-जनोकी दृष्टिमें निर्दोष ही है। ऐसी स्थितिमें उनका व्यवहार सहन करना उसका धर्म है, ऐसी मेरी मान्यता है। मासाहार, चाय, पान-सुपारी इत्यादिके गुण-दोष उनके सामने प्रेमपूर्वक रखे जा सकते है। पर किसी तरहका दबाव नही डाला जा सकता।

व्यापारमे अनीतिको कोई स्थान नही हो सकता। चाहे जितना नुकसान उठाना पड़े तो भी ईमानदारीको नही छोडना चाहिए। अन्तमे इसका परिणाम अच्छा ही आता है, पर ईमानदारी अच्छे परिणामपर निर्भर न रहे। इच्छानुसार दाम लेनेकी छूट भले हो, पर भिन्न-भिन्न ग्राहकोसे भिन्न-भिन्न कीमत लेना अनुचित ही माना जायेगा। किसी स्नेही या गरीब आदमीसे कम दाम लेनेमें मुझे कोई दोष दिखाई

नही देता। किसी चीजका दाम धनिकोके लिए एक, और गरीबोके लिए दूसरा हो, यह भी हो सकता है। इसमे कोई धोखेबाजी नही। धोखेबाजी या ठगी किसे कहें यह समझानेकी आवश्यकता नही होनी चाहिए।

अब दो शब्द इस्लामके विषयमे। मैंने जो-कुछ लिखा है उसपर मै अच्छी तरह कायम हूँ। मैंने यह कही भी नही कहा कि 'कुरान' या धर्मशास्त्र माने जाने-वाले किसी ग्रन्थको मै अक्षरश. मानता हूँ। परधर्मकी पुस्तकोके दोष बताना या उनकी आलोचना करना मेरा काम नही। उनके गुण बताना और हो सके तो उनका अनुकरण करना मेरा काम है। 'कुरान शरीफ'मे जो मुझे अच्छा नही लगता उसे बतानेका मुझे अधिकार नही। यही बात पैगम्बरके जीवनके सम्बन्धमे समझनी चाहिए। उनके जीवनकी जो बात मै समझ सकता हूँ उसकी तारीफ करता हूँ। जो बात मै नही समझता उसे मुस्लिम मित्रोसे और मुसलमान लेखको द्वारा समझनेका प्रयत्न करता हूँ। इस प्रकारकी वृत्ति रखकर ही मै समस्त धर्मोके प्रति समानता रख सका हूँ। हिन्दू-धर्मके दोष बतानेका मुझे अधिकार है और मेरा कर्त्तव्य भी है। पर अहिन्दू लेखक जब हिन्दू-धर्मकी आलोचना करते है या उसके दोष गिनाने बैठते है, तब अकसर उसमे अज्ञान होता है। वे उस चीजको हिन्दूकी आँखसे देख नही सकते, इस-लिए सीधी चीज उन्हे टेढी नजर आती है। अपने इस अनुभवसे भी मै समझ सकता हूँ कि जिस तरह अहिन्दू लेखकोकी आलोचना मुझे दोषपूर्ण मालूम देती है, उसी तरह अगर मै 'कुरान शरीफ' या पैगम्बरकी आलोचना करूँ तो क्या वह मुसलमानको सदोष नही मालूम होगी?

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, ३१-१-१९३७

३३१. पत्र : अमतुस्सलामको

सेगाँव, वर्धा
३१ जनवरी, १९३७

चि० अमतुल सलाम,

दाहिने हाथसे लिखना संभव नही, इसलिए थोडा ही लिखूँगा। रास्तेमें लिखने का समय ही कहाँ मिला?

तू 'एक्सप्रेस डिलीवरी' से पत्र क्यो भेजती है?

इतना लम्बा पत्र लिखा, किन्तु सार कुछ नहीं निकला। तू पत्र लिखना कब सीखेगी?

अप्रैलके बीचमे शायद बेलगाँव जाना होगा। जैसा भी हो। मेरी तो सलाह है कि तू यहाँ चली आ और तुझे जो कहना हो सो कह। वहाँ यदि भाइयोके लिए तुझे कुछ करना न हो तो जरूर चली आ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८)से।

३३२. नरहरि द्वा० परीखको

३१ जनवरी, १९३७

चि० नरहरि,

तुम्हारा पत्र मिला। विनोबाकी रायके बारेमे उनसे चर्चा करूँगा। मैं उसे समझ नही पाया।

धूलियाकी गोशालाको गोसेवा-सघ कोई आर्थिक उत्तरदायित्व लिये बिना ले सकता है। लेकिन धूलियाके आजके न्यासियोको यह बात रुचेगी नही।

तुम काठियावाडकी यात्रापर कब निकलनेवाले हो?

मैं समझता हूँ, तुम्हीने रामेश्वरको घीके बारेमे अपनी राय दी है, सो ठीक ही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९१०४)से।

३३३. पत्र: कान्तिलाल गांधीको

सेगाँव
१ फरवरी, १९३७

चि० कान्ति,

तेरा पत्र मिला। पन्द्रह रुपये रामदाससे ले लेना। प्रभावती इस महीने तो रहेगी। आना हो तो आ जाना।

तुझसे मैं बहुत डरता हूँ। तू बहुत तुनक-मिजाज है। पापरम्मा भी डरती है और, सरस्वतीका तो कहना ही क्या? हाँ, नही डरता तो रामचन्द्रन्। लेकिन उसे भी छोड दे, ऐसा तू नही है। तेरा जो पत्र मिला है उसका अर्थ मैं समझा ही नही। मेरे पत्रका अर्थ अपनी मरजीके माफिक लगाता रह।

कुँवरजीभाईवाला सौदा मुझे तो अच्छा नही लगा। इतना याद रख. हम जिससे पैसा उधार लेते है, उसकी नजरमे गिर ही जाते है। लेकिन माँ-बापकी नजरमें गिरना कैसा? इसलिए उनके पाससे जो मिले, उसीको लेकर सन्तोष करना चाहिए। लेकिन मेरा माप तो तुझे बडा मालूम होता है न? बडा हो या छोटा, इसीको मानवीय माप समझना। यह दिव्य माप नही है। मुझे अतिमानव मानकर कंकरीके समान अलग कर देनेके बजाय, मैं जो लिखता हूँ, उसे यदि ठंडे-से मन बुद्धिकी तराजूमें तोलेगा

तो तेरा कल्याण ही होगा। परीक्षाके लिए पढ़कर याद रखे, वह स्मरण-शक्ति कहलाती है। वह शायद सीखी जा सकती है। किन्तु बुद्धिका विकास तो सारासारका विवेक करनेसे ही होता है।

प्रभावती सो रही है। लेकिन यह पत्र क्यो रोकूं। अतः डाकमे भेज रहा हूँ। इसे मैंने ही बन्द किया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७३१५)से, सौजन्य. कान्तिलाल गाधी।

३३४. पत्र: गोकुलभाईको

१ फरवरी, १९३७

भाई गोकुलभाई,

सूरजबहनके बारेमे तुम्हारा पत्र मिला है, फैजपुरके बारेमे लिखा नोट भी मिला है।

रसोईके बारेमे मुझे बहुत-कुछ कहना है। मेरी यह मान्यता है कि बडे-बड़े भोजन-गृहोका सचालन करनेवाले अनुभवी लोगोको यदि यह काम सौपा जाये तो बहुत आसान हो जाये। वे भी राष्ट्रका अग है। उन लोगोको प्रोत्साहित करना, उन्हे प्रशिक्षित करना हमारा धर्म है। उनमे बहुत-सारी कमियाँ है। तथापि उनकी यह विद्या फेंक देने लायक नही है। हजार स्वयसेवकोको रसोई-कार्यमे प्रशिक्षित करनेकी अपेक्षा अपनी देखरेखमे सौ रसोई-विशारदोसे काम लेना मै अधिक आसान मानता हूँ और इसे राष्ट्रके दृष्टिकोणसे भी अच्छा समझता हूँ।

यह बात सच है कि रसोइये सामान्यतया अच्छे होने चाहिए। यदि वे पाँच हजार व्यक्तियोको एक पक्तिमे बैठाकर खाना खिला सकते हो और व्यवस्था बनाये रख सकते हो तो मुझे खुशी होगी। मै नही समझता कि यह नही हो सकता। हम ऐसे बड़े भोज तो करवाते ही है जिनमे विभिन्न जातियोके लोग सम्मिलित होते हैं। तथापि इस कामको सुन्दर ढंगसे करनेके लिए शिक्षाकी जरूरत है। कामको अगर सबमे बराबर-बराबर बाँट दिया जाये तो कुछ हदतक काम आसान हो जाता है। सिखोके 'लंगर' भी विचार करने लायक हैं। लगता है कि तुम्हारे मनमे रसोई-कार्यका विशारद बननेकी उमग है। भले ही तुम इसके लिए यत्न करो, इसमे कोई बुराई नही है। नलमे अन्य गुणोके साथ-साथ अच्छी रसोई बनानेकी कला भी थी न? इसलिए तुम भले ही इस कलामे निपुणता हासिल करो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे; प्यारेलाल-पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल।

३३५. पत्र : भगवानजी पु० पण्ड्याको

२ फरवरी, १९३७

चि० भगवानजी,

तुम्हारा पत्र मिला। चित्रेकी साधुताके बारेमें तो कुछ कहना ही नहीं है, लेकिन उसकी साधुता इस समय उसे खाये जा रही है। उसका समस्त त्याग तामसी हो गया है। त्यागके पीछे भी अनासक्ति होनी चाहिए, ज्ञान होना चाहिए। दोमें से एक भी इस समय चित्रेमें नहीं है। मैंने तो उसे रास्तेपर लानेका बहुत प्रयत्न किया, लेकिन मैं बिलकुल असफल हो गया हूँ। शायद उसकी सर्वोत्तम सेवा यह होगी कि वह जो-कुछ करे उसमें पड़ा ही न जाये। यदि मदद माँगे तो दी जाये। शायद ठोकर खाकर सीखे। तामसी उपवास आदि करके उसने मन रीता कर डाला है, शरीर अशक्त कर लिया है, इसलिए कुछ भी करनेके लायक नहीं रहा। वह समाजवादको अपनाकर प्रसन्न रहे, तो भी अच्छा। इसके साथ पत्र लिख रहा हूँ, वह उसे दे देना। तुम इस प्रकार चिन्ता मत करो। सबकी चिन्ता करनेवाला ईश्वर है। वह किसीको मूर्ख बनाता है, किसीको चतुर। उसकी माया अज्ञेय है। इसमें हमारे लिए तो एक ही कर्त्तव्य है। सहज-प्राप्त कर्त्तव्य करके शान्त रहें। हमें जगत्‌के दु:खोंका बोझ नहीं उठाना चाहिए। उसका वैभव देखकर बेवकूफ नहीं बनना चाहिए। हम किसीको दु:खी न करें, किसीसे द्वेष न करें, किसीकी सम्पत्तिका हरण न करें और सीधे-सच्चे रहें, तो यह मानें कि हमने अपने कर्त्तव्यका पालन कर लिया। तब राजा जनकके समान हम भी कह सकेंगे कि "नगर जल रहा है, तो भी क्या?"

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३९२)से; सौजन्य : भगवानजी पु० पण्ड्या।

३३६. पत्र : ब्रजमोहनको

२ फरवरी, १९३७

भाई ब्रजमोहन,

तुम्हारे पत्र और तारका उत्तर तो तार से ही दिया था। लेकिन अब कुछ समय मिल गया है, इसलिये शब्द लिख भेजता हूँ।

विदेश जाओ सही, लेकिन अति लोभ न किया जाय। धनोपार्जन करो, लेकिन अपने लिए नही, गरीबो के लिए ही। लोग सामान्यतया अपने भोगो के बाद जो रह जाता है उसमे से कुछ गरीबो के लिए रखते है। न्याय यह है कि हम पहले गरीबो के लिये चेष्टा करे और बाद मे अपने लिए। जिसमे धनोपार्जन करनेकी शक्ति है वह शक्ति का उपयोग अवश्य करे लेकिन सबका सब लोग-सेवाके लिए ही होना चाहिये। मै जानता हूँ कि सब भाईओ की वृत्ति तो कुछ-न-कुछ ऐसी ही है, उसमे वृद्धि होती रहे यह मेरी ईच्छा और आशिष है। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे।

पत्रकी नकलसे : प्यारेलाल-पेपर्स, सौजन्य : प्यारेलाल।

३३७. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

सेगाँव

३ फरवरी, १९३७

चि० कान्ति,

तुझे तीसरा नेत्र मिल जाये, तब तो सबके बारह बज जाये न? अभी तो मेरे-जैसे कुछ लोग ही तेरे दो नेत्रोके तेजमे जलते है। यदि तीसरा मिल जाये तो क्या हो?

अच्छा हुआ कि प्रभाको सोती छोडकर मैंने वह पन्द्रह रुपयेवाला पत्र[1] बन्द कर दिया। ऐसा न होता तो तू तो यही समझता कि मैंने जुर्मानेके पन्द्रह रुपये भेजे है। लेकिन तू जुर्माना काहेका माँगता है? त्रिवेदीको तो दूसरे कान्तिलाल गाधी मिले थे। इसलिए सबको दु खके बाद हँसनेको मिला। लेकिन कुँवरजी और त्रिवेदीमे अन्तर क्या है? देवदासको यदि कुँवरजीकी बात मालूम हो जाये तो उसे कैसा लगेगा? मैंने उसे नही लिखा, लेकिन यदि मै अपनी बात तेरे दिमागमे बैठा सका होऊँ, तो

१. देखिए पृष्ठ ३७१-७२।

२. देखिए "पत्र : कान्तिलाल गांधी को", पृष्ठ ३६२।

तुझे एक कौड़ी भी देवदासकी अनुमतिके बिना किसीसे नहीं लेनी चाहिए। और तुझे आवश्यकतासे अधिक खर्च भी नहीं करना चाहिए। इसीमें तेरा कल्याण है, इस बारेमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। तेरे माँगनेकी जगहें बस दो ही हैं: देवदाससे और मुझसे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७३१६) से, सौजन्य : कान्तिलाल गांधी।

३३८. पत्र : खुशालचन्द गांधीको

३ फरवरी, १९३७

आदरणीय भाई,

भाभी[1] का निधन हो जानेसे आप शोकार्त नहीं हुए होंगे। ऐसी मृत्यु तो किसी पुण्यवान्को ही मिलती है। मुझे जब तार मिला, तो हर्ष ही हुआ।

मोहनदासके दंडवत्

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

३३९. पत्र : नारणदास गांधीको

३ फरवरी, १९३७

चि० नारणदास,

तुम्हारा वर्णन सुन्दर है। वह मृत्यु[2] का दिन सचमुच उत्सवका दिन था। यहाँ कृष्ण[3] और कनैयोका[4] व्यवहार बहुत ठीक रहा।

शाला ठीक चल रही होगी।

पुरुषोत्तम[5] के क्या हाल हैं? विजया[6] क्या कर रही है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से, सी० डब्ल्यू० ८५१४ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. देवकुँवर गांधी।
२. नारणदास गांधीकी माताकी मृत्यु। देखिए पिछला शीर्षक।
३. कृष्णदास गांधी, छगनलाल गांधीका पुत्र।
४ और ५. नारणदास गांधी के पुत्र।
६. पुरुषोत्तम गांधी की पत्नी।

३४०. पत्र : कृष्णचन्द्रको

३ फरवरी, १९३७

चि० कृष्णचद्र,

तुम ठीक बच गये। यदि सहज मे इद्रियदमन नही हो सके तो शादी करना। खाने मे सयम रखना ही है।

पूनीया हाथ से बनाना अत्यावश्यक है। बनाओ।

अब ज्यादा पढ कर क्या करोगे? बहुंत पैसे की दरकार नही है, तो तुमको शिक्षा का कार्य आराम से मिल सकता है। प्रतिमास रू० ७५ से सतोष रहेगा?

तुमारे अब स्थिर चित्त बनना ही चाहीये।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४२७८)से। एस० जी० ५५ से भी।

३४१. पत्र : लीलावती आसरको

सेगाँव

४ फरवरी, १९३७

चि० लीला,

यहाँसे तुझे मेरा एक भी पत्र नही मिला, यह तो आश्चर्यकी बात है। मैंने लिखा तो था ही। अपनी दैनन्दिनी भी देख ली। मैंने तुझे २५ को, अर्थात् सेगाँव पहुँचनेके दूसरे दिन पत्र लिखा था। अब पूछताछ करना। यह पत्र पढकर मगनवाडी मे महादेव भी तलाश करेगा।

जबतक रुकना उचित लगे; जरूर रुकना। जब तू आयेगी, तब तुझे नवागन्तुक ही मानूंगा। मेरी माँग इतनी ही है कि वहाँ रहकर भी यहाँके नियमोका ठीक-ठीक पालन करना। हर कदम सोचकर उठाना। प्रार्थनासे नही चूकना चाहिए। कातनेसे नही चूकना चाहिए। कागज वगैरह देशी ही काममे लाना चाहिए। डॉक्टर योध खूब हिम्मत बँधा रहे है और आश्वस्त है, यह अच्छी बात है। तबीयत ठीक हो जाये तो दमयन्ती निश्चिन्त हो जाये। मुझे पत्र लिखनेका एक ही दिन निश्चित कर ले, तो उसमे नियमितता आ जायेगी। सब कामोके लिए नियम बाँध लेना अच्छा होता है; साथ ही उससे समय तथा व्यर्थ सोच-विचारसे भी मुक्ति मिल

जाती है। मेरा दाहिना हाथ आराम चाहता है। सोमवारको तो 'हरिजन' के लिए उसका उपयोग करना ही पड़ेगा। बायें हाथसे थोडा लिखता हूँ, लेकिन उसमें समय बहुत लगता है। इसलिए अंग्रेजी, गुजराती जो भी हाथमे आ जाता है, वह लिखवा देता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३५५) से। सी० डब्ल्यू० ६६३० से भी; सौजन्य . लीलावती आसर।

३४२. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

४ फरवरी, १९३७

चि० सुशीला, मणिलाल,

तेरा गर्भपात होता रहता है, यह क्या बात है? तुम दोनोको इस बारेमे सोच-विचार कर लेना चाहिए। यह बात ऐसी है, जिसमे किसी भी दूसरे आदमीकी अकल काम नही कर सकती। जिनका जीवन विचारमय, ईश्वरपरायण हो जाता है वे अपना मार्ग स्वय खोज लेते है, समझ लेते है। मेरी तो बस यही इच्छा है कि तू पगु न हो जाये।

शान्तिके बचनेकी आशा प्रारम्भसे ही कहाँ थी? तुम्हे उससे जितना लेना-देना था, उतनी सेवा तुम्हे उससे मिली।

अपने बदलेमें काम करनेवाला यदि तुम वहाँ खोज ही न सको, तब तो आखिर तुम्हे सब समेटना ही पडेगा न?

सीताकी तबीयत अब ठीक होगी। उसे कटिस्नान और घर्षणस्नानका अभ्यास कराना चाहिए। खुराकके बारेमे तो लिख चुका हूँ न? दूध, चोकर समेत गेहूँ बहुत ही कम, भाजियाँ, मसलन् लौकी, करेले, चौलाई, सलाद वगैरह। प्याज और लहसुन कच्चे खाने चाहिए, यह समझमे आया है। आलूवगैरह श्वेत सारयुक्त चीजें कम या बिलकुल नही। फलोमे अनन्नास, सन्तरे, मुसम्बी, अगूर आदि रसवाले फल।

फैजपुरमे तुम दोनों याद आये थे। देहातमें कांग्रेसका अधिवेशन बहुत जँचा। मनु मेरे पास है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८६१) से।

३४३. पत्र : प्रभाशंकर मेहताको

४ फरवरी, १९३७

भाई प्रभाशंकर,

मै त्रावणकोरकी यात्रापर चला गया था, इसलिए कई पत्र अनुत्तरित रह गये है। फिर, इस समय मेरा दाहिना हाथ आराम चाहता है, इसलिए तत्काल लिख भी नही सकता। बोलकर जवाब लिखवाना चाहता हूँ, तो वह भी इच्छित समयपर सम्भव नही हो पाता। लगता है, आप अपनी बीमारीका आवश्यक इलाज नही कराते। कोई भी बीमारी हो, उसे प्रारम्भमे ही दवा देना चाहिए। आपने जो सुझाव दिये है, उनका मै क्या करूँ? दाँतोके आगे जीभकी सिफारिश क्या की जाये? चम्पा आपकी लडकी है, रतिलाल आपके जमाई है, वे लड़के बराबर हुए। फिर, रतिलाल तो लगभग अपग ही है। अत आपको जो ठीक लगे सो करे, इसमे वह विरोध भी क्या कर सकता है? आप मुझसे पूछते है, इसे मै आपकी भलमनसाहत मानता हूँ। यो, नानालाल तो आपके पास है ही। आप उनसे पूछते ही रहते है, इतना काफी है।

बलवन्तवाली बात समझा। इतनी उमरमे अब मातुश्रीके स्वास्थ्यमे बहुत अन्तर पड़नेकी आशा नही की जा सकती। फिर भी, नैसर्गिक उपचार तथा आहारमे आवश्यक रद्दोबदल करनेसे वे बुढ़ापेको सहन करने योग्य बन सकती है। यह मै अनेकोके जीवनमे देख पाता हूँ। वृद्धावस्थामे बालको-जैसा आहार अनुकूल पड़ता है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७६७) से।

३४४. पत्र : नरहरि द्वा० परीखको

४ फरवरी, १९३७

चि० नरहरि,

रामेश्वरदासके पत्र[1] के बारेमे मैंने विनोबासे पूछा था। वे लिखते हैं कि यह रामेश्वरदासकी साफ भूल है। वे उसे लिखेंगे।

टाइटस कैसा चल रहा है? टाइटस मुझसे प्रमाण-पत्र माँग रहा है। उसे कही नौकरी चाहिए। यद्यपि वह कहता है कि उसकी डेरी उम्दा चल रही है, किन्तु उसे वहाँ ढोरोका अनुभव नही प्राप्त होता। मैंने तो उसे लिखा है कि तकनीकी मामलेमें मेरा प्रमाणपत्र किस काम आयेगा।

वहाँ लडकियाँ कितनी है? शिक्षण, भोजन आदि सब मिलाकर खर्च कितना पडता है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९१०५) से।

३४५. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

दोबारा नहीं पढ़ा।

सेगाँव
५ फरवरी, १९३७

चि० प्रेमा,

मेरे दाये हाथको आराम देनेकी जरूरत है और बायेसे लिखनेमे बहुत समय चला जाता है। इतना समय कहाँसे निकालूँ? काम बहुत बढ गया है, इसलिए ज्यादातर तो अपने लिखनेकी चीजे दूसरोसे ही लिखवाता हूँ। सोमवारके दिन दाहिने हाथसे काम ले लेता हूँ।

लिखनेका काम करनेवाली विजया और मनु है और कुछ हदतक प्रभावती। विजयाको शायद तू नही जानती होगी। वह पटेल है और बारडोलीकी है। वह जबरदस्ती आ गई है, क्योकि सेगाँवमें किसी नये व्यक्तिको न लेनेका आग्रह तो था ही। उक्त आग्रह विजयाने तुड़वा दिया। उसने अपना मामला इस ढगसे पेश किया कि मैं उसे दुत्कार नही सका। उसे आश्रममें रख लेनेसे अभीतक तो मुझे पछतावा

१. देखिए "पत्र : नरहरि द्वा० परीखको", पृष्ठ ३७१।

नही हुआ। वह मूक भावसे काम कर रही है। इस प्रकार वह लीलावतीका बदला चुका रही है।

अब शकरराव अच्छे हो गये होगे। मैंने उनके स्वास्थ्यके बारेमे हरिभाऊ फाटकसे पुछवाया तो है। परन्तु तू मुझे ब्योरेवार समाचार दे सकेगी।

पटवर्धनसे मैंने कहा था कि वह जब चाहे आ सकता है। परन्तु पहाड़ दूरसे ही सुहावने लगते है न?

तेरी अच्छी परीक्षा हो रही लगती है। ग्रामीणोकी जेबमे पैसा डालनेकी बात आसान है भी और नही भी है। यदि वे हमारा कहा माने तो बिना पूंजी अथवा यो कहो कि स्वल्प पूंजीसे सारे गाँवोकी आय दूनी की जा सकती है। इसमे देहातको चूसनेवालोकी गाँवोसे होनेवाली आय सम्मिलित नही है। परन्तु यदि वे हमारा कहा न माने, अर्थात् हम कहे उतनी मेहनत न करे, हम जो सिखाना चाहे वह उद्योग न सीखे, तो आय बढाना कठिन नही, असम्भव भी है। एक और बडी कठिनाई यह है। केवल मुट्ठी-भर आदमी ही गाँवोमे जाते है। और वे भी अनुभवहीन होते है। उनके शरीर गाँवोमें रहने लायक कसे हुए नही होते। वे ग्रामीणोका स्वभाव नही जानते। उनकी आवश्यकताओसे सर्वथा अनभिज्ञ होते है। वे हाथसे काम करनेके अभ्यस्त नही होते और न अक्ल ही लडा सकते है। स्कूल-कालेजोमे प्राप्त ज्ञान देहातमे बिलकुल निरुपयोगी सिद्ध होता है। ऐसी स्थितिमे धीरजकी आवश्यकता होती है। आत्म-विश्वास चाहिए। शरीर-सम्पत्ति हो तो देहातकी आर्थिक स्थिति सरकारी मदद्के बिना भी बहुत-कुछ, यो कहे कि ५० प्रतिशत, सुधारी जा सकती है। ५० प्रतिशत तो मै कम-से-कम कहता हूँ। मेरी मान्यता तो यह है कि ९० प्रतिशत सुधारी जा सकती है। शरीर-सुधार, समाज-सुधार और नैतिक सुधार ये तीन मुख्य बाते है। इनके लिए सरकारी सहायताकी कोई आवश्यकता नही है।

आर्थिक सुधारके मामलेमे ही यदि थोडी-सी मदद मिल जाये तो काम आसान हो जाये। परन्तु उपर्युक्त तीनो बातोके बिना सरकारी मदद कुछ भी नही कर सकती। इसलिए तू यदि खादी-शास्त्रमे सचमुच निष्णात हो जाये और बड़े-से-बडे प्रलोभनोके बावजूद गाँवसे न हटे तो, जैसा कि मैंने ऊपर लिखा, इन सब बातोको तू प्रत्यक्ष अनुभव करेगी।

तू गायके दूधका आग्रह नही रखती, यह ठीक नही है। जब तुझे बाहर जाना पडे, तब तू गायके दूधका घी और पेडे साथमे रख सकती है। पेडे बिना शक्करके होने चाहिए, अर्थात् शुद्ध खोयेके। उनके साथ गुड खाना हो तो खाया जा सकता है। ऐसा करनेसे खर्च बढता नही और दूधकी जरूरत अच्छी तरह पूरी की जा सकती है। पेड़े सूखे खानेके बजाय उनका चूरा करके गरम पानीमे मिलाकर दूध बनाया जा सकता है। उसमे कमी सिर्फ विटामिनोकी रहती है। परन्तु कुछ दिन यदि विटामिन न मिले तो कोई हानि नही होती।

नर्मदा, नर्मदा राणा है। यह सारा किस्सा बहुत करुण है। सभी ब्रह्मचारी न रहे, यह तो सर्वथा समझमें आने-जैसी बात है। यदि वह इन्द्रिय-निग्रह न कर

सके तो खुशीसे विवाह कर ले। परन्तु विषयोका गुप्त सेवन करना मुझे असह्य लगता है। मनुष्यका पतन विषयोके गुप्त सेवनमे निहित है। ऐसा करनेसे मर्यादा नही रहती। मुझे गृहस्थाश्रमसे जरा भी द्वेष नही है। वह आवश्यक 'स्थिति है। सुन्दर है। परन्तु आश्रमका तो अर्थ ही यह है कि उसके गर्भमे धर्म हो। गृहस्थधर्म स्तुत्य है, स्वेच्छाचार निन्दनीय है। मेरा सारा विरोध केवल स्वेच्छाचारके खिलाफ है।

जमनालालजीने तुझसे जो प्रश्न किया वह तो ठीक था। उन्होने स्त्रीका दृष्टि-कोण जानना चाहा था। विनोबा, मैं और अन्य पुरुष चाहे कुछ भी कहे, तो भी अनुभवी, निष्कलक स्त्रीका अनुभव जाननेकी आवश्यकता होगी ही। और अन्तमे सच्चा योग तो स्त्रीका ही होना चाहिए। ब्रह्मचर्यका महत्त्व और उसकी आवश्यकता सिद्ध करनेका भार केवल पुरुषपर ही नही होना चाहिए। आजतक यह भार ज्यादातर पुरुषने ही उठाया है। इसलिए इस भारने अधिकारका रूप ग्रहण कर लिया है। इससे ब्रह्मचर्यकी फजीहत हुई है। इतना ही नही, जो आसान होना चाहिए था वह इतना कठिन बन गया है कि बहुतोको तो असम्भव ही लगता है। इसमे भी अधिक दोष मैं पुरुषोका ही पाता हूँ। स्त्रियोको उन्होने किसी-न-किसी तरह दबाकर रखा है। ऐसा करनेमें खुशामद और पशुबलने समान भाग अदा किया है। जो भी हो, इसके फलस्वरूप मनुष्य-जातिका आधा अग निर्बल हो गया और निर्बल बना रहा। परिणाम यह हुआ कि पुरुष अपने बहुत-से प्रयत्नोमे असफल सिद्ध हुआ है। और कहा जा सकता है कि यही ठीक हुआ। अब स्त्रियोमे कुछ जागृति आई है। लेकिन इसके बावजूद अभी तो यह जागृति विकृतिका रूप ले रही है। पुरुष स्त्रीकी स्वतन्त्रताके नामपर उसे लाड़ लडा रहा है, उसके अहकारका पोषण कर रहा है। स्त्री स्वतन्त्रताको स्वेच्छाचार मान बैठी है। जो स्त्री-पुरुष इससे बच सके वे बचे। तू बचना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३८८) से। सी० डब्ल्यू० ६८२७ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक।

३४६. वल्लभभाई पटेलको

५ फरवरी, १९३७

भाई वल्लभभाई,

मेरा दायाँ हाथ आराम चाहता है। सोमवारके लिए तो उसे तैयार रखना ही होगा। इसलिए और दिन उसे आराम देता हूँ।

तुम अपने शरीरपर खूब अत्याचार कर रहे हो, परन्तु सरदारसे कोई कह ही क्या सकता है या उसका कोई कर ही क्या सकता है? यदि अपना स्वास्थ्य बिगाड लोगे तो बहुत-कुछ सुनना पडेगा। यह तो हुई प्रस्तावना।

चन्द्रशकर[1] ने महादेवको लिखा है कि पोलकके नाम मेरा पत्र[2] तुम्हे अच्छा नही लगा। पोलकको पत्र लिखे विना छुटकारा ही नही था। जवाब तो देना ही चाहिए। वे पत्र माँगे तो वह भी देना ही पडे। मुझे पता नही था कि वे तुरन्त ही वह पत्र छाप देगे। परन्तु छापनेसे कोई नुकसान हुआ हो, ऐसा तो नही है। और मान लो कि नुकसान हो भी जाये, तो वह क्षणिक ही होगा। क्योकि जो चीज ठीक है, उसके प्रकाशित हो जानेसे हानि हो ही नही सकती।

चन्द्रशकरके पत्रमे . . .[3] के साथ हुई बातचीतका उल्लेख भी है। वह रिपोर्ट तो ऐसी थी ही नही जो पसन्द आये। परन्तु मै इसके लिए जिम्मेदार नही हूँ। उससे मैने जो कहा उसने उसका उलटा ही किया। मैने अपनी राय देनेसे बिलकुल इनकार कर दिया था। मैने तुमसे शिकायत करनेको कहा था। मैने यह भी समझाया था कि मुझे बीचमे पडनेका अधिकार नही है। अन्तमे मैने सिद्धान्तकी एक बात लिखवाई जो उसने प्रगट कर दी, लेकिन उससे हमारा कुछ नही बिगड़ता। यो कोई झूठ छाप दे, तो हम उसका क्या करें? रिपोर्ट देखते ही मैने उसे सख्त उलाहना देते हुए पत्र लिखा, परन्तु वह आदमी बेहया ठहरा। उसने उक्त पत्रकी पहुँचतक नही दी।

क्या तुम चाहते हो कि मै उसका प्रतिवाद करूँ? ऐसा करनेसे उसकी शामत आ जायेगी। तुम्हे किसीसे कहना हो तो कह सकते हो कि मैने बीचमें पडनेसे साफ इनकार किया था। तुम इधर कब आनेवाले हो?

१. चन्द्रशंकर शुक्ल हैं।

२. देखिए "पत्र : एच० एस० एल० पोलक को", पृष्ठ ३५८-५९।

३. साधन-सूत्रमें नाम काट दिया गया है।

कांग्रेसका अधिवेशन कहाँ करना है? उसकी तैयारी आजसे ही होनी चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – २: सरदार वल्लभभाईने, पृष्ठ १९८-९९।

३४७. अहिंसा क्या है?

प्रिय महात्माजी,

इधर कुछ हफ्ते आप पूरी तरहसे कांग्रेसके कार्योंमें व्यस्त रहे, इसलिए अबतक उस पोस्टकार्डका उत्तर मैंने नहीं भेजा जो आपने 'वचनकी अहिंसा' के सम्बन्धमें पूछे मेरे सवालके जवाबमें लिखनेकी कृपा की थी। आपने १९ दिसम्बरके 'हरिजन'[1] में उस प्रश्नकी विस्तारसे चर्चा करनेका जो सौजन्य दिखाया, उसके लिए भी मैं इसी कारणसे आपको धन्यवाद नहीं भेज सका। आपकी दलीलोंको मैंने ध्यानसे पढ़ा है और उनपर गम्भीरतासे विचार किया है। लेकिन उनसे मेरा यह खयाल दूर नहीं हो पाया कि आपने आम तौरपर उस मिशनरी समाजके लिए, जो पिछले सौ सालसे हमारी मातृभूमिकी भलाईके लिए इतने उदात्त ढंगसे काम कर रहा है, जिन शब्दोंका प्रयोग किया उनका प्रयोग करके आपने अहिंसक व्यवहार नहीं किया।

आप कहते हैं: "हिंसाका सार-तत्त्व यह है कि विचार, वचन या कर्मके पीछे कोई-न-कोई हिंसापूर्ण मन्तव्य होना चाहिए, अर्थात् उस विचार, वचन या कर्मकी जड़में अपने विरोधीको नुकसान पहुँचानेका इरादा होना चाहिए।" मैं नहीं समझता कि आपका ऐसा कहना ठीक है। उदाहरणके लिए मान लीजिए, कोई पिता अपने ऊधमी और जिद्दी बच्चेके किसी अपराधपर उसके गाल पर थप्पड़ लगाता है। पिताके इस व्यवहारके बारेमें कोई भी कभी ऐसा तो नहीं मानेगा कि "उसके पीछे हिंसापूर्ण मन्तव्य" या अपने बच्चेको "नुकसान पहुँचानेका इरादा" था। फिर भी बच्चेको इस तरह थप्पड़ लगाना साफ-सीधा हिंसात्मक कार्य है, क्योंकि उससे बच्चेके गालको चोट पहुँची। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति अपने "तथाकथित विरोधी" के खिलाफ ऐसे शब्दोंका प्रयोग करता है जिनसे उसकी भावनाओंको चोट पहुँच सकती है, तब उन शब्दोंके प्रयोगके पीछे उसका मन्तव्य भले ही अहिंसापूर्ण रहा हो, किन्तु वह वचनकी हिंसा तो करता ही है, क्योंकि उसने अपने विरोधीकी

१. देखिए "अहिंसा क्या है?", पृ० १७१-७३।

भावनाओंको उसी प्रकार चोट पहुँचाई है जिस प्रकार उपर्युक्त दृष्टान्तमें पिताने अपने बच्चेके गालोंको। आगे आप कहते हैं: "अहिंसाकी सबसे खरी कसौटी यही है कि हिंसा करनेकी गम्भीर-से-गम्भीर उत्तेजना होनेपर भी व्यक्ति अपने विचार, वाणी और कर्ममें अहिंसापूर्ण बना रहे।" यहाँ भी मैं आपसे सहमत नहीं हूँ। अहिंसाकी सबसे खरी कसौटी तो यह है कि हिंसा करनेकी गम्भीर-से-गम्भीर उत्तेजना होनेपर भी व्यक्तिका विचार, वाणी और कर्म ऐसा रहे कि उसके "तथाकथित विरोधी" के शरीर, मन या आत्माको कोई कष्ट न पहुँचे। आपका यह कथन ठीक है कि "यदि व्यक्तियों या समाजों या राष्ट्रों के स्तरपर लोगोंमें वैचारिक अहिंसा जगानी या विकसित करनी है, तो हमें सत्य कहना ही पड़ेगा, चाहे वह सत्य कुछ समयके लिए कितना ही कटु या अप्रिय क्यों न लगे।" लेकिन यह सही नहीं है कि कटु सत्य कटु शब्दोंमें ही कहा जाये। तनिक धैर्य, संयम और सद्भावनासे काम लेकर विरोधीके खिलाफ वही बातें ज्यादा नम्र ढंगसे भी कही जा सकती हैं। उस चर्चामें श्री एन्ड्रयूजका अपनी बात करनेका तरीका आपके कटुता-भरे तरीकेसे कितना अधिक अलग था! आप तो आम तौरपर आदर्श धैर्य, सहिष्णुता और संयमसे काम लेते हैं। सो महात्माजी, अगर इस प्रसंगपर भी आपने वैसा ही किया होता तो आसानीसे उस कटुतासे बच सकते थे जो, मैं फिर कहता हूँ, आम मिशनरी समाजके विरुद्ध आपके द्वारा की गई "वाणीकी हिंसा" है।

ईश्वर आपको स्वस्थ और सशक्त बनाये रखे।

आपका वही,
ए० एस० वाडिया

पूना
१० जनवरी, १९३७

[पुनश्च :]

आप चाहे तो इसे मेरे नामसे 'हरिजन' में छाप सकते हैं।

ऊपरका पत्र मैं सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ। मगर श्री वाडियाके विचारोंसे मैं गम्भीर रूपसे असहमत हूँ। बच्चेको अगर क्रोध और अधीरतामें नहीं पीटा जाता है, तो निश्चय ही उसे पीटनेमें कोई हिंसा नहीं है। मान लीजिए, उस बच्चेको साँपने डँस लिया है और उसे जगाये रखना जरूरी है तो क्या इस उद्देश्यसे उसे चाँटे लगानेमें हिंसा होगी? या फर्ज कीजिए, कोई बच्चा तेज बुखारके कारण पागलोंकी तरह भागने-दौड़ने लगता है और उसे कसकर तमाचे लगानेसे ही होश आता है, तो क्या यहाँ तमाचे लगानेमें हिंसा हुई? उससे उसको चोट तो जरूर लगी, लेकिन अगर उसे तमाचे न लगाये जाते तो निश्चय ही उसकी मृत्यु हो जाती।

चोट तो कोई शल्य-चिकित्सक भी पहुँचाता है, लेकिन वह जब भी ऐसा करता है उसका वह काम न केवल हिंसक नही होता, बल्कि इसके विपरीत कल्याण-कारी होता है और चोट पहुँचानेके बदले, बहुधा गम्भीर चोटे पहुँचानेके बदले, उसे धन्यवाद मिलता है, मोटी-मोटी फीसे मिलती है। वह चिकित्सक श्री वाडिया-वाली परिभाषाके अनुसार नही, बल्कि पूर्ण रूपसे मेरी परिभाषाके अनुरूप आचरण करता है। विद्वान पत्र-लेखककी दृष्टिसे देखे तब तो कहना होगा कि ईसाने अपने समयके कुछ लोगोको "दुर्जनोकी पीढी" कहकर गम्भीर हिंसा की थी। उनके शब्द और उनके कार्य उनकी पीढीके लोगोको इतने बुरे लगे कि वे उनकी जानके गाहक बन गये। अगर सत्य कठोर हो सकता है — और सत्य कठोर हो सकता है, यह तो पत्र-लेखकने स्वय भी कहा है — तो उसे इतने विनम्र ढगसे कहा कैसे जाये जिससे विरोधीको तनिक भी क्रोध न आये? अगर कोई आदमी सरासर झूठ बोला है, या दिन-दहाडे डकैती अथवा हत्या करता है, तो उस भाईको — और वह मेरा भाई तो है ही — मै झूठा या चोर या हत्यारा कहूँ अथवा चर्चिलकी भाषाका प्रयोग करते हुए कहूँ, 'हाँ, वह बेचारा सत्यक प्रदेशके इर्दगिर्द विचरण करता रहता है', या 'वह दूसरोकी चीजें उठाकर रख तो लेता है मगर शायद चोरीके इरादेसे नही,' या 'वह निर्दोष लोगोका खून जरूर बहाता है, लेकिन उसका इरादा शायद हत्या करनेका नही रहता?' और अगर मै द्राविड प्राणायाम-जैसी भाषाका प्रयोग करूँ ही, तब भी क्या यह तनिक भी निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जिसके बारेमे मै ये बाते बोलूँगा उसके मनको कोई चोट नही पहुँचेगी? कठोर सत्य भले ही शिष्ट और विनम्र ढगसे कहा जाये, लेकिन उसे कहनेके लिए प्रयुक्त शब्द सम्बन्धित व्यक्ति को कटु ही लगेंगे। अगर हम सत्यवादी बनना चाहते हैं तो झूठेको झूठा कहना पडेगा। 'झूठा' शब्द शायद कठोर है, लेकिन उसका प्रयोग इस प्रसगमे अनिवार्य है। सो जिस प्रसगको लेकर श्री वाडियाने आपत्ति की है, उसके सम्बन्धमे मुझे तनिक भी पश्चात्ताप नही है।

इन भाईसे मै निवेदन करूँगा कि अन्य बहुत-से भले लोगोकी तरह इनकी निर्णयबुद्धि भी मिशनरियोके स्कूल और अस्पताल खोलने-जैसे कुछ नेक कार्योको देख-कर दिग्भ्रमित हो गई है। मै उनकी लोकोपकारी प्रवृत्तियोके लिए तो उन्हे पूरा श्रेय अवश्य दूँगा, लेकिन मेरी सन्तुलित निर्णयबुद्धि मुझसे कहती है कि उनके कार्योकी आभा इनके पीछे छिपे धर्म-प्रचारके उद्देश्यके कारण फीकी पड जाती है। हो सकता है, धार्मिक आचरण और खुद धर्म-प्रचारके विषयमे मेरे विचार गलत हो, लेकिन इसीसे उनके सम्बन्धमे मै जो-कुछ कहता हूँ वह हिंसामय नही हो जाता।

इसलिए मै श्री वाडियाकी रायको या अहिंसाके मामलेमे दीनबन्धु एन्ड्रयूजके साथ की गई अपनी उस तुलनाको, जिसमे मुझे दोषयुक्त बताया गया है, स्वीकार नही कर सकता। और अगर वे सचमुच ऐसा मानते है कि मै "आम तौरपर आदर्श धैर्य, सहिष्णुता और सयमसे काम लेता हूँ, तो मै उनको विश्वास दिलाता हूँ कि उक्त प्रसग पर भी मैने उन गुणोमे से, जो उन्होने मुझमे बताये है, किसीका त्याग

नही किया था। इसका मतलब यह नही कि मै कभी सयम छोड़ता ही नही। कभी-कभी मै निश्चय ही सयम खो बैठता हूँ और ये प्रसग मेरे लिए लज्जाके प्रसग होते है। अगर श्री वाडियाने मुझे कभी सयम खोते नही देखा तो उसका कारण यह है कि सार्वजनिक जीवनमे — और विशेषकर जो लोग मुझे अपना शत्रु मानते है उनके साथ अपने व्यवहारमें — सयम कायम रखनेके लिए मैंने कठिन साधना की है। लेकिन अपने निजी जीवनके बारेमे मै ऐसी बात नही कह सकता। जो लोग मेरे बहुत निकट है वे जानते है, और यह मेरे लिए बड़े अफसोसकी बात है, कि उनके साथ अपने व्यवहारमे मै कितना असहिष्णु हो सकता हूँ। कभी-कभी तो ऐसा व्यवहार करने लग जाता हूँ, मानो किसी जगली भालूको खुला छोड़ दिया गया हो। मै जानता हूँ कि उनके प्रति अपने व्यवहारमे भी मुझे धैर्य नही छोडना चाहिए। वे उदारतापूर्वक मेरे इस व्यवहारको सह लेते है, क्योकि उन्हे पूरा विश्वास रहता है कि मै उनका कोई बुरा नही चाहता, बल्कि उनका अच्छे-से-अच्छा मित्र और मार्ग-दर्शक हूँ। लेकिन उनकी ओरसे मिले प्रमाणपत्रका मेरे लिए कोई मूल्य नही है। उससे मै कभी भी धोखेमे नही आया हूँ। मुझे मालूम है कि अगर मै उनके प्रति पर्याप्त अनासक्तिका भाव रखूँ और जब वे, मेरे विचारसे, उस स्तरसे नीचे रह जाये जिसे उन्होंने स्वेच्छासे अपने दैनिक आचरणके लिए स्वीकार किया है, तब भी उनपर नाराज न होऊँ, तो मै ज्यादा अच्छा मनुष्य और अधिक श्रेष्ठ मार्गदर्शक बन पाऊँगा। जिस अनासक्तिका विधान 'गीता' मे किया गया है, उसे सिद्ध करना सबसे कठिन कार्य है। लेकिन तब भी पूर्ण शान्ति प्राप्त करने और स्वात्मा तथा परमात्माका साक्षात्कार करनेके लिए वह नितान्त आवश्यक है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ६-२-१९३७

३४८. आन्ध्र प्रदेशमें खादी

गत २३ जनवरीको जब मै गुटूरकी एक सभामे भाषण दे रहा था, किसीने मुझे डॉ॰ पट्टाभि सीतारामैयाका नीचे लिखा पत्र दिया

> आन्ध्र प्रदेशमें आप बहुत थोड़े समयके लिए हैं, आपका कार्यक्रम भी काफी भारी है। इसलिए मुझे यह ठीक नहीं मालूम होता कि मैं आपका समय लेकर औरोंके साथ ज्यादती करूँ। पर एक बातकी तरफ आपका ध्यान आकर्षित किये बिना मैं नहीं रह सकता। अगर हो सके तो कृपया विजयवाड़ाके अपने भाषणमें आन्ध्र प्रदेशमें खादीकी स्थितिके विषयमें कुछ जरूर कहें। यहाँ प्रमाणपत्र-प्राप्त कुछ खादी-उत्पादक खादीकी कीमतोंमें जो बढ़ोतरी हुई है, उसके लिए आवश्यक शर्तोंका तो पालन नहीं करते, मगर उससे लाभ जरूर उठा रहे हैं। फलतः अखिल भारतीय चरखा संघ तथा उससे प्रमाणपत्र

पाये हुए व्यापारी दोनोंकी बिक्री उन व्यापारियोंकी होड़के कारण गिर गई है जिनको प्रमाणपत्र प्राप्त नहीं है। अगर यह मान लिया जाये कि वे शुद्ध खादी ही बेचते हैं तो भी उनकी स्थिति उपर्युक्त दोनों प्रकारके उत्पादकोंसे स्पष्टतः अधिक सुविधाजनक है। एक वक्तव्य तैयार किया गया है, और उसपर आन्ध्रके सभी प्रकारके विचार रखनेवाले प्रभावशाली मित्रोंके दस्तखत लिये जा रहे हैं। इसकी एक नकल इस पत्रके साथ में भेज रहा हूँ। मतलब यह कि प्रमाणित भण्डारोंकी बिक्री गिर गई है, इसलिए जनताको आगाह कर देनेकी जरूरत है कि वह अप्रमाणित दुकानोंकी खादी न खरीदे। साथ ही खादीकी इस नई परिभाषाको, कि "खादी वह कपड़ा है जो बढ़ी हुई मजदूरीपर हाथ-कताई और हाथ-बुनाई द्वारा तैयार किया जाता है," एक बार फिर प्रचारित किया जाये। आपको यह भी बता देना जरूरी है कि जहाँ अधिकांश व्यापारियोंके प्रमाणपत्र प्रतिज्ञा-भंगके दोषके कारण रद्द किये जा रहे हैं, वहाँ कुछने स्वेच्छापूर्वक अपने प्रमाणपत्र लौटा दिये हैं, क्योंकि मौजूदा हालतमें उन्हें इसीमें लाभ होता है। और यह अपने-आपमें हमारे लिए एक सबक है कि प्रमाणपत्र लौटानेके कारण उन्हें नुकसान नहीं, उलटा फायदा होता है। इसलिए इस विषयमें तो असलमें जनताको ही अपनी सही निर्णय-बुद्धिसे काम लेना सीखना है।

उस सभामें तो इस बातका जिक्र करनेका समय नहीं था और मैं खुद भी नहीं चाहता था कि तूफान-पीड़ित जनताकी सहायताकी अपीलके बीच खादीका जिक्र छेड़ूँ। इसलिए विजयवाडाके अपने बादके भाषणमें भी मैंने उसका जिक्र नहीं किया। फिर भी, पत्रका विषय बड़ा महत्त्वपूर्ण है। आन्ध्रमें खादीके लिए जो सम्भावनाएँ हैं, वे अन्य प्रान्तोंमें नहीं हैं। इस काममें उसने एक स्वाभाविक कौशल प्राप्त कर लिया है, जो अन्यत्र कहीं नहीं पाया जाता। पर और जगहोंकी भाँति आन्ध्रके भी कुछ व्यापारी लोभी हैं और वे ताँबेके चन्द टुकडोंके लोभमें खादी तकको नुकसान पहुँचानेसे बाज नहीं आते — खादीको, जो गरीब ग्रामीणोंका सबसे बडा सहारा है, दरिद्रनारायणके लिए अंधेकी लकडी है और विधवाओंका एक ही अवलम्ब है। पर इससे भी बुरी एक बात वहाँ और है। वहाँ बडे-से-बडे खादी-कार्यकर्ताओंमें भी सहयोगकी कमी है। खादीके सम्बन्धमें आन्ध्रके पतनका एक कारण मैंने विनयाश्रममें देखा और मेरी तो आँखें खुल गईं। आन्ध्रका बच्चा-बच्चा जानता है कि सीताराम शास्त्रीको मैं कितना प्यार करता हूँ और देशभक्त वेंकटप्पैयाके प्रति मेरे दिलमें कितना अधिक आदर है। सीताराम शास्त्री वेंकटप्पैयाके शिष्य हैं। वेंकटप्पैयाके शब्दों का वे वेद-वाक्यकी तरह आदर करते हैं। दोनोंमें पूर्ण मात्रामें वह सारी भावुकता है जिसमें, लगता है, आन्ध्रने एक विशेषता-सी हासिल कर ली है। पर वेंकटप्पैया कमजोर गुरु हैं, अत्यधिक उदार और क्षमाशील हैं। सीताराम शास्त्रीके प्रति मेरे मनमें जो प्रेम और विश्वास रहा है, उसके कारण उनके एक ऐसे दोषका

मुझे जरा भी पता नही था जो एक खादी-प्रेमी तथा चरखा-सघके प्रतिनिधिके लिए मेरी दृष्टिमे अक्षम्य है। पिछले महीनेकी २३ तारीखको सुवह मुँह-अन्धेरे ही मै विनयाश्रम पहुँचा और एक चरखा माँगा। इसपर मुझे जो जानकारी मिली उसे सुनकर मैं हैरान रह गया। उनके पास उन्नीस चरखे थे और सव-के-सव खराब पड़े थे, उनका कोई इस्तेमाल ही नही किया जाता था। एक यरवदा चक्र भी था, वह लाया गया। पर वह भी अच्छी हालतमें नही था, हालाँकि किसी तरह काम दे सकता था। धुनकी कोई थी ही नही। मुझे यह जानकर और भी दु:ख और आश्चर्य हुआ कि आश्रम-वासियोमेंसे एक भी पीजना नही जानता था, और जो कातते थे वे पूनियाँ बाजारसे खरीदकर कातते थे। मेरा दिल रो पडा। अपनी निराशा और दु:खके आवेगको मैं रोक न सका। उसी आवेगमें मैंने जरा सख्तीसे कहा — "अगर खुद नमक ही अपना नमकीनपन छोड देगा तो फिर वह स्वाद मिलेगा कहाँसे।" वेचारे सीताराम शास्त्री चुप थे। वेकटप्पैयाके गालोपर आँसू ढलक रहे थे। खैर, जव हम लोग मोटरमे बैठकर तेजीसे दौरा कर रहे थे तो वेकटप्पैयाने मुझे यह आश्वासन दिया कि दो महीनेके अन्दर इस भूलको सुधार लिया जायेगा और विश्वासपूर्वक कहा कि सीताराम शास्त्रीसे मैं जितनी उम्मीद करता हूँ, वह सव वे पूरी करेंगे और विनयाश्रम शीघ्र ही चरखे और धुनकीके संगीतसे गूँजने लग जायेगा। उस समय सीताराम शास्त्री भी वहाँ मौजूद थे और उन्होने अपने प्रधानके दिये गये वचनको पूरा करनेकी प्रतिज्ञा की।

भूल करना — और भयकर भूल करना भी — मानव-स्वभावका अग है, लेकिन उसी दशामे जव भूल करनेवालेके मनमे भूल-सुधारका और उस भूलको न दोहरानेका सकल्प भी हो। अगर उनका वचन पूरा हो जाता है, तो उनकी भूल भी विस्मृत कर दी जायेगी। और इन दोनो मित्रोको मैं इतनी अच्छी तरह तो जानता ही हूँ कि मुझे उनकी तरफसे वचन-पालनमे कोई गफलत होनेका भय न रहे।

अब पाठक यह वात समझ जायेंगे कि खादी वहाँ उतनी तरक्की क्यो नही कर पाई, जितनी उसे करनी चाहिए थी। उसने जो उल्लेखनीय प्रगति की है, उसका कारण तो उसका सहज गुण है। पर गाँव-गाँवमे उसका प्रचार तवतक नही हो सकेगा जवतक कि अखिल भारतीय चरखा सघके कार्यकर्त्ता उन अपेक्षाओको पूरा नही करेंगे जो उनसे की जाती है और जिनकी जानकारी उन्हे खुद भी है। अभी कुछ दिन पहले मैंने जो थोडे-से प्रश्न प्रकाशित किये थे, उनकी दृष्टिसे उन्हे खादी-शास्त्रकी कम-से-कम कुछ बुनियादी वातोका तो ज्ञान होना ही चाहिए। और खादी-शास्त्रके आचार्यको तो और भी कडी जाँचमे खरा उतरना है।

पाठक यह न समझें कि डॉ० पट्टाभिके पत्रके सरल-से विषयको छोडकर मै भटक गया हूँ। वह तो उस बीमारीका एक लक्षण-मात्र है। मूल कारण तो वही है जिसे मैंने यहाँ प्रकाशमें लानेका साहस किया है। आज खादीके अप्रमाणित विक्रेता सबसे कम मजदूरी पानेवाले कार्यकर्त्ताओ अर्थात् कतैयोको उचित पारिश्रमिक देनेके

प्रयोगमे वाधा डालकर दरिद्रनारायणकी पीठमे छुरा भोकनेवाली हरकत कर रहे है। लेकिन जिस दिन विनयाश्रम इस चक्रको चतुर्दिक् आभा फैलानेवाले पूर्ण सूर्यकी भाँति प्रतिष्ठित कर देगा, उसी दिन ये लोग, और किसी कारण नही तो शर्म खाकर ही, अपनी इस हरकतसे वाज आ जायेगे।

[अग्रेजीसे]
हरिजन, ६-२-१९३७

३४९. पत्र : रामदासको

सेगाँव, वर्धा
६ फरवरी, १९३७

भाई रामदास,

तुमारा खत मिल गया था। रिपोर्ट वहुत अच्छा और काम का है। इसकी और नकल है? मै उसे रखना चाहता हूँ। यदि एक ही हो तो मै बनवा लुगा। मुझे तुमारे दो-तीन दिन सेगावकी सडको के लिये चाहीये। जब फुरसद मिले आ जाओ। मुझे आने के दिन का पता पहले से देना।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५८९) से। सी० डब्ल्यू० ७००६ से भी, सौजन्य मुन्नालाल जी० शाह।

३५०. पत्र : चिमनलाल एन० शाहको

६ फरवरी, १९३७

चि० चिमनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। शारदा अब इतनी उम्रकी तो हो गई है कि जबतक उसका हार्दिक सहयोग न मिले, वह अच्छी नही हो सकती। मेरी दृष्टिमे तो इस समय उसका एकमात्र कर्तव्य अपने शरीरको मजबूत करना है। इसके लिए उसे अपना अध्ययन छोड देना चाहिए। इसका मतलब यह नही है कि वह पढे ही नहीं। जो उसे अच्छा लगे, सो वह खुशीसे पढे। लेकिन उसमे श्रम नही पडना चाहिए। थकावट महसूस होते ही तुरन्त पढना छोड दे। नियमसे तो कुछ भी न पढे। नियमपूर्वक शारीरिक श्रम अवश्य करे। नियमपूर्वक धीरे-धीरे खुली हवामे घूमे। कटि-स्नान व घर्षण-स्नान करे। धीमे-धीमे प्राणायाम करे। तुम जो स्थिति बता रहे हो उसमें कटि-स्नान करनेमे कोई हर्ज नही है। इसमे बस एक ही वातका ध्यान रखना चाहिए कि स्नान करते हुए ठड न लग जाये। टबमें से निकलनेके बाद हलकी कसरत करनी

चाहिए और शरीरपर गरम पानी डालना चाहिए। हमेशा पूरे शरीरकी मालिश करनी चाहिए। सूर्य-स्नान पूर्ण नग्नावस्थामें करना चाहिए। यह जहाँ खुली जगह हो वहाँ सहज ही किया जा सकता है। चारों तरफ चटाइयोंकी कनात लगा देनेसे आड़ भी हो जायेगी। अखाड़ेमें जैसी भुरभुरी मिट्टी होती है, यदि वैसी भुरभुरी जमीन हो तो उसमें सूर्य-स्नानके समय लोट भी सकते हैं। इस उपचारमें खर्च कुछ नहीं है। केवल श्रद्धापूर्वक समय देना चाहिए। श्रद्धा न हो तो उपचार बोझ मालूम होता है और उसमें थकावट होती है। दमेके रोगीको थकावट हो, यह बिलकुल वांछनीय नहीं है। दमा होनेमें स्नायुका बहुत बड़ा हाथ होता है। शारदाकी खुराकमें दूध और मक्खन, और यदि ये न मिले तो इनकी जगह घी उचित मात्रामें होना चाहिए। भाजियोंमें मेथी, चौलाई, राई, 'डामो' वगैरह, बिना उबाले टमाटर, लौकी, बैंगन, काशीफल आदिसे काम चल सकता है। इन्हें भापमें पकाना चाहिए। मसाले नहीं डालना चाहिए। तेल, घी भी नहीं। घी या मक्खन ऊपरसे लेना चाहिए। कोई रसवाला फल मिले, तो वह भी लेना चाहिए। कच्चा लहसुन पीसकर सागके साथ मिलाकर खाना चाहिए। आधे तोलेसे शुरू करे। इसे पकाना बिलकुल नहीं चाहिए। प्याज भी खा सकती है, पकाया हुआ या कच्चा ही। दोनों उसे फायदा करेंगे।

और भी कुछ पूछना हो तो पूछना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० जी० २०) से।

३५१. मिल-मजदूर और मिल-मालिक

अहमदाबादके मिल-मालिकों और मजदूरोंके बीच उपस्थित प्रश्नोंमें से कुछ निर्णयके लिए पंचोंको सौंप दिये गये थे। और अब उनका निर्णय घोषित हुआ है। दोनों पक्षोंने विवादास्पद प्रश्नोंके निर्णयके लिए पंचायतका आश्रय लेना स्वीकार किया, इसलिए दोनों धन्यवादके पात्र हैं। मिल-मालिक उसके निर्णयका आदर कर रहे हैं, इसलिए मिल-मालिक भी धन्यवादके पात्र हैं। सरपंचने भी केवल सेवा-भावसे, बगैर किसी प्रकारका मेहनताना लिये, खूब परिश्रम किया और बहुत-सी दलीलोंके साथ अपना निर्णय दिया है, इसलिए वे भी धन्यवादके पात्र हैं। हम सब आशा करें कि दोनों पक्षोंके बीच खड़े होनेवाले सभी सवाल इसी तरह हमेशा और फौरन हल होते रहेंगे। यह तो साफ ही है और हरएककी समझमें आ सकता है कि पंच-फैसलेको स्वीकार करनेसे दोनों पक्षोंको तथा उस उद्योगको भी लाभ हुआ है जो कि अहमदाबादकी जनताका आधार है।

पर यह लेख मैं भूतकालकी स्थितिकी जाँच करने या उससे सम्बन्धित मुख्य-मुख्य व्यक्तियोंकी केवल स्तुति करनेके लिए नहीं लिख रहा हूँ। मैं तो भविष्यकी रक्षा करनेवाले साधनोंकी कुछ जाँच करना चाहता हूँ। इन साधनोंकी ओर मैंने

अपने निर्णयकी १६ वी धारामे इशारा किया है। मै उस धाराको तथा उसके बादकी धाराको यहाँ उद्धृत करता हूँ

१६ मिल-मालिक मण्डल तथा "मजूर-महाजन" के साथ पिछले १८ वर्षसे मेरा अविच्छिन्न और निकट सम्बन्ध रहा है। उस अनुभवके आधारपर पचकी हैसियतसे मैंने जो-जो सिद्धान्त दोनो पक्षोके सामने पेश किये है उनका, दोनोके हितको ध्यानमे रखते हुए, यहाँ उल्लेख कर देना मै अपना धर्म समझता हूँ

(क) मजदूरोके वेतनमे तवतक कटौती नही हो सकती जवतक कि मुनाफा कतई वन्द न हो जाये और मूल धनको हाथ न लगाना पडे।

(ख) मजदूरोके वेतनमे तवतक भी कटौती नही हो सकती जवतक कि उन्हे अपनी आजीविका चलाने लायक वेतन नही मिलता। यहाँपर ऐसे प्रसगो का विचार करना वेकार है जव कि इस उद्योगके अस्त होनेका समय आ जाये और मजदूर भी मिलोको अपनी समझने लग जाये और उन्हे बचानेके लिए सूखी रोटी खाकर भी स्वेच्छासे रात-दिन काम करना पसन्द कर ले।

(ग) इस बातका भी निर्णय हो जाना जरूरी है कि आजीविकामे किन-किन बातोका समावेश हो।

(घ) मजदूरोके वेतनमे आय कटौतीका विचार करते समय किसी विशेष मिलकी गिरती हुई हालतपर विचार नही किया जाना चाहिए।

(च) मिल-उद्योगके लाभके लिए इस सिद्धान्तका स्वीकार किया जाना अत्यन्त आवश्यक है कि मजदूर भी शेयर होल्डरोकी ही भाँति मिलके मालिक है और उन्हे भी यह अधिकार है कि वे मिलकी व्यवस्थाका वारीकीके साथ ज्ञान प्राप्त करे।

(छ) मजदूरोका एक ऐसा रजिस्टर होना चाहिए जो दोनो पक्षोको मान्य हो। और ऐसे मजदूरोको कामपर रखनेका रिवाज वन्द हो जाना चाहिए जो इस सघमे शामिल न हो।

१७ मै इन सिद्धान्तोको यह समझकर पेश नही कर रहा हूँ कि इन्हे मेरे साथी पच अथवा मिल-मालिक मण्डल या मजदूर भी स्वीकार कर लेगे। मैंने जो निर्णय दिया है उसके साथ इन तत्त्वोका कोई सम्बन्ध नही है। पर मुझे यह दृढ विश्वास है कि अगर इनको स्वीकार न किया गया तो मिल-उद्योग, अर्थात मालिक और मजदूर दोनोकी हस्तीको खतरा है।

सरपचने माना है कि ये सिद्धान्त आदर्श रूपमे भले ही शोभा दे सके, पर इनपर अमल नही किया जा सकता।[1] उन्हे इन सिद्धान्तोपर अपना निर्णय देनेकी जरूरत नही थी। इनका तो मैंने केवल अपने सन्तोषकी खातिर और इसीलिए उल्लेख

१. पच-फैसले में कहा गया था: "भले ही मैं इन सिद्धांतों में निहित आदर्श और मानवीयता की भावना का सम्मान करता हूं, लेकिन मेरे खयाल से खुले बाजार में स्पर्धा के समक्ष टिकने और लाभ ग्रहण करनेके लिए आर्थिक उत्पादन में जो कठिनाइयाँ होती हैं, उनके लिए ये सिद्धान्त ठीक नहीं हैं।" ('हिस्ट्री ऑफ़ वेज ऐडजस्टमेन्ट्स इन दि अहमदाबाद इन्डस्ट्री', खण्ड ४, पृ० २४)

किया था कि जिसमें भविष्यमें दोनो पक्षोको सहायता मिले। इसलिए सम्भव है कि सरपंचने उनपर गम्भीरतापूर्वक विचार भी न किया हो। यह भी हो सकता है कि चूँकि मैं आदर्शवादी स्वप्न-सृष्टिमे विहार करनेवाला और अव्यवहारपटु समझा जाता हूँ इसलिए वे उन्हे रुचे ही न हो, और साथ ही सरपंचने उन बातोंपर पूरी तरह इसलिए भी गौर न किया हो कि उनके लिए वे बाध्य नहीं थे।

यह आरोप तो मुझे स्वीकार करना ही पड़ेगा कि मैं आदर्शकी ओर झुकता हूँ, मापदण्डके रूपमे उसीको स्वीकार करता हूँ। पर साथ ही, मुझे यह भी कहना पड़ेगा कि मैं व्यवहारका दुश्मन नहीं हूँ। मेरा सारा जीवन आदर्शको व्यवहारमें लानेमें बीता है और अब भी वह उसी तरफ वह रहा है। और मैं मानता हूँ कि इसमें मुझे थोडी-बहुत सफलता भी मिली है। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि दोनो पक्ष तथा पाठक भी मुझे भूलकर मेरे द्वारा उपस्थित किये गये इन सिद्धान्तोकी स्वतन्त्र रूपसे जाँच करे।

सरपचने बड़े जोरोंसे सिफारिश की है कि मालिकों को चाहिए कि वेतनके सम्बन्धमें वे जल्दी-से-जल्दी कोई ऐसी नीति स्वीकार कर ले जो सभी मिलोंके लिए उपयोगी हो। साथ ही, उन्हे ऐसी योजना भी उतनी ही जल्दी तैयार कर लेनी चाहिए जिससे परिस्थितिके अनुसार वेतनमें घटा-बढी अपने-आप हो जाया करे। मेरी नम्र राय तो यह है कि इन दोनो बातोंको अगर जल्दी-से-जल्दी करना है तो मेरे सुझाये सिद्धान्तोंमे किसी-न-किसी रूपमे सहायता लेना अनिवार्य होगा। उनके अलावा दूसरी बातोंपर भी भले ही विचार करना पड़े, पर मैंने जो बातें पेश की हैं उनपर विचार तो करना ही होगा।

मजदूरोंके वेतनमें अपने-आप घटा-बढी करनेवाली योजनामें सबसे पहले तो यह मर्यादा रखनी होगी कि मजदूरको कम-से-कम कितना वेतन दिया जाये। केवल इसी एक बातका निर्णय करते हुए मेरी बताई छहो बातोंपर विचार करना अनिवार्य हो जायेगा। कटौती करते समय मुनाफा कतई छोड देना भले ही जरूरी न समझा जाये, पर मुनाफेकी कोई मर्यादा तो आँकनी ही पड़ेगी। और इसपर अमल करते समय, मुनाफा जिसमें शून्य रह जाये ऐसी स्थितिका, अर्थात् मापदण्डके रूपमें आदर्श का विचार करना ही पडेगा। (१६ क)

कटौती किस नीतिके अनुसार हो इसपर विचार करते समय इस बातपर विचार करना ही पड़ेगा कि पेट भरने लायक आजीविकाके मानी आखिर क्या हो। (१६ ख)

आजीविकाका विचार करना अगर जरूरी समझा गया, तो यह भी सोचना पड़ेगा कि उसमें किन-किन वस्तुओंका समावेश हो। (१६ ग)

तमाम मजदूरोंके वेतनमें कटौती करना सोचनेमें कुछ विशेष मिलोंकी स्थिति का विचार अप्रस्तुत ही होगा। (१६ घ)

मालिकोकी माँगोको भली-भाँति समझनेके लिए यह जरूरी होगा कि मजदूरोंको मिलकी व्यवस्था बारीकीसे जाननेका अधिकार हो। (१६ च)

इस दृष्टिसे कि मजदूर सन्तोषपूर्वक कटौती स्वीकार कर ले और उन्हे निर्भय करनेके लिए ऐसे तमाम मजदूरोकी फेहरिस्त बनाना भी लाजिमी होगा जिन्हे कामपर लिया जा सकता हो। (१६ छ)

अगर पचायतके तत्त्वको कायम रखना है तो मालिक मण्डलको मिलोपर आजकी अपेक्षा अधिक काबू हासिल करना पडेगा। अगर व्यक्ति अपने ही स्वार्थ गाँठने लगे और मालिक-मण्डलकी अवगणना करे तो अन्तमे यह पचायतका तत्त्व ताकपर रखा रह जायेगा। इसी प्रकार मजदूर भी अपना व्यक्तिगत मतलब ही देखने लगे और अपने सघके नियमोका उल्लघन करने लगे तो भी पचायतवाली बात नही रहेगी। यह नौबत न आने पाये इसलिए यह जरूरी है कि सर्वत्र समान वेतनकी नीति कायम हो जाये। यह करते हुए अगर किसी एकाध मिलको अधिक नुकसान भी उठाना पडे तो अन्य मिलोको चाहिए कि वे उसे सहारा दे। इसी प्रकार जहाँपर ऐसा दिखाई दे कि मजदूरोको नुकसान उठाना पड रहा है, तो जिन मजदूरोको अधिक लाभ हो उन्हे चाहिए कि वे नुकसान उठानेवाले अपने भाइयोकी सहायता करे। मेरी यह भी राय है कि भिन्न-भिन्न विभागोके मजदूरोको अलग-अलग वेतन देनेकी प्रथाको तोडकर तमाम मजदूरोको एक-सा वेतन देनेकी नीति स्वीकृत हो जानी चाहिए। मै जानता हूँ कि यह काम असम्भव-जैसा दिखाई देगा। पर अगर गहराईसे विचार किया जाये तो यह स्पष्ट दिखाई देगा कि मजदूरोकी सघ-शक्तिको अजेय बनानेके लिए इस नीतिसे काम लिये बगैर कोई गति ही नही है। आठ घटे करघेकी देखभाल करनेवाले मजदूरको ३०) मासिक क्यों और तकुवा सँभालनेवाले मज़दूरको उन्ही आठ घटोके केवल १३) मासिक ही क्यो? यह कहना तो गलत होगा कि एकको अधिक काम करना पडता है और दूसरेको कम। एकको बुद्धिका ज्यादा उपयोग करना पडता है और दूसरेको कम, यह कहना भी मजदूरके लिए उचित नही होगा। जबतक इस तरहकी विषमता रहेगी तबतक द्वेषकी जड बनी ही रहेगी। और जहाँ द्वेष है वहाँ सच्ची एकता हो ही नही सकती। इस सवाल के गर्भमे तमाम मजदूरो और सच पूछिए तो सारे समाजकी शिक्षाका सवाल अन्तर्हित है। मै तो यही समझता हूँ कि शुद्ध समाजवादका रहस्य इसीमे है कि निश्चित समयके लिए प्रत्येक व्यक्तिकी आय एक-सी होनी चाहिए। सबकी कम-से-कम जरूरते एक-सी ही होती है। ससारका अधिकाश हिस्सा हमेशा मजदूरी करनेवाला ही रहेगा। इसलिए यह मानना ही पडेगा कि उनका उद्धार इस सिद्धान्तको स्वीकार करनेमे ही है कि सबकी आय समान हो। सम्भव है, यह सब सपनोकी दुनियामे विचरनेवाले की-सी बात मालूम हो। अगर मजदूर इन सपनोको सच्चा करके नही दिखायेगे तो उनकी वास्तविक सत्ताकी बात भी आजकी तरह हमेशा स्वप्नवत् ही बनी रहेगी।

हाँ, एक अपवाद जरूर है। अगर मजदूर शस्त्र-बल अर्थात् जोर-जबरदस्ती करके अपनी सत्ता स्थापित करना चाहे तो वह सम्भव-जैसा दिखाई देगा। पर यह लेख तो मैने यह मानकर लिखा है कि अहमदाबादके मिल-मजदूरोने हिंसक भावनोका सिद्धान्त रूपसे त्याग कर रखा है। परन्तु क्षण-भरके लिए मान ले कि मजदूर वर्ग

जोर-जबरदस्ती करनेपर भी उतारु हो जाये, तो मैं तो यह कह देना चाहता हूँ कि सत्ता मिलते ही उनमे आपसी लडाई होनेकी पूरी सम्भावना रहेगी। जो भी हो, मैं तो केवल अहिंसाका पुजारी हूँ। इसलिए अपनी कलमसे मैं तो सिर्फ अहिंसक साधन ही सुझा सकता हूँ। मेरी बुद्धि इस बातकी कल्पना नही कर सकती कि दूसरे साधनोकी कभी विजय हो सकती है। इसलिए इन पिछले तीन-चार महीनोसे उनकी स्थितिका विचार करते हुए मेरे दिलमे जो बात रम रही है, अगर उसे उनके सामने विचारार्थ पेश न कर दूँ तो उनके प्रति द्रोह करनेका दोषी कहलाऊँगा। इस महत्त्वपूर्ण फेरफारको अगर मजदूर इसी दम हजम न कर सके तो भले ही आहिस्ता-आहिस्ता करे। पर उन्हे इसी नीतिको अपना लक्ष्य बनाकर चलना है कि मजदूर-मात्रके लिए वेतन एक-सा ही हो।

बस, आज तो इतना ही।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, ७-२-१९३७

३५२. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

सेगाँव, वर्धा
७ फरवरी, १९३७

भाई खम्भाता,

आपका पत्र मिला। रुपयो और अगूठीके बारेमे जैसी आपकी इच्छा है, वैसा होगा। आप पत्र नही लिखते, यह ठीक नही है। एक कार्डमे दो शब्द लिख दिया करे, तो वही मेरे लिए काफी होगा।

आपकी खबर तो मैं प्राप्त करता ही रहता हूँ, किन्तु उसकी बनिस्बत अच्छा यह हो कि कम-से-कम पन्द्रह दिन या एक महीनेमे एक कार्ड आपकी ओरसे जरूर मिलता रहे।

आपकी तबीयत फिरसे ढीली हो जानेकी खबर मुझे जब मैं पूनामे था तब मिली थी। आपने बहुत इलाज किये। लेकिन मेरी आपको सलाह है कि सान्ताक्रूजमें गौरीशकर नामक एक सरकारी नौकर है, जो केवल परोपकारके लिए नैसर्गिक उपचार करते हैं, आप उनके पास जाइये और उन्हे अपनी तबीयतका हाल बताइये। यदि वे आपका मामला हाथमे ले, तो जैसा वे कहे वैसा कीजियेगा। उनका पता और उनके लिए पत्र महादेव इस पत्रके साथ रखेगा।

काट-कसर करके मुझे पैसे मत भेजियेगा, आपके पास जो फाजिल बच रहते हो वे सब मुझे भेज देनेकी छूट है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५५९) से। सी० डब्ल्यू० ५०३४ से भी, सौजन्य: तहमीना खम्भाता।

३५३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

७ फरवरी, १९३७

भाई घनश्यामदास,

मेरा दाहिना हाथ आराम मागता है, इसलिए आजकल सिर्फ सोमवार को ही दाहिने हाथसे लिखता हू। वाकी दिनोमें लिखवाता हू। वाये हाथसे लिखनेमे काफी समय जाता है।

परमेश्वरीके वारेमे मैने जो अभिप्राय वाध लिया है उसके अनुकूल प्रस्ताव वनाकर परमेश्वरीने भेज दिया है। इसमे, अगर आपत्ति न समझी जाय तो दस्तखत करके मुझको भेज दीजिये। अंतमे क्या परिणाम आवेगा, वह तो कोई नही जानता है। परमेश्वरीको अपनी शक्ति वतानेका वडा मौका मिलता है। और वह उसे मिलना चाहिए। जमनालालजीके दस्तखत तो ले लिये है।

पारनेरकर अव वहाँ पहुच गया होगा। पण्डयाको जव कहो तव खैंच लूंगा।

दिल्लीके हरिजन-निवासके खर्चके वारेमे और सेट्रल आफिसके खर्चके वारेमे जो आवश्यक कमी है मानी जाये उसे करनेमे विलम्व क्यो किया जाय? हाँ, इतना है सही कि ठक्कर वापाको जो नही जचेगा वह हम नही कर सकेंगे। इन सव वातोके लिए दिल्ली जानेके समय वर्धा होकर जाना उचित समझा जाय तो ऐसा किया जाय।

वापुके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ८०३३) से, सौजन्य घनश्यामदास विडला।

३५४. पत्र : बलवन्तसिंहको

७ फरवरी, १९३७

चि० वलवंतसिह

तुम्हारा पत्र मिला।

गाय आ गई है।[1] हिसाव रक्खा जायगा। डाक्टर कहे सो करना।

तुम्हारें सेगाव छोडनेका प्रश्न उपस्थित होता ही नही। तुम्हारा व्याधि असाध्य नही है। वहूत दिनो तक चलनेवाली भी नही है। दो-तीन दिनमे हार क्यो गये? तुम्हारे खतमे मुझे अश्रद्धाकी वू आती है। थोडे फोडे ही हो जाते है, उनका पूरा

१. यह गाय बलवन्तसिंहने वर्धासे भेजी थी।

इलाज भी नही हुआ है, इतनेमे वह न मिटनेपर डर पैदा हो जाता है, वह कहाँ की वात? तुम्हारे दिलमें निश्चित करना के मै अच्छा ही नही होऊगा, शीघ्र हो जाऊँगा। अच्छा होनेके लिये डा० वैद की आज्ञा, जो धर्मकी प्रतिकुल नही होगा, उनका पालन भलेमानी करूँगा। दिलमें अमगल तर्क पैदा होने देना ही नही चाहिये। मेरे निर्णयके पालनकी फिकर तुम क्यो करेगे? और मेरे निर्णयमे कोई महत्वकी वात है ही नही।[1] मान कि मैने किसी व्याधिग्रस्तकी सेवा ही करनेके लिये उसे सेगाँवमे रक्खा, तो मेरा कुछ अनिष्ट तो नही होगा। तुम्हारे फिकर करना है, अच्छे होनेकी शीघ्रतासे आ जानेकी और गायोकी सेवा करनेकी। तुम्हारे फिकर करनी है, तुम्हारे स्वभावके उग्रताके।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १८९१) से।

३५५. पत्र: षण्मुखम् चेट्टीको

८ फरवरी, १९३७

प्रिय षण्मुखम्,

आपने मुझे जिस अपनत्व और अनौपचारिकताके साथ सम्बोधित किया है, उससे पुरानी यादें ताजी हो आई है—ऐसा लगा कि मै फिर उसी माहौलमें पहुँच गया हूँ। मैने भी आपको उसी भावसे सम्बोधित किया है।

आपका खुले दिलसे लिखा पत्र मुझे पसन्द आया। आपसे मै अपेक्षा यह करता हूँ कि अपने प्रभाव और प्रयत्नका उपयोग सही दिशामे करते रहे। इस सुधारको त्रावणकोरकी सीमाओमे ही नही बँधा रहना चाहिए। वहाँ जिन नम्बूदिरियोने त्रावणकोरकी घोषणाको स्वीकार करनेका साहस किया है, उन्हे अप्रत्यक्ष रूपसे सताया तो जा ही रहा होगा। उन्हे इस तरह सताये जानेसे बचानेके लिए आप बहुत-कुछ कर सकते है।[2]

हृदयसे आपका,
बापू

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य: नारायण देसाई।

१. गांधीजीने पहले कहा था कि उन्ही लोगोंको सेगाँवमें रहनेकी अनुमति दी जायेगी जो सर्वथा स्वस्थ होंगे।

२. षण्मुखम् चेट्टी कोचीनके दीवान थे। उन्होंने गांधीजीको लिखा था कि कोचीनमें किसीको सताया नहीं जा रहा है।

३५६. पत्र : भारतन् कुमारप्पाको

८ फरवरी, १९३७

प्रिय भारतन्,

अभी-अभी तुम्हारा लेख[1] पढा है। इसमे जितनी बाते कही गई है, ठीक ढगसे कही गई है। इसे मै ज्यो-का-त्यो छाप रहा हूँ। चालू अकमे मेरा लेख[2] पढो और कोई समीक्षा-सुझाव देना हो तो दो या चाहो तो और लिखो।

तुम-दोनोको प्यार।

बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५९२)से।

३५७. पत्र : लीलावती आसरको

सेगाँव
९ फरवरी, १९३७

चि० लीला,

तेरा पत्र मिला। भाईकी तबीयत तेजीसे अच्छी हो रही है, यह खुशीकी बात है। जब बम्बई छोडनेकी इजाजत मिले, तब यदि शरीर ठीक घूमने-फिरने लायक माना जाये तो राजकोटकी अपेक्षा मै तो माथेरानको ज्यादा अच्छा मानूंगा। वहांके पानीमे लोहा होता है, इसलिए वह भारी माना जाता है। लेकिन जो घूम-फिर सकता है, उसके लिए वह अच्छा है। हवा तो सुन्दर है ही। लेकिन जिसे पडा रहना पडे, उसके लिए माथेरान बेकार है। खर्चकी दृष्टिसे तो राजकोट ही सस्ता है, इसमे सन्देह नही।

खानेके बारेमे तेरे लिए तो एक ही मार्ग है। तू सुबह-शाम ग्यारह व्रतोका मनन करती है, अर्थात् जगत्‌को साक्षी करके ईश्वरसे कहती है कि तू इन व्रतोके पालनका सतत प्रयत्न करती है। इन व्रतोमें अस्वाद आ जाता है, यानी, तू, मै और जो भी इस व्रतका नित्य ध्यान करनेवाले है, वे स्वादके लिए एक ग्रास भी मुंहमे नही ले सकते। केवल शरीरको चलाने, उसे बनाये रखनेके लिए ही ले सकते है।

१. तात्पर्य शायद २०-३-१९३७ के हरिजनमें "द कमिंग नेशनल वीक" (आगामी राष्ट्रीय सप्ताह) शीर्षकसे छपे कुमारप्पाके लेखसे है।

२. तात्पर्य शायद "आन्ध्र प्रदेशमें खादी", पृ० ३८६-८९से है।

मसालो आदिका त्याग केवल अस्वादकी दृष्टिसे है।

दवाके तौरपर तो मिर्च भी खाई जा सकती है, स्वादके लिए नमक भी नही खाया जा सकता। इन व्रतोका मनमे पृथक्करण करके यदि तू अपना जीवन चलाती रहे, तो फिर तू चाहे जहाँ बैठी रहे, तुझे यहाँ रहनेका फल मिलेगा। लेकिन यदि यहाँ रहकर भी तू इन व्रतोका उच्चारण तो करे लेकिन इनके पालनका सतत प्रयत्न न करे, तो तेरा यहाँ रहना भी तेरे लिए भ्रमजाल हो जायेगा। अत सेवाके लिए वहाँ जाकर यदि तू लापरवाही कर रही हो, तो यह ठीक नही कहा जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३५६)से। सी० डब्ल्यू० ६६३१ से भी, सौजन्य लीलावती आसर।

३५८. पत्र : नत्थूभाईको

९ फरवरी, १९३७

भाई नत्थूभाई,

आपके दोनो पत्र मिले। पहले प्रश्न[1]का उत्तर तो 'हरिजनबन्धु' मे दे रहा हूँ, उसे देखिएगा। दूसरे प्रश्नमे रुचि रखनेवाले बहुत कम होते है, इसलिए उसका उत्तर यहाँ दे रहा हूँ।

निरामिष आहार करनेवाले मासाहारी प्राणियोको भले पाले, किन्तु उनके लिए मास उपलब्ध न करे। उदाहरणके लिए बिल्ली और कुत्ता दोनो मासाहारी है, किन्तु हम उनके लिए मास नही जुटाते।

जैनोकी मान्यताको मै जानता हूँ। रायचन्दभाईके विचारोको मै जानता था, किन्तु मेरा यह दृढ विश्वास है कि वे अहिंसा-धर्मसे मेल नही खाते। अहिंसाकी दृष्टिसे वनमे अपने-आप पकी हुई वस्तुएँ ही, बिना अग्निका उपयोग किये, देहकी आवश्यकता-भरके लिए ली जा सकती है। वस्तुओको सुखाना, सँभालकर रखना, पकाना आदि सब हिंसक परिग्रह है, इसलिए त्याज्य है। कन्द-मूल आदि और अन्य सागो मे जो भेद किया जाता है, उसमे मै कोई सार नही देखता। जैन-साहित्यमे अहिंसाको खाद्य और अखाद्यके निर्णयमे ही सीमित कर दिया गया है। यह मेरी दृष्टिमे अहिंसा की निन्दा ही है। मासाहारियोको मैने करुणाकी मूर्ति देखा है, और इसलिए ऐसे आमिषभोजियोको मैने अहिंसाका पुजारी माना है। इसके विपरीत, निर्दयतासे भरे लोगोको मैने हरी साग-भाजीका त्याग करके भी, अनेक प्रकारसे अपनी जीभको दुलारते हुए देखा है। इन्हे मै अहिंसा-धर्मका द्रोही मानता हूँ। मै तो यह भी मानता हूँ कि यदि रायचन्दभाईका निधन असमयमे ही न हो गया होता, तो आज जो मै यहाँ कह रहा हूँ उसका वे पूर्ण अनुमोदन करते। दातुन करने या नहानेसे उपवास

[1] देखिए पृ० ४०८।

भग होता है, ऐसा कहना मेरी बुद्धिके अनुसार तो अज्ञान है। जो सर्वथा निर्विकार है, जो निर्जन वनमें नग्नावस्थामें रहकर, वृक्ष जो फल आदि देते है उनपर निर्वाह करके भगवान्‌का ध्यान धरते विचरते रहते है, वे यदि दातुन या स्नान न करें, तो ठीक, क्योंकि नीमकी पत्तियाँ ही उनकी खुराक भी होती है, और दातुन भी। इसी प्रकार मिट्टी और सूर्यकी किरणोसे ही उनका स्नान होता है। किन्तु इस स्थितिको विकारोसे भरे अनेक प्रकारका परिग्रह करनेवाले ऐसे लोगोपर लागू करना जिनके शरीरके प्रत्येक छिद्रसे दुर्गन्ध आती रहती हो, भारी अज्ञान माना जायेगा।

जैसे दहीमें है, वैसे ही दूधमें भी असंख्य जीवाणु है, और जितने वनस्पति अथवा कन्द-मूल आदिमें है, उनसे अधिक परिमाणमें हरी साग-भाजीमें है। खाद्य और अखाद्यमें भेद करना, फिर भी दूध वगैरह मजेमें लेते रहना, यह तो निहाईकी चोरी करके सुईका दान करने-जैसा काम हुआ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२४८) से।

३५९. पत्र : कृष्णचन्द्रको

९ फरवरी, १९३७

भाई कृष्णचद्र,

तुमारा खत मीला। मैंने जो लीखा सो तो ठीक ही था। मैंने किसीसे बात तो नही की थी। लेकिन मेरा ख्याल है तुमको यहाकी हाई स्कूलमे रखा जा सकता है। उसमे हीदी, अग्रेजी अथवा गणित शिक्षाके लिये तुमारे पाससे काम लीया जा सकता है। या तो कोई भी ऐसा काम जिससे तुमको ७५ रु० देना भारी न माना जाय। ऐसा भी हो सकता है कि मैं तुमारे लीये वर्धामें प्रबध न कर सकु तो दूसरी जगहपर भी हो सकता है। तुमारी तैयारी होनेमे ही मैं कुछ तलाश कर सकता हु। इतना समजो कि रु० ७५ आरभ और अत है। आरभ कममे हो सकता है लेकिन तुमारे लिये अत ७५ ही होना चाहीये। उससे ज्यादा तुमारे लीये मागना तुमारे पतनका कारण होगा। अच्छी तरहसे सोचकर मुझे लीखो। क्या मैं इस दिशामे प्रयत्न करू?

किसी जगह स्वीकार आनेके बाद मैं तुमारे तरफसे इनकारकी बरदास्त नहि कर सकुगा। तुमारी जो कुछ भी शर्त और मर्यादा हो मुझे स्पष्टतामे लीखो। उसके बाद मैं प्रयत्न करूँ। धुनकी आदि तुमारे पैदा कर लेनी चाहीये।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४२७९) से। एम० जी० ५६ से भी।

३६०. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

सेगाँव
१२ फरवरी, १९३७

भाई खम्भाता,

सचमुच पण्डितको बीच ही मे नही छोड़ा जा सकता। गौरीशंकरके पास तभी जाइये जब इनकी दवा कारगर न हो। शारीरिक पीडा दूर करनेके सीमित उपाय करते रहना तो हमारा कर्त्तव्य है ही। किन्तु सभी पीडाएँ हमारी परीक्षा करने आती है, ऐसा समझकर आनन्दपूर्वक उन्हे सहन करना भी हमारा कर्त्तव्य है।

बापूके आशीर्वाद

श्री बहरामजी खम्भाता
डी बेल्वेडिअर कोर्ट
चर्चगेट रीक्लेमेशन
बम्बई

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६१२)से। सी० डब्ल्यू० ४४०३ से भी; सौजन्य : तहमीना खम्भाता।

३६१: अहमदाबादका मिल-उद्योग

श्रमिकोके वेतनमे कमी करनेकी मिल-मालिकोकी माँगको लेकर अहमदाबादके कपडा-मिल उद्योगके सामने जो समस्या खडी हो गई थी, उसे अब चूँकि सुलझा लिया गया है, इसलिए उसके स्थायित्वकी शर्तोका थोडा विचार करना अब उचित ही होगा। सर गोविन्दराव मडगाँवकर, जिन्हे इस विवादको निबटानेके लिए सरपंच चुना गया था, अपने निस्वार्थ श्रमके लिए दोनो पक्षोके धन्यवादके पात्र है। लोगोको शायद मालूम नही है कि उन्होने बिना किसी पारिश्रमिकके यह कठिन कार्य अपने सिर लिया था, यद्यपि वे चाहते तो बखूबी पारिश्रमिककी माँग कर सकते थे। इसके अतिरिक्त, इस कामको हाथमें लेकर भी अगर वे चाहते तो इसे बिना कोई दलील दिये महज अपना निर्णय देकर बहुत आसानीसे निबटा देते। इसके बजाय, उन्होने अपने निर्णयके सम्बन्धमे विस्तृत दलील प्रस्तुत की है और पूँजीपतियो तथा श्रमिको दोनोके मार्गदर्शनके लिए बहुमूल्य सुझाव दिये है।

यह आशा करना स्वाभाविक ही होगा कि अब दोनो पक्ष सरपचके सुझावो पर पूरे हृदयसे अमल करेगे और दिल्लीके समझौतेको कार्यान्वित करेगे। सरपचने यह बात बिलकुल स्पष्ट कर दी है कि जबतक दिल्लीके समझौतेपर पूरी तरहसे अमल नही किया जाता, तबतक कोई भी कटौती करना उचित नही हो सकता। वैसे तो दिल्लीके समझौतेको भी बडे मजेमे एक पच-फैसलेका दर्जा दिया जा सकता है। कारण, वह निर्णय उस समय उठे विवादको निवटानेके लिए चुने गये पच श्री पाटकरने दिया था, जो उच्च न्यायालयके एक अवकाशप्राप्त न्यायाधीश थे। उस समझौतेकी बुनियादी शर्ते ये है सम्पूर्ण कपडा-मिल उद्योगके लिए एक मानक वेतन निर्धारित किया जाये और कोई ऐसी योजना तैयार कर ली जाये कि भविष्य मे वेतनमे कमी या वृद्धि करनेकी माँग उठनेपर उस योजनाके अनुसार समस्याका समाधान अपने-आप निकल आये। मिल-मालिकोकी ओरसे यह दलील दी गई है कि न तो वेतनोका मानकीकरण व्यवहार्य है और न समस्या उठनेपर किसी भी योजनाके अन्तर्गत उसका स्वत समाधान हो पाना। पचने इस दलीलको अस्वीकार कर दिया है। दरअसल वे और कुछ कर भी नही सकते थे। जब दोनो पक्षोने दिल्लीमे समझौतेके मसविदेको मजूर किया था उस समय उन्हे यह तो मालूम ही होगा कि उसका मतलब क्या है। अगर उन्होने उन दोनो बातोको अव्यवहार्य माना होता तो समझौतेमे उनका उल्लेख ही नही किया होता। दोनो पक्ष किसी एक योजनापर सहमत न हो, यह बात जरूर समझमे आती है। लेकिन उस हालतमे उन्हे अपना मामला पचोके सुपुर्द कर देना चाहिए और यदि वे उसका निवटारा न कर पाये तो उसे किसी सरपचके सुपुर्द कर दे। वेतनोका मानकीकरण एक यान्त्रिक कार्य है, उसे गणितकी सहायतासे किया जा सकता है। हो सकता है, पहले एक बीचकी अवस्था से गुजरना आवश्यक हो और उसके वाद ही वह वाछित अवस्था आ पाये जब सभी मिले वेतनोका एक समान स्तर स्वीकार करनेको राजी हो जाये या मजदूर उस समान स्तरको स्वीकार करनेको तैयार हो जाये जिसके अन्तर्गत उनमे से कुछ के वेतनोमे भारी कमी आ सकती है, यद्यपि वेतनोकी समूची राशिपर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पडे। लेकिन, परिस्थितिके अनुसार वेतनोमे स्वत कमी-बेशीको सम्भव बनानेवाली योजना बहुत पेचीदा चीज है। उसकी सफलताके लिए सम्बन्धित पक्षोमे एक-दूसरेके प्रति कुछ त्यागकी भावना होना जरूरी है। और ऐसी कोई भी योजना स्वभावत अस्थायी ही होगी, और उसमें समय-समयपर सशोधन करते रहना आवश्यक होगा।

स्वत. कमी-बेशी की कोई भी योजना तबतक सम्भव नही है जबतक उन सिद्धान्तोका ध्यान न रखा जाये जिनका उल्लेख मैंने अपना निर्णय देते हुए किया था और जिन्हे सर गोविन्दरावने अव्यवहार्य आदर्श करार देकर अस्वीकार कर दिया है। यह सच है कि उनपर विचार करना या उनका खयाल रखना सरपचके नाते उनके कर्त्तव्यका कोई अग नही था। अपने निर्णयमे मैंने खुद ही कहा है कि इस निर्णयपर पहुँचनेमें मैंने इन सिद्धान्तोसे कोई प्रेरणा नही ली है। लेकिन विद्वान

पचने जब इसकी ओर ध्यान देनेकी तकलीफ उठाई ही तो वे इतना तो बता सकते थे कि वे कैसे और क्यों अव्यवहार्य हैं।

मैं यहाँ यह बताना चाहता हूँ कि वे अव्यवहार्य रहे हों या व्यवहार्य, उनका सहारा लिये बिना स्वतः कमी-बेशीकी कोई सन्तोषजनक योजना तैयार कर पाना असम्भव है। इस विषयमें की जानेवाली किसी भी कार्रवाईको परखनेकी कोई कसौटी तो होनी ही चाहिए, यद्यपि वह कार्रवाई उक्त कसौटीपर पूरी खरी तो शायद ही उतरे, बल्कि ज्यादा सम्भावना यही है कि नहीं उतरेगी। यहाँ मैं गुजरातीमें दिये गये अपने निर्णयके सम्बन्धित अंशका अनुवाद दे रहा हूँ:[1]

अब पहले सिद्धान्तको लीजिए। जबतक मिलोंको मुनाफा हो रहा है, तबतक वे मजदूरीमें कमी करना क्यों चाहें? यह तो वैसा ही होगा जैसे कोई आदमी अपने पेटकी गड़बड़ीको ठीक करनेके लिए अपने पैर काट डाले? एक निश्चित प्रतिशत लाभ मिलता रहे, इसके लिए क्या मशीनोंमें कमी कोई कमी की जाती है? क्या ये जीती-जागती मशीनें — स्त्री और पुरुष — निर्जीव मशीनोंसे भी गये-बीते हैं? क्या ऐसा कहना बहुत अव्यावहारिक है कि एक न्यूनतम लाभ प्राप्त करनेके लिए किसी भी उद्योगको चलानेवाले मजदूरोंके वेतनोंमें कमी नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि उसके आधार-स्तम्भोंके रूपमें उनका कम-से-कम उतना महत्त्व तो है ही जितना मशीनों और इमारतोंका है? मैं तो कहूँगा कि अगर दयालु हिस्सेदारों (मैं मिलोंके हिस्सेदारोंको ऐसा ही मानता हूँ)की राय ली जाये तो वे इस बातको तुरन्त अस्वीकार कर देंगे कि उनके लाभके लिए उन्हीं मजदूरोंकी मजदूरी मारी जाये जिनपर वास्तव में उनका लाभ निर्भर है।

अगर पहला सिद्धान्त कम-से-कम ऐसा है जिसपर गम्भीरतासे विचार किया जाना चाहिए, तो दूसरा, यानी निर्वाह-मजदूरीसे सम्बन्धित सिद्धान्त, उसका सहज परिणाम है। जबतक लाभ बिलकुल समाप्त होता न दिखने लगे, तबतक यदि मजदूरी में कमी नहीं की जा सकती हो तो मजदूरीमें जिस सीमासे बाहर कटौती नहीं की जा सकती उसे भी जान लेना आवश्यक है। दूसरे शब्दोंमें, यह बात तो तय ही होनी चाहिए कि निर्वाह-मजदूरीका मतलब क्या है। इसके लिए किस शब्दका प्रयोग किया जाता है, इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर न्यूनतम मजदूरी कहना ज्यादा अच्छा लगे तो वही कहिए। मगर दोनोंका रूप तो एक ही है। वैसे, मुझे तो यही लगता है कि 'निर्वाह-मजदूरी' शब्द, मजदूरीके उस स्तरका, जिससे आगे उसमें कोई कमी नहीं की जा सकती, सबसे अच्छी तरह बोध कराता है।

और निर्वाह-मजदूरीके सिद्धान्तकी स्वीकृतिका मतलब है इस बातपर विचार करना कि उसमें कौन-सी चीजें शामिल हैं। क्या उसमें शराब आदिको शामिल करना

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसके पाठके लिए देखिए "मजदूर विवादका पंच-फैसला", की धारा १६ और १७, पृ० २०५।

चाहिए, क्या तम्बाकूको रखना चाहिए, क्या दूध या घी अथवा गुडको उसमे स्थान नही देना चाहिए? ये कोई कल्पनाकी चीजे नही है। इनका श्रमिकोके अस्तित्वसे सीधा नाता है। उनकी कार्यकुशलता बहुत हदतक ठीक ढगके रहन-सहनपर निर्भर है। और वे जितने अधिक कार्यकुशल होगे, मुनाफे की भी उतनी ही अधिक सम्भावना होगी।

सिद्धान्त 'घ'का औचित्य तो अपने-आपमें स्पष्ट है ही और उसे पचोने भी स्वीकार किया है और सरपचने भी।

औ· इस कथन (सिद्धान्त 'ग')के औचित्यको कौन अस्वीकार कर सकता है कि मजदूरोको हिस्सेदारोके बराबरका मालिक माना जाना चाहिए? यदि पूंजीपतियो और श्रमिकोके बीच सघर्षको बचाना है, और मै मानता हूँ कि उसे बचाया जा सकता है, तो श्रमिकोका दर्जा और उनकी प्रतिष्ठा भी वही होनी चाहिए जो पूंजीपतियोकी हैं। दस लाख रुपयेको दस लाख लोगोसे अधिक महत्त्व क्यो दिया जाना चाहिए? क्या वे धातुके टुकडोसे, चाहे वह धातु पीली हो या सफेद, बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण नही है? या जिनके पास धातुओके टुकड़े है उन्हे क्या सदा यही मानकर चलना चाहिए कि श्रमिकोको धातुके इन टुकडोकी तरह कभी एकत्र और सघटित किया ही नही जा सकता? पिछले अठारह वर्षोंसे अहमदाबादमे पूंजीपति और श्रमिक जाने-अनजाने ऐसा मानकर चलते रहे है कि दोनोके बीच कोई सहजात सघर्ष नही है। यह सच है कि दोनोके बीच जो शान्ति बनी रही है वह कभी निर्भय नही रही। लेकिन इसका कारण यही तो है कि दोनो पक्षोने स्थायी शान्तिकी शर्तोंके रूपमे इन सिद्धान्तोकी पूर्ण उपादेयताको स्वीकार नही किया है।

अब अगर श्रमिक लोग हिस्सेदारोके बराबरके मालिक है, तो मिलोके कारोबारमे उनके सगठनका भी उतना ही दखल होना चाहिए जितना हिस्सेदारोके सगठनका है। सच तो यह है कि जबतक श्रमिकोसे महत्त्वपूर्ण बातोकी जानकारी छिपाई जाती है, तबतक उनके मनमे विश्वास उपज ही नही सकता।

अन्तिम सिद्धान्तमे तो कोई ढील देनेकी गुजाइश ही नही है। यदि मजदूर सघको केवल एक अनिवार्य बुराईके रूपमे बरदाश्त नही किया जाता है, बल्कि उसे मिल-मालिक सघ के ही समान एक वाछनीय सस्था माना जाता है, तो इसका स्वाभाविक निष्कर्ष यही होता है कि दोनो पक्षोकी सहमतिसे उपलब्ध मजदूरोकी एक सूची तैयार कर ली जाये और मिल-मालिक मजदूर सघसे बाहरके किसी आदमीको स्वीकार न करे या उसे कामपर न लगाये।

इस तरह मुझे तो लगता है कि ये सिद्धान्त कल्पना-जगत्की चीजे नही है, बल्कि विचार करनेपर मालूम होता है कि जिस भारी उद्योगके हितको ध्यानमे रखकर ये सिद्धान्त विनम्रतापूर्वक सुझाये गये है उसके स्वस्थ अस्तित्व या विकासके लिए ये नितान्त आवश्यक है।

कहनेकी जरूरत नही कि जो सुझाव पेश किये गये है उनमे ही सब-कुछ नही आ जाता। जब इस प्रश्नपर पुन. विचार करनेका मौका मिलेगा तो मै कुछ और जरूर सुझाऊँगा।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १३-२-१९३७

३६२. एक व्यावहारिक सुझाव

त्रावणकोरकी तीर्थयात्रा समाप्त करते ही मुझे निम्नलिखित पत्र[1] मिला.

यह पत्र एक कॉलेजके अवकाश-प्राप्त प्रधानाचार्यने लिखा है; पत्र ध्यान देने लायक है। इस घोषणाके अनेक गूढार्थोकी ओर मै पहले ही ध्यान दिला चुका हूँ, लेकिन इस सिलसिलेमें दो जातियोंके लोगोके एक-दूसरेके साथ बैठकर खाने-पीनेके सवालकी चर्चा मैंने नही की है। इस सम्बन्धमे मेरे विचार सर्वविदित है। इस तरह साथ बैठकर खाने-पीनेपर लगे प्रतिबन्धोका 'वर्ण-धर्म'से कोई विशेष सम्बन्ध नही है। मेरा खयाल है कि इन प्रतिबन्धोके मूलमे आरोग्यके नियमोके पालनका खयाल रहा होगा। कोई भी व्यक्ति अगर सफाईके नियमोका पूरी तरह पालन करे तो उसके साथ खाना खानेमे कोई झिझक नही होनी चाहिए। और अगर हरिजन बच्चो को अपने परिवारके सदस्योकी तरह उचित प्रशिक्षण दिया जाये, तो वे निश्चित रूपसे सफाईके नियमोका पालन करने लगेंगे। इससे समाजमे-उनका दर्जा तो बढेगा ही, साथ ही साथ बैठकर खाने-पीनेपर लगे; नासमझी-भरे जातिगत प्रतिबन्धोको मिटानेका भी यह सबसे अधिक निरापद तरीका है। पत्र-लेखककी इस बातसे मैं पूरी तरह सहमत हूँ कि इस घोषणामे सर्वांगीण समानताका समर्थन समाया हुआ है। युवा महाराजाने रास्ता दिखाया है। क्या त्रावणकोरके लोग इस घोषणाका, इसके समस्त गूढार्थोके साथ, पालन नही करेंगे?

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १३-२-१९३७

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने सुझाव दिया था कि इस घोषणाको सचमुच सफल बनानेके लिए अलग-अलग जातियोंके लोगोंको साथ बैठकर खाने-पीनेका चलन शुरू करना चाहिए और साथ ही हरिजनोंको घरेलू नौकरों और रसोइयोंका काम देना चाहिए।

३६३. खादी-कार्यकर्ताको क्या जानना चाहिए?[1]

खादी-शास्त्र किसे कहा जाये, यह मैं पिछले एक लेखमे लिख चुका हूँ। मेरी रायमे, जो लोग चरखा सघके उत्पादन केन्द्रोमे काम कर रहे है, उन्हे इस शास्त्रके मूल तत्त्व तो जानने ही चाहिए। श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम खादीके भक्त है। उन्हे मैं खादी-शास्त्रका विशारद तो नही मानता, किन्तु हमारे पास इस शास्त्रके जो भी जानकार है उनमे प्रथम पक्तिके सेवकोमे उनकी गिनती अवश्य की जा सकती है। मैंने उनका १७ नवम्बर, १९३५ का लिखा हुआ एक पत्र अपने पास सँभालकर रख लिया था। उक्त पत्रमे, खादी-कार्यकर्ताओको क्या-क्या जानना चाहिए, इस सम्बन्धमे उन्होने जो-कुछ लिखा था उसे मैं नीचे उद्धृत करता हूँ:

१. कार्यकर्ताको बढ़िया और घटिया दर्जेकी कपास, बिनौले और रुईकी पहचान होनी चाहिए।

२. उसे हाथ-ओटनीकी मरम्मत करना और तनेमें आवश्यक सुधार करके उसे लाटके साथ बाकायदा बिठाना आना चाहिए। तनेकी लकड़ीकी गोलाईमें असमानता हो या वह कहीं टेढ़ी हो गई हो, तो वह उसे सुधारेगा और उसकी जगह ठीक बिठा देगा।

३. उसे धुनकी सज़ाना तथा ताँत और काकर बनाना आना चाहिए।

४. उसमें हाथ-ओटनीपर चार घंटेतक काम करने और पाँच पौंड प्रति घंटा ओटाईकी गति दिखानेकी सामर्थ्य होनी चाहिए।

५. उसकी धुनाईकी गति दस तोला प्रति घंटेकी होनी चाहिए। इसमें पूनियाँ बनानेका समय शामिल नहीं होगा।

६. उसे हर किस्मके चरखेकी बनावट मालूम होनी चाहिए और उसके अलग-अलग हिस्सोको जोड़ना भी आना चाहिए। तकुवा टेढ़ा हो जाये तो उसे सीधा करना और माल व दामण बनाना भी आना चाहिए।

७. उसमें चार घंटेकी परीक्षामें २० नम्बरके ३०० तार (४०० गज) सूत कातनेकी गति कायम रखनेकी क्षमता होनी चाहिए। इसका कस ८० प्रतिशत और समानता ९५ प्रतिशत होनी चाहिए।

८. उसे कताईकी आन्ध्र-क्रिया आनी चाहिए और दो घंटेकी परीक्षामें ७० से ८० नम्बरका ८० प्रतिशत कस और ९५ प्रतिशत समानतावाला २०० तार सूत कात सकना चाहिए।

१. इसका अंग्रेजी अनुवाद हरिजन, १३-२-१९३७ में प्रकाशित हुआ था।

९. उसे खड्डी करघा और फटका करघा दोनोंकी बनावट मालूम होनी चाहिए और राछ, बड़ी कंघी तथा कूँच बनाना आना चाहिए।

१०. उसमें २० नम्बरके सूतसे फटका करघेपर ५० इंच अर्जकी खादी बुननेकी क्षमता होनी चाहिए और साड़ियोंकी कम-से-कम पाँच अलग-अलग तरहकी किनारियाँ डालनेके लिए आवश्यक सारी विधियाँ करनेकी क्षमता होनी चाहिए।

११. बुनाईकी गति एक घंटेमें २० नम्बरके सूतका एक गज कपड़ा बुननेकी हो जानी चाहिए।

१२. उसे अलग-अलग प्रकारकी कपास उगानेके बारेमें सब जानकारी होनी चाहिए और उसमें स्थानीय सामग्रीसे अपने ही गाँव या शहरमें हाथ-चरखी, धुनकी तथा चरखा, करघा और उनके भिन्न-भिन्न भाग तैयार करा लेनेकी योग्यता होनी चाहिए। इसके लिए नीचे लिखी बातोंकी जानकारी जरूरी होगी:

(क) वर्षके भिन्न-भिन्न भागोंमें कहाँ कितनी वर्षा होती है, और किस खादका उपयोग होता है, तथा जमीन कैसी है।

(ख) भिन्न-भिन्न प्रकारकी लकड़ी और लकड़ीके माप-तोलका हिसाब-किताब।

(ग) उपर्युक्त आवश्यकताओंके लिए रेखाचित्र खींचनेका काम-चलाऊ ज्ञान।

१३. उसे भिन्न-भिन्न यंत्रोंकी मरम्मतके लिए बढ़ईगीरीका काफी ज्ञान होना चाहिए।

इतना ज्ञान प्राप्त कर लेना आसान नही है। तथापि जिसमें सामान्य ज्ञान है और सीखनेकी लगन है उसके लिए, यदि वह प्रयत्न करे तो, यह कठिन भी नहीं है। प्रत्येक खादी-कार्यकर्ताका यह कर्त्तव्य है कि वह इतना ज्ञान प्राप्त करे। इतना ज्ञान प्राप्त करनेके बाद भी एक चीज तो रह ही जाती है। वह है खादीका व्यावसायिक ज्ञान। मेरे प्रश्नोमे उसका भी समावेश हुआ है। लक्ष्मीदासके इस पत्रमें उसके कारीगरीवाले पहलूका समावेश हुआ है। जिसे उसके इन दोनो पहलुओंका ज्ञान हो उसीके सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है कि वह खादी-शास्त्रके मूल तत्त्व जानता है। मैं चाहता हूँ कि इस लेखको पढ़नेवाले ऐसे सब खादी-कार्यकर्ता जिन्हे खादीके कारीगरीवाले पहलूका ज्ञान है या जिन्हे दोनोका ज्ञान है, मुझे अपना नाम और ठिकाना लिख भेजें। जो यह ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो वे भी लिखें। यह सारा ज्ञान प्राप्त करनेके लिए हमारे पास आवश्यक पुस्तके नही है। ऐसी एक पुस्तक हमारे पास है; वह है श्री मगनलाल गांधीकी। उक्त पुस्तक जब लिखी गयी थी तबसे इस विषयके हमारे ज्ञानमें पर्याप्त वृद्धि हुई है। इसलिए श्री मगनलालकी उक्त पुस्तकका द्वितीय संस्करण होना अत्यन्त आवश्यक है।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १४-२-१९३७

३६४. पत्र : सरलादेवीको

१३ फरवरी, १९३७

चि० सरला,

तेरा पत्र मुझे मिला था। उसका जवाब देनेमे ढील हुई है, तो उसके लिए मुझे माफ कर देगी न? यो तेरे पत्रमे जवाबके लायक कुछ है नही, फिर भी जवाब दिया जाये, यही उचित लगता है। तू स्वय देवी बन गई है, इसलिए अब तेरे नामके बाद देवी लिखनेकी तो जरूरत नही है न? तू कितने बरसकी हो गई? तू अपना समय किस तरह बिताती या नष्ट करती है? यह मसला हुआ कागज देखकर परेशान मत होना। यह भी गरीबोके हाथोसे बना हुआ है, मशीनसे नही। क्या तेरे मनमे गरीबोका ध्यान नही रहता?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६४०) से। सी० डब्ल्यू० ४२८९ से भी।

३६५. पत्र : सुरेशसिंहको

१३ फरवरी, १९३७

भाई सुरेशसिह,

तुमारा खत मिला।

दिल चाहे तब आ जाना। सब काम अच्छी तरहसे चलता होगा। कौटुम्बिक कलह कुछ नही होगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ८६९०) से।

३६६. टिप्पणियाँ

उलटी समस्या

३१-१-१९३७ के 'हरिजनबन्धु' मे एक मुसलमान भाईके पत्रका मैंने जो उत्तर[1] दिया था उसके आधारपर एक हिन्दू भाई पूछते है.[2]

मुझे लगता है कि इसका उत्तर मेरे पहले लेखमे आ गया है। उस दृष्टान्तमे मुसलमान भाईने एक नयी प्रथा आरम्भ की थी, इसलिए उसे अपने सगे-सम्बन्धियोकी रूढिग्रस्तताको सहन करना था। किन्तु इस मामलेमें तो अन्य लोग प्रचलित रूढिको छोडकर मास खाना चाहते हैं। शाकाहारी हिन्दू उन्हे प्रोत्साहित करनेको कदापि बाध्य नही है। ऐसे कुटुम्बियोके लिए मास खरीदने या पकाने या घरमे लानेमे हाथ बटानेके लिए वह बिलकुल बँधा हुआ नही है। ऐसे मामलोमे प्रचलित रूढिका त्याग कहाँतक सहन किया जाना चाहिए, यह व्यक्ति-व्यक्तिपर निर्भर करता है। कुटुम्बके अन्य लोगो द्वारा किया जानेवाला मासाहार ऐसे लोगोके लिए असह्य हो सकता है जो मास-त्यागको धर्मका अग मानते हैं। हमें अपने व्यवहारमे प्रेम-धर्म अर्थात् अहिंसा-धर्मका सहारा लेना चाहिए। जो लोग अपने धर्मको छोड दे, उनपर क्रोध न करके उन्हे प्रेमसे ही जीतना चाहिए। ऐसा किस प्रकार किया जा सकता है, यह हर मौकेपर सोच लेना चाहिए।

गलत विचार

एक साथी कार्यकर्ताने बहुत गुस्सेमें आकर गलती की। मैंने उन्हे समझाया कि यह बहुत गम्भीर भूल है, उन्हे इसका प्रायश्चित्त करना चाहिए और प्रायश्चित्त-स्वरूप उन्होने जिसके प्रति अपराध किया है उससे माफी माँगनी चाहिए। उन्होने अपनी गलती स्वीकार की और माफी माँगनेकी आवश्यकताको भी स्वीकार किया, किन्तु उन्होंने मुझसे कहा कि आप जो कहते है वैसा करनेकी मुझमे योग्यता नही है। अभीतक मैं उतना ऊपर नही उठ सका हूँ और ऐसा भी नही हो सकता कि एकबारगी उतना ऊपर उठ सकूँ। इसके बाद उक्त साथी कार्यकर्ताको अपनी भूल नजर आई। वे स्वय अनुभवी व्यक्ति है। यह लिखनेका उद्देश्य सिर्फ यह बताना है कि उक्त साथीकी तरह हममें से बहुत-से लोग गलत ढगसे विचार करते है। किये हुए दोषके लिए माफी माँगना तो बिना ब्याजके कर्ज चुकानेकी अपेक्षा भी सहज

१. देखिए "उदारता की आवश्यकता", पृ० ३६८-७०।

२. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने लिखा था कि आपका उत्तर इस्लामकी दृष्टिसे ठीक हो सकता है, किन्तु वह हिन्दुत्वकी दृष्टिसे ठीक नही है। उसने जानना चाहा था कि क्या किसी शाकाहारीके लिए अपने परिवारके किसी व्यक्तिके वास्ते मांस खरीदना उचित होगा?

है। इसकी तुलना कर्ज चुकानेका वचन देनेके साथ की जा सकती है, क्योंकि माफी माँग लेनेसे जो दोष किया गया है वह मिट नही जाता, बल्कि भविष्यमे ऐसा दोष न करनेका वचन देनेकी बात उसमे अवश्य आ जाती है। किसी कर्जदारने आज-तक यह नही कहा कि वह स्वय कर्ज चुकाने लायक नही है। यह हो सकता है कि उसके पास तत्काल कर्ज चुकाने लायक पैसे न हो। किन्तु कोई कर्जदार यह कहे कि उसमे कर्ज चुकानेका वचन देनेकी योग्यता नही है, तो यह हास्यास्पद बात मानी जायेगी। शायद इसे धृष्टता भी माना जाये। किन्तु नैतिक मामलोमे मनुष्य प्राय अपनेको छलता है। इसके मूलमे अधीरता और सूक्ष्म अभिमान छिपा हुआ है। यदि ऐसा न हो तो सूर्यके प्रकाशकी भाँति स्पष्ट वस्तु हमे क्यो न दिखाई दे? बहुतेरे काम करनेकी सामर्थ्य हममे नही होती। और सामर्थ्य न होनेके कारण यदि हम स्वयको ऐसा कोई काम करनेके अयोग्य मान ले तो कोशिश करनेकी गुजाइश ही नही रह जाती। अत किसी व्यक्तिको शुभ काम करनेके लिए स्वयको अयोग्य मानना ही नही चाहिए। इस सम्बन्धमे किसीको तनिक भी शका नही करनी चाहिए कि बार-बार प्रयत्न करनेसे ऐसा काम करनेकी सामर्थ्य अवश्य आ जायगी।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, १४-२-१९३७

३६७. पत्र : छगनलाल जोशीको

सेगाँव, वर्धा
१४ फरवरी, १९३७

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला।

वालजी वगैरह चाहे जो करे, लेकिन जिस प्रकार तुम कह रहे हो, तुम सौराष्ट्र छोडकर नही जा सकते। सरकारको काफी लम्बा नोटिस देकर विदेशी-निवासी कानून के विरुद्ध सत्याग्रह करनेकी बात मै समझ सकता हूँ, यद्यपि सहमत तो मै उससे भी नही होऊँगा।

मुझे लगता है, अब शायद बहुत समयतक तुम्हे ठहरना नही पडेगा। नये सविधानपर अमल शुरू होनेके बाद सम्भावना यह है कि ऐसे नोटिसोको जारी रखना मुश्किल हो जायेगा। इस बीच जिन-जिन भाइयोके नाम तुमने दिये है, उनके साथ पत्र-व्यवहार करो और उनसे पूछो कि वे किस दृष्टिसे कायदेका उल्लघन कर रहे है। मै कर सकूँ तो यह पत्र-व्यवहार करना मुझे पसन्द होगा, क्योकि उसमे से शुद्ध लडाईका अवसर उत्पन्न हो सकता है और विदेशी-निवासी कानून भी समाप्त हो सकता है। किन्तु ऐसी लडाइयोके लिए सामग्री तैयार करना अभी मेरे क्षेत्रके बाहरकी बात है। किन्तु यदि तुमने मुझसे कुछ पाया हो तो तुम,

ये थोड़े-से शब्द जो मैं लिख रहा हूँ इनके आधारपर, समझदारी तथा शक्ति-भरी अपनी योजना बना सकते हो। उन्नीस आदमी तो बहुत-कुछ कर सकते हैं।

तुमने जो विचार व्यक्त किये हैं, वे कायरताके सूचक हैं। कायर बनकर, उकताकर चुपकेसे नियम भंग करनेका विचार करना, और ऐसा करनेसे जेल जाना पड़े या कोई जोखिम उठानी पड़े तो उसे भोगना, यह तो सत्याग्रहीको शोभा नही देता। "नहा ले, धो ले, सीस गुथा ले, साजनके घर जाना होगा," यह वाक्य सब सत्याग्रहियोंपर लागू होता है। वे जब मैदानमें उतरते हैं, तो सिगार करके ढोल बजाते बाहर आते हैं, क्योंकि वे तो जेलको महल समझकर उसमें प्रवेश करते हैं। सिरपर आ जाये तो भोग ले, यह विचारधारा सत्याग्रहीकी नही होती। ऐसा तो चोर-डाकू भी करते हैं। सभी हिंसावादी अपनी जानको जोखिममें डालकर अपने काममें उतरते हैं।

काठियावाडमें ही रहना पड़ता है, यह भी एक प्रकारकी कैद ही है न? यदि साधारण जेल जानेसे विचारमें कायरता आ जाये, तो फिर अंडमान जानेका अवसर आनेपर तुम्हारी क्या दशा होगी? क्या अपने विचारका और भी विस्तार करूँ? विस्तार करूँ तो इतना लिखा जा सकता है कि पन्ने-के-पन्ने रंग जायेंगे।

तुम्हारे पत्रने मेरे दिमागकी एक छोटी-सी खिडकी नही खोली, एक ऐसा बड़ा दरवाजा खोल दिया है जिसमेंसे विचारोंका प्रबल प्रवाह निकल सकता है। किन्तु उस दरवाजेको अनिच्छासे ही सही बन्द कर देनेमें ही मेरी बचत है।

मेरा दाहिना हाथ आराम ले रहा है, इसलिए आजकल पत्र लिखवाता हूँ। सोमवारको तो दाहिने हाथका उपयोग करना ही पडता है। बायें हाथसे लिखा जा सकता है, किन्तु उसमें जितना समय लगता है उतना देना अभी सम्भव नही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५५४२) से।

३६८. पत्र : बलवन्तसिंहको

१४ फरवरी, १९३७

भाई बलवन्तसिंह,

व्याकुल होनेकी कोई बात नही है। डा० के सुपुर्द किया है सो ठीक ही है। वहीसे आराम होगा ही। धीरज नही छोडना।

गलतियां तो हकीम, वैद्य, डाक्टर सब कर लेते है। गलती हो ही नही सकती है, ऐसी पद्धति सिर्फ नैसर्गिक उपचारकी ही है। उसे चलानेकी विद्या बहुत कम लोगोमे रहती है और उसके अनुभव भी बहुत कम मनुष्योमे देखनेमे आते है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १८९२) से।

३६९. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

सेगाँव, वर्धा
१५ फरवरी, १९३७

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम्हे पत्र नही लिख पाता, इसकी मुझे शर्म है। याद तो रखता हूँ, लेकिन कामकी भीडमे तुम्हारे पत्र रह जाते है। अब अधिक सावधान रहूँगा, फिर चाहे दो ही सतर क्यो न लिखूं, जैसा कि आज ही हो रहा है। लेकिन बा और मनुके लम्बे पत्र आये है। इसलिए अभी इतनेसे ही सन्तोष कर लेना।

क्राउजे आये है। मेरी दो दिनकी गफलतकी वजहसे शायद मुझसे बिना मिले ही चले जाये। उन्हे मेरा पत्र देरसे मिला। उन्होने लम्बा पत्र लिखा है। मैंने उन्हे देवदाससे मिलनेकी सलाह दी है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८६२) से।

३७०. पत्र : बलवन्तसिंहको

१५ फरवरी, १९३७

चि० बलवंतसिंह,

तुमारे क्रोधकी कुछ सीमा ही नहीं है? एक बेहोश आलसी लडके[1] के कहनेपर इतना क्रोध, इतना अविनय? सब प्रतिज्ञाओंका भंग? तुमको क्या पता प्रभुदयालके साथ क्या बात हुई? मैं तुमारे खत पर हंसु, रूदन करू कि प्रतिक्रोध करू? रूदन करने योग्य तुमारा खत है लेकिन रुदन नहीं करुंगा, क्रोध करना पाप होगा और बूरा दृष्टान्त होगा, इस तुमारी मूर्खता पर हंसुंगा। अगर थकान है तो अवश्य सेगांव छोडोगे। लेकिन प्रभुदयालको साथ लाकर मुझसे सुनो क्या हूआ। बादमें जो करना है सो करोगे। आज ही आनेकी आवश्यकता नहीं है। अच्छे हो जाने पर आना। प्रभुदयालके हाथकी रोटी हराम समजो। चंचलसे[2] कहो।

बापुके आ[शीर्वाद]

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १८९३) से।

३७१. पत्र : डॉ० गोपीचन्द भार्गवको

सेगांव

१६ फरवरी, १९३७

प्रिय डॉ० गोपीचन्द,

विधान-परिषदों या सभाओंके चुनावमें भाग लेना अपने-आपमें बेशक कोई गलत काम नहीं है। इसलिए इसमें कोई पाप तभी माना जायेगा जब तुम्हें खुद ऐसा लगे कि यह काम गलत था; मैंने इसे गलत कहा है इसलिए नहीं, बल्कि तुम खुद स्वतन्त्र रूपसे इस निर्णयपर पहुंचे हो। अब इसमें इससे ज्यादा और किसी प्रायश्चित्तकी जरूरत नहीं है कि तुमको अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघके संविधानकी शर्तोंके मुताबिक संघके पदको छोडना पडेगा। तुम्हारी सेवा-निवृत्ति कम-से-कम मुझे तो बुरी तरह खटकेगी। लेकिन पदमें न हटना तो और अधिक बुरी बात होगी। फिर भी संघकी जो-कुछ मदद कर सकते हो, नये एजेन्टको अपना मार्ग-दर्शन देकर करते

१. प्रभुदयाल बलवन्तसिंहका खाना बनाया करता था। जब उसने यह बात गांधीजीको बताई तो उन्होंने अपनी असहमति व्यक्त की। प्रभुदयालने उक्त बातचीतकी सूचना नमक-मिर्च लगाकर बलवन्तसिंहको दी थी।

२. मगनवाड़ी के कार्यकर्ता झवेरभाई पटेलकी पत्नी।

ही रहोगे। मुझे मालूम है कि सघके सक्रिय सदस्य रहनेमे जो वात है, यह वैसी-नही रहेगी। लेकिन उसके बाद यही सर्वोत्तम कार्य होगा। तुम ससदीय कार्य भी करते रहो और ग्रामोत्थान आन्दोलनके सक्रिय कार्यकर्ता भी बने रहो, ये दोनो बाते साथ-साथ नही चल सकती। एक अच्छे सासदिकके अपने काम होते है। यदि वह कर्त्तव्यपरायण है और एक कुशल सासदिक बनना चाहता है, तो वह भी सारे दिन काममे जुटा रह सकता है।

चाहे जो हो, उससे हमारे व्यक्तिगत सम्बन्धोपर कोई असर नही पड़नेवाला है। मेरे विचारसे निस्सदेह तुमने भूल की है। लेकिन भूल तुमने ऐसे मामलेमे की है जिसे तुमने कल्याणकारी माना। मेरा कहना इतना ही है कि यह कार्य कल्याणकारी तो था, लेकिन तुम्हारे लिए नही था, क्योकि तुम पहलेसे एक-दूसरे कार्यके लिए निश्चित और स्पष्ट तौरपर वचनवद्ध थे।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

डॉ० गोपीचन्द भार्गव
मच्छीहाटाँ
लाहौर

अंग्रेजीकी नकलसे. प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य : प्यारेलाल।

३७२. पत्र : गोसीबहन कैप्टेनको

१६ फरवरी, १९३७

जाजूजीके सम्बन्धमे तुम्हारा पत्र मिला। उनके त्यागपत्रके बारेमे जितना खेद मुझे हुआ है, उससे अधिक तुम्हे नही हो सकता। मै उन्हे बहुत ही पसन्द करता हूँ। वे एक अत्यन्त नि स्वार्थ व्यक्ति और बहुत ही कर्त्तव्यनिष्ठ कार्यकर्ता हैं, जिनपर पूर्णतया भरोसा किया जा सकता है। जो काम वे कर नही सकते, उसे कभी हाथमे नही लेते। लेकिन वे और कुमारप्पा कोई काम साथ-साथ, परस्पर मिल कर करे, यह सम्भव नही है। दोनो ही स्वभावसे भिन्न हैं और उनके काम करनेके तरीके भी अलग-अलग है। कुमारप्पाको उनके साथ निभावमे वडी कठिनाई मालूम होती है। कुमारप्पामे भी वे सव गुण है जो जाजूजीमे हैं। दोनो ही के विना हमारा काम नही चल सकता। जाजूजी तो वोर्डके सदस्य फिर भी रहेगे। इसलिए इस कठिन स्थितिसे निपटनेका सबसे अच्छा तरीका मुझे यही लगा कि जाजूजीका त्यागपत्र स्वीकार कर लिया जाये, लेकिन वेशक इसका फैसला वोर्डको करना है। इस कठिनाईसे पार पानेका यदि कोई और तरीका हो तो वही अपनाया जाना चाहिए। बैठकमे हम सभी उपायोपर विचार करेगे।

कोई बम्बई जानेवाला मिलेगा तो उसके हाथ तुम्हारे लिए जितना भी गुड भेज सकूँगा, भेज दूँगा। तुम रेल-खर्च तो नही उठाना चाहोगी। शायद डकन इस कामके लिए मुझे मिल जाये। वह परिवारका एक नया सदस्य है और मुझे विश्वास है कि मिलने पर तुम उसे पसन्द करोगी। वह इग्लैंडसे मुझसे मिलने आया है। छोटेलालका कहना है कि कुछ दिन पहले तुम एक 'करड चक्की' ले गई थी। यदि यह बात ठीक है तो तुम्हे दूसरीकी जरूरत नही होगी। यदि है तो मुझे बताओ। बिड़ला-लोगोसे पैसा मिलनेमें कोई कठिनाई नही होगी।

बापू

श्रीमती गोसीबहन कैप्टेन
गाधी सेवा सेना
एडनवाला बिल्डिंग
न्यू क्वीन्स रोड
बम्बई

अंग्रेजी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य · प्यारेलाल।

३७३. पत्र : लीलावती आसरको

१६ फरवरी, १९३७

चि० लीला,

तेरा पत्र मिला। सरकडेकी कलमसे लिखनेकी आदत पड़ जानेके बाद निब अच्छा नही लगता। निबका प्रचार केवल मनुष्यके आलस्यके कारण हुआ है, क्योकि निबको बनाना नही पडता और कलमको बार-बार बनाना पड़ता है। फिर निब अपेक्षाकृत सस्ता लगता होगा, गो कि सावधानीसे काममे लानेवालेको सरकडेकी कलम जरूर सस्ती पडनी चाहिए। साथ ही, कलम बनाना अपने-आपमें एक कला है, और उससे जितने सुन्दर अक्षर लिखे जा सकते हैं, उतने निबसे कभी नही लिखे जा सकते। हिन्दुस्तानकी लिपियाँ निबसे लिखी जाने योग्य नही है, क्योकि निब पश्चिमकी लिपिके अनुसार बने है। हिन्दुस्तानकी लिपिके अनुसार निब बन ही नही सकते, यह मेरा आशय नही है। तो यह तो हुआ निब पुराण।

माथेरानसे महाबलेश्वर है तो ज्यादा अच्छा। पर द्वारकादास[1] के लिए वहाँकी ठड शायद कुछ ज्यादा होगी। लेकिन महाबलेश्वर जाते हैं, तो पचगनी क्यो नही? पचगनीमे सुभीता हो तो वह शायद अधिक अनुकूल पड़े। देवलाली और लोनावाला भी उपेक्षाके योग्य नही है।

१. लीलावती आसर के भाई।

खानेमे सयम नही किया तो तबीयत जरूर बिगड़ेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३५७) से। सी० डब्ल्यू० ६६३२ से भी, सौजन्य लीलावती आसर।

३७४. पत्र : नरहरि द्वा० परीखको

१६ फरवरी, १९३७

चि० नरहरि,

तुम्हारा पत्र मिला। यह सक्षेप तुम्हारे पत्रके आधारपर किया है; क्या यह ठीक है? अथवा इसमे और कुछ जोड़ना है? सुधारकर यह सक्षिप्त रूप वापस भेज देना।

साथमे एक और पत्र भी रख रहा हूँ। इसके लेखकका पूरा नाम नानुभाई देसाई है। पिछले पत्रमे इन्होने पता दिया था, लेकिन इसमे पता देना भूल गये है। नानावटी इन्हे जानते है। एलिस ब्रिजके पास रमणलाल इजीनियरका पता इन्होने दिया है। ये हरिजनोमे काम करते है, इसलिए पुरातन इन्हे जरूर जानते होगे। उनसे पूछना। तुम्हे पत्र लिखनेका उद्देश्य यह है मैने इन्हे विवाह करनेकी सलाह दी है। ये कहते है कि ये हरिजन-कन्यासे भी विवाह करनेको तैयार है। दूधाभाईकी मणिके लिए ये शायद योग्य वर हो। तुम जाँच-पडताल करना, यानी इन्हे अपने पास बुलाकर इनसे बात करना। इनके कुटुम्बके बारेमे पूछना, और ठीक लगे तो जो उचित हो करना। नानुभाईको लिखना कि उन्होने दूसरे पत्रमे पता नही दिया, इससे मै उन्हे सीधे पत्र नही लिख सका। तुम्हारे पास जानेकी सलाह तो उन्हे देने ही वाला था। उन्हे लिखना अथवा आनेपर कहना कि उनका पिछला पत्र जवाब देनेके बाद मैने फाड़ डाला था।

बापूके आशीर्वाद

गुज़रातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९१०६) से।

दूसरी जो चीज है वह निश्चय ही मेरा विषय है। श्री वाडियाने जो श्लोक उद्धृत किये है, वे निश्चय ही समीचीन नही है। वे जो चाहते है वह हो ही नही सकता। आपने यह नही देखा। और आपने जो लिखा है उसका अर्थ तो यही हो सकता है कि सत्य प्रिय ढगसे नही कहा जाना चाहिए। पिताका माँके पतिके रूपमे उल्लेख करनेसे सत्यका भग भले ही न होता हो, लेकिन उसमे विवेकका भग तो है ही, और सत्यकी मेरी व्याख्याके अनुसार ऐसा सत्य सत्य नही कहा जा सकता। इस तरह अर्थको बहुत ज्यादा खीचनेसे लोग सत्य बोलना ही छोड़ देंगे।

बापू

गुजरातीकी नकलसे प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य . प्यारेलाल।

३७७. पत्र : बलवन्तसिंहको

१६ फरवरी, १९३७

चि० बलवतसिह,

कल तो तुम्हारे खतपर हस दिया। लेकिन उस खतको भूल नही सका, इसलिये अभी दुःख हो रहा है। इतने क्रोधकी मैंने कभी आशा ही नही रखी थी। मैंने झवेरभाईके मार्फत सदेशा भेज दिया है। उसके मुताबिक किया होगा। चचल बहिन तुम्हारी रोटी पकावेगी, वह नम्रतासे खाओ।

डा० कहे वही करो और जल्दी अच्छे हो जाओ। अच्छे होनेपर दिल चाहे सो करो। अब तो कुछ ऐसा ही मुझको लगता है कि तुम्हारी दुर्बलताका कारण क्रोध ही है। क्रोध और किसीको नही जलाता है। क्रोध करनेवाला ही जलता है। एक नालायक बच्चेकी बाते सुनकर एक क्षणमे तुमने अपना अनिष्ट कर दिया है और प्रभुदयालका बिगाडा, क्योकि उसकी बाते तुमने मान ली।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १८९४) से।

३७८. पत्र : दिलखुश बी० दीवानजीको

सेगाँव
१७ फरवरी, १९३७

भाई दिलखुश,

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे बहुत खुशी हुई है। तुम अवश्य प्रयत्न करो, बेहतर होगा तुम पुस्तिका लिखो। मुझसे कुछ पूछना हो तो पूछना। मैं अवश्य तुम्हारा मार्ग-दर्शन करूँगा। मेरे प्रश्नोमे तुम सशोधन-परिवर्धन कर सकते हो। ये प्रश्न तो जैसे-जैसे मनमें उठते गये वैसे-वैसे मै लिखता गया। इसलिए संशोधन-परिवर्धन करने का और ढंगके साथ उन्हे व्यवस्थित करनेका पर्याप्त अवकाश है। कदाचित् तुम इस समय बढई और बुनकर विभागको छोड देना चाहोगे। कपासका सक्षिप्त इतिहास, कपासके विभिन्न प्रकार, उन्हे पहचाननेकी रीति, वह कब और कैसे चुनी जाती है, डोडोको फोड़ना, छिलकोका उपयोग, ओटनेका चरखा, उसकी बनावट, उसके भिन्न-भिन्न भागोका और विभिन्न प्रकारोका वर्णन, ओटनेकी रीति; इसीतरह पीजना, पूनी बनाना, कातना आदि-आदि — इस क्रममे लिखते चले जाओ। इस तरह काम आसान हो जायेगा। तुमने नमूनेके रूपमे कुछ लिखा हो तो भेजना। मै उसकी जाँच कर जाऊँगा और कुछ बताने लायक हुआ तो बताऊँगा। कोई भी चीज निजी अनुभवके बिना न लिखना। निजी अनुभवके बिना लिखी कुछेक पुस्तके मैंने पढी है और उनसे कोई मदद नही मिल सकी, ऐसा मेरा अनुभव है। इसलिए तुम जो पुस्तके पढो उनमें लिखी बातोको अच्छी तरहसे परखनेके बाद ही उनपर अमल करना। यह बात केवल क्रिया-विभागपर ही लागू होती है। कुछेक बाते ऐसी होती हैं जो हम अनुभवसे नही सीख पाते। इस सम्बन्धमे तो हम केवल इतना ही कर सकते है कि लेखककी प्रामाणिकताके बारेमे पता लगाये। अच्छा है कि इस क्षेत्रमे लिखनेवाले बहुत कम लोग है, इसलिए पसन्द करने अथवा न करनेका प्रश्न ही नही उठता।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
मोटाना मन, पृष्ठ ७२

३७९. पत्र : सोहनलाल ओबरायको[1]

१७ फरवरी, १९३७

भाई सोहनलाल,

जूठ बोलना व्यभिचारसे कम बूरी बात नही है। लेकिन गुप्त व्यभिचारी तीगुना पाप करता है, क्योंकि आप फसता है, दूसरी व्यक्तिको फसाता है और जूठ भी बोलता है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६८६४) से।

३८०. पत्र : मेरी रोमाँ रोलाँको

सेगाँव, वर्धा
१८ फरवरी, १९३७

प्रिय बहन,

मेरे पुत्रने आपका पत्र, जो आपने उसे लिखा था, मुझे भेज दिया है। उसमे स्पेनकी पीडित नारियों एव बच्चोकी सहायतार्थ बेचनेके लिए आपने मेरे हस्ताक्षर माँगे हैं। उन दुखियारोके प्रति मेरी पूरी-पूरी सहानुभूति है, फिर भी अपने हस्ताक्षर नही भेज रहा हूँ। एक कल्याणकारी उद्देश्यके लिए पैसा इकट्ठा करनेमे इस प्रकारके तरीके अपनानेके औचित्यके विषयमे मैं आश्वस्त नही हूँ। ऐसे मामलोमे लोगोको, बदलेमे कुछ पानेकी किसी आशाके बिना, स्वेच्छासे ही चन्दा देना चाहिए।

तुम दोनोको मेरा प्यार,

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० १०५८७)से, सौजन्य : मैडलीन रोलाँ।

१. पंजाब के एक खादी-कार्यकर्ता।

३८१. पत्र : शिवप्रसाद गुप्तको

१८ फरवरी, १९३७

मैं आदर्शवादी हू। ऐसा ही व्यवहारवादी हू। विदेशका मुझे द्वेष नही है। लेकिन विदेशके खातर स्वदेशको हानि नही होने दुगा। हिदुस्तानकी तिथि मैंने तो दक्षिण आफ्रिकासे शुरू की थी। हिन्दुस्थानमे आनेके बाद उसका आग्रह रख्खा। लेकिन मैंने पाया कि वह आग्रह मे कोई अर्थ नही है। और पत्राग भी कितने। बगालमे एक, महाराष्ट्रमे तीन, तुमारा भिन्न, बिहारमें कुछ और, आर्यसमाजका भिन्न, मुसलमानोका हिजरी। इतने पचाग मेरे सामने रख्खु तब अन्य प्रांतोमें रहेनेवालोको शायद न्याय दे शकू। और साथ-साथ पश्चिमी सवतका तो ख्याल तो रखना ही है। ऐसी हालतमे मैंने हिंदुस्तानके सवतका त्याग कर दिया, और इस त्यागसे किसीको नुकसान नहीं पहुचा। मुझे लाभ ही हुआ है। तुमारे जैसे सौरादिके पक्षपातीका मुझे द्वेष नही है। द्वेष नही करनेमे कठीनाई तो है ही। अगर तुमारे पक्षपातका मैं द्वेष करु तो खत वापिस करना चाहिये और २४ माघके साथ इसवी सन् भी लिखवा दू। ऐसी धृष्टता करनेसे प्रेम मुझे रोक लेता है। इसवी सन कुछ अग्रेजीका नही है। पश्चिममे फैला हुआ है। पश्चिमसे बहुत चीज हम लेते हैं। उसमे बहुत हानिकर है, थोड़ी लाभप्रद है। इसवी सन लेनेमे अगर लाभ नही है तो हानि भी नही है।

अब दुसरा प्रश्न। तुम है एकातवादी। मैं हु अनेकातवादी। अगर मुझे कोई 'डोमीनीयन स्टेटस' दे देवे और उसीके साथ दिल चाहे तब साम्राज्यको छोडनेका अधिकार भी दे देवें तो तुमारे-जैसे एकातवादी हृदयका परिवर्तन हो ही जायगा। लेकिन ऐसा दिन कहा है कि मियाके पांवमे जुती आ जाय? उसके तो बिचारे सरपे ही जुतिया आती है। इतना तो समजो कि जब हिंदुस्तानको 'डोमीनीयन स्टेटस्' मिलेगी तब रामराज्य शब्द ही नही रहेगा। अगर सब सत्ता हिंदुस्तानमें ही आ जायगी, और ऐसे मौके पर हमारे बीचमें झगडा छीड जायगा। तुम कहोगे राजधानी काशीमें हो, मैं कहुगा सेगाबमें। लेकिन अबतक तो भेस बहुत दूर पडी है। आजसे क्यो झगडे?

मेरे विचारोकी चिंता छोडकर आसनादिके प्रयोगसे और रामनामके ध्यानसे शरीरको अच्छा बना ल्ये। हिंदुस्तानके लोगोने जो कुरबानीयां की है, वे मेरे दोषोसे व्यर्थ जानेवाली नही है, न तुमारी जेल-यात्रा व्यर्थ जायेगी। इतना निश्चय समजो।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे, सौजन्य : नारायण देसाई।

३८२. पत्र : श्री हनुमानप्रसाद पोद्दारको

१८ फरवरी, १९३७

तुमारा पत्र तुम्हारे प्रेमका प्रतिक है। बाकी मृत्यु तो जन्मका साथी ही है और है बडा वफादार। कभी धोका नही देता। भगवद् भजन मृत्युके नजदिक ही होनेसे क्यो? जिसे मैं भगवद् भजन मानता हू वह तो प्रतिक्षण चलता ही है। भगवान की सृष्टिकी भगवतप्रीत्यर्थे सेवा उसका भजन है। आजकल उसमे सूर देना है—तेन त्यक्तेन भुजीथा।

तुम्हारा स्वप्ना जुठा क्यो हो?[1] १०० वर्ष तक जिऊगा तो भी मित्रोको मृत्यु जलदी जचेगा। तब आज या कलकी बात क्या? और भजन तो सदाय करते रहे—तुम जुवान भी और मैं वृद्ध भी।

बापुके आशीर्वाद

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे, सौजन्य: नारायण देसाई

३८३. पत्र : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको

सेगाँव, वर्धा,
१९ फरवरी, १९३७

प्रिय गुरुदेव,

आपका इसी १० तारीखका पत्र मुझे आजसे पाँच दिन पहले मिला। उसकी एक-एक पक्तिमे मेरे प्रति आपका स्नेह और विश्वास झलकता है। लेकिन मेरी भारी अक्षमताओका क्या हो? आप मेरे सिर जो वोझ डालना चाहते है उसके लिए मैं बहुत कमजोर हूँ। आपके प्रति मेरा स्नेह-सम्मान मुझे एक दिशामे खीचता है, लेकिन मेरी बुद्धि मुझे दूसरी दिशामे खीचती है। और अभी मेरे सामने जो प्रश्न उपस्थित है उसके सन्दर्भमें मैं बुद्धिपर भावनाको हावी हो जाने दूँ, तो यह मेरी भूल होगी। मैं यह जानता हूँ कि अगर मैं इस सस्था[2]का न्यासी बनता हूँ तो भी मुझे इसकी

१. हनुमानप्रसाद पोद्दारने सपना देखा कि गांधीजी अब बहुत दिन जीवित नहीं रहेंगे और इसलिए लिखा कि उन्हें बाकी के दिन भगवान के भजन में बिताने चाहिए।

२. विश्वभारती।

व्यवस्थाके ब्योरोकी चिन्ता करनेकी जरूरत नही पडेगी। लेकिन इसमे उसके लिए आर्थिक साधन जुटाते रहनेका दायित्व तो निहित है ही। और अभी दो दिन पहले मैंने जो-कुछ सुना है उससे मेरी झिझक और भी बढ गई है, क्योकि मुझे मालूम हुआ है कि आपने दिल्लीमें मुझे जो वचन[1] दिया था उसके बावजूद आप भिक्षाटन-अभियानके लिए अहमदाबाद जानेवाले हैं। यह जानकर मुझे बडा दुख हुआ और अब घुटने टेककर आपसे विनती करता हूँ कि अगर सचमुच आपने इस अभियान पर जानेका निश्चय कर लिया है तो उसे छोड दीजिए, और आपसे कम-से-कम इतना अनुरोध तो करूँगा ही कि आप न्यासीके रूपमे मेरी नियुक्ति रद्द कर दें।[2]

स्नेह और श्रद्धा सहित,

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४६४६)से।

३८४. महादेव देसाईको लिखे पत्रका अंश

१९ फरवरी १९३७

चि० महादेव,

मैंने आनेकी मनाही शिष्टाचारवश थोडे ही की थी। अत तुम जो अपने ऊपर दोष लादे ले रहे हो, यह बिलकुल उचित नही है। उस समय आग्रह न करना ही कर्त्तव्य था। मैंने उस रात आनन्द लूटा। जब मैंने देखा कि मैं रास्ता भूल गया हूँ, तब मुझे घबराहट नही हुई। भूलका पता पाँच मिनटमे ही लग गया। तुरन्त ही जो दृश्य बदला तो मैंने गाडी रोकी, उतरा, चारो ओर देखा, और अनायास ही मिले एकान्तके आनन्दका उपभोग किया। चारो ओर आकाशमे तारोंकी बदली हुई दिशा देखकर भूले हुए रास्तेसे पीछे लौटा, मुश्किलसे दस मिनट लगे होगे कि तुरन्त समझमे आ गया कहाँसे रास्ता भूला था . . . . .।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५१८)से।

१. देखिए खण्ड ६२, पृष्ठ ३०४।
२. देखिए "पत्र: रवीन्द्रनाथ ठाकुर को", २-३-१९३७।

३८५. पत्र : चित्रेको

१९ फरवरी, १९३७

चि० चित्रे,

यदि तुम मन्त्रके अन्तिम पद पर मनन-चिन्तन करोगे तो तुम्हे काफी शान्ति मिलेगी। ईश्वर तुम्हे जो दे उसे तुम्हे सन्तोषपूर्वक स्वीकार करना चाहिए। उसका त्याग नही करना चाहिए और दूसरोके पास जो है अथवा नही है, उससे द्वेष नही करना चाहिए। अन्तिम पदसे यही भाव निकलता है। धनका अर्थ पैसा-टका ही नही है। किसीका धन विद्वत्ता होती है, किसीका शारीरिक सम्पत्ति तो किसी अन्य का तपश्चर्या भी हो सकती है। इन सबके प्रति द्वेष नही करना चाहिए। तात्पर्य यह कि किसीकी बहुत ज्यादा बुद्धि, कार्य-शक्ति, या तपश्चर्या आदिको देखकर स्वयं अशान्त नही हो उठना चाहिए, उसका विचार भी मनमे नही लाना चाहिए। हम स्वय सहज ही जो त्याग कर सकते है उसे करे और आनन्दमग्न रहे। तुम ठीक इसके विपरीत करते हो। दूसरे कुछ नही करते, इससे तुम जलते रहते हो।

त्रावणकोरके महाराज महर्षि क्यो नही है—ऐसा तुम अपने मनसे पूछते ही रहते हो। व्यभिचारी व्यक्ति पवित्र क्यो नही? जमीदार क्यो समझदार नही बन जाते? गरीब क्यो महलोमे नही बैठ जाते? इस तरहकी बाते सोचना मन्त्रके विरुद्ध है। इस मन्त्रका लौकिक अर्थ यह है, "जगत जो करे सो करने दे। उसे देखता-भर रह। स्वय ईश्वरके नामपर और वह जो करने दे सो करे। वह जितना दे उतना ही ले और उसमे आनन्दमग्न रहे।"

गुजरातीकी नकलसे प्यारेलाल-पेपर्स, सौजन्य प्यारेलाल।

३८६. पत्र : कृष्णचन्द्रको

१९ फरवरी, १९३७

चि० कृष्णचद्र,

जुलाइमे भी तैयार रह शकते है? तो मुझे लीखो। जो उस वक्त शक्य होगा मैं अवश्य करूगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४२८०)से।

३८७. पत्र : तथाकथित असंगतियाँ

कुछ भाई मुझे बार-बार पत्र लिखकर कठिन प्रश्न पूछते रहते हैं। उनमें से एकके पत्रका नमूना यह है :

> जब कभी आर्थिक झगड़े होते हैं और जब भी पूंजी और श्रमके आर्थिक सम्बन्धोंके बारेमें आपसे प्रश्न पूछे गये हैं, तभी आपने संरक्षकताका सिद्धान्त सामने रख दिया है। यह सिद्धान्त मुझे हमेशा चक्करमें डाल देता है। आप अमीरोंसे यह चाहते हैं कि वे अपनी सारी सम्पत्ति गरीबोंके लिए धरोहर समझकर रखें और उनके लाभके लिए खर्च करें। यदि मैं आपसे यह पूछूँ कि क्या यह सम्भव है, तो आप मुझसे कहेंगे कि मेरा प्रश्न मानव-स्वभावकी मूल स्वार्थपरायणतामें विश्वास होनेके कारण उठता है और आपके सिद्धान्तका आधार मानव-स्वभावकी बुनियादी अच्छाईपर है। परन्तु राजनैतिक क्षेत्रमें आप ऐसे विचार नहीं रखते और साथ ही मानव-स्वभावकी मौलिक अच्छाईमें अपना विश्वास भी नहीं छोड़ते। अंग्रेज भी भारतकी अपनी प्रभुताके समर्थनमें ऐसी ही संरक्षकताका दावा करते हैं। परन्तु ब्रिटिश साम्राज्यपर से आपका विश्वास बहुत पहले उठ गया है और आज उसका आपसे बड़ा दुश्मन कोई नहीं है। क्या राजनैतिक जगत्के लिए एक नियम और आर्थिक जगत्के लिए दूसरा नियम रखना संगत है? या आपके कहनेका यह अर्थ है कि जैसे आपका ब्रिटिश साम्राज्यवाद और ब्रिटिश लोगोंपर से विश्वास उठ गया है, वैसे पूंजीवाद और पूंजीपतियोंपर से आपका विश्वास नहीं उठा है? कारण, आपका संरक्षकताका सिद्धान्त बहुत-कुछ राजाओंके उस दैवी अधिकारके सिद्धान्त-जैसा ही लगता है जिसकी पोल बहुत पहले खुल चुकी है। जब एक आदमीने जिसे अन्य सबकी ओरसे राजनैतिक सत्ता धरोहरके रूपमें रखनेको दी गई थी और जिसे वह उन्हींसे मिली थी, उसका दुरुपयोग किया, तब लोगोंने उसके खिलाफ बगावत की और उससे लोकतन्त्रका जन्म हुआ। इसी प्रकार आज जब मुट्ठी-भर लोग जिन्हें आर्थिक सत्ता उन दूसरे लोगोंकी धरोहरके रूपमें अपने हाथमें रखनी चाहिए जिनसे उन्होंने उसे प्राप्त किया है, उस आर्थिक सत्ताका उपयोग अपने स्वार्थके लिए और बाकी लोगोंको हानि पहुँचानेके लिए करते हैं, तो उसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि अधिकांश लोग उन थोड़े-से लोगोंके हाथसे आर्थिक सत्ता छीन लेंगे, अर्थात् समाजवादका जन्म होगा।

अबतक किसी भी भली-बुरी चीजको प्राप्त करनेका एकमात्र मान्य हुआ उपाय हिंसा थी। जब अच्छी चीजकी प्राप्तिके लिए भी हिंसा की जाती है, तो उसके साथ-साथ बुराई चली आती है और जो अच्छाई प्राप्त होती है उसमें भी बुराई मिल जाती है। मै यह मानता हूँ कि संसारको आपकी निश्चित देन यह है कि आपने एक दूसरे साधन, अर्थात् अहिंसाके कारगर होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण दे दिया है, जो हिंसासे श्रेष्ठ है और जिससे मानव-सम्बन्ध विषाक्त नही बनते। इसलिए मेरी हार्दिक आशा यह है कि अब आप वर्तमान अर्थ-व्यवस्थाके खिलाफ अहिंसक ढंगसे लड़कर उसे समाप्त करें और इस तरह एक नयी व्यवस्था पैदा करनेमें सहायक हों।

इसके अलावा, एक और भी सवाल मेरे मनको मथता रहता है और अगर आप चाहें तो इसका जवाब दे सकते हैं। सन् १९३० में जब आपने सत्याग्रह-आन्दोलन आरम्भ किया था, तब आपने यह घोषणा की थी कि यह लड़ाई तो निर्णय होनेतक चलेगी और आप या तो विजयी होकर लौटेंगे या आपका मृत शरीर समुद्रमें बहता हुआ पाया जायेगा। आपने बादमें भी इस बातपर बहुत जोर दिया और संकल्पपूर्वक लड़नेके लिए भारतीयोका आह्वान किया। अब यद्यपि सविनय अवज्ञा करनेका अधिकार आपने एकान्तिक रूपसे अपने लिए सुरक्षित रखा है, किन्तु सरकारके विरुद्ध संघर्ष बन्द कर दिया है। इन दिनो आप भारतीय गाँवोमें जीवनका संचार करने और उनका स्तर ऊपर उठानेके लिए प्राणपणसे जुटे हुए हैं। पता नहीं, आप अपनी प्रवृत्ति के इस दौरको सरकारके विरुद्ध संघर्ष मानते है या नहीं। अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघका राजनीतिसे कोई वास्ता नहीं है, इसलिए अ० भा० ग्रामोद्योग संघके उद्देश्योंको सफल बनानेके लिए आप जो-कुछ कर रहे है उसे देशकी राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके आपके संघर्षका हिस्सा नहीं माना जा सकता। या आप ऐसा मानते हैं कि जिसे अन्तिम निर्णय होने तक चलनेवाली लड़ाई कहा जाता है, उस लड़ाईमें भी बीच-बीचमें कुछ समयतक शान्ति रखी जा सकती है? अगर बात ऐसी हो तो फिर आपने सन् १९३० की लड़ाई और १९२० के संघर्षमें अन्तर कैसे किया और १९३० की लड़ाईको अन्तिम निर्णयतक चलनेवाली लड़ाई कैसे कहा?

पहले प्रश्नका विचार पहले करे। पूँजीवाद या साम्राज्यवादके प्रति अपने व्यवहारमे मुझे कोई असगति दिखाई नही देती। पत्र-लेखक भाई विचारकी उलझनमे पड गये है। राजा, साम्राज्यवादी या पूँजीपति क्या दावे करते है या उन्होने क्या दावे किये है, इसका जिक्र या विचार मैंने नही किया है। मैंने तो यही कहा या लिखा है कि पूँजीके सम्बन्धमे कैसा रवैया अपनाना ठीक हो सकता है। और फिर कोई दावा करना एक बात है और उसपर अमल करना दूसरी बात है। मुझ-जैसा

(यहा अपनेको मैं एक उदाहरणके रूपमे ही रख रहा हूँ) हरएक आदमी, जो जनता का सेवक होनेका दावा करता है, केवल कहनेसे ही सेवक नहीं बन जाता। फिर भी मुझ-जैसे लोग अपने दावोंपर अमल करते पाये जाये, तो सभी उनकी कद्र करने लगेंगे। इसी प्रकार सबको हर्ष होगा यदि कोई पूँजीपति अपने धनपर अपने अधिकारका दावा छोड़कर यह घोषणा कर दे कि मेरे पास जो सम्पत्ति है वह लोगोकी धरोहरके रूपमे है। बहुत सम्भव है कि मेरी सलाह न माना जाये और मेरा सपना साकार न हो। परन्तु इसकी भी गारंटी कौन देता है कि समाजवादियों का सपना साकार ही होगा? समाजवादका जन्म इस बातका पता लगनेके कारण नही हुआ कि पूँजीपति पूँजीका दुरुपयोग करते हैं। जैसा कि मैंने कहा है, समाजवाद ही नहीं, साम्यवाद भी 'ईशोपनिषद्'के पहले मन्त्रमें स्पष्ट है। सच बात तो यह है कि जब कुछ सुधारकोंका विश्वास विचार बदलनेके तरीकेमे नही रहा, तब जिसे शास्त्रीय समाजवाद कहते हैं उसका जन्म हुआ। मैं भी उसी समस्याको हल करनेमे लगा हुआ हूँ जो शास्त्रीय समाजवादियों के सामने है। लेकिन यह सही है कि मेरा तरीका सदासे और केवल शुद्ध अहिंसाका रहा है। वह असफल हो सकता है। ऐसा हुआ तो उसका कारण अहिंसाकी कलाके प्रति मेरा अज्ञान होगा। मैं उस सिद्धान्तका एक असमर्थ प्रतिपादक हो सकता हूँ, मगर उसमे मेरा विश्वास दिनो-दिन बढ रहा है। चरखा सघ और ग्रामोद्योग संघ ऐसे संगठन हैं जिनके द्वारा अहिंसाकी कलाकी अखिल भारतीय पैमानेपर परीक्षा हो रही है। ये स्वतन्त्र संस्थाएँ कांग्रेस ने खास तौरपर इसलिए कायम की हैं कि मैं नीतिके उन उतार-चढ़ावोंके बन्धनमे, जो कांग्रेस-जैसी सर्वथा लोकतांत्रिक जमातमे हमेशा होते रह सकते हैं, फँसे बिना अपने प्रयोग करता रह सकूँ। मेरी कल्पनाकी संरक्षकताको तो अभी अपना महत्त्व सिद्ध करना है। यह सिद्धान्त इस बातका प्रयत्न है कि सम्पत्तिका जनताके हितमे योग्य व्यक्तियो द्वारा उत्तम उपयोग कैसे हो।

और अब पत्रके दूसरे हिस्सेको ले। जीवनको मैं एक-दूसरेसे बिलकुल अलग-थलग हिस्सोंमें नही बाँटता। व्यक्तिकी तरह राष्ट्रका जीवन भी एक अविभाज्य इकाई है। मेरे कांग्रेस या तथाकथित राजनैतिक जीवनसे अलग हो जानेका मतलब यह नही है कि भारतकी पूर्ण स्वतन्त्रताकी मेरी लालसामे तनिक भी कमी आई है; और न सविनय अवज्ञा अहिंसाकी कोई विशिष्ट प्रक्रिया है। यह तो उन अनेक अहिंसक प्रक्रियाओंमें से एक है जो एक-दूसरीसे किसी भी तरह असंगत नहीं है। मुझे जो करना है वह यही कि अपने जीवनकी सभी प्रवृत्तियोंमें अहिंसाका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करूँ। मेरा दावा है कि मैं अपना प्रयोग बहुत ही वैज्ञानिक ढंगसे चला रहा हूँ। अहिंसाके उपवनमें अनेक पौधे है। वे सब-के-सब एक ही स्रोतसे उद्भूत है, उन सबका उपयोग भले ही एकसाथ न हो। उनमें से कई दूसरोंसे कुछ कम शक्तिशाली है। हानिरहित तो सभी हैं। लेकिन उनका प्रयोग कुशलतासे करना है। ईश्वरने मुझे जैसी और जितनी कुशलता दी है, उसका प्रयोग मैं उनका उपयोग करते हुए कर रहा हूँ। लेकिन यदि मैं किसी समय किसी एक पौधेके बजाय किसी दूसरे

का उपयोग करता हूँ, तो उसका मतलब यह नही कि मैं लडाईसे अलग हो गया हूँ। यह अन्तिम निर्णयतक चलनेवाली लडाई है। अहिंसाके कोषमे पराजय नामका कोई शब्द है ही नही।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २०-२-१९३७

३८८. तुमसे ऐसी आशा नहीं थी!

तमिलनाडुसे एक वकीलने लिखा है[1]:

इस पत्रको आये बहुत दिन हो चुके है। पत्र-लेखकने जिस वकील सघका उल्लेख किया है उसने अबतक शायद अपना झगडा शोमनीय ढगसे निवटा भी लिया हो। लेकिन मुझे मालूम है कि यह बुराई बहुत-सी जगहोमे आज भी कायम है। जो बात ऐसे वकील सघोमे देखनेको मिलती है, वही स्कूलो और कालेजोमे भी देखी जा सकती है। मुझे तो इस बातमे तनिक भी सन्देह नही है कि सार्वजनिक स्कूलो और सस्थाओमे ऐसे प्रतिबन्ध लगाना एक अनधिकार प्रयत्न है, जिसके पक्षमे कुछ भी नही कहा जा सकता, और अगर यह बात गैर-कानूनी न हो तो मुझे आश्चर्य ही होगा। जिन लोगोके मनमे, जैसा पत्र-लेखकने बताया है, उस तरहके पूर्वग्रह हो वे मजेमे अपने लिए अलगसे कोई व्यवस्था कर सकते हैं। लेकिन वे अपने साथी सदस्यो या सहपाठियोको किसी सामूहिक सम्पत्तिका उपयोग उस तरहसे करनेसे रोक नही सकते जिस तरह कि उसका उपयोग करनेका अधिकार सबको दिया गया है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २०-२-१९३७

३८९. हमारे गाँव

एक युवक गाँवमे रहकर अपनी जीविका कमानेकी कोशिश कर रहा है। उसने एक करुणाजनक पत्र लिखा है। वह अंग्रेजी ज्यादा नही जानता। इसलिए उसका पत्र यहाँ सक्षिप्त रूपमे दे रहा हूँ:

> तीन वर्ष पूर्व, जब मेरी आयु २० वर्षकी थी, १५ साल शहरमें बितानेके बाद मैंने ग्राम-जीवनमें प्रवेश किया। मेरी पारिवारिक परिस्थितियाँ ऐसी नहीं थीं कि मैं कालेजकी शिक्षा प्राप्त करता। आपने ग्रामोद्धारके लिए जो कार्य आरम्भ किया है, उससे मुझे ग्राम-जीवन व्यतीत करनेकी प्रेरणा मिली है।

1. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने बताया था कि उसके यहाँके वकील संघके सौ सदस्योंमें से तीनको छोड़कर सब ब्राह्मण हैं। सदस्योंके पानी पीनेके लिए एक बरतन है। लेकिन दूसरी जातियोंके सदस्यों द्वारा उस बरतनके प्रयोग किये जानेपर ब्राह्मण सदस्योंने भारी टंटा खड़ा कर दिया।

मेरे पास कुछ जमीन है। हमारे गाँवकी आबादी लगभग २,५०० है। इस गाँवके निकट सम्पर्कमें आनेपर मुझे तीन-चौथाईसे अधिक लोगोंमें निम्नलिखित दोष देखनेको मिले हैं :

१. दलबन्दी और लड़ाई-झगड़े
२. ईर्ष्या
३. अशिक्षा
४. दुष्टता
५. फूट
६. लापरवाही
७. अशिष्ट व्यवहार
८. पुराने और निरर्थक रीति-रिवाजोंका मोह
९. निष्ठुरता

यह गाँव यातायातके केन्द्रोंसे दूर एक कोनेमें बसा हुआ है। कोई भी बड़ा आदमी कभी ऐसे दूरस्थ गाँवोंमें नहीं आया है। तरक्कीके लिए बड़े लोगोंका सम्पर्क आवश्यक है। इसलिए मुझे तो इस गाँवमें रहते डर लगता है। क्या मैं इसे छोड़ दूं? अगर न छोडूं तो आप क्या रास्ता सुझाते हैं?

इस नौजवानने ग्राम-जीवनका जो चित्र खींचा है वह अतिरंजित तो अवश्य है, लेकिन आम तौरपर उसकी बातें स्वीकार की जा सकती हैं। इस दुर्दशाका कारण ढूंढना मुश्किल नहीं है। पढ़े-लिखे लोग दीर्घ कालसे गाँवोंकी उपेक्षा करते आये हैं। उन्होंने शहरी जीवन ही पसन्द किया है। ग्रामोद्धार आन्दोलन गाँवोंको ऐसे लोगोंके सम्पर्कमें लानेका प्रयत्न है जिनकी निकटता ग्रामवासियोंके लिए कल्याणकारी हो। इसके लिए जो तरीका अपनाया गया है वह यह है कि सेवाकी भावनासे अनुप्राणित लोगोंको गाँवोंमें बसकर ग्रामवासियोंकी सेवा करके अपनी सेवा-वृत्तिका परिचय देनेको राजी किया जाये। पत्र-लेखकको जो दोष दिखाई दिये हैं, वे कोई ग्राम-जीवनके सहज अंग नहीं हैं। जो लोग सेवाकी भावनासे गाँवोंमें जा बसे हैं वे इन कठिनाइयों के सामने आनेपर हताश नहीं होते। वहाँ जा बसनेसे पहले उन्हें मालूम था कि उन्हें बहुत-सी कठिनाइयोंका, यहाँतक कि गाँववालोंकी उदासीनता और उपेक्षाका भी सामना करना पड़ेगा। इसलिए जिन्हें अपने ऊपर पूरा विश्वास है और अपने उद्देश्यके प्रति सच्ची श्रद्धा है, वही लोग गाँवोंकी सेवा कर पायेंगे और ग्रामवासियों पर अपना-कल्याणकारी प्रभाव डाल सकेंगे। लोगोंके बीच सच्चा जीवन व्यतीत करना अपने-आपमें एक बहुत बड़ा पदार्थ-पाठ है और आसपासके परिवेशपर उसका प्रभाव निश्चित रूपसे पड़ता है। इस युवककी कठिनाई शायद यह है कि वह सेवाकी भावना के बिना जीविकोपार्जनके उद्देश्यसे ही गाँवमें जा बसा है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि पैसेकी तलाशमें गाँवमें जानेवालोंके लिए ग्राम-जीवनमें कोई आकर्षण नहीं है। जिसे सेवाका लोभ नहीं है उसे नवीनताके आकर्षणके चुकते ही ग्राम-जीवन नीरस

लगने लगेगा। किसी भी नौजवानको, एक बार गाँवमे वस जानेके वाद जरा-सी कठिनाईके सामने आते ही गाँवको छोड़ नही देना चाहिए। धीरजके साथ अपने काममे लगे रहकर देखनेपर पता चलेगा कि गाँववाले शहरवालोसे वहुत भिन्न नही है, और अगर उनके साथ प्रेम और कोमलताका व्यवहार किया जाये और उनकी ओर ठीक ध्यान दिया जाये तो वे भी ठीक उत्साह दिखायेंगे और सहयोग करेंगे। यह सच है कि गाँवमे देशके बडे लोगोके सम्पर्कमे आनेका अवसर नही मिलता। लेकिन ग्राम-मनोवृत्तिका विकास होनेपर नेताओको गाँवोमे जाकर ग्रामवासियोसे जीवन्त सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक लगने लगेगा। इसके अतिरिक्त, चैतन्य, रामकृष्ण, तुलसीदास, कबीर, नानक, दादू, तुकाराम, तिरुवल्लुर-जैसे सन्तोकी कृतियोके माध्यमसे महान् सत्पुरुषोका सम्पर्क तो सवको सुलभ है। ऐसे ही और भी वहुत-से सन्त हो गये है, जिनके नाम गिनाना तो यहाँ असम्भव है किन्तु जो उपर्युक्त सन्तोके ही समान प्रसिद्ध और धर्मप्राण महापुरुष थे। कठिनाई है तो यही कि मनको इन स्थायी महत्त्वकी बातोको ग्रहण करने योग्य कैसे वनाया जाये। अगर तात्पर्य आधुनिक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एव वैज्ञानिक चिन्तनसे हो, तो ऐसी जिज्ञासाको शान्त करनेवाला साहित्य भी प्राप्त किया जा सकता है। फिर भी, मै यह स्वीकार करता हूँ कि जितनी आसानीसे धार्मिक साहित्य मिल जाता है उतनी आसानीसे यह साहित्य नही मिल सकता। सन्तोने जो कुछ लिखा, जो भी कहा, सब जनसाधारणके लिए। आधुनिक चिन्तनको जनसाधारण के ग्रहण करने योग्य रूपमे प्रस्तुत करनेकी प्रवृत्ति अभी ठीकसे आरम्भ नही हो पाई है। लेकिन यथासमय यह प्रवृत्ति अवश्य आयेगी। इसलिए इस पत्र-लेखक-जैसे नौजवानोको मै तो सलाह दूँगा वे हार न माने, वल्कि अपने प्रयत्नमे जुटे रहे और गाँवोमे रहकर उन्हे अधिक प्रिय और रहने-योग्य बनायें। यह काम वे गाँवोकी सेवा करके कर सकेंगे और यह सेवा भी इस रीतिसे करनी होगी जो गाँववालोको स्वीकार्य हो। हर सेवक अपने श्रमसे गाँवोंको साफ-सुथरा बनाकर और अपनी सामर्थ्य-भर निरक्षरताको मिटाकर इस दिशामे शुरूआत कर सकता है। और अगर इन लोगोका जीवन स्वच्छ, सुव्यवस्थित और श्रममय होगा तो इसमे कोई सन्देह नही कि उसका सक्रामक प्रभाव उन गाँवोमे भी फैलेगा जिनमे वे काम करते होगे।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २०-२-१९३७

३९०. हरिजन-सेवकका धर्म[1]

एक हरिजन-सेवक लिखते है :[2]

सुधारक लोगोकी कब 'चिढ़ाता' है और कब 'लोगोका भ्रम दूर करता है', इसका उत्तर देना असम्भव नही है। एक ही कार्यसे अथवा एक ही वचनसे चिढ भी पैदा हो सकती है और भ्रम भी दूर हो सकता है। इसका निर्णय प्रत्येक व्यक्ति पर ही छोड़ना चाहिए। इतना निश्चयपूर्वक अवश्य कह सकते है कि किसीको चिढ़ाने के लिए हम कुछ न करें; और भ्रम दूर करनेकी कोशिश अवश्य करे। जब सुधारकी सब क्रिया स्वाभाविक बन जाती है, तब चिढ़ानेका प्रश्न पैदा नही होता। क्योकि स्वभावको कौन छोड़ सकता है, और जब क्रिया या वचन स्वाभाविक होते है तब किसीको उससे चिढ पैदा नही होती। इसलिए अच्छा तो यही है कि सुधारक अपने कर्त्तव्यका पालन कर्त्तव्य समझकर ही करें, और दूसरे किसी खयालसे न करें। ऐसा करनेसे अपने-आप भ्रम दूर हो जायेगा।

हरिजन-सेवक, २०-२-१९३७

३९१. हरिजन व इतरजन

एक सज्जन लिखते है.[3]

आवश्यकता अवश्य है। यदि सब हरिजन-शालाओमे ज्यादातर सवर्ण लड़के आ जाये तो भविष्यमे हरिजन लडकोके शिक्षारहित रह जानेका भी पूरा डर है। इसलिए प्रत्येक सवर्ण लड़केसे कुछ-न-कुछ फीस लेनी ही चाहिए। यह सम्भव है कि सवर्ण लड़के भी हरिजन लड़कोके जैसे ही गरीब हो। यदि ऐसा है तो विहार ह० से० संघको विहार-विद्यापीठके साथ मश्विरा करके जितने सवर्ण लड़के पाठशालामें

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत छपा था।

२. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने लिखा था कि सुधारक सार्वजनिक रूपसे तो हरिजनोंके हाथसे बिना किसी हिचकिचाहटके खा-पी लेते हैं, किन्तु अपने घरोंमें वे ऐसा नहीं करते, क्योंकि इससे उन्हें लोगोंके चिढनेका भय होता है।

३. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने लिखा था कि बिहारमें एक ऐसी हरिजन पाठशाला है जिसमें हरिजन लड़कोंकी अपेक्षा सवर्ण लड़कोंकी संख्या अधिक है; क्योंकि वहाँ मुफ्त शिक्षा दी जाती है। उन्होंने इस बातकी ओर भी ध्यान दिलाया था कि हरिजन-सेवक संघकी नीतिके अनुसार तो सवर्ण लड़कोंसे फीस ली जानी चाहिए और अन्तमें पूछा था कि क्या इस बातको और अधिक स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है।

आये उनके लिए विद्यापीठसे खर्चेका हिस्सा लेना चाहिए। विद्यापीठका क्षेत्र अमर्यादित है, ह० से० सघका मर्यादित है, और होना भी चाहिए। इसलिए सवर्ण लड़कोको मुफ्त सिखाना ह० से० सघके लिए अनुचित होगा। विद्यापीठके लिए शायद धर्म होगा।

हरिजन-सेवक, २०-२-१९३७

३९२. पत्र : के० बी० जोशीको

सेगाँव, वर्धा
२० फरवरी, १९३७

प्रिय जोशी,

तुम्हारे और महादेव देसाईके बीच हुए पत्र-व्यवहारको पढकर मैंने तय किया कि तुम्हे तो मै खुद ही लिखूंगा। इसीलिए तुम्हारे पत्रका उत्तर देनेमे देर हुई। देखता हूँ, तुम्हे लगता है कि तुम्हारे साथ अन्याय हो रहा है और इसीसे तुम चिढे हुए हो। मै तुम्हे भरोसा दिलाता हूँ कि तुम्हे नाराज और दुखी करनेका कोई इरादा नही है। जाजूजी और कुमारप्पाने तुम्हारे सहयोगकी प्रशसा की है और विशेषज्ञकी हैसियतसे अपने ज्ञान और मार्ग-दर्शनका जो लाभ तुमने अ० भा० ग्रामोद्योग सघको दिया है, उसकी भी तारीफ की है। बेशक, मुझे यह मालूम है कि तुमने मेरे आदेश और अनुरोधपर ही कागज-विभागको सुचारु रूप देनेके लिए वहाँ आना मजूर किया। मै तुम्हारी योग्यता जानता हूँ और तुमने ऐसी देशभक्तिकी भावनासे प्रेरित होकर जो सेवाएँ अर्पित की है उन्हे मै खोना नही चाहता। मुझे यह भी मालूम है कि हमारे देशमे विशेषज्ञ बहुत कम है, और जो है उनमे गाँवोकी भलाईके लिए अपनी सेवाएँ मुफ्त देनेवालोको अँगुलियोपर गिना जा सकता है। तुम ऐसे ही चन्द लोगोमे से हो। इसलिए तुम्हारे नाराज होनेसे तो काम नही चलेगा। अत समय मिलते ही चले आओ। ऐसा इन्तजाम मै खुद कर दूँगा कि तुम्हारी नाराजगीका कोई कारण न रहे। तुम्हारी सहायतासे कागज-विभागको मै बिलकुल चुस्त-दुरुस्त बना देना चाहता हूँ। अभी वह वैसा नही है, यह तो मै जानता ही हूँ।

हृदयसे तुम्हारा
मो० क० गांधी

[पुनश्च :]

खजूरसे बनाई तुम्हारी शक्करका नमूना मुझे पसन्द आया। इस ग्रामोद्योगको विकसित करनेमे भी मै तुम्हारी सहायता चाहता हूँ।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७६२) से।

३९३. पत्र : बलवन्तसिंहको

[२० फरवरी, १९३७][1]

चि० बलवतसिह,

तुमारे खत आते रहते है। विचारा लाखा[2] तुमारी इतेजारीमे रोता है। तो भी दाक्तर साहब छुट्टी न दे तबतक वही रहो। हम लोग किसी-न-किसी तरह निभा लेगे। मीराबहनकी झोपडी शुरू हो गई है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फ़ोटो-नकल (जी० एन० १८९०) से।

३९४. पत्र : बलवन्तसिंहको

२० फरवरी, १९३७

चि० बलवन्तसिंह,

आज फजर[3]मे दो लाइने भेज दी। मैं कुमारप्पाकी भारी गाडी रोकुं तो ज्यादा लिख सकता है। लेकिन मैंने रोकना दुरस्त नहीं माना। बाये हाथसे लिखनेकी गति बहुत मंद चलती है।

अधिराईसे आराम होनेमे देर ही होनेवाली है। धीरजसे ही बन सकता है। सीवील सर्जनका कहना है कि तुम्हारे खुनकी अशुद्धि आजकलकी नही है। बहुत दिनोकी है। इसलिये देर होती है। वहाँ क्या काम करने है? समय कैसे व्यतीत होता है? खोराक क्या चलता है? चित्तकी प्रसन्नता भी आराममें मदद देनेवाली वस्तु है। गीताभ्यासी [का] तो येन केन चित्त संतुष्ट होना चाहिये। यह १२ अध्यायका वचन है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १८९५) से।

१. यह तारीख बलवन्तसिंह द्वारा दी गई है।

२. एक बछड़ा।

३. सुबह।

३९५. पत्र : बलवन्तसिंहको

२० फरवरी, १९३७

चि० बलवंसिह,

धीरज रखो। मै सर्जनको लिखुगा।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १८६८)से।

३९६. टिप्पणियाँ

निर्दोष विनोद

श्री किशोरलाल मशरूवाला गत वर्ष बिहारमे गाधी सेवा-संघकी ओरसे दौरा करने गये थे। वे सथाल परगना भी गये। वहाँके लोग साधारणतया बहुत गरीब है। आधुनिक सभ्यतासे अभीतक वे अछूते ही है, ऐसा कहा जा सकता है। श्री किशोरलालजी अपनी यात्रामे इस परगनेके एक गाँवमे जा पहुँचे। वहाँका मुखिया था तो अपढ, पर वह अपने काममे होशियार था। उसके सम्बन्धमे श्री किशोरलाल लिखते है:

> आदमी था तो वह अपढ़, पर उसने अपनी बात बड़ी मार्मिक रीतिसे रखी। ऐसा नहीं लगा कि वह सिखाया-पढ़ाया बोल रहा है। गाँवोके लोगोमें एक तरहका निर्दोष विनोद होता है, यह मैंने उस मुखियाके विषयमें अनुभव किया। उसने कहा, 'हमें एक ही कष्ट है — हमारे यहाँ जब अकाल पड़ता है, तब फसल मर जाती है, ढोर मर जाते है, आदमी मर जाते है, कुओंका पानी मर जाता है, पर लगान और सूद ये दो कभी नहीं मरते। बस, इतना ही दुःख है।

विनोद न हो तो आदमीका निभाव ही न हो सके। और फिर गाँवोके लोगोके पास शहरोकी तरह समय काटनेका कोई साधन नही होता। समय काटनेके साधन होने चाहिए, यह मै नही मानता। जहाँ सुव्यवस्था होती है, वहाँ समय काटनेका प्रश्न ही नही। काटने-लायक वक्त आदमीके पास है ही कहाँ? अपने कर्त्तव्यका पालन करने-लायक ही समय मनुष्यको मिलता है। उसके बदले बहुत-सा वक्त हम यो ही बेकार जाने देते है, और इसीसे भुखमरी अनुभव करते है। आदमी काम

करनेसे कुछ घिस नही जाता। काम करनेसे तो वह ताजा रहता है, और सब तरहसे प्रगति करता है। घिसता है चिन्तासे, न करने-लायक काम करनेसे, समय गँवानेसे। वह मुखिया कटु अनुभव होते हुए भी विनोद कर सका, क्योकि वह अपने काममें आलस्यको नही फटकने देता होगा। हम तो उसके इस विनोदको, कष्टो के होते हुए भी वह जिस आनन्दका अनुभव कर पाता है, उसकी निशानी मानेंगे।

वस्त्र-स्वावलम्बन

उसी पत्रमे, दूसरे सन्थालोके बारेमे श्री किशोरलाल लिखते है.

> हजारीबाग जिलेमें सन्थालोंकी 'मांझी' नामकी एक जाति है। वहाँ वस्त्र-स्वावलम्बनका बहुत अच्छा काम देखनेमें आया। बिहारमें उद्यम तो एक इसी गाँवमें देखा। बूढ़े, जवान, बालक, स्त्री, पुरुष, सब-के-सब या तो चरखा चला रहे थे, या तकली। खादी हरएकके शरीर पर थी। कुछ तो ऐसे थे कि जिन्होने आठ-आठ दस-दस सालसे कपड़ा नहीं खरीदा। और रूई भी ज्यादातर उनकी अपनी ही थी।

जो चीज इन भोले-भाले सन्थालोमें हो सकी है, वह किसी भी जगह परिश्रम से संभव होनी चाहिए। ऐसा होते हुए भी वस्त्र-स्वावलम्बनने समाजमें बहुत थोड़ा प्रवेश किया है। इसके कारणोका पता लगाना खादी-सेवकोका काम है। इस गाँवमे स्वावलम्बन कैसे सफल हो सका? क्या खादी-आन्दोलन शुरू होनेसे पहले ही वहाँ यह काम होता था? या किसी सेवककी प्रेरणासे यह काम हुआ? वे कितनी खादी उपयोगमें लाते हैं, कितने अंकका सूत कातते हैं, उनकी कातने, पीजनेकी रफ्तार कैसी है, उनके औजार कैसे हैं, और दूसरा क्या काम करते हैं? ये और ऐसे ही प्रश्नोके उत्तर इस गाँवके बारेमें मिलने चाहिए। इसका पता लग जाये तो फिर उससे यह मालूम हो सकता है कि दूसरी जगह स्वावलम्बन सिद्ध क्यो नही हो पाता। इस गाँवकी स्थिति चाहे जैसी हो, मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हम लोगोमे खादी-विज्ञानके विशारद पैदा हो जाये तो इस कार्यमे हमें अवश्य सिद्धि मिल सकती है। क्योकि स्वावलम्बनकी कल्पनामे कोई दोष देखनेमे नही आता। और यह इतिहाससिद्ध बात है कि एक जमानेमे हिन्दुस्तान कपडोके सम्बन्धमे स्वावलम्बी था।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २१-२-१९३७

३९७. पत्र : बलवन्तसिंहको

२१ फरवरी, १९३७

चि० बलवतसिंह,

खत मिला।

शहद या खजुरसे फोडे होनेका कोई कारण नही पाता हू। तब भी डा[क्टर]से पूछा जाय। दूध और भाजीका अभाव या उसकी कमी और अधिक घेऊ यह कारण तो थे ही। और सबसे ज्यादा तुम्हारा उग्र स्वभाव।

अग्रेजी जाननेकी ग्रा[म] स्वसेवकोके लिये कोई आवश्यकता नही है। यो तो भाषामात्रका ज्ञान अच्छा ही है। तुम्हारा प्रश्न इस दृष्टिसे पूछा नही गया है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १८९६)से।

३९८. पत्र : बलवन्तसिंहको

सेगाँव
२२ फरवरी, १९३७

चि० बलवतसिंह,

हा, गाय तो दूसरी अवश्य चाहीये यदि अच्छी हो तो। दाक्तर कहते है जल्दी अच्छे हो जाओगे।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १८९७) से।

३९९. पत्र : द० बा० कालेलकरको

सेगाँव
२३ फरवरी, १९३७

चि० काका,

इसके साथ एक पत्र भेज रहा हूँ, उसके लेखकसे सम्पर्क साधना। वह इतना जल्दबाज है कि अपना पता भी नही लिखता। लेकिन आदमी भला है, अपने काममे होशियार है और उसीमे, मस्त रहता है। उसे रेवरेण्ड लॉज, नेल्सन स्क्वायर, नागपुरके पतेपर लिख सकते हो। यदि किसीसे एक छोटी पुस्तक भूगोलकी, एक इतिहासकी, एक ज्यामितिकी, एक नक्शा और एक संस्कृत स्वयशिक्षक, मराठी अथवा हिन्दी, माँगकर भेज सको तो भेजना। कनुको सिखानेके लिए आधारके बतौर चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०८९७) से।

४००. पत्र : ताराबहन एन० मशरूवालाको

२३ फरवरी, १९३७

चि० तारी,

बहुत दिन बाद तेरा पत्र मिला। पाकर प्रसन्न हुआ। तू वैद्यका इलाज कराने गई है, यह मुझे अच्छा लगा। मेरी तो यही इच्छा है कि किसी प्रकार तेरा शरीर मजबूत हो जाये। तू अस्थिरचित्त, बेकार-जैसी रहे, यह मुझसे बिलकुल सहन नही होता। मै तुझसे बहुत काम लेनेकी आशा सँजोये बैठा हूँ, उसे सफल करना। सोमवारके सिवा अन्य दिनोंमे मै अपने दाहिने हाथको आराम देता हूँ, और अधिकतर गुजराती पत्र मनु अथवा विजयासे लिखवाता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७००) से। सी० डब्ल्यू० ४३४५ से भी; सौजन्य: कनुभाई एन० मशरूवाला।

४०१. पत्र : बलवन्तसिंहको

२३ फरवरी, १९३७

चि० बलवंतसिंह,

मेरी कलकी चिट्ठी मिली होगी। बुखार आया अब तो गया होगा। गभराहट की कोई आवश्यकता नही है। धीरजसे सब अच्छा ही हो जायेगा। हा, 'किसमत से जिसको राम मिले' भजन अवश्य मनन करने योग्य है। अगर मच्छर कष्ट देते है तो मच्छेरीका उपयोग करना चाहिये।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १८९८) से।

४०२. पत्र : आनन्द तो० हिंगोरानीको

२४ फरवरी, १९३४

प्रिय आनन्द,

मेरे हृदयकी कठोरता केवल दिखावटी है। कनु जिस घावसे पीड़ित था उस पर मै केश-तेल नही लगाना चाहता था। वह चिल्लाता रहा, परन्तु मै भी अड़ा रहा। मै उस लड़केके प्रति काफी हदतक निर्मम हो गया था, परन्तु असलमे मै दयालु ही था। विना किसी कारणके तुम्हे यहाँ बुलानेसे क्या फायदा। तुम्हारी व्यथा मानसिक है। भाई-बहन प्राय: पृथक् रहते है, फिर भी खुश रहते है। यदि पति-पत्नीके लिए सयुक्त जीवन बिताना असम्भव हो जाता है तो वे भी ऐसा ही करते हैं। विद्याकी बीमारी भी दुखी होनेका कोई कारण नही है। इसलिए तुम्हे पारिवारिक अथवा अन्य विपदामे भी बहादुरीसे तथा हँसते-हँसते जीना सीखना चाहिए। आशा है, विद्या स्वस्थ हो जायेगी। इसमे सन्देह नही कि अप्रैलके बाद ठंडी आबोहवाकी आवश्यकता होगी।

आशा करता हूँ कि पेंसिलकी यह लिखावट पढ ली जायेगी।

तुम दोनोको प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्मसे, सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार और आनन्द तो० हिंगोरानी।

४०३. पत्र : विद्या आ० हिंगोरानीको

सेगाँव
२४ फरवरी, १९३७

चि० विद्या,

तुमारे व्याधिसे गभराना नही है। व्याधि मात्र हमारी परीक्षाके लिये है। तुमारे धैर्य रखना है। ईश्वर भला ही करेगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी माइक्रोफिल्मसे; सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार और आनन्द तो० हिंगोरानी।

४०४. भेंट : डॉ० क्रेनको[1]

[२५ फरवरी, १९३७][2]

गांधीजी : बेशक, ईसाई धर्मके प्रति अपने विचार मैं आपको बताऊँगा। जब मैं केवल १८ वर्षका था, तभी कुछ बहुत ही नेक ईसाइयोंसे मेरा सम्पर्क हुआ था। इससे पहले भी ईसाइयोंसे मेरा सम्पर्क हुआ था, लेकिन उन्हें तो मैं "गोमांस और बियरकी बोतल छाप ईसाई" कहा करता था, क्योंकि ईसाई बननेवालेके लिए ये दो गुण अनिवार्य माने जाते थे — और एक तीसरा भी, यानी यूरोपीय ढंगकी पोशाक पहनना। ये ईसाई सन्त पॉलकी 'किसी वस्तुको अशुद्ध न कहो' वाली शिक्षाका हास्यास्पद अनुसरण करते थे। इसलिए जब मैं लन्दन गया तो मेरे मनमें यह पूर्वाग्रह बना हुआ था। वहाँ बहुत ही भले ईसाइयोंसे मेरा सम्पर्क हुआ और उन्होंने मुझसे 'बाइबिल' पढ़नेको कहा। इसके बाद दक्षिण आफ्रिकामें बहुत-से ईसाइयोंसे मेरा मेल-जोल हुआ। तबसे मेरे मनमें यह विश्वास जमता चला गया है कि ईसाई-धर्म उतना ही

१. महादेव देसाईके "वीकली लैटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। अमेरिका-निवासी डॉ० क्रेन पादरी थे। प्रथम विश्वयुद्धमें वे सेनामें काम कर रहे थे। लेकिन युद्धमें होनेवाली हिंसाको देखकर उनके मनमें ऐसी वितृष्णा जगी कि उन्होंने लड़ाईके दौरान ही सेनाकी नौकरी छोड़ दी। शेष जीवन वे धर्म-साधनामें बिताते रहे और युद्धका विरोध करते रहे। गांधीजी से मिलनेपर उन्होंने विशेष रूपसे ईसाई-धर्म और सामान्य रूपसे धर्म-मात्रके सम्बन्धमें उनके विचार जाननेकी इच्छा व्यक्त की।

२. तारीख महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे ली गई है।

अच्छा और सच्चा धर्म है जितना स्वयं मेरा धर्म। कुछ समयतक मेरे मनमें यह ऊहापोह चलता रहा कि मैं जितने धर्मोको जानता हूँ उनमें सच्चा कौन है। लेकिन बहुत विचार करनेके बाद अन्तमें मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा कि मनमें ऐसा खयाल लाना ही गलत है कि कोई एक धर्म सच्चा है और बाकी सब झूठे हैं। कोई भी धर्म सर्वथा पूर्ण, पूरी तरह निर्दोष नहीं है। सभी समान रूपसे अपूर्ण हैं या कहिए कि सभी न्यूनाधिक पूर्ण हैं, निर्दोष हैं। तो इससे यह निष्कर्ष निकला कि ईसाई धर्म भी उतना ही श्रेष्ठ है जितना मेरा अपना धर्म। लेकिन मेरा यही खयाल इस्लाम, यहूदी-धर्म या जरतुस्त-धर्मके बारेमें भी है।

इसलिए इस वचन[1] को मैं अक्षरशः सत्य नहीं मानता कि केवल ईसा मसीह ही जन्मना ईश्वरके पुत्र हैं। ईश्वर किसी एकका ही पिता नहीं हो सकता और न यह हो सकता है कि देवत्वका आरोप मैं केवल ईसामें ही करूँ। उनमें भी वैसा ही देवत्व है जैसा कृष्ण या राम, मुहम्मद या जरतुश्तमें है। इसी प्रकार, जैसे मैं 'वेदों' या 'कुरान' के प्रत्येक शब्दको दिव्य नहीं मानता, वैसे ही 'बाइबिल' के भी हर शब्द को दिव्य नहीं मानता। हाँ, इन ग्रन्थोंका सार अवश्य ही दिव्य है। लेकिन अगर इनके वचनोंको अलग-अलग देखता हूँ तो उनमें बहुत-से वचन ऐसे निकल आते हैं जिनमें मुझे कुछ भी दिव्य दिखाई नहीं देता। 'बाइबिल' भी उसी तरह एक धर्म-ग्रन्थ है जिस तरह 'गीता' और 'रामायण'।

इसीलिए मेरे मनमें ऐसा कोई खयाल नहीं है कि मैं आपको ईसाई-धर्मसे विमुख करके हिन्दू बना लूँ, और अगर आप मुझे ईसाई बनानेकी सोचें तो यह बात भी मुझे अच्छी नहीं लगेगी। मैं आपके इस दावेका भी विरोध करूँगा कि एकमात्र सच्चा धर्म ईसाई-धर्म ही है। यह बात जरूर है कि यह भी एक अच्छा और उदात्त धर्म है और मनुष्यको नैतिक रूपसे ऊपर उठानेमें अन्य धर्मोके साथ-साथ इसने भी योगदान किया है, लेकिन अभी इसे इससे भी बड़ा योग देना है। किसी धर्मके इतिहासमें २,००० वर्षका काल तो कुछ होता ही नहीं है। आज तो व्याकुल मानवताके सामने ईसाई-धर्म दूषित रूपमें ही पेश किया जा रहा है। जरा सोचिए तो कि बड़े-बड़े पादरी ईसाई-धर्मके नामपर हत्या और रक्तपातका समर्थन करें, यह कैसी बात है!

डॉ० क्रेन : आप कहते हैं कि सभी धर्म सच्चे हैं, लेकिन जहाँ उनकी शिक्षाओं में परस्पर विरोध दिखाई देता है वहाँ आप क्या करते हैं?

गा० : मुझे सत्य ढूँढनेमें कोई कठिनाई नहीं होती, क्योंकि मैं कुछ मौलिक सिद्धान्तोंके अनुसार चलता हूँ। सत्यको मैं सर्वोपरि मानता हूँ और इसलिए जो बातें मुझे उसके विरुद्ध प्रतीत होती हैं उन्हें मैं तुरन्त अस्वीकार कर देता हूँ। इसी प्रकार जो बातें अहिंसा-धर्मके विपरीत जान पड़ें उन्हें भी अस्वीकार कर देना चाहिए। और जो बातें बुद्धिगम्य हैं, वे अगर बुद्धिकी कसौटीपर खरी न उतरें तो उन्हें अस्वीकार कर देना चाहिए।

१. सेंट जॉन ३ : १६।

डॉ० क्रेन: जो बातें बुद्धिगम्य हैं उनमें?

गा०: हाँ, उनमे। बात यह है कि ऐसे विषय भी हैं जिनके सम्बन्धमे हम बुद्धिके धरातलपर कुछ तय नही कर सकते। ऐसी बातोको हमे श्रद्धाके आधार पर स्वीकारना-नकारना है। वैसी स्थितिमे बुद्धि श्रद्धाके विरुद्ध नही जाती, बल्कि उससे ऊपर उठकर हमे रास्ता दिखाती है। श्रद्धा एक प्रकारकी छठी सज्ञा है, जो बुद्धिकी परिसीमासे बाहर पडनेवाले विषयोके सम्बन्धमें हमे सहारा देती है। तो इन तीन कसौटियोकी सहायतासे मुझे धर्मके नामपर कही गई किसी भी बातकी सचाई परखनेमे कोई कठिनाई नही होती। उदाहरणके लिए यह बात मेरी बुद्धिको नही जँचती कि केवल ईसा मसीह ही जन्मना ईश्वरके पुत्र है, क्योंकि ईश्वर विवाह करके सन्तान पैदा नही कर सकता। यहाँ 'पुत्र' शब्दका प्रयोग लाक्षणिक अर्थमे ही हो सकता है। इस अर्थमे जो ईसाके-जैसे गुणोसे युक्त है, ऐसा हर आदमी ईश्वरका पुत्र है। यदि कोई व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टिसे हमसे बहुत अधिक ऊपर उठा हुआ है तो हम कह सकते है कि वह एक विशेष अर्थमे ईश्वरका पुत्र है, यद्यपि उसकी सन्तान तो हम सब है। हम अपने जीवनके व्यवहारमें उसके साथ अपने सम्बन्धोको त्याग देते है, लेकिन ईसाका जीवन उन सम्बन्धोका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

डॉ० क्रेन: तब तो कहना होगा कि आप इस बातको मानते हैं कि किसीमें अधिक देवत्व होता है और किसीमें कम। क्या आप यह नहीं कहना चाहेंगे कि सबसे अधिक देवत्व ईसामें ही था?

गा०. नही, नही कहना चाहूँगा और इसका सीधा-सा कारण यह है कि हमारे पास ऐसे कोई तथ्य तो हैं नही। ऐतिहासिक दृष्टिसे हमारे पास अन्य ऐसे पुरुषोकी अपेक्षा मुहम्मदके सम्बन्धमे अधिक तथ्य हैं, क्योकि उनका जन्म औरोसे बादमे हुआ। ईसाके बारेमे अपेक्षाकृत कम तथ्य प्राप्त हैं और बुद्ध, राम तथा कृष्णके सम्बन्धमे तो और भी कम। और जब हमें उनके सम्बन्धमे इतनी कम जानकारी प्राप्त है, तब ऐसा कहना क्या धृष्टता नही होगी कि इनमें से अमुकमे औरो से अधिक देवत्व था? सच तो यह है कि अगर हमारे पास बहुत सारे तथ्य हो तब भी किसीको उन तमाम साक्ष्योकी जाँच करनेका दायित्व अपने सिर नही लेना चाहिए — और किसी कारण नही तो कम-से-कम इसी कारण कि ऐसे महापुरुषोके देवत्वको मापनेके लिए बहुत ही अधिक आध्यात्मिक ऊँचाईवाले आदमीकी जरूरत है। यदि कोई कहे कि ईसामे ९९ प्रतिशत देवत्व था, मुहम्मदमे ५० प्रतिशत और कृष्णमे १० प्रतिशत तो मै तो कहूँगा कि वह एक ऐसे विषयमें दखल देनेकी धृष्टता कर रहा है जो वास्तवमे मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है।

डॉ० क्रेन: लेकिन अब हम जरा एक विवादास्पद विषयको लें। मान लीजिए, मै इस विषयपर विचार कर रहा हूँ कि हिंसा धर्म है या नहीं। इस सम्बन्धमें इस्लाम मुझे कुछ आदेश देगा और ईसाई-धर्म कुछ और।

गा०: उस हालतमे मै तो इसका निर्णय अपनी उक्त कसौटियोकी सहायतासे करूँगा।

डा० क्रेन : लेकिन क्या मुहम्मदने परिस्थिति-विशेषमें तलवारका सहारा लेनेका आदेश नहीं दिया है?

गां० : मेरा खयाल है, अधिकाश मुसलमान इस बातसे सहमत होंगे, लेकिन मै धर्मको दूसरी दृष्टिसे देखता हूँ। खानसाहब अब्दुल गफ्फार खाँने 'कुरान' से ही अहिंसाकी शिक्षा पाई है और लन्दनके विशपने हिंसाकी शिक्षा 'बाइबिल' से ग्रहण की है। अहिंसामे मेरे विश्वासका आधार 'गीता' है, लेकिन ऐसे भी लोग है जिन्हे उससे हिंसाका ही सन्देश मिलता दिखाई देता है। लेकिन अब हम बुरी-से-बुरी बात की कल्पना कर ले — समझ लीजिए कि मै इसी निष्कर्षपर पहुँचता हूँ कि 'कुरान' हिंसाकी शिक्षा देती है तो उस स्थितिमे मै हिंसाको अवश्य अस्वीकार कर दूंगा, लेकिन यह नही कहूँगा कि 'बाइबिल' 'कुरान' से श्रेष्ठ है। ईसा और मुहम्मदके बारेमे फतवा देनेका काम मेरा नही है। मेरे लिए इतना काफी है कि मेरी अहिंसा धर्मग्रन्थोके आदेशोकी मुखापेक्षी नही है। लेकिन तब भी इस तथ्यसे कौन इनकार कर सकता है कि मानव-जाति पर जितना प्रभाव धर्मग्रन्थोका है उतना अन्य किसी ग्रन्थका नही। मार्क ट्वेनकी अपेक्षा या, अधिक उपयुक्त उदाहरण ले तो, इमर्सनकी अपेक्षा उन्होने मुझे अधिक प्रभावित किया है। इमर्सन चिन्तक थे। ईसा और मुहम्मद पूर्ण रूपसे कर्मयोगी थे। इमर्सन उस अर्थमें कर्मयोगी हो ही नही सकते। ईसा और मुहम्मदकी शक्तिका स्रोत ईश्वरमे उनकी श्रद्धा थी।

डॉ० क्रेन : अब मै अपना आशय स्पष्ट करनेके लिए एक ठोस उदाहरण देता हूँ। सोमवारको मैंने जो दृश्य देखा, उससे मेरे मनको भारी आघात पहुँचा। मुसलमानोंने सड़कोंपर सरेआम ३७ गायोंको धर्मके नामपर कत्ल कर दिया और इस तरह हिन्दुओंकी भावनाको गहरी चोट पहुँचाई। मेरे साथ जो हिन्दू मित्र सफर कर रहे थे उनसे मैंने पूछा कि मुसलमान ऐसा क्यों करते हैं। उन्होंने बताया कि यह उनके धर्मका अंग है। इसपर मैंने पूछा, क्या यह उनके आध्यात्मिक विकासका हिस्सा है? उत्तर मिला, 'हाँ'। एक मुसलमानसे मिला तो उन्होंने कहा, 'ऐसा करके हम खुदाको भी खुश करते हैं और अपने-आपको भी।' तो यह था एक मुसलमान, जिसको ऐसा काम करनेमें मजा आता है जिससे आपको चोट पहुँचती है और मुझे भी। क्या आपका खयाल है कि यह सब 'कुरान' की शिक्षाके विरुद्ध है?

गां० : हाँ, वास्तवमे मेरा यही खयाल है।[1]

जिस प्रकार हिन्दुओके बहुत-से रीति-रिवाज — जैसे अस्पृश्यता — हिन्दू-धर्मके अग नही है, उसी प्रकार, मै कहता हूँ, गोकुशी भी इस्लामका अग नही है। लेकिन जो मुसलमान मानते है कि वह इस्लामका अग है, उनसे मै झगडा भी नही करता।

१. यहाँ गांधीजीने अपने लेख "उदारताकी आवश्यकता" का उल्लेख किया; देखिए पृ० ३६८-७०।

डॉ० क्रेन : धर्मान्तरणके प्रयत्नोंके बारेमें आपका क्या कहना है?

गां० : सर्वथा अज्ञ और भोले-भाले लोगोके सामने उनका धर्म बदलनेकी बात करना मुझे बहुत बुरा लगता है। अगर कोई मुझसे ऐसी बात करे और वास्तवमे मुझसे ऐसी बात की भी जाती रही है—तो इसे शायद मै किसी तरह ठीक मान लूँ। कारण, वे अपनी बात मुझसे तर्कपूर्वक कह सकते है, मै अपनी बात उनसे उसी तरह तर्कपूर्वक कह सकता हूँ। लेकिन हरिजनोसे ऐसी चर्चा चलाना मुझे निश्चय ही बहुत बुरा लगता है। अगर कोई ईसाई किसी हरिजनके पास जाकर कहे कि केवल ईसा मसीह ही जन्मना ईश्वरके पुत्र थे तो वह उसे विस्फारित नेत्रोसे देखता ही रह जायेगा। और वह उससे इतना ही नही कहता; ऊपरसे तरह-तरहके प्रलोभन भी देता है। यह बात ईसाई-धर्मको नीचे गिराती है।

डॉ० क्रेन : तो क्या आपका कहना यह है कि हरिजनमें सोचने-समझनेकी शक्ति होती ही नहीं?

गां० : नही, होती है। उदाहरणके लिए, अगर आप उससे बिना मजदूरीके काम कराना चाहे तो वह नही करेगा। उसे नैतिक मूल्योका भी थोडा बोध है। लेकिन अगर आप उनसे धार्मिक विश्वासो और तात्त्विक धारणाओको समझनेको कहेगे तो वे कुछ नही समझ पायेगे। मै तो १७ सालकी उम्रमे भी, जब मै किसी हदतक अच्छी शिक्षा और प्रशिक्षण प्राप्त कर चुका था, इन बातोंको नही समझता था। सनातनी हिन्दुओने हरिजनोकी ऐसी भयकर उपेक्षाकी है कि यह देखकर आश्चर्य होता है कि वे आज भी हिन्दू कैसे बने हुए हैं। कोई उस धर्ममे उनके विश्वास को डिगानेका प्रयत्न करे, इसे मै बर्बरता कहूँगा।

डॉ० क्रेन : जो आदमी यह कहे कि उसे तो ईश्वरने हिंसा करनेका आदेश दिया है, उसके बारेमें आप क्या कहेंगे?

गां० : उसके सामने आप दूसरा ईश्वर न रखे। जरूरत उसके धर्मको बदलनेकी नही, बल्कि उसके विवेकको जाग्रत करके उसका विचार बदलनेकी है।

डॉ० क्रेन : लेकिन हिटलरको लीजिए। उनका कहना है कि यहूदियोंपर अत्याचार करके और अपने विरोधियोंकी हत्या करके वे ईश्वरके आदेशका पालन कर रहे हैं।

गां० : तब आप ऐसा नही कर सकते कि उनसे कहे, 'नही, ईश्वरका आदेश तो यह है।' आपको उनके बुद्धि-विवेकको जाग्रत करके उन्हे अपने दृष्टिकोण का कायल करना होगा। उनको सही रास्तेपर लानेके लिए आपको चमत्कार करके दिखाना होगा। और वह चमत्कार क्या है? यही कि जो वस्तु ईसाइयोको अपने धर्मसे भी अधिक प्रिय है उसकी रक्षा करनेके लिए वे अपने विरोधीको मारे बिना मरना सीखे। लेकिन इस तरह तो हमारी बहसका कही अन्त ही नही होगा। और क्या मै आपको यह याद दिलानेकी धृष्टता कर सकता हूँ कि आपका समय हो चुका है?

इतना कहकर गांधीजीने अपनी घड़ी देखी।

डॉ० क्रेन : अब बस एक सवाल और। तो क्या आप यह कहेंगे कि आपका धर्म सभी धर्मोका मिश्रण है?

गां० : हाँ, आप चाहे तो ऐसा कह सकते है। लेकिन मै उस मिश्रणको हिन्दू-धर्म कहूंगा, और आपके लिए वह मिश्रण ईसाई-धर्म होगा। अगर मै इसे इस तरह स्वीकार न करूँ तो बहुत-से ईसाइयोकी तरह आप भी मेरे सरक्षक बनते हुए कहेगे, 'अगर गांधी ईसाई बन जाये तो कितना अच्छा हो।' और मुसलमान भी यही करेगे। वे भी कहेगे, 'कितना अच्छा हो, अगर गाधी मुसलमान बन जाये।' आपके ऐसी बात कहते ही मेरे और आपके बीच भेदकी दीवार खडी हो जाती है। आप बात समझ रहे है न?

डॉ० क्रेन : हाँ, समझता हूँ। बस, अब यह आखिरी सवाल। हिन्दू-धर्ममें क्या आप जाति-प्रथाको भी एक मूल तत्त्वकी तरह शामिल मानते है?

गां० . मै तो नही मानता। हिन्दू-धर्म जाति-प्रथामे विश्वास नही रखता। मै तो उसे अभी समाप्त कर देना चाहूँगा। लेकिन वर्ण-धर्ममे मेरा विश्वास जरूर है। वह तो जीवनका नियम है। मै मानता हूँ कि कुछ लोगोमे जन्मत शिक्षा देनेका गुण होता है, कुछमे रक्षा-कार्य करनेका गुण होता है, कुछमे उद्योग-व्यापार और खेती-बाडी करनेकी कुशलता होती है, और कुछमे शरीर-श्रम करनेकी। और उनमे अलग-अलग ये क्षमताएँ इतनी अधिक होती है कि ये सभी धन्धे वशानुगत बन जाते है। वर्ण-धर्म और कुछ नही, शक्ति-संयमका एक नियम है। अगर मै भगी हूँ तो मेरा बेटा भी भगी क्यो न हो?

डॉ० क्रेन : अच्छा? तो आप इस बातको इस सीमातक मानते है?

गां० · अवश्य मानता हूँ, क्योकि मै भगीके कामको पादरीके कामसे ओछा नही मानता।

डॉ० क्रेन : यह तो मै भी स्वीकार करता हूँ, लेकिन इस दृष्टिसे क्या लिंकनको सं० रा० अमेरिकाका राष्ट्रपति होनेके बजाय लकड़हारा होना चाहिए था?

गां० · लेकिन कोई लकडहारा अमेरिकाका राष्ट्रपति क्यो नही हो सकता? ग्लैड्स्टन भी तो लकड़ी काटते थे?

डॉ० क्रेन : काटते थे, लेकिन इस कामको उन्होंने अपना पेशा नहीं माना था।

गां० : लेकिन माना होता तो इससे उनका कोई नुकसान नही हो जाता। मेरे कहनेका मतलब यह है कि जिसने भगीके घर जन्म लिया है उसे भगीका काम करके अपनी रोटी कमानी चाहिए, और इतना कर लेनेके बाद वह चाहे जो करे, उसमे कोई बुराई नही है। कारण, किसी भगीको अपने कामके एवजमे उसी तरह पूरी जीविका पानेका हक है जिस तरह किसी वकीलको वकालतसे या आपके राष्ट्रपतिको राष्ट्रपतित्वसे। मेरे विचारसे यही हिन्दू-धर्म है। ससारमे इससे अच्छा साम्यवाद और कुछ नही है। इस बातको मैंने उपनिषदोके एक मन्त्रका उदाहरण देकर समझाया

है। उसका अर्थ इस प्रकार है: ईश्वर सृष्टिके कण-कणमे — जड़-चेतन सभीमे — व्याप्त है। इसलिए सब-कुछ त्याग करके, प्रभु-चरणोमे अर्पित करके जिओ। इस प्रकार जीनेका अधिकार हमे त्यागसे प्राप्त होता है। इसमे ऐसा नही कहा गया है कि 'जब सब अपना कर्त्तव्य निभायेगे, तब मैं भी अपना निभाऊँगा।' मेरा कहना भी यही है कि 'दूसरे क्या करते हैं, इसकी चिन्ता मत करो। तुम अपना कर्त्तव्य पूरा करो और शेष सब ईश्वरके अधीन छोड दो।' वर्ण-धर्म तो गुरुत्वाकर्षणके नियमके समान है — उसके प्रभावसे हम बच ही नहीं सकते। अगर मैं गुरुत्वाकर्षणके नियमको या उसकी क्रियाको निष्प्रभाव बना देनेके लिए दिन-दिन ऊपर चढते हुए ऐसी ऊँचाई पर पहुँच जानेकी कोशिश करूँ जहाँ उसका कोई प्रभाव न रह जाये, तो क्या मेरी यह कोशिश कामयाब होगी? नही, वह बेकार हो जायेगी। यही बात एक-दूसरेको दबाकर ऊपर चढनेकी कोशिशपर भी लागू होती है। वर्ण-धर्म विनाशकारी प्रतिस्पर्धासे ठीक उलटी चीज है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ६-३-१९३७

४०५. पत्र: कमलनयन बजाजको

सेगाँव
२६ फरवरी, १९३७

चि० कमलनयन,

तेरा पत्र मिला। तू गहराईमे उतर रहा है और यहाँसे सब तुझे जल्दी वापस बुलानेकी बात कर रहे है। तेरे श्वसुर भी जल्दी मचा रहे है। जानकीबहनकी भी यही इच्छा है। पिताजी भी लगभग यही चाहते है। मैं स्वय तटस्थ हूँ, यद्यपि मैं यह नही मानता कि तू वहाँसे बहुत-कुछ लेकर आनेवाला है। परन्तु जबतक तुझे स्वय वहाँ रहनेका लोभ हो, तबतक तुझे यहाँ बुलाना मुझे ठीक नही लगता। अगर तुझे व्यापारमे लगना हो,तो डिग्रीका मोह छोड देना चाहिए। तू बैरिस्टर बनकर क्या करेगा? ग्रेज्यूएट होकर क्या करेगा? जहाँतक मैं तुझे समझता हूँ उसके अनुसार तुझे कमाई करनी है, पिताके धनपर नही रहना है। साधु भी नही बनना है। यदि यह ठीक हो तो व्यापारमे ही तेरा पुरुषार्थ है। यदि तू इतना स्वीकार करे तो तू बैरिस्टरी अथवा डिग्रीका लोभ छोड दे। तेरी अंग्रेजी अबतक ठीक हो जानी चाहिए। परन्तु अगर तुझे डिग्री लेनी ही हो और कैम्ब्रिज या ऑक्सफोर्डमे रहना हो, तो दीनबन्धु एन्ड्रूजसे मिलना। ऑक्सफोर्ड या कैम्ब्रिजमें जिन्हे मैं जानता हूँ, उन्हे एन्ड्रूजके द्वारा ही पहचानता हूँ, इसलिए तू उनसे मिल लेना। वे तेरी उचित व्यवस्था करा देगे। वे कैम्ब्रिजमे रहते है। उन्हे तो तू पहचानता ही है।

फिर भी मै उन्हें लिख रहा हूँ। इसलिए जब तू उन्हे लिखेगा तो उन्हे याद आ जायेगी। उनका पता : मास्टर्स लॉज, पेमब्रोक कॉलिज, कैम्ब्रिज है। तू जो-कुछ भी करे भली-भाँति सोच-विचारकर करना। मुझे लिखते रहना। लिखनेमे तू कुछ आलस्य करता मालूम होता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०५५) से।

४०६. पत्र : कृष्णचन्द्रको

२६ फरवरी, १९३७

चि० कृष्णचद्र,

तुम्हारा खत मिला। मेरे लिखनेका अर्थ ये था कि अगर जुलाईतक मे तुम्हारा प्रबन्ध कुछ न हो सके तो जुलाईमे जो कुछ करना है सो कुछ करो। मै यथाशक्ति हो सकता है सो करूगा। महर्षि रमणका मुझे कोई पता नही है। लोगोसे सुनी हुई ही जानता हू।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४२८१) से। एस० जी० ५७ से भी।

४०७. हमारा पशु-धन

यह लेख बकर-ईदके दिन लिखा जा रहा है, जो मुसलमानोके लिए खुशीका और हिन्दुओके लिए गमका दिन है। हिन्दुओके लिए गमका दिन इसलिए है कि उनके मुसलमान भाई यह जानते हुए भी कि हिन्दुओके लिए गाय पूजा और श्रद्धाकी चीज है, कुरबानीके लिए गायोको जिबह करते है। हालाँकि मै भी गायके प्रति किसी अन्य हिन्दूसे कम श्रद्धा नही रखता, और मुझे एक ऐसी सस्था कायम करनेका श्रेय प्राप्त है जो, मेरी रायमे, प्रभावकारी ढगसे गोरक्षा करनेवाली एकमात्र वैज्ञानिक सस्था है, मगर बकर-ईदके दिन हिन्दुओको जो दु ख होता है और उस दु खमे मुसलमानोके प्रति जो रोष छिपा रहता है, उससे मुझे कभी सहानुभूति नही रही है। इसमे कोई शक नही कि यह मुसलमानोकी मूर्खता और हठधर्मिता है कि वे गोकुशी करके हिन्दुओकी भावनाओको नाहक ही चोट पहुँचाते हैं। क्योकि मुसलमानोके लिए मजहबी

तौरपर यह अनिवार्य नही है कि वकर-ईद या और किसी दिन वे गोकुशी करें ही। मैंने कुछ मुसलमानोको यह दलील देते हुए सुना है कि हिन्दू लोग गायकी पूजा करके उनके लिए उसे मारना अनिवार्य कर देते है। यह तो एक तरहकी जवरदस्ती हुई। लेकिन अगर मुसलमान मूर्ख और हठधर्मी है, तो हिन्दुओका अज्ञान भी अपराधकी सीमातक पहुँच गया है और इस प्रकार मुसलमानो द्वारा गोवध किये जानेमे वे भी अप्रत्यक्ष रूपसे साझीदार वनते है। क्योकि हिन्दू आम तौरपर गायो को वेच देते है। हिन्दुओका दुःख और रोष करना अनावश्यक है, क्योकि मुसलमानो द्वारा सालमे एक दिन गोकुशी करनेसे जितनी गाये मरती है, उससे कही ज्यादा गाये हिन्दुओके अज्ञानके कारण मरती है। यह ध्यान रहे कि वकर-ईदके अलावा और दिन जो गाये कटती है, उनके प्रति हिन्दू विलकुल उदासीन रहते है।

हर साल होनेवाले पशु-वध और स्वाभाविक कारणोसे होनेवाली पशुओकी मृत्युके ऐसे प्रामाणिक आँकडे मेरे पास है जो चौंका देनेवाले है। १९३५ की पशु-गणनाके अनुसार ८० प्रतिशत स्वाभाविक रूपसे मरते है और २० प्रतिशत जिवह किये जाते है। लेकिन स्वाभाविक रूपसे मरनेवाले पशुओकी सख्याका औसत अलग-अलग स्थानोमें अलग-अलग है। जहाँ चराईकी अच्छी व्यवस्था है और फसल ठीक होती है वहाँ स्वाभाविक मृत्युसे मरनेवाले पशुओका औसत केवल ७ प्रतिशत वैठता है, जवकि दुर्भिक्ष-पीडित स्थानोंमे वह ३० प्रतिशततक पहुँचता है। यह अनुमान किया गया है कि १९३५ में वम्वई प्रान्त (व्रिटिश) में ७४.५ लाख पशु थे, जिनमें से ९ लाख स्वाभाविक रूपसे मरे और २ लाख जिवह किये गये, अर्थात् स्वाभाविक रूपसे मरनेवालोंका औसत १२ प्रतिशत और जिवह किये जानेवालोका ३ प्रतिशत रहा। १९३५ मे वगाल, विहार और उडीसा सहित व्रिटिश भारतमें आठ करोडसे अधिक गाये थी, जवकि भैंसे तीन करोड़के अन्दर-अन्दर थी। १९३५ और १९३० की पशु-गणनाकी तुलना करनेसे मालूम होता है कि गायकी वनिस्वत भैंसोकी वृद्धि तिगुनी हो रही है।

यह तो सभी जानते है कि गायोको आम तौरपर हिन्दू ही रखते है। अगर वे अपने अक्षम्य अज्ञानको छोड दे तो वे वहुत-से पशुओको स्वाभाविक मृत्युसे सहज ही वचा सकते है। इस टिप्पणीके ठीक आगे मै दो उद्धरण[1] देता हूँ जिनसे मालूम होगा कि हर साल इतने पशु क्यो मरते है और पशु-धनकी इस भारी वरवादीको रोकनेके लिए क्या किया जा सकता है और क्या करना चाहिए। एक समय ऐसा था जव किसी आदमीकी सम्पत्तिका अनुमान ही इस वातसे किया जाता था कि उसके पास कितनी गाये है। लेकिन आज तो गाये मनुष्यके लिए भाररूप हो गई है। यह लगभग मुद्रा-अवमूल्यन-जैसी वात है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि पशुओ और खासकर गोधनके ह्रासको आन्तरिक प्रयत्नो द्वारा रोका जा सकता है। ये प्रयत्न तीन तरहके है:

१. यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

(१) मुसलमानोको गोवध छोड़ देनेके लिए समझाने-बुझानेमे शक्ति नष्ट न की जाये, फिर चाहे वह गोवध कुरबानीके लिए हो या खानेके लिए। उन्हे तो अपने ईमानपर छोड़ देना है।

(२) गायोकी ही उन्नतिपर पूरा ध्यान दिया जाये और इसके लिए भैसके दूध-घीका व्यवहार छोड़ दिया जाये।

(३) मुर्दा जानवरके ही चमड़ेका इस्तेमाल किया जाये और भोजनके सिवा और सब बातोमे उनकी लाशोके सब भागोका पूरा उपयोग किया जाये तथा चमडेकी कमाईमे सुधार किया जाये।

सारे देशमे जो पिजरापोल और गोशालाएँ है, उनमे सुधारके लिए मसाला मौजूद ही है। जरूरत सिर्फ इस बातकी है कि अपनेमे बद्धमूल कुछ पूर्वग्रहोको छोड कर शुद्ध वैज्ञानिक आधारपर इन सस्थाओका सचालन किया जाये।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २७-२-१९३७

४०८. दृश्य तथा अदृश्य दोष

एक खादी-सेवक लिखते है :[1]

प्रश्न अच्छा है। दोषोमे ऊँच-नीचकी भावना नही होनी चाहिए। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मै तो असत्यको सब पापोकी जड़ मानता हूँ। और जिस सस्थामे झूठको बरदाश्त किया जाता है, वह सस्था कभी समाज-सेवा नही कर सकती, न उसकी हस्ती ही ज्यादा दिनोतक रह सकती है। लेकिन मनुष्य झूठका प्रयोग जब करता है, तब उस झूठपर अनेक प्रकारके रग चढते है। उसका एक प्रकार व्यभिचार है। झूठके ही रूपमे झूठ शायद ही प्रगट होता है। व्यभिचारी तीन दोष करता है। झूठका दोष तो करता ही है, क्योकि अपने पापको छिपाता है, व्यभिचारका दोष करता ही है और दूसरे व्यक्तिका भी पतन करता है।

जितने और दोषोका वर्णन लेखकने किया है वे सब गुणवाचक है। इनको हम न देख सकते है, न शीघ्र पकड सकते है। जब वे मूर्तिमन्त होते है, अर्थात् कार्यमे परिणत होते है, तभी उनका विवेचन हो सकता है, उनके दूर करनेका उपाय भी तभी सम्भव होता है। एक मनुष्य किसीसे द्वेष करता है। उसका कोई परिणाम जबतक नही आता, तबतक न उसकी कोई टीका की जाती है न द्वेषी मनुष्यका सुधार किया जा सकता है। लेकिन जब द्वेषवश कोई किसीको हानि पहुँचाता है, तब उसकी टीका हो सकती है और वह दण्डके योग्य भी बनता है। बात यह

१. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने पूछा था कि क्या झूठ बोलना, ईर्ष्या और द्वेष रखना व्यभिचारकी अपेक्षा अधिक हानिकर नहीं है।

है कि समाजमे और कानूनमें भी व्यभिचार काफी बरदाश्त किया जाता है, अगरचे व्यभिचारसे समाजको हानि अधिक पहुँचती है। चोरको सख्त सजा मिलती है और चोर बेचारा समाजसे बहिष्कृत हो जाता है। और व्यभिचारी सफेदपोश सब जगह देखनेमें आते है, उन्हें दण्ड तो मिलता ही नहीं। कानून उनकी उपेक्षा करता है। मेरा विश्वास है कि करोड़ोकी सेवा करनेवाली सस्थामें जैसे चोरोको, गुंडोको स्थान होना ही नही चाहिए, ठीक इसी तरह व्यभिचारियोंको भी नही होना चाहिए।

हरिजनसेवक, २७-२-१९३७

४०९. तीन आने कैसे दिये जायें ?

कत्तिनोंको जिस हिसाबसे सूतके दाम मिलते थे, उसके बारेमें मैंने अपने कुछ विचार प्रकट किये थे। उनपर थोडा-बहुत अमल करनेमें जो भी कठिनाइयाँ सेगाँवमे मुझे होती है उनमें से एक कठिनाईका यहाँ वर्णन करता हूँ। जो प्रयोग मैं सेगाँवमे कर रहा हूँ, और जो आशाएँ कर रहा हूँ, उनकी चर्चा मैं कम-से-कम करता और करने देता हूँ; क्योंकि अभी मेरे प्रयोगोका प्रारम्भ-काल ही माना जा सकता है। कोई निश्चित परिणाम मैं नहीं बता सकता, न खुद ही देख सकता हूँ। अपनेको मैं बहुत सावधानीसे काम करनेवाला मानता हूँ। हरएक काम मैं शास्त्रीय दृष्टिसे करता हूँ। सत्यका पुजारी अन्य दृष्टिसे कोई काम कर ही नहीं सकता। और इस तरह काम करते हुए मैं देखता हूँ कि सेगाँवके अपने प्रयोगके बारेमें अभी कुछ भी कहना या लिखना ठीक नहीं होगा। लेकिन जो मैं अभीतक नही कर सका, उसे कहनेमें तो कोई अनौचित्य नही हो सकता।

मेरी दृष्टि तो यह है कि जो आदमी मन लगाकर एक घण्टा काम करे, उसे एक आना मिलना चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि कुशलतापूर्वक कातनेवाली कत्तिनको भी एक घण्टेका एक आना दिया जाना चाहिए। इसपर मैं किसी भी अनुभवीसे अमल नही करा सका हूँ; और वह ठीक ही था। क्योंकि हिन्दुस्तानमें करोड़ो लोग एक घण्टेमें एक आना कमानेवाले हो जायें तो आर्थिक दृष्टिसे तो हिन्दुस्तान सुखी हो ही जाये। इस समय तो हरएक हिन्दुस्तानीकी औसत वार्षिक आय पचास या साठ रुपये ही है। इसके बजाय अगर कम-से-कम आय एक सौ अस्सी रुपये हो जाये तो कोई आदमी भूखों न मरे।

लेकिन मैं तो सेगाँवमें अभी किसी बेकारको आठ घण्टेके तीन आने भी नही दे सका हूँ। सेगाँवमे पुरुषकी मजदूरीकी दर तीन आना है, और स्त्रीकी पाँच या छ: पैसे। इन दोनोके बीच पन्द्रह-सोलह वर्षके बच्चे है। मेरी चले तो जितना पुरुषको मिलता है उतना ही स्त्रीको दिलाऊँ। लेकिन अभी तो मैं इतना भी नहीं कर सका। और सेगाँवमे मजदूरोकी मजदूरीकी जो दर है उतना भी सेगाँवके बेकारको मैं दे या दिला नही सका हूँ। क्योंकि मैंने जो दर बताई है वह तो आम तौरपर जो बेकार

नही रहते, उनके लिए है। लेकिन मै जो चाहता हूँ वह तो यह है कि जो भी कोई कामकी तलाशमें आये उनके लिए आठ घण्टेके तीन आने देनेकी शक्ति हममे हो। यह मै अभी पा या सिखा नही सका हूँ। इसमे सारा दोष मेरा ही है, यह मै मजूर नही कर सकता। हाँ, मेरी अयोग्यताका इसमे जरूर हिस्सा है। लेकिन इससे तो मैंने अपनी और अपने-जैसे दूसरे लोगोकी गाँवोमे रहनेकी आवश्यकता ही सिद्ध की है। गाँवमे थोडे महीने रहनेसे गाँवोके सवाल हल करनेकी क्षमता आ जाती है, ऐसी बात नही है। मैने तो ऐसा कभी खयाल भी नही किया। गाँवमे ग्रामीणकी तरह चार-पाँच साल रह सके तभी गाँवोके मामलोकी पूरी समझ और उनका हल करनेकी क्षमता प्राप्त हो सकती है। यहाँ तो मैंने तीन आनेके हिसाबसे बेकारको रोजी देनेमे जो कठिनाइयाँ आ रही है उन्हीका उल्लेख किया है। और इन कठिनाइयोमे मुझे हममे जड जमाकर बैठा हुआ आलस्य ही दिखाई पड़ता है।

बेकार ऐसे जड़ हो गये है कि उन्हे उनके अनुभवके बाहरका कोई भी काम सौपो तो वे उसका विचारतक करनेको तैयार नही होते। हाँ-हाँ करनेकी आदत पड़ जानेके कारण, कोई सूचना दो तो उसके अनुसार करनेके लिए सिर तो झुका लेगे, लेकिन उससे आगे नही जायेगे। मगर इन कठिनाइयोका उल्लेख करके मै अपनी निराशा नही व्यक्त कर रहा हूँ। मै तो, दूसरे जो साथी ऐसी कठिनाई महसूस करते हो, उनके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट कर रहा हूँ। वर्षोंका आलस्य एकदम दूर नही होगा। इसके लिए धीरजकी जरूरत है। हमे आठ घण्टेके तीन आने या इससे अधिक कोई भेटस्वरूप नही देने है, बल्कि ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी है जिसमे वे इतने पैसे पैदा कर सके। ऐसा करनेके प्रयत्नमे ही कार्यकर्ताओ और ग्रामवासियोकी शिक्षा और परीक्षा हो जायेगी।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २८-२-१९३७

४१०. गरीबीकी व्याख्या

गाँवोमे रहनेवाले गरीबोको काम देनेके प्रश्नकी चर्चा करते हुए एक भाई लिखते है :

> आपने एक बार कहा था कि 'जो लोग मजदूर रखकर खेती करायें उन्हें गरीब नहीं मानना चाहिए।' लेकिन इतने से काम नहीं चलता। जिन्हें भोजन और वस्त्रके अभावका कष्ट नहीं सहना पड़ता या इनके लिए कर्ज नहीं लेना पड़ता, उनके लिए भी क्या यह कहा जा सकता है कि वे गरीब नहीं है?

इस तरह कहा भी जा सकता है और नही भी कहा जा सकता। आरोग्यकी दृष्टिसे विचार करे तो वस्त्रके अभावका कष्ट तो हिन्दुस्तानकी जलवायुमें कम ही

लोगोको उठाना पडता है, क्योकि असख्य लोग खाली लँगोटी पहनकर ही अपना निर्वाह कर सकते है। और यह कह सकते हैं कि ऐसा करते हुए उनके स्वास्थ्यको कोई हानि नही पहुँचती। लेकिन आरोग्यकी दृष्टिसे तो उपयुक्त आहार मध्यवर्गके कहे जानेवाले लोगोको भी नही मिलता। सिर्फ थोडे-से धनिकोको छोडकर और सबको दूध, घी, साग-भाजी व फल पर्याप्त मिलते ही नही। वे पानी मिला हुआ पतला गन्दा दूध भले ही पी ले, थोड़ी-सी साग-भाजी भले ही खा ले, किन्तु फल तो उन्हे नसीब होते ही नही। और इन तीन चीजोके अभावके कारण हिन्दुस्तानके करोडो लोग, जिनमे मध्यम वर्ग भी आ जाता है, अपनी तन्दुरुस्ती अच्छी रख ही नही सकते। इसलिए आरोग्यकी दृष्टिसे देखे तो गरीबोकी सख्या बहुत बढ़ जाती है। लेकिन प्रश्नकर्ताने जो-कुछ कहा है उसमें आरोग्यकी दृष्टि नही है। कम-से-कम मजदूरी क्या हो, इस प्रश्नके सदर्भमे गरीबीका प्रश्न खडा हुआ है।

इस दृष्टिसे विचार करे तो गरीबीकी मेरी व्याख्या इस प्रकार है: जो लोग सारे दिन काम करके तीन आने रोज भी नही कमा सकते वे सब गरीब है, ऐसा माना जाये, क्योकि पत्र-लेखकका सवाल तो गाँवके बेकार लोगोको काम देनेका ही है। यह व्याख्या सम्पूर्ण न होनेपर भी सेवकोके लिए महत्त्वकी है। क्योकि अगर आरोग्य आदिकी दृष्टिसे गरीबीका विचार करे तो सभी ग्रामीण तथा शहरोके लोग भी गरीब माने जायेगे; और, सच पूछो तो, है भी। लेकिन ऐसी व्याख्या करनेसे काम करनेवाले पसोपेशमे पड जाते हैं।

इसका यह अर्थ नही कि ऐसोकी सेवा न की जाये। ग्राम-सेवकके सामने सफाई, आरोग्य और आर्थिक उन्नतिके प्रश्न तो है ही। अपने गाँवमे लोग शुद्ध दूध व छाछ कैसे पायें, साग-भाजी और फल उन्हे कैसे मिले, सर्दीमे जिन्हे ओढनेको काफी न मिलता हो उन्हे ओढनेको कैसे मिले, इत्यादि प्रश्न तो हमारे सामने है ही। मगर सब प्रश्नो को एक साथ कोई भी हल नही कर सकता। इसीलिए मैंने गरीबीकी कामचलाऊ व्याख्या दे दी है, जिससे जो लोग सबसे-ज्यादा गरीब है, उनकी सेवासे अपने धर्मका आरम्भ करनेका अनुभव सब ले सके।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २८-२-१९३७

४११. पत्र : मूलशंकर नौतमलालको

सेगांव, वर्धा
२८ फरवरी, १९३७

भाई मूलशंकर,

तुमने मुझे पत्र लिखा, यह बहुत अच्छा किया।

जब माता-पिता अपनी सन्तानको जान-बूझकर अनीतिकी ओर ले जाना चाहते हों, तो वहाँ सन्तानको उनका त्याग करनेका अधिकार प्राप्त हो जाता है। तुम्हारे मामलेमें तो ऐसा कुछ नहीं है। तुम्हारे माता-पिता तो अधिकतर बातोंमें तुम्हारे अनुकूल हैं ही। तुम तो ऐसे हो कि अपना धन्धा करते हुए भी बहुत-कुछ सेवा-कार्य कर सकते हो। शुद्ध कौड़ी कमानेकी कुशलता सरलतासे प्राप्त नहीं होती। ऐसा करनेमें सेवा तो निहित रहती ही है, बुद्धिकी परीक्षा भी हो जाती है। अतः तुम धीरजके साथ फिलहाल जो कर रहे हो वही करते जाओ।

मुझे जब लिखना हो, लिखते रहना। मुझसे मिलनेकी आवश्यकता मालूम हो तो मिलने आ जाना।

मोहनदासके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७९४६) से। सी० डब्ल्यू० ९४६३ से भी; सौजन्य : मूलशंकर नौतमलाल।

४१२. पत्र : सम्पूर्णानन्दको

[फरवरी, १९३७][1]

क्या बात है कि तुम अधिकांशतः समाजवादियोंका स्वास्थ्य[2] इतना गिरा रहता है। नरेन्द्रदेव दमेके पुराने मरीज हैं, मेहरअली[3] दिलकी बीमारीसे पीड़ित हैं, जय-प्रकाश बीमार हैं ही और इन सबमें तुम्हीं सबसे स्वस्थ दिखलाई पड़ते थे, सो तुमने भी चारपाई पकड़ ली। जाहिर है कि तुममें से कोई भी अपने-आपकी ठीक देखभाल

१. यह पत्र १९३५के अधिनियमके अधीन हुए प्रथम चुनावके परिणामके बाद लिखा गया था और परिणाम फरवरी, १९३७ में निकले थे।

२. उन दिनों सम्पूर्णानन्द पीलिया रोगसे पीड़ित थे।

३. यूसुफ मेहरअली।

नहीं रख पाता। कुछ दिन वर्धा आकर मेरे साथ रहो। मैं वचन देता हूँ कि तुम्हें बिलकुल ठीक करके वापस भेजूंगा।

[अंग्रेजीसे]

मेमोरीज़ एण्ड रिफ्लेक्शन्स, पृ० ९७

४१३. सन्देश: अन्तर्राष्ट्रीय धर्म-सम्मेलनको[1]

[१ मार्च, १९३७ से पूर्व]

सम्मेलनकी सफलताकी शुभकामना करता हूँ। कितना अच्छा हो कि वह कुछ रचनात्मक कार्य करे!

[अंग्रेजीसे]

द रिलीजन्स ऑफ द वर्ल्ड, पृ० ८०।

४१४. पत्र: एस० अम्बुजम्मालको

सेगाँव
१ मार्च, १९३७

चि० अम्बुजम,

तुम्हारा खत मिला। यह कहाँ कि बात है कि लिखनेमें आलस्य करना और बादमें क्षमा माँगना? क्षमा तो तब ही माँगी जाय, जब कोशिश करते हुए भी निष्फलता होती है। हां, अगर 'मीझल' के कारणसे नहि लिख सकती थी तो और बात है। माताजी अब अच्छी होगी। समेलनके लिये मद्रास आनेका मेरा इरादा तो है, तब मिलेंगे। कनु कभी-कभी वीणाको छुता है।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्रसे: अम्बुजम्माल-पेपर्स; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय।

१. सम्मेलन श्री रामकृष्ण परमहंसके प्रथम जन्म-शताब्दी समारोहके कार्यक्रमके अंतर्गत १ मार्च, १९३७को आरम्भ होकर ८ दिन चला था।

४१५. पत्र : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको

सेगाँव, वर्धा
२ मार्च, १९३७

प्रिय गुरुदेव,

आपका पत्र[1] पढ़कर मुझे बहुत दुःख हुआ है। स्नेह और श्रद्धासे लिखे पत्र[2] का ऐसा अनर्थ किया जाये, यह देखकर मुझे आश्चर्य होता है। शकाका कोई सवाल ही नही था और इसलिए आपको ठीक-ठीक न समझनेका भी नही। मैंने तो आपके सामने 'ट्रस्टीशिप' का अपना अर्थ-भर रख दिया था। मै पहले भी अनेक सस्थाओका ट्रस्टी रह चुका हूँ और उनकी आर्थिक आवश्यकता पूरी होती रहे, इसके लिए मैंने अपनेको पूरी तरह खपाया है। विश्वभारतीका भार सँभालनेका मेरे लिए अगर कोई मतलब हो सकता था तो यही कि मै और अधिक नही तो कम-से-कम उसका आर्थिक बोझ उठानेकी व्यवस्था करूँगा। जहाँतक वचन-भगका सम्बन्ध है, मैंने अपने-आपको आपसे इतना निकट समझा कि विनोदमे आपपर ऐसा आरोप लगानेमे मुझे कोई हिचक नही हुई कि आप वचन-भग तो नही करनेवाले है। मेरा मशा बिलकुल साफ था। मै किसी-न-किसी प्रकारसे आपको भिक्षाटन-अभियान से — इस मुहावरेका प्रयोग मै-आप दिल्लीमे अकसर किया करते थे — विमुख करना चाहता था। बेशक, मै आपका धर्म जानता हूँ और उसपर सारे हिन्दुस्तानको गर्व है। आप उस धर्ममे से हमें जितना दे सकें, हम सोत्साह लेगे, लेकिन इस तरह तो हरगिज नही कि जनताके समक्ष अपनी कलाका प्रदर्शन करके विश्वभारतीके लिए पैसा जुटानेकी चिन्ता आप अपने सिर लिये फिरे।

आशा है, मेरे पहले पत्रसे आपको जो कष्ट पहुँचा है वह इस पत्रसे दूर हो जायेगा।

स्नेह और श्रद्धा-सहित,

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७४९) से।

१. यह पत्र उपलब्ध नही है।
२. देखिए पृ० ४२१-२२।

४१६. पत्र : नवीनचन्द्र एन० देसाईको

२ मार्च, १९३७

चि० नवीन,

तेरा पत्र मिला। लगता है, तू ठीक काम कर रहा है। तेरा प्रयत्न सफल हो। बालको और बालिकाओंको तो मेरे आशीर्वाद सदा ही प्राप्त है। उनके चारित्र्य की रक्षा करना। वे शरीर, मन और आत्मासे उत्तरोत्तर उन्नति करते रहे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २१७१)से।

४१७. पत्र : ताराबहन एन० मशरूवालाको

२ मार्च, १९३७

चि० तारी,

तू पत्र लिखनेकी अपनी तिथियोंपर कायम ही नहीं रहती। नौ बार तू स्वयं टाल जाती है, और दसवीं बार दैव टाल जाता है। तू सचमुच अहमदनगर चली गई होगी, यह सोचकर मैंने वहांके पतेपर पत्र लिखा। भटकता-भटकता शायद वह तुझे मिलेगा, क्योंकि अब तो कौन जाने तू कब अहमदनगर पहुँचेगी और पहुँचनेके बाद कौन जाने कितने दिन वहाँ रह सकेगी। बचुकी तबीयत ठीक हो गई होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७०१) से। सी० डब्ल्यू० ४३४६ से भी; सौजन्य . कनुभाई एन० मशरूवाला।

४१८. पत्र : भगवानजी पु० पण्डयाको

२ मार्च, १९३७

चि० भगवानजी,

तुम्हारा पत्र मिला। अनायास ही जो थोडी-बहुत सेवा हो सके, वही करके निश्चिन्त रहो। मन भागता है तो उसे भागने दो। इसी प्रयत्नके दौरान या तो एक दिन वह स्थिर हो जायेगा या देह ही नही रहेगी। एक हदके बाद देहकी चिन्ता करनी ही नही चाहिए, फिर चाहे वह अपनी हो या दूसरे की।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३९३) से, सौजन्य भगवानजी पु० पण्डया।

४१९. पत्र : शारदाबहन चि० शाहको

२ मार्च, १९३७

चि० शारदा,

तेरा पत्र मिला।

कटिस्नानसे डरनेकी बिलकुल जरूरत नही है। उसकी कुजी केवल इतनी ही है कि टबमे बैठे हो तब ठड नही लगनी चाहिए और टबमे से निकलनेके बाद शरीरमे पूरी गर्मी आ जानी चाहिए। यह गर्मी या तो चलकर लाई जाये या बिस्तरमे (कपड़े) ओढकर, या फिर कटिस्नानके बाद गरम पानीके दो-चार लोटे शरीर पर उँडेलकर।

घर्षणस्नान . . . . . .।[1] टबके अन्दर चौकीको इस प्रकार रखे कि चौकी टबके अन्दर डूब जाये और पानी उसपर आधा इच और ऊपर रहे, फिर चौकी पर इस प्रकार बैठे कि पाँव पानीके बाहर रहे। शरीरका शेष भाग कपडेसे ढँक लिया जाये। स्नान करनेवालेको चौकीपर इस प्रकार बैठना चाहिए कि उसके गुप्ताग चौकीके किनारेके बाहर रहे। कपडेका टुकडा पानीमे डुबा-डुबाकर उससे गुप्तागको हलके-हलके रगडना चाहिए। यह घर्षणस्नान कहलाता है। इसके सम्बन्धमे यह माना जाता है कि गुप्तागके छोरपर सूक्ष्म ततुओका एक समुदाय होता है और उसपर पडनेवाला प्रभाव सारे शरीर में बिजलीकी तरह संचरित हो जाता

१. यहाँपर मूल स्पष्ट नहीं है।

है। यह प्रभाव उन प्रभावोसे उलटा होता है जो हस्तमैथुन आदि कुचेष्टाओके होते हैं। साथ ही इससे अनेक रोगोका होना रुक जाता है और विद्यमान रोग दूर हो जाते हैं।

लहसुनकी कलीको ज्यो-का-त्यो नही चवाना चाहिए, बल्कि पीसकर सागके साथ चटनीके समान मिलाकर खाना चाहिए। कुछ लोग उसे दहीमे डालकर खाते है। सूखे लहसुनके बजाय हरा लहसुन मिले तो ज्यादा अच्छा हो। अगर मीठे नीबू या सन्तरे मिले तो और किसी फलकी आवश्यकता नहीं। अच्छा ताड-गुड मिल जाये तो तेरा मजेमे काम चल सकता है। अच्छा दूध जरूर मिलना चाहिए। दूध पूरे प्रमाणमे न मिले तो तेरे-जैसे लोग वहाँ रह ही नही सकते। लहसुनसे सर्दी तो कभी हो ही नही सकती; उससे तो सर्दी मिटती है।

मिट्टीके प्रयोगसे चिमनलालका वजन बढा है, यह माननेमें मुझे बिलकुल संकोच नही है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९७२)से; सौजन्य, शारदाबहन गो० चोखावाला।

४२०. पत्र : द० बा० कालेलकरको[1]

[३ मार्च, १९३७ से पूर्व][2]

तुम धर्म-सम्मेलनमें भाग लेने जा रहे हो। इसका सम्बन्ध श्री रामकृष्ण[3] के पावन नाम से है। मुझे पूरी उम्मीद है कि सम्मेलनमे कुछ ऐसे कार्य होंगे जिनसे सभी धर्मोके लोगोको एक सही दिशा और मार्ग-दर्शन प्राप्त होगा। देखे, सभी धर्मोके बारेमें सम्मेलन क्या कहता है! क्या यह कि, जैसा हम मानते है, सभी धर्म समान है, या यह कि, जैसा कि बहुत-से लोग मानते है, सम्पूर्ण सत्यका ठेकेदार कोई एक धर्म है, और बाकी सभी धर्म या तो झूठे है या सत्य और झूठके मिले-जुले रूप है। इन मामलोमें सम्मेलनका विचार हमारे लिए सहायक और मार्ग-दर्शक सिद्ध होना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

द रिलीजन्स ऑफ द वर्ल्ड, पृ० १२३

१. मूल पत्र हिन्दीमें था, जो उपलब्ध नहीं है।

२. द० बा० कालेलकरने कलकत्तामें आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय धर्म-सम्मेलनके चौथे दिनके अधिवेशनमें ३-३-१९३७ को अपने अध्यक्षीय भाषणमें यह पत्र पढ़कर सुनाया था।

३. देखिए पादटिप्पणी, पृ० ४५२।

४२१. पत्र : नारणदास गांधीको

सेगाँव, वर्धा
३ मार्च, १९३७

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारा वक्तव्य भी पढा। तुम्हारे स्वभावके अनुसार वह संक्षिप्त और सादा है। एक सतर भी उसमें से निकाली नही जा सकती।

चि० कमू रुपया माँगे तो दे देना। मै उसे लिखूंगा तो जरूर।

चि० राधा बरसमे शायद एक बार मुझे पत्र लिखती हो। मै तो उसकी छात्र-वृत्तिके बारेमे कुछ नही जानता। अभी तो जो भेजते हो, भेजना। मुझे उत्साह लगा तो कभी उसे पत्र लिखूंगा।

चि० केशूकी सगाईके बारेमे मुझे कुछ नही मालूम। तुम्हारा क्या मतलब है? क्या तुम यह चाहते हो कि मुझे इस बातको ध्यानमे रखना चाहिए, या फिर तुम यह जानना चाहते हो कि मुझे यह पता है या नही कि तुम यह बात जानते हो?

चि० मीरा सेगाँवमे साथ रहती है। गाँवके ५-६ लडकोको कातना, पीजना सिखाती है। बहुत करके आज वह तुम्हे पत्र लिखेगी।

कह सकते हैं कि चि० बालकोबाकी तबीयत अच्छी है। मै उससे रोज मिलता हूँ।

चि० पुरुषोत्तमकी तबीयत गडबड रहती है, यह बिलकुल ठीक नही है। आवश्यकता यह है कि आत्मनिर्मित मर्यादामे रहकर शरीरको स्वस्थ बनानेकी दिशामे भगीरथ प्रयत्न किया जाये। शरीर सुधारनेके मामलेमे आलस करना एक प्रकारका पाप माना जायेगा। शरीर कुरुक्षेत्र भी है, धर्मक्षेत्र भी। धर्मक्षेत्रके समान उसे सुघड रखना हमारा कर्त्तव्य है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से। सी० डब्ल्यू० ८५१५ से भी, सौजन्य. नारणदास गाधी।

४२२. भेंट : मिस्रके एक शिष्टमण्डलको[1]

३ मार्च, १९३७

"यह असम्भव था कि हम हिन्दुस्तान आयें और आपसे मिले बिना चले जायें", उन्होंने गाँधीजीसे कहा। गांधीजीने उनसे मजाकमें कहा :

तभी तो और सब जरूरी स्थानोंमें घूमकर लौटते हुए थोड़ी देरके लिए आप यहाँ तशरीफ ले आये ना?

गांधीजीसे उन्होंने केवल हिन्दुस्तान और मिस्रके सम्बन्ध मजबूत बनानेके बारेमें ही बातचीत की।

गां० : मैं इस सहयोगका हृदयसे स्वागत करूँगा।

शेख इब्राहीम अल गिबाली : हम आशा करते हैं कि वह दिन दूर नहीं कि जब हिन्दुस्तान अपने पुराने वैभवको प्राप्त कर लेगा और अपनी प्राचीन सभ्यतामें पुनः प्राणोंका संचार करेगा। हम बहुत-सी बातोंमें समान हैं, मसलन — आबोहवा, रंग, खान-पान वगैरह, और आखिर हम पूरबके ही हैं ना। अब हमारा एक-दूसरेके नजदीक आनेका समय आ गया है।

प्रो० हबीब अहमद : अब यह बात हमारी समझमें आ गई है कि दोनों देशोंके लिए यह ठीक नहीं कि वे पुरानी पीढ़ीपर ही निर्भर रहें। उन्हें नई पीढ़ीपर अधिक निर्भर करना चाहिए। हमारे युवकोंको खिलाड़ियोंकी हैसियतसे हिन्दुस्तान आना चाहिए और हिन्दुस्तानके युवकोंको मिस्र जाना चाहिए।

गां० : हमारे बीच आदान-प्रदान और मेल-मुलाकात सिर्फ खेलके क्षेत्रमें ही नहीं, बल्कि शिक्षाकी दुनियामें भी होनी चाहिए। हम मिस्रसे प्रोफेसरोंको बुलायें और आप हिन्दुस्तानसे। इससे हमारा सांस्कृतिक सम्पर्क बढ़ सकेगा।

शेख इब्राहीम अल गिबाली : हाँ, इस उद्देश्यकी पूर्ति दोनों देशोंके बीच इस तरह बौद्धिक लेन-देनसे ही होगी।

गां० : आप ठीक फरमाते हैं। इसका कोई अमली रास्ता निकालनेके लिए मेरी यह सलाह है कि आप इस बातकी सार्वजनिक घोषणा करें। इसके बाद मेरी यह तजवीज है कि अगर आप किसी बुद्धिमान और सूझबूझवाले मिस्री लड़केको यहाँ भेजनेकी कृपा करें तो हम उसका स्वागत करेंगे और उसे अपनाकर यहाँ रखेंगे।

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। यह शिष्टमण्डल मिस्रके अल अझर विश्वविद्यालयसे आया था। इसके नेता थे, शेख इब्राहीम अल गिबाली। सदस्योंमें प्रो० सालह अल्दीन, प्रो० हबीब अहमद आदि कई लोग थे।

इस स्थानके निर्माता श्री जमनालालजी बजाजसे तो आप मिलेंगे ही। यहाँपर ऐसी एक भी सार्वजनिक संस्था नहीं है जिसके निर्माणमें उनका हाथ न रहा हो। उन्होंने कहीं कॉलेजकी शिक्षा नहीं पाई, पर दिल उनका सोनेका है और देशके कल्याणके लिए उन्होंने अपने पासका सोना खुले हाथों दिया है। उन्होंने यहाँ एक स्कूल खोला है, जिसमें हिन्दू और मुसलमान विद्यार्थी भी शिक्षा पा रहे हैं। मुसलमान विद्यार्थियों के लिए उर्दूकी पढ़ाईका भी वहाँ प्रबन्ध है। एक ऐसा अच्छा आचार्य वे ढूँढ़कर लाये हैं जो एक आदर्श शिक्षक है। सो अगर आप किसी होनहार लड़केको यहाँ भेजें तो हम उसे यहाँ अपना बनाकर रखेंगे। वह एक बीजकी तरह होगा, जो आगे चलकर एक विशाल वृक्षका रूप धारण करेगा। फिर, दिल्लीके जामिया मिलियाको लीजिए। वहाँ डॉक्टर जाकिर हुसैन और प्रोफेसर मुजीब-जैसे श्रेष्ठ लोग हैं। आप वहाँसे कुछ प्रोफेसर और विद्यार्थी मिस्र ले जा सकते हैं और मिस्रसे कुछ अच्छे प्रोफेसर और विद्यार्थी जामियामें भेज सकते हैं। आप हमारे लड़कोंको मिस्री बनायें और हम आपके लड़कोंको हिन्दुस्तानी बनायें। हमारे धर्म अलग-अलग हैं, इससे हमारे काममें कोई रुकावट नहीं आनी चाहिए। अगर आप-हम एक-दूसरेके धर्मका आदर करें तो बड़ी अच्छी तरह हमारे ताल्लुकात दिन-ब-दिन बढ़ते जायेंगे। असलमें, जरूरत यह है कि दिल एक हों। अगर यह है तो सब-कुछ ठीक हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १३-३-१९३७

४२३. पत्र : अमतुस्सलामको

४ मार्च, १९३७

चि० अमतुल सलाम,

आशा है, तू वहाँ आरामसे पहुँच गई होगी। अपने मनपर से बोझ उतारकर जल्दी अच्छी हो जाना। मैं किसीको तेरे टबमें कपड़े नहीं धोने दूँगा। फिलहाल तो उसे मैंने अपनी ही कोठरीमें रख लिया है और उसे मैंने अपने उपयोगके लिए रखा है। अगर मुझे उससे बड़े टबकी आवश्यकता न हुई, तो वह मेरी कोठरीमें ही रहेगा। सरस्वतीका पत्र तेरे नाम आया है। वह इसके साथ है।

बापूकी दुआ[1]

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७४) से।

१. हस्ताक्षर उर्दूमें है।

४२४. पत्र : सुरेन्द्र बी० मशरूवालाको

सेगाँव, वर्धा
४ मार्च, १९३७

चि० सुरेन्द्र,

तेरे विवाहकी तिथिके बारेमें बातचीत कर रहा हूँ। मेरी समझमें यह आया है कि तू विवाहके समय कुछ धूमधाम चाहता है और छोटी-सी मित्र-मण्डलीको भी इकट्ठा करनेका विचार तेरे मनमें है। यदि तेरी ऐसी इच्छा है तो उसका कारण मुझे समझाना। एक कारण तो मैं यह समझा हूँ। हम सब जो लाभ उठा चुके हैं, उनसे हम लोगोंने अब तुझ-जैसोंको वंचित रखनेपर कमर बाँधी है, यह क्या धारणा बनाई? यह तो तेरा भ्रम है। अपने रिवाजके अनुसार विवाहको यदि लाभ माना भी जाये तो यह लाभ मनुष्य एक ही बार ले सकता है। अब अपने बारेमें तो मैं तुझसे कह सकता हूँ कि जो-कुछ हुआ, बारह वर्षकी उम्रमें हुआ था। किसी भी मामलेमें माता-पिताने सम्मति तो ली ही नहीं थी। लाभ लिया हो तो भले उन लोगोंने अथवा अन्य सगे-सम्बन्धियोंने लिया होगा। मुझे तो लाभ लेनेका भान भी नहीं है। जितना उस समय अच्छा लगा होगा, वह सब बच्चोंके खेलके समान था। जिम्मेदारी का खयाल तो बिलकुल नहीं था। तो यह हुआ मेरा लाभ। किशोरलालका मुझे कुछ पता नहीं है। इसलिए मेरे लाभके प्रति तो तुझे द्वेष नहीं करना चाहिए। मेरी तो यह इच्छा है कि निर्धारित दिनपर तू अकेला आ। मैं सब धार्मिक विधि करा दूँगा, और जिस रोज आये उसी रोज विधि हो जानेके बाद मनुको ले जा। मित्र-मण्डलीको जमा करना हो तो वह तू अकोला अथवा बम्बईमें कर सकता है। मुझे तो इस प्रकारका उल्लास नहीं रहा। यह कोई वैराग्यकी बात नहीं, धर्मकी बात है। इस समय विषय-भोगको कुछ विद्वानोंने धर्मका रूप दे दिया है। यह मैं अपने गले नहीं उतार सका। मेरे मनके अनुसार तो विवाह संयम-धर्मके पालनका एक साधन है। स्त्री-पुरुष अनेक सम्बन्ध रखनेके बदले एक ही सम्बन्ध रखें, यह इष्ट है। यह उनका कर्त्तव्य है। विवाह सेवाके लिए है, स्वेच्छाचारके लिए नहीं। स्त्री और पुरुषका सम्बन्ध केवल सन्तानके लिए है, और किसी प्रयोजनके लिए कभी नहीं। यह है आदर्श। इस आदर्शतक नहीं पहुँच सकते तो यह मिथ्या है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। किन्तु यदि यह सच्चा हो तो जिस हदतक उसतक पहुँचा जा सकता हो, उस हदतक और यदि यह कर्त्तव्य सच्चा हो तो विवाह-कार्यको जितना बने, उतना धार्मिक, शान्त और सात्त्विक रूप देना चाहिए, यह बात यदि तू समझ जाये तो विवाहको तू और मनु नया जन्म समझकर, कर्त्तव्यपरायण होकर उसमें

प्रवेश करना। तुम उसे भोगोत्सव नही मानोगे। बल्कि बड़े-बूढोका आशीर्वाद प्राप्त कर, विवाहका रहस्य समझकर गृहस्थाश्रममे प्रवेश करोगे।

इतना समझ गया हो तो तू किसीको भी न्योता देनेका आग्रह नही करेगा। मेरा बस चला, तो मै तो नानाभाई, नीलकण्ठ वगैरहको भी आने और गाडीका किराया भरनेसे रोकूंगा। मेरे ऐसे विचार होते हुए भी मै तेरा मन दुखाना नही चाहता। अत तेरी जो इच्छा हो वह मुझे नि सकोच बताना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

मनुने यह पत्र पढा है और वह मेरे विचारोसे सहमत है।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १५६४) से, सौजन्य मनुबहन एस० मशरूवाला।

४२५. पत्र : प्रभावतीको

४ मार्च, १९३७

चि० प्रभावती,

तू आरामसे पहुँच गई होगी। तेरी तबीयतके बारेमे थोडी चिन्ता तो रहती ही है। मैने जो कहा है, उसके अनुसार करेगी तो तुझे जो चक्कर आते है, वे जरूर बन्द हो जायेगे। पेट और माथेपर मिट्टीकी पट्टियाँ जरूर रखना। उससे फायदा अवश्य होगा। लहसुन और प्याज खानेमे बिलकुल सकोच अथवा शर्म नही करनी चाहिए। सरस्वतीका पत्र तेरे नाम आया है, उसे इस पत्रके साथ भेज रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४८८) से।

४२६. पत्र : सरस्वतीको

४ मार्च, १९३७

चि० सरस्वती,

तेरा खत मिला। बहुत दिनोके बाद आया। क्या-क्या पढती है? उसकी सब हकीकत चाहिये। जैसे के गणित शास्त्र मे कहाँतक पहुची है? सो चाहिये। अब तो उसमे भी रस आता होगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१५५) से। सी० डब्ल्यू० ३४२४ से भी; सौजन्य . कान्तिलाल गाधी।

४२७. पत्र : विट्ठल ल० फड़केको

सेगाँव, वर्धा
५ मार्च, १९३७

चि० मामा,

तुम्हारा पत्र मिला। प्लान मैं देख गया। मुझे तो फिर गोधराके मूल आश्रमका स्मरण हुआ। तीन हजार रुपये खर्च करके कितने अन्त्यजोंका उद्धार किया जा सकेगा? मैं तुम्हारी योजना नहीं समझ पाया। मैं तो यह समझता था कि तुम ज्यादा-से-ज्यादा एक हजार रुपया खर्च करोगे। तुम्हारा प्लान-मन्दिरके प्लान-जैसा नहीं लगता; राजमहल अथवा हवेली-जैसा है। लेकिन सरदार-जैसे दानवीर तुम्हें सन्तुष्ट करें, तो मैं क्या करूँ? लेकिन मेरे हाथमें तीन हजार रुपये आये, तो मैं तो अपनी झोंपडी, बाड़ और मन्दिरपर सब मिलाकर एक हजार रुपया खर्च करूँ, और दो हजार रुपया बचाकर उसमें हरिजनोंकी कुछ अन्य सेवा करूँ। काका कलकत्ता गये हैं। तुम्हारा प्लान क्रमसे पहले विनोबाको, फिर किशोरलालको भेज रहा हूँ। पत्रका जवाब जल्द-से-जल्द कल भेजा जा सकता था, लेकिन नहीं भेज सका।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८३८) से।

४२८. बातचीत : आर० आर० कीथनसे[1]

[५ मार्च, १९३७][2]

गांधीजीने कहा था कि सभी धर्म न केवल सच्चे हैं, बल्कि समान भी हैं। उनके इस कथनका आशय श्री कीथनकी समझमें नहीं आ रहा था। उनका विचार था कि शास्त्रीय दृष्टिसे तो यह कहना ठीक नहीं है कि सभी धर्म समान हैं। इस तरह तो लोग प्रकृतिपूजकों और ईश्वरवादियोंमें भी तुलना करने लगेंगे। मैं तो कहूँगा कि धर्मोंकी तुलना करना व्यर्थ है। वे सभी धर्म ईश्वरको पानेके अलग-अलग रास्ते हैं। क्या आपके विचारसे इस बातको हम किन्हीं और शब्दोंमें भी समझ सकते हैं?

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र)से उद्धृत। श्री कीथन एक अमेरिकी मिशनरी थे।

२. महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीके अनुसार

गांधीजी : आपका यह कहना बिलकुल ठीक है कि धर्मोकी तुलना करना सम्भव नही है। लेकिन इससे निष्कर्ष यही निकलता है कि सभी धर्म समान है। सब लोग जन्मसे स्वतन्त्र और समान होते है, लेकिन उनमे से कोई किसी दूसरेसे शारीरिक और मानसिक दोनो दृष्टियोसे बहुत सबल या दुर्बल पाया जाता है। इसलिए सतही तौरपर दोनोमे कोई समानता नही है। लेकिन एक तात्त्विक समानता अवश्य है। वह है हमारा नगापन — हमारी आवरणहीनताकी स्थिति। ईश्वर मुझे गाधी और आपको कीथनके रूपमे थोडे ही देखनेवाला है। और इस विराट विश्वमे हम है ही क्या? हम तो परमाणुओसे भी तुच्छ है और परमाणुओकी ही तरह हमारे बारेमे भी यह पूछना व्यर्थ है कि हममे से कौन छोटा है और कौन बडा। तत्त्वत हम समान है। जाति और रग, शरीर और मस्तिष्क तथा जलवायु और राष्ट्रके अन्तर क्षण-भगुर है। इसी प्रकार सभी धर्म तत्त्वत: समान है। अगर आप 'कुरान' पढे तो आपको उसे मुसलमानोकी नजरसे पढना चाहिए, अगर 'बाइबिल' पढे तो निश्चय ही ईसाईकी दृष्टिसे पढे, और अगर 'गीता' पढे तो हिन्दूकी आँखोसे पढें। बालकी खाल खीचने और फिर किसी धर्मका उपहास करनेका क्या प्रयोजन हो सकता है? आप जेनेसिस या मैथ्यूके पहले अध्यायको ही ले। उसमे हमे एक लम्बी वशावली पढनेको मिलती है और अन्तमे बताया जाता है कि ईसाका जन्म एक कुमारीसे हुआ। यहाँ आकर हमारे सामने एक अँधेरी दीवार खडी हो जाती है, बात कुछ समझमे नही आती। मगर मुझे तो इस सबको एक ईसाईकी निगाहसे पढना-समझना चाहिए।

कीथन : और फिर हमारी 'बाइबिल' में भी तो मूसा और ईसाका सवाल है। हमें क्या उन दोनोको समान मानना चाहिए?

गाधीजी : हाँ, क्योंकि सभी पैगम्बर समान है। यह तो बिलकुल एक समतल भूमि है।

कीथन : अगर हम आइन्स्टाइनके सापेक्षवादकी दृष्टिसे सोचें तो सब समान हैं। लेकिन इस समानताको मैं ठीकसे व्यक्त नहीं कर सकता, ठीकसे परिभाषित नहीं कर सकता।

गाधीजी : इसीलिए तो मै कहता हूँ कि सभी धर्म समान रूपसे सत्य है, सभी मे दोष भी समान रूपसे विद्यमान है। आप जितनी अधिक सूक्ष्म रेखा खीचेगे, वह यूक्लिडकी सरल रेखाके उतनी ही अधिक निकट होगी, लेकिन वह कभी भी सच्ची सरल रेखा नही बन सकती। धर्मका वृक्ष तो एक ही है, हाँ, उसकी शाखाएँ जड या स्थूल रूपसे समान नही है। वे सब-की-सब विकासमान है, और जो व्यक्ति अधिक विकासमान शाखापर बैठा हुआ है, उसे यह शेखी नही मारनी चाहिए कि 'देखो, यह मेरी शाखा दूसरी शाखाओसे श्रेष्ठ है।' कोई भी किसीकी तुलनामे श्रेष्ठ नही है, और न तुच्छ ही।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, १३-३-१९३७

४२९. बातचीत : एक रोमन कैथोलिक पादरीसे[1]

[५ मार्च, १९३७][2]

अभी पिछले दिनोंकी बात है कि गांधीजीसे मिलने एक रोमन कैथोलिक पादरी आये थे। उन्होंने गांधीजीसे पूछा कि आप जाति-प्रथाको कैसे तोड़नेवाले हैं।

गांधीजी : वह तो टूट ही रही है। जरूरत सिर्फ लोगोंको शिक्षा देनेकी है, और कुछ दिनोंसे जो शिक्षा दी जा रही है उसके कारण वह टूट रही है। लेकिन शिक्षासे मेरा मतलब किताबी शिक्षा नहीं, बल्कि सच्चे ज्ञानका प्रसार है। जाति-प्रथाका कोई धार्मिक आधार नहीं है, लेकिन इसे धर्मसे बँधा हुआ जरूर माना जाता है, हालांकि धर्मग्रन्थोंमें इसके लिए कोई आदेश नहीं है। अस्पृश्यता जाति-प्रथाकी चरम सीमा है और अस्पृश्यताके मिटते ही जाति-प्रथा समाप्त हो जायेगी। अस्पृश्य लोग सारी दुनियामें रहे हैं। यूरोपमें यहूदी लोग अस्पृश्य ही तो थे। उन्हें सामान्य आबादीसे दूर अलग बस्तियोंमें छोटे-छोटे झोपड़ोंमें रहना पड़ता था। वहाँ उनका जीवन यहाँके अस्पृश्योंके जीवनसे भी गया-बीता था। भारतमें उन्हें जिस पतितावस्थामें पहुँचा दिया गया है वह तो बहुत बुरी है ही, लेकिन इज़रायल जैंगविलकी कृतियोंसे, जिन्हें मैंने एक मित्रके कहनेपर कई वर्ष पहले पढ़ा था, उन यहूदी बस्तियोंके बारेमें जो जानकारी मिलती है उससे तो खून जम जाता है। हम जैसी अहिंसाका पालन कर रहे हैं उसके कारण भारतमें वैसी कोई बात नहीं हो सकती। फिर भी, यद्यपि हमारे यहाँ उन यहूदी बस्तियों-जैसी कोई चीज नहीं है, किन्तु किसीके लिए यह कहना कठिन है कि इन दोमें से अमुक अच्छा है। गरज यह कि अस्पृश्यताको मिटा दीजिए, फिर जाति-प्रथाका सारा ढाँचा अपने-आप ढह जायेगा।

इसके बाद गांधीजीने जाति और वर्णका भेद समझाया। उन्होंने बताया कि वर्णका नियम केवल हिन्दुओंके लिए ही नहीं, बल्कि सबके लिए है। वास्तवमें हम सब जाने-अनजाने उसका पालन करते हैं, और अगर नहीं करते तो उसमें हमारा ही नुकसान है। जाति-प्रथा वह सबसे बड़ी चीज रही है जिसको लक्ष्य बनाकर मिशनरियोंने हिन्दू-धर्मकी आलोचना की है और ऐसा करके उन्होंने ठीक ही किया है। लेकिन जिस अर्थमें जातिका वर्णन सर डब्ल्यू० डब्ल्यू० हंटर[3] ने किया है उस अर्थमें — अर्थात् वर्ण और व्यवसाय-मण्डलोंके रूपमें — तो वह सदा रहेगी।

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

२. महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीके अनुसार।

३. वाइसराय-कौंसिलके एक सदस्य, जिनकी देखरेखमें स्टैटिस्टिकल सर्वे ऑफ इंडियन एम्पायर (१८६९-८१) का कार्य किया गया था। उनकी रिपोर्टका सार बादमें द इम्पीरियल गजट ऑफ इंडियामें प्रकाशित हुआ था।

कैथोलिक पादरी : यदि हिन्दू-धर्म एकेश्वरवादी बन जाये तो ईसाई-धर्म और हिन्दू-धर्म परस्पर सहयोग करते हुए भारतकी सेवा कर सकते हैं।

गा० : वैसा सहयोग होते देखकर मुझे बड़ी खुशी होगी। लेकिन अगर आजकी ईसाई धर्म-प्रचारक सस्थाएँ इसी तरह हिन्दू-धर्मका उपहास करती रही और यह कहती रही कि हिन्दू-धर्मका त्याग और निन्दा किये विना कोई स्वर्ग जा ही नही सकता तो वह सहयोग कभी नही हो पायेगा। लेकिन मै ऐसे भले ईसाईकी कल्पना कर सकता हूँ जो चुपचाप कर्मरत रहकर हिन्दू-समाजमे अपनी सुरभि विखेरता रहे — ठीक उसी तरह जैसे गुलावका फूल करता है। गुलावको अपनी सुगन्ध फैलानेके लिए किसीसे कुछ कहनेकी आवश्यकता नही पडती, वल्कि वह इसलिए वैसा करता रहता है कि वही उसका धर्म है। सच्चा आध्यात्मिक जीवन भी ऐसा ही होता है। और जव ऐसा होने लगेगा तव ससारमे निश्चय ही शान्तिका राज्य स्थापित हो जायेगा और आदमी-आदमीके वीच सद्भावना कायम होगी। लेकिन जवतक उग्र या "मस्कुलर" ईसाई-धर्म चलता रहेगा, तवतक ऐसा नही होने वाला है। यह ईसाई-धर्म 'बाइविल' मे देखनेको नही मिलता, लेकिन जर्मनी और दूसरे देशोमे आप इसे देख सकते है।

रो० कै० पा० : लेकिन अगर भारतीय एक ईश्वरमें विश्वास करने लगें और मूर्त्तिपूजा छोड़ दें तो क्या आप नहीं समझते कि इतनेसे ही सारी समस्या हल हो जायेगी ?

गा० : क्या इतनेसे ईसाई सन्तुष्ट हो जायेगे? क्या इसपर उनमे पूरा मतैक्य है?

रो० कै० पा० : नहीं, सभी ईसाई सम्प्रदायोंमें तो मतैक्य नहीं ही है।

गा० : तव तो आप एक सैद्धान्तिक प्रश्न ही पूछ रहे है। लेकिन क्या मै पूछ सकता हूँ कि इस्लाम और ईसाई-धर्ममे, जिनमे एक ही ईश्वरमे विश्वास किया जाता है, आपसमे क्या कोई सहयोग और मेल-जोल है? अगर इन दोनो धर्मोमे मेल-जोल नही है तो फिर हिन्दू-धर्म और ईसाई-धर्मके वीच तो आपके सुझाये ढगके मेल-जोल और सहयोगकी और भी कम आशा है। मेरे पास इस समस्याका अपना समाधान तो है, लेकिन पहले मै इस कथनका प्रतिवाद करता हूँ कि हिन्दू अनेकेश्वरवादी और मूर्त्तिपूजक है। वे यह तो जरूर कहते है कि देवी-देवता अनेक है, लेकिन साथ ही स्पष्ट रूपसे यह भी कहते है कि ईश्वर — देवाधिदेव — एक है। इसलिए हिन्दुओको अनेकेश्वरवादी कहना ठीक नही है। अनेक लोकोमे उनका विश्वास अवश्य है। जिस प्रकार एक लोक मनुष्योसे आवाद है और एक अन्य पशुओसे, उसी प्रकार एक तीसरा लोक भी है जिसमे देवता कहलानेवाले श्रेष्ठतर जीवात्माओका निवास है। उन्हे हम देख तो नही सकते, फिर भी उनका अस्तित्व अवश्य है। सारी समस्याकी जड़ 'देव' या 'देवता' शब्दका अग्रेजी अनुवाद है। आपकी भाषामे इसका 'गॉड' से अधिक अच्छा कोई पर्याय ही नही है। लेकिन 'गॉड' तो ईश्वर है, देवाधिदेव है। इस तरह आप देखते है कि इस गडबडीका कारण देवताओके लिए प्रयुक्त 'गॉड' शब्द है। मै समझता हूँ कि मै एक पक्का हिन्दू हूँ, लेकिन अनेक ईश्वरोमे मेरा

विश्वास कभी नही रहा। अपनी बाल्यावस्थामे भी मुझे कभी ऐसा विश्वास नही रहा और न किसीने कभी मुझे ऐसा मानना सिखाया है।

जहाँतक मूर्त्ति-पूजाका सवाल है, मैं तो कहूँगा कि किसी-न-किसी रूपमे मूर्त्ति-पूजा किये बिना आपका काम ही नही चल सकता। मुसलमान मंसजिदको अल्लाहका घर कहते है और उसकी रक्षा करनेके लिए अपने प्राणोकी बलि चढ़ा देते है—ऐसा क्यों? और ईसाई गिरजाघर क्यो जाते है और जब उनसे शपथ लेनेको कहा जाता है तो वे 'बाइबिल' के नामपर शपथ क्यो लेते है? मुझे इसपर कोई आपत्ति हो, ऐसी बात नही है। मसजिद और मकबरे बनवानेपर लाखो-करोडो रुपये खर्च करना मूर्त्ति-पूजा नही तो और क्या है? और जब रोमन कैथोलिक पत्थर की बनी या कांच अथवा टाटपर चित्रित कुमारी मेरी और अन्य सन्तोकी बिलकुल काल्पनिक आकृतियोके समक्ष घुटने टेकते हैं, तब उसका मतलब क्या होता है?

रो० कै० पा०: लेकिन वैसे तो मैं अपनी माँ की भी तसवीर अपने पास रखता हूँ और श्रद्धापूर्वक उसे चूमता हूँ। लेकिन मैं उस तसवीरकी पूजा नहीं करता और न उन सन्तोंकी ही। जब मैं ईश्वरकी पूजा करता हूँ तो उसे स्रष्टा और हर मानवसे श्रेष्ठ मानकर करता हूँ।

गा०: ठीक इसी तरह पत्थरकी नही, बल्कि पत्थर या धातुकी प्रतिमाओमे—चाहे वे जितनी बेढगी हो—ईश्वरकी कल्पना करके हम भी ईश्वरको ही पूजते हैं।

रो० कै० पा०: लेकिन ग्रामीण लोग तो पत्थरोंको ही भगवान मानकर पूजते हैं।

गा०: नही, ऐसा नही है। आप विश्वास कीजिये कि वे ईश्वरसे छोटी किसी सत्ताको नही पूजते। जब आप कुमारी मेरीके सामने घुटने टेककर उनसे आशीर्वाद माँगते हैं तो क्या कहते है? आप उनसे यही याचना करते हैं न कि उनके प्रसादसे ईश्वरसे आपका सम्बन्ध स्थापित हो। इसी प्रकार हिन्दू पत्थरकी प्रतिमाके माध्यमसे ईश्वरसे अपना सम्पर्क स्थापित करनेकी कोशिश करता है। आप देवी कुमारीसे आशीर्वाद माँगते हैं, इसे मैं समझ सकता हूँ। मसजिदमें प्रवेश करते ही मुसलमानका मन श्रद्धा और आह्लादसे क्यो भर उठता है? उसके लिए यह पूरा विश्व ही मसजिद क्यो नही है? और हमारे ऊपर जो यह अनन्त आकाश भव्य वितानकी तरह फैला हुआ है, उसके बारेमे आपका क्या कहना है? क्या यह मसजिदसे कुछ कम है? लेकिन मैं मुसलमानोकी भावनाको समझता हूँ और उनके प्रति मेरी सहानुभूति है। ईश्वरको पानेका उनका यही रास्ता है। इसी तरह परब्रह्मको प्राप्त करनेका हिन्दुओका भी अपना एक मार्ग है। हमारी साधनाके मार्ग अलग-अलग हैं, लेकिन इसीसे ईश्वर भी तो अलग-अलग नही हो जाता।

रो० कै० पा०: लेकिन कैथोलिकोंकी मान्यता है कि ईश्वरने उनको सच्चा मार्ग बताया है।

गा०: मगर आप यह क्यों समझते है कि ईश्वरकी इच्छा 'बाइबिल' नामके एक ही ग्रन्थमे व्यक्त हुई है, किसी अन्यमें नही? ईश्वरकी शक्तिपर आप मर्यादा क्यो लगाते है?

रो० कै० पा० : लेकिन ईसाने चमत्कारों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि उनको ईश्वरका सन्देश प्राप्त हुआ था।

गा० : लेकिन यह दावा तो मुहम्मद साहबका भी था। अगर आप ईसाइयोके साक्ष्यको स्वीकार करते है तो आपको मुसलमानो और हिन्दुओके साक्ष्य भी स्वीकार करने चाहिए।

रो० कै० पा० : लेकिन मुहम्मद साहबने तो कहा कि मैं चमत्कार नहीं कर सकता।

गा० : नही, ऐसा नही है। बात यह है कि वे चमत्कारोके द्वारा ईश्वरका अस्तित्व सिद्ध नही करना चाहते थे। लेकिन ईश्वरसे सन्देश पानेका दावा उन्होने भी किया।

रो० कै० पा० : हमें इस बातकी बड़ी खुशी है कि कांग्रेसने भारी सफलता प्राप्त की है। लेकिन इधर जो साम्यवादकी ओर उसका रुझान दिखाई देता है, वह क्या है?

गा० : अच्छा, ऐसा है? पर मुझे तो ऐसा-कुछ दिखाई नही देता। लेकिन अगर उसमे ऐसा रुझान दिखाई देता है और उसका साम्यवाद रूसी ढंगका न हो, तो मुझे उसमे कोई बुराई नही जान पड़ती। क्योकि, विश्लेषण करे तो अन्तमे साम्य-वादका अर्थ क्या निकलता है? वर्ग-रहित समाज ही न? यह तो ऐसा लक्ष्य है जिसके लिए प्रयत्न करना श्रेयस्कर बात है। इससे मेरा झगड़ा तो बस वहाँ शुरू होता है जहाँ यह उस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिए बल-प्रयोगका सहारा लेता है। हम सब जन्मसे समान है, लेकिन इतनी सदियोसे हम ईश्वरकी इच्छाके विरुद्ध काम करते आये है। असमानताका, ऊँच-नीचका विचार एक बुराई है, लेकिन मै सगीनके जोरपर मानव-हृदयसे बुराईको दूर करनेमे विश्वास नही रखता। मानव-हृदय ऐसी चीज ही नही है जिसे ऐसे साधनसे साधा जा सके।

रो० पा० : जब सत्ता हिन्दुओके हाथोंमें आ जायेगी, तब क्या वे ईसाइयोंके विरुद्ध अपना एक संयुक्त मोर्चा नहीं बना लेंगे? और सत्ता उनके हाथोंमें आयेगी, इसके तो पूरे आसार दिखाई दे रहे हैं। अगर यहाँ ऐसा हुआ, जैसाकि आज स्पेनमें हो रहा है, तो भारतीय ईसाइयोंका तिरस्कार होगा, उन्हें सताया जायेगा और उन्हें मिटा दिया जायेगा।

गा० यह तो आप बिलकुल असम्भव बात कह रहे है। हिन्दू-शासन-जैसी कोई चीज नही है, ऐसी कोई बात कभी होनी भी नही है। सत्तर लाख ईसाइयोको यहाँसे कोई कैसे मिटा सकता है? और आप जो बात कह रहे है उसका मतलब तो यह है कि मुसलमानोको भी समूल नष्ट कर दिया जायेगा। आपको बता दूं कि किसी हिन्दूने कभी सपनेमे भी ऐसा नही सोचा है। और क्या दुनिया ऐसी किसी बातको बरदाश्त कर लेगी? अगर हिन्दू-ससारने कभी ऐसा प्रयत्न किया तो वह वास्तव मे अपना विनाश आप ही करेगा। लेकिन आप सच मानिए कि हिन्दुओके मनमे ऐसी कोई इच्छा कभी नही रही है। जिन ईसाइयोने पहले-पहल इस देशमे पैर रखे,

अगर हिन्दू उन्हें समाप्त कर देना चाहते तो मजेमे कर सकते थे। लेकिन उन्होने ऐसा-कुछ क्यो नही किया? त्रावणकोर धार्मिक सहिष्णुताका एक सुन्दर उदाहरण है। जब मै वहाँ गया था, तब लोग मुझे वहाँका अत्यन्त प्राचीन गिरजाघर दिखाने ले गये थे। यह वही स्थान है जहाँ, कहते है, सन्त टॉमसने पहला क्रॉस गाडा था। उन्हे क्यो वैसा करने दिया गया?

रो० कै० पा०: लेकिन सन्त फ्रान्सिस जेवियरके जीवन-काल[1] में एक समय ऐसा आया जब ईसाइयोंपर अत्याचार किया जाने लगा। लेकिन मुझे इतिहासका ज्ञान नहीं है और हो सकता है, मेरी जानकारी गलत भी हो। मगर मैंने जापानमें जो-कुछ देखा और सुना, उससे मेरे मनमें डर पैदा हो गया है। वहाँ एक जिम्मेदार आदमीको मैंने एक सार्वजनिक भाषणमें कहते सुना कि "जापानका धर्म बौद्ध धर्म है और हमें इसकी जड़ें मजबूत करनी चाहिए। शेष सभी धर्मोको उखाड़ फेंकना चाहिए।"

गां०: ठीक है, लेकिन कोई हिन्दू सपनेमे भी ऐसा नही सोचता। अगर सोचे भी तो यह बात असम्भव है।

और अब पादरी महोदयने अपनी परेशानीका असली कारण बताया यानी आर्यसमाज।

गां०: मै यह स्वीकार करता हूँ कि आर्यसमाज उग्र हिन्दुत्वका एक रूप है। लेकिन आर्यसमाजियोका भी तलवारकी पूजामे कभी विश्वास नही रहा। वे जो बुरे-से-बुरा काम कर सकते है वह यही कि अगर आप उनके मचसे जाकर बोले तो वे आपसे हिन्दू बन जानेको कहेंगे।

रो० कै० पा०: लेकिन मैंने आर्यसमाजियोको यह कहते सुना है कि ईसाई-धर्म तो पश्चिमी दुनियाका धर्म है, और जिस प्रकार पश्चिमसे आनेवाली दूसरी सभी चीजोंको अस्वीकार कर देना चाहिए उसी प्रकार ईसाई-धर्मको भी।

गां०: मैंने तो भारतसे ईसाई-धर्मको मिटा देनेकी बात कभी नही सुनी। आर्यसमाज एक ऐसा समाज है जो अपने अनुयायियोंसे दुनियाके ओर-छोरतक जाकर आर्य-धर्मका प्रचार करनेको कहता है, लेकिन अभीतक उन्होने ऐसा-कुछ किया तो नही है। पजाबमे उसके पैर खूब जमे हुए हैं। जिस अर्थमे आर्य-प्रभुत्वकी कल्पना करके आप डरते है, उस अर्थमे उसके प्रकट होनेकी कोई सम्भावना नही है। अगर हिन्दुओंसे इतर भारतकी सारी जातियोंको एक साथ करके देखें, तो आप पायेंगे कि हिन्दू लोग बहुसख्यक नही है। लेकिन अब इस चर्चाको आगे क्यो बढ़ाये? आप जो-कुछ कह रहे है वैसा कभी होनेवाला ही नही है।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, १३-३-१९३७

१. सन्त फ्रान्सिस जेवियर १५४१-४५ में भारतमें थे।

४३०. हम दूसरोंकी नजरमें

एक पत्र मेरी फाइलमे कुछ दिनोसे पडा हुआ है, उसे मै नीचे दे रहा हूँ:[1]

जिस नजरसे हमे दूसरे लोग देखते है, अपनेको उसी नजरसे हम स्वय देखें, यह बहुत अच्छी बात है। हम चाहे जितनी कोशिश करे, अपनेको पूरी तरहसे उस रूपमे नही देख पाते जैसे वास्तवमे हम है। यह बात विशेष रूपसे हमारे बुरे पक्षके बारेमे लागू होती है। अपने-आपको हम असली रूपमे तभी देख सकते है जब अपने आलोचकोपर नाराज न हो, बल्कि वे जो-कुछ कहे उसे सही भावनासे ग्रहण करे। खैर, यहाँ मेरा इरादा ऊपर दी गई आलोचनापर अपनी सामर्थ्य-भर अधिक-से-अधिक तटस्थतासे विचार करनेका है। आज हिन्दू-धर्मका जो व्यावहारिक रूप देखनेको मिलता है, उसके गम्भीर दोषोको स्वीकार करना पड़ेगा। बहुत-से मठ और उनकी व्यवस्था, निस्सन्देह, हिन्दू-धर्मके लिए लज्जाका विषय है। जो विपुल धन उनके कोषोमे जाता रहता है, भक्तोको सेवाके रूपमे उसका कोई प्रतिदान नही मिलता। इस स्थितिमे या तो सुधार किया जाना चाहिए या फिर इसे समाप्त ही कर देना चाहिए।

ईसाई मिशन दया और मानवीयताके अच्छे कार्य करते है, यह भी स्वीकार करना पडेगा।

लेकिन मै ये बाते स्वीकार कर रहा हूँ, इसका मतलब यह नही लगाया जाना चाहिए कि मै पत्र-लेखकके निष्कर्षोसे भी सहमत हूँ। आर्थिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी

१. पत्र यहाँ नही दिया जा रहा है। धर्मान्तरणके प्रति गांधीजीके रवैयेकी आलोचना करते हुए पत्र-लेखकने लिखा था कि हिन्दू-धर्म अपने तत्त्व-दर्शनकी दृष्टिसे चाहे जितना श्रेष्ठ हो, उसका जो व्यावहारिक रूप है उसको ध्यानमें रखते हुए गाधीजीको हिन्दू-धर्मके अन्तर्गत दलित वर्गोके लिए किसी सुन्दर भविष्यकी आशा नही करनी चाहिए। पत्र-लेखकका कहना था कि जहाँ ईसाई धर्म-संगठन धनी-मानी ईसाइयोंसे प्राप्त धनका उपयोग स्कूल, कॉलेज, अस्पताल आदि खोलने तथा गरीबोंकी भलाईके लिए करता है, वहाँ मन्दिरों और मठोंके पुजारी और महन्त जनताको चूसकर खुद गुलछर्रे उड़ाते हैं। वे मन्दिरों और मठोंकी जमीन-जागीरों तथा अनुदान-चढ़ावेसे प्राप्त धनका कोई हिसाब नही रखते और न किसीको कोई हिसाब देते हैं। दलित वर्गोंका जो आर्थिक शोषण होता है वह तो होता ही है, उन्हें पूजाका अधिकार भी प्राप्त नही है। लेकिन इस सबके विरुद्ध कोई भी प्रभावशाली और प्रबुद्ध हिन्दू आवाज नही उठाता। फिर क्या आश्चर्य कि दलित वर्गके लोग इसके खिलाफ विद्रोह कर रहे हैं? पत्र-लेखकने आगे सुझाव दिया था कि इन शोषितों और दलितोंको जरूरत तरह-तरहके कुटीर-उद्योगोंकी नहीं बल्कि अधिक अच्छे आहार, विभिन्न धन्धोंकी शिक्षा देनेवाले बहुत-से स्कूलों, औषधालयों, बाल-कल्याण केन्द्रों और प्रसूति-गृहोंकी है। पत्र-लेखकने प्रकारान्तरसे यह भी कह डाला था कि देशकी व्याधिकी जड़ विदेशी शासन नहीं, बल्कि हिन्दू-धर्मकी रूढ़ियाँ है, क्योंकि ये रूढ़ियाँ "विदेशी शासनसे कुछ-एक हजार वर्ष पुरानी तो हैं ही।

पत्रके अन्तमें ईसाई-धर्मके पुरोहितों और पादरियोंकी मानव-सेवाका गुण-गान किया गया था।

सहायताकी जरूरत हरिजनोंके साथ-साथ अन्य अधिकाश गरीव भारतीयोको भी है। लेकिन हरिजनोपर बहुत-से विशेष प्रतिवन्ध लगे हुए है। इस वातका कोई महत्त्व नही कि कौन-से प्रतिवन्ध उन्हें वुरे लगते है। तथाकथित उच्चवर्गीय हिन्दुओका यह कर्त्तव्य है कि हरिजन जिन वेड़ियोंमे जकडे हुए है उन्हे वे तोड दे, चाहे स्वय हरिजन ही उनको गलेसे लगाये रखना क्यो न चाहे। हिन्दू-धर्मको जिस रूपमें विवेकानन्द और राधाकृष्णन्ने प्रतिपादित किया है उस रूपमें उसकी दिव्यता और उच्चता पत्र-लेखकने स्वीकार की है। लेकिन इस स्वीकृतिसे उन्हे सहज ही यह भी ज्ञात हो जाना चाहिए था कि इसी रूपमें यह धर्म सर्व-साधारणके मानसमें उतर चुका है। मै यह कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि इन ग्रामवासियोमे जो अनगढता दिखाई देती है, उसके वावजूद अगर वर्गत विचार करे तो हम पायेंगे कि मानव-स्वभावकी तमाम अच्छाइयोकी दृष्टिसे ये लोग ससारके किसी भी क्षेत्रके ग्रामवासियोकी तुलनामे श्रेष्ठ ही पड़ते है। ह्वेनसागके समयसे लेकर आजतक जो विदेशी यात्री समय-समयपर भारत आते रहे है, उनके विवरण भी इस वातकी साक्षी भरते है। भारतके गाँव जिस सहज सस्कृतिका परिचय देते है, गरीवोके घरोमें जो कला देखनेको मिलती है, ग्रामीण लोगोके आचरणमे जो सयम दिखाई देता है, वह सव निश्चय ही उस धर्मका परिणाम है जिसने अनादि कालसे उन्हे एक सूत्रमे वाँध रखा है।

हिन्दू-धर्मकी महत्ताको घटाकर दिखानेके उत्साहमे पत्र-लेखकने इस मोटी वातको भी नजरअन्दाज कर दिया है कि यह सदासे अनेकानेक सुधारक पैदा करता रहा है, जिन्होंने पूर्वग्रहो, अन्धविश्वासों और कुरीतियोका सफलतापूर्वक मुकावला किया है। इसने गरीवोकी सहायता करनेकी अपनी एक पद्धति भी विकसित कर ली है और बहुत-से विदेशी लोगोने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। हाँ, अपनी इस पद्धति का ढिंढोरा उसने नही पीटा है, यह वात जरूर है। मै खुद ही यह मानता हूँ कि अभी उस दिशामें बहुत-कुछ करना शेष है। लोकोपकारकी दृष्टिसे हिन्दू-धर्ममे जो कुछ किया जा रहा है, उसका एक वुरा पक्ष भी जरूर है। लेकिन शुद्ध लोकोपकारकी दृष्टिसे उन प्रवृत्तियोने अपना औचित्य सिद्ध कर दिया है। छपी हुई पुस्तिकाओ आदिके माध्यमसे अपने दान-दाक्षिण्य और दयाके कार्योंका ढिंढोरा पीटना भारतके स्वभावमे नही है। लेकिन देशी ढगसे चलाये जानेवाले लगर और चिकित्सा-सम्वन्धी सहायताकी प्रवृत्तियाँ तो यहाँ कोई भी अनायास ही देख सकता है।

पत्र-लेखकने ग्रामोद्धारके कार्योंके महत्त्वको घटाकर पेश किया है। इससे उनके घोर अज्ञानका परिचय मिलता है। मठों और मालगुजारी वगैरह वसूल करनेवाले कार्यालयोके मिट जानेसे लोगोका आलस्य और निठल्लापन तो नही मिट जायेगा। मठोमे सुधार अवश्य किया जाना चाहिए और मालगुजारीकी व्यवस्थामें भी आमूल परिवर्तन होना चाहिए। नि शुल्क प्राथमिक शालाओकी स्थापना भी हर गाँवमे होनी चाहिए। लेकिन लोगोको मालगुजारी नही देनी पडेगी, मठोंको समाप्त कर दिया जायेगा और हर गाँवमे पाठशालाएँ खुल जायेगी, इसीसे भुखमरी और अभाव नही मिट जायेगा। गाँवोके लिए सवसे वड़ी शिक्षा यह है कि ग्रामवासियोको वारहो महीने,

चाहे खेतोमे हो या ग्रामोपयुक्त उद्योगोके क्षेत्रमे हो, सही रीतिसे और लाभप्रद ढंगसे काम करना सिखाया जाये या इसके लिए प्रेरित किया जाये।

और अन्तमे, पत्र-लेखकको यह बात बुरी लगती जान पडती है कि मिशनरियो द्वारा मानवीयता और लोकोपकारकी भावनासे प्रदान की गई सेवाएँ हम स्वीकार करते हैं। क्या वे इन मिशनरी सस्थाओके खिलाफ एक आन्दोलन चलायेगे? उन्हे गैर-ईसाई लोगोकी ओरसे सहायता क्यो मिले? वे तो भारतीयोको उनके पैतृक धर्मसे, उस धर्मके उस रूपसे भी जिसका प्रतिपादन विवेकानन्द और राधाकृष्णन्‌ने किया है, विमुख करनेके लिए की गई हैं। वे पहले इन सस्थाओको इस दोहरे उद्देश्य से तो मुक्त करे। फिर अगर वे गैर-ईसाइयोसे सहायताकी अपेक्षा करेगे तो वह उचित होगा। वैसे, आलोचक महोदयको शायद यह पता होगा कि आज भी इन संस्थाओको गैर-ईसाइयोकी ओरसे कुछ-न-कुछ सहायता मिलती है। मेरा कहना तो यह है कि जबतक वे उस उद्देश्यको लेकर चल रही हैं जो गैर-ईसाइयोको नापसन्द है, तबतक अगर उन्हे उनकी ओरसे कोई सहायता नही मिलती तो इसपर कोई शिकायत नही होनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ६-३-१९३७

४३१. पत्र : अमतुस्सलामको

सेगाँव, वर्धा
६ मार्च, १९३७

चि० अमतुल सलाम,

तेरा पत्र आज शनिवारको मिला। कहना चाहिए कि तू ठीक समयपर पहुँची। अमतुल[1] खूब बच गई। . . .[2] बेटीका नाम मुझसे सुझानेको कहती है, लेकिन इसमे मैं क्या जानूँ? फिर भी मुझे तो अमीना, फातिमा सूझता है। लेकिन नाम रखने का अधिकार तो फूफीका ही होता है। फिर तू फूफी है, इसलिए तुझे जो पसन्द आये वही नाम ठीक है। तू अमतुलको लिखनेको कहती है, लेकिन तूने उसका पूरा नाम भी नही दिया है। इसलिए निम्न अंश उसे पढवा देना :

"तुझे और तेरी बेटीको खुदाने बचाया, इसके लिए मैं तुझे बधाई देता हूँ। लेकिन अमतुल सलाम लिखती है कि तुझे तो बेटा चाहिए था। बहुत-सी स्त्रियोको ऐसी इच्छा रहती है, यह मैं जानता हूँ। लेकिन ऐसी इच्छा ठीक नही है। बेटी और

१. अमतुस्सलामके भाई वहीद ख की पत्नी।

२. साधन-सूत्रमें यहाँ कुछ अंश कटा हुआ है।

बेटेमे इतना भेद क्यो? ईश्वर जो हमे दे उतनेमे सन्तोष मानना चाहिए। खुदा तुम दोनोको दीर्घायु करे।"

मौलाना साहब[1] को तुझे जो लिखना हो सो लिखकर उनसे फतवा माँगना हो तो जरूर माँग ले। मै तो किसी भी तरह तुझे शान्त देखना चाहता हूँ।

मैने कनुसे बात कर ली है। उसका कहना है कि अभी जो काम हाथमे है उसे छोड़नेकी उसकी जरा भी इच्छा नही थी। यदि वह 'रामायण' के काममे न जुट गया होता तो तेरे साथ रहकर खादीका काम करना उसे अच्छा लगता। लेकिन जिस कामको उसने चुन लिया है यदि उसे छोड़ देगा तो व्रतभग हुआ माना जायेगा। इसलिए तुझे अगर कनुसे खादीके काममे मदद लेनी हो तो वह वर्धामे ही ली जा सकती है।

वहाँ तुझे अपनी पसन्दकी सेवाका काम करनेको मिला है, इसलिए तेरी तबीयत अच्छी हो जानी चाहिए। बाकी तो जबतक तेरा मन ठिकाने नही आयेगा, तबतक तू बीमार ही रहेगी।

रशीद[2] और भाभी[3] को दुआ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७५)से।

४३२. पत्र: शारदाबहन चि० शाहको

सेगाँव
६ मार्च, १९३७

चि० शारदा,

तू तो मुझे बिलकुल भूल गई थी। लेकिन इतने सारे महीनोंके बाद भी तेरा पत्र आया, तो अच्छा ही लगा। तू मुझे लिखती रहे तो मेरी मान्यता है कि तेरी तन्दुरुस्ती सुधारनेमें मै तेरी अच्छी मदद कर सकूँगा।

मैने चिमनलालको[4] पत्र लिखा है, उसे ध्यानपूर्वक पढना। यदि उसके अनुसार चली तो तेरा शरीर ताँबे-जैसा हो सकता है, इसमें मुझे बिलकुल सन्देह नही है। 'पहेलु सुख ते जाते नड्या (नर्या)' 'एक तन्दुरुस्ती हजार नियामत' यह कहावत तूने सुनी है?

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९७३)से, सौजन्य . शारदाबहन गो० चोखावाला।

१. अबुल कलाम आजाद।
२. अमतुस्सलामके भाई।
३. होसा रशीद, रशीदकी पत्नी।
४. देखिए "पत्र: चिमनलाल एन० शाहको", पृ० ३८९-९०।

४३३. शुरुआत कैसे करें[1]

खादीकी विविध क्रियाओमे जिन्हे निष्णात होना हो उनसे मैने अपने नाम भेजनेके लिए कहा था,[2] इसलिए उनका आना शुरू हो गया है। ऐसे लोगोके लिए कुछ सूचना देनेकी आवश्यकता है। जिन्हे जिस विषयमे विशेषज्ञ होना हो उनमे उस विषयमे पूर्ण श्रद्धा, उसका सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेके लिए काफी उत्साह और उसके लिए त्याग करनेकी तैयारी होनी चाहिए। दुनियामे आजतक किसी भी विषयके जो भी विशेषज्ञ हुए हैं उन सबका करीब-करीब यही इतिहास है। पुस्तके, शिक्षक आदि सामग्री तो अवश्य चाहिए, लेकिन सबसे बडी जरूरत तीव्र इच्छाकी होती है। जहाँ ऐसी इच्छा है वहाँ सामग्री तो उसके साथ पैदा हो ही जाती है। इसलिए जिनके अन्दर ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई है उन्हे अपने आस-पास जाँच-पड़ताल करके वहाँ जो-जो ज्ञान मिल सकता हो, वह प्राप्त कर लेना चाहिए। यह तो स्वानुभवकी बात है। हिन्दुस्तानके हरेक प्रान्तमे खादीकी तमाम क्रियाएँ चल ही रही हैं। लेकिन किसी एक ही व्यक्तिको उसकी पूरी जानकारी नही है। यदि हमे खादीके शास्त्रकी रचना करनी है तो उस सब जानकारीकी जरूरत होगी। एक ही आदमी वह सब जानकारी प्राप्त नही कर सकता। किन्तु यदि एकसे अधिक आदमियोको खादी-विशेषज्ञ बननेकी लगन हो, तो उन सबकी बुद्धिका योग हो सकता है, और इस तरह दिनोदिन खादी-शास्त्रमे वृद्धि होती जायेगी। लेकिन ऐसा कुछ होनेसे पहले, विशेषज्ञ होनेवालोको प्रचलित क्रियाओ पर तो अपना अधिकार कर ही लेना चाहिए।

उदाहरणके लिए, आन्ध्र प्रदेशमे अलग-अलग जगहोमे अलग-अलग किस्मकी खादी होती है और रूई पीजनेकी क्रिया भी वहाँ भिन्न-भिन्न प्रकारकी है। ये सारी क्रियाएँ सीखनेके लिए आन्ध्रके लोगोको अपने प्रान्तसे बाहर जानेकी जरूरत नही है। जो क्रिया अपने आस-पास ही चल रही हो, उसे सीखनेवाला सीख ही लेता है। और बतौर विज्ञानके सीखना शुरू करे तो उसे धुनकीकी रचना समझ लेनी चाहिए। ताँत कैसे बनती है, धुनकी किस चीजकी बनती है, किस तरह बनती है, उसकी अमुक लम्बाई ही क्यो होती है, उससे छोटी हो तो क्या हो, डोरीपर ठनकार अमुक जगह ही क्यों लगायी है, यह सब जाननेकी उसकी इच्छा होगी। अच्छे-से-अच्छे पीजनेवालेको भी शायद पीजनेकी बनावटका भान नही होता, और हो तो भी वह उसकी प्रत्येक क्रियाका कारण तो नही जानता होगा। लेकिन जो विशेषज्ञ होना चाहता है उसे तो जैसे धुनकीके बारेमे जिज्ञासा होगी, वैसे ही रूईके बारेमे

१. इसका अंग्रेजी अनुवाद *हरिजन*, १०-४-१९३७ में भी प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए "खादी-कार्यकर्त्ताको क्या-क्या जानना चाहिए?" पृ० ४०५-६।

भी होगी। रूईकी कितनी किस्में है? उसके हाथमे रूई आनेसे पहले उसपर क्या-क्या क्रियाएँ हुई? रेशेकी लम्बाई कितनी है? रूई कहाँ पैदा होती है? किस भावकी पड़ती है? रूईकी फसलमे कितनी जमीन रुकती है? इस जमीनमे पहले क्या होता था, या वह जमीन पड़ती ही पड़ी रहती थी? रूईकी जगह और कोई फसल की जाये तो किसानको ज्यादा लाभ हो या कम? ऐसे अनेक प्रश्नोकी छानबीन जिज्ञासु धुनकी-धारी करेगा। और अपने यहाँ बैठे-बैठे जो ज्ञान उसने प्राप्त किया होगा वह इतना काफी होगा कि आन्ध्र प्रदेशमें ही पीजनेकी दूसरी क्रियाका ज्ञान प्राप्त करना उसके लिए हस्तामलकवत् हो जायेगा, और कम-से-कम समयमे वह उसे प्राप्त कर लेगा। इस तरह सीखनेवालोको चाहिए कि जो-जो वे सीखे, उसको नोट करते जायें। उसकी ये टिप्पणियाँ ही किसी समय पुस्तकका रूप ले लेगी।

इस तरह पाठक देखेंगे कि बुनाई-शास्त्रसे सम्बन्ध रखनेवाली कोई खास या सारी क्रियाएँ सीखनेके लिए अपना क्षेत्र छोड़नेकी किसीको जरूरत नही पडती। जिज्ञासु तो जहाँ होगा वही बैठे-बैठे अच्छा कारीगर बन जायेगा और उस-उस कलाका वैसा ही सच्चा शास्त्री या विशेषज्ञ हो जायेगा।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, ७-३-१९३७

४३४. पत्र: क० मा० मुंशीको

सेगाँव, वर्धा
७ मार्च, १९३७

भाई मुशी,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम दिल्लीमे जरूर मेरे साथ ठहरना।

तुम्हारी बात मै समझ गया हूँ। इन मन्त्रालयोकी वजहसे अपना काम सभी जगह बहुत मुश्किल हो गया है। हमारी कार्यकुशलता, त्यागवृत्ति तथा नि:स्वार्थ बुद्धिकी कठिन परीक्षा होनेवाली है। देखे, क्या होता है। दिल्लीमे बात करेगे। मै पन्द्रह तारीखको सवेरे पहुँचूँगा।

तुम दोनोकी तबीयत ठीक होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७६१२)से, सौजन्य: क० मा० मुशी।

४३५. पत्र : विद्या आ० हिंगोरानीको

७ मार्च, १९३७

चि० विद्या,

तुम्हारा खत मिला। मैंने थोडे ही दिनोंके पहले एक लबा खत आनंदको लिखा था। जो-कुछ भी हाल हो हमे शातिसे ही रहना चाहिये।

महादेवसे कहो कि मुझे बांधनेकी बात कर रहा है। लेकिन जब वह आवेगा तब बधा जायगा?

आजकल क्या उपचार चलते है और उससे कुछ फायदा हो रहा है कि नही? मुझे खत लिखा करो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी माइक्रोफिल्मसे, राष्ट्रीय अभिलेखागार और आनन्द तो० हिंगोरानी।

४३६. पत्र : अमृतकौरको

दुबारा नहीं पढ़ा

सेगाँव, वर्धा
८ मार्च, १९३७

प्रिय विद्रोहिणी,

तुम्हे पत्र लिखनेका एक बहाना मिल गया है। तुम एक छोटी-सी नीली बोतल छोड गई हो। उसमे कोई सफेद चूर्ण है — रेचक नमकसे मिलता-जुलता-सा। वह क्या है? आशा है, ट्रेनमें कोई तकलीफ नही हुई होगी। जो हुआ उससे यह परिणाम निकलता है कि प्याज और शकरकन्द बिलकुल नही लेना है और लहसुन काफी मात्रामे लेना। पेटको ऐसा रखना है जिससे पतला दस्त न आये। कटि-स्नान तथा घर्षण-स्नान करने और लहसुनका सेवन करनेसे पेट ठीक हो जाना चाहिए और एक्जिमा भी। तुम्हे कम-से-कम तीन पौंड दूध रोज लेना चाहिए। बिना उबाले ताजा दुहा हुआ दूध दिनमे दो बार लेकर देखो। दूध धारोष्ण लेना चाहिए।

तुम्हारी जगह खाली है और बड़ी सूनी-सूनी सी दिखती है। जरा सोचो कि जो सहायक सदा छायाकी तरह साथ लगा रहे, उसके दूर चले जानेपर कैसा लगेगा!

मगर यही जिन्दगी है। सब-कुछ क्षणभंगुर है, नश्वर है। जो-कुछ है, ईश्वर ही है — उसके सिवा कुछ नहीं।

ईशावास्यम् इदम् सर्वम् यत् किंच जगत्याम् जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्वित् धनम्।।

इस मन्त्रको संधि-विच्छेद करके लिखा है।

सस्नेह,

[पुनश्चः]

तुम्हे हिन्दी 'अनासक्तियोग' देना तो भूल ही गया। दिल्ली लिख रहा हूँ।[1]

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७६४) से, सौजन्य . अमृतकौर। जी० एन० ६९२० से भी।

४३७. पत्र : प्रभावतीको

८ मार्च, १९३७

चि० प्रभा,

तेरा पत्र ठीक समयसे, कल मिला। यात्राका वर्णन क्यो नही दिया? चिन्ता न करे तो तबीयत जरूर अच्छी रहेगी। कटि-स्नान करना। लहसुन खाना। दूध ताजा प्राप्त करना। घी और मक्खन भी बराबर लेते रहना चाहिए। फल जो मिले सो। राजकुमारी आज सबेरे चली गई। उसका मन जानेका नही था। दिल्लीमे चार दिन रहेगी। अमतुल सलाम मंगलवारको इन्दौर चली गई। अब घर खाली हो गया है। खानसाहब भी नही हैं। और दूध खूब है। सब अच्छे है। भणसाली अभी अस्पतालमे है; ठीक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४९२) से।

१. देखिए "पत्र : वियोगी हरिको", पृ० ४७७।

४३८. पत्र : वियोगी हरिको

८ मार्च, १९३७

भाई वियोगी हरि,

सस्ता साहित्य कार्यालयमे हिंदी 'अनासक्तियोग' होना चाहीये। यदि वहा अथवा कही मिले तो राजकुमारी अमृतकुंरको मि० पिलडनके यहा ४ भगवानदास रोड, नयी देहली भेजवा दो। हम लोग सोमवारको वहा पहोचते हैं।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९६) से।

४३९. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

सेगाँव, वर्धा
९ मार्च, १९३७

चि० कान्ति,

तेरा पत्र मिला। जो भी बाते मेरे जानने योग्य हो, मुझे अवश्य लिख भेजनी चाहिए।

मैं इतवारको यहाँसे दिल्लीके लिए रवाना हो जाऊँगा। शायद देवदासके साथ बात करनेको बहुत वक्त नही मिलेगा। मैं सारे दिन लोगोसे मिलनेमे ही लगा रहूँगा।

मैसूरमे भी अध्ययन तो अवश्य हो सकता है। आबोहवा तो वहाँकी अच्छी है ही, और मैसूरका अपना विश्वविद्यालय भी है।

रेलवेकी बात समझा। अमतुल सलाम इन्दौर पहुँच गई है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७३१७) से; सौजन्य . कान्तिलाल गांधी।

४४०. पत्र : अमृतकौरको

सेगांव
१० मार्च, १९३७

प्रिय विद्रोहिणी,

साथमें बिशप मूर[1] का पत्र और इसका मैंने जो उत्तर[2] दिया, उसकी एक नकल भेज रहा हूँ। देखकर लौटा देना। अगर तुमने वह अपील[3] पढ़ी हो और तुम बिशप मूर द्वारा लगाये उसके अर्थसे सहमत न हो तो तुम्हें चाहिए कि उन्हे अपना अर्थ बता दो।

तुम्हारा तार पाकर बड़ी खुशी हुई।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७६५) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६९२१ से भी।

४४१. पत्र : तिलकमको

१० मार्च, १९३७

प्रिय तिलकम,

आखिरकार तुम्हारा पत्र पाकर खुशी हुई। दूसरे करे या न करे हम तो अहिंसामे विश्वास करते ही है, और पूरी आशाके साथ हमे अडिग रहना है कि अतमें जीत अहिंसाकी ही होगी। मथुरादास त्रिकमजी तुमसे अवश्य मिलेगे और तुम्हारा ठीक मार्ग-दर्शन करेंगे। इस पत्रके अलावा तुम्हे उन्हे अपना और कोई परिचय देनेकी जरूरत नही है। उन्हे यह बता सकते हो कि तुम मेरे साथ किंग्सले हॉल, लन्दनमे थे, कुछ समयतक साबरमतीमें भी थे और आज भी मेरे सम्पर्कमे हो।

१. श्रावणकोरवाले।

२. यह उपलब्ध नहीं है।

३. चर्च मिशनरी सोसाइटीकी अपील; देखिए "भेंट: बिशप मूर, बिशप अब्राहम और अन्य लोगोंको", पृ० ३१७-१९।

मीराबहन मेरे साथ सेगाँवमें ही रह रही है और साथ ही प्यारेलाल भी हैं। देवदास दिल्लीमें है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत तिलकम
दि बॉम्बे इंडस्ट्रियल को-ऑप० बैंक लि०
१८८, मस्जिद बन्दर रोड
बम्बई

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल-पेपर्स, सौजन्य : प्यारेलाल।

४४२. पत्र : अमतुस्सलामको

१० मार्च, १९३७

चि० अमतुल सलाम,

तेरा पत्र मिला। पत्र मिलते ही जवाब लिख रहा हूँ।

मैं १५ तारीखको दिल्ली पहुँचूँगा और लगता है कि वहाँ १८ तारीखतक रहना होगा। शायद एक दिन ज्यादा ही रहना पड़े।

अब राजकोट जानेकी जरूरत नहीं रही, यह ठीक है।

पिलानी तो दिल्लीसे दूर है। दिल्लीके रास्तेमें नहीं पड़ता। लेकिन वहाँ तू जब जाना चाहे तब जरूर जा सकती है।

तूने ही लिखा था कि मौलाना साहबसे फतवा लेना है।

अमतुलकी तबीयत अच्छी है, यह जानकर बहुत खुशी हुई। अब तो टाँके भी काट दिये गये होंगे और बेबी भी आनन्दपूर्वक होगी।

राजकुमारी भी चली गई, इसलिए यहाँ बहुत थोड़े लोग हैं। आज हरजीवन भी चले गये।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७६)से।

४४३. पत्र : नारणदास गांधीको

दुबारा नहीं पढ़ा

सेगाँव
११ मार्च, १९३७

चि० नारणदास,

खादीके सम्बन्धमे मैं आजकल जो लिख रहा हूँ, वह तो तुम पढते ही हो, और मगनलालकी पुस्तक[1] भी तुमने पढ़ी है। तो क्या उसे आधार बनाकर अथवा और किसी रीतिसे तुम खादी-शास्त्रपर लिखोगे? ऐतिहासिक प्रकरण लिखनेके लिए तुम्हारे पास साहित्य होना चाहिए। साहित्य उपलब्ध न हो, अथवा समय न हो तो आजकल जो कामकाज हो रहा है, उसका विवरण देनेवाली तथा कपाससे शुरू करके क्रमश. जो-जो क्रियाएँ होती हैं, उन सब क्रियाओंकी जानकारी देनेवाली पुस्तक लिखी जा सके, तो लिखो।

मेरी प्रश्नावली और लक्ष्मीदास द्वारा लिखा गया लेख भी तुमने पढ ही लिया होगा। यह सब जानकारी देनेवाली पुस्तक चाहिए।

कमू लिखती है कि वह अब शाला जाने लगी है।

तुम्हारा छपा हुआ कार्यक्रम पढ गया। तुम्हारा वक्तव्य मुझे जितना पसन्द आया, कार्यक्रम उतना पसन्द नही आया। सम्वादमे जितना है, उतना तो सुन्दर है; किन्तु कलाकी दृष्टिसे ठीक गूँथ दिया गया है, ऐसा नही कहा जा सकता। किन्तु यह तो छोटा दोष है। मुझे इसमे वर्तनीकी भूले दिखाई देती है। विद्यापीठका शब्दकोष हमारे लिए प्रमाण है। मैं नही जानता कि उसमें 'पिन', 'रिबन', 'चिपिया' आदि शब्द हैं या नही; किन्तु हो तो उन्हे देख लेना चाहिए। अब शब्दकोषमे 'पीन' शब्द है ही नही। अंग्रेजीमें तो ह्रस्व उच्चारण ही है, और हमें उसका अनुसरण करना चाहिए। मैं वर्तनीके नियम देख गया, उनमें भी दिखाया गया है कि यदि किसी दूसरी भाषासे शब्द लिये गये हो, तो उस भाषाके उच्चारणके अनुसार ही हिज्जे करने चाहिए। फिर 'पीन' शब्दका तो गुजरातीमें विशेष अर्थ है। शब्दकोषमे मोटा, पुष्ट, भरा हुआ, अर्थ दिया गया है। 'पीन' पढकर पहले तो मैं समझ ही नही सका, वह तो आगे बढ़ा तब मेरी समझमे आया। तुम्हारे सम्वादमे 'चीपीयो' शब्द है, 'चिपीयो' होना चाहिए। फिर उसी वाक्यमे 'रीबन' शब्द है, अंग्रेजी उच्चरण 'रिबन' है, और शब्दकोषके नियमानुसार ऐसा ही होना चाहिए। यह शब्दकोष मे नही दिया गया, किन्तु उसमे कोई हर्ज नही। इसी प्रकार वर्तनीके और भी दोष निकल आयेंगे।

[1]. वणातशास्त्र, भाग-१।

"मुरख जन तो तेने कहीये" इसमे मुझे काव्य नही दिखाई देता। भाषा खटकती है, विचार भी खटकते है। पहले अक्षरसे ही मक्खी छीक जाती है, क्योकि 'मुरख' शब्द ही नही है, "मूरख" शब्द है। 'परदेशीने प्रीते जमाड़े' यह द्वेषमूलक विचार है, इसलिए अहिंसासे मेल नही खाता। भला परदेसी भूखा हो तो उसे प्रेमसे क्यो न जिमाये। रचयिताके कथनका उद्देश्य तो भिन्न ही है। किन्तु यदि उद्देश्य भाषामे न उतरे तो फिर उस उद्देश्यके साथ पाठकका कोई सम्बन्ध ही स्थापित नही होता। 'देशना दु खने टाणे' लिखा है, वहाँ 'ना' के ऊपर अनुस्वार होना चाहिए। 'बेकारीना पथ्थर पीरसवा', इस भाषामे सौम्यता नही है, प्रयोग भी अच्छा नही है। 'फेन्सीपणा तो सुन्दर फाँसो' विचार कटुतासूचक है। 'फाँसा' में सुन्दर विशेषण नही लगाया जा सकता। फिर यह भी नही कहा जा सकता कि 'सुन्दर' शब्द व्यंग्यमे प्रयुक्त हुआ है। कविका प्रयत्न ग्राम्य भाषाका व्यवहार करने का है, वहाँ 'ग्रीवा' शब्द नही जँचता। 'जनुनी' शब्द गलत है, सही शब्द 'जननी' है। अब इस आलोचनाको और लम्बा नही करूँगा। तुम इस दृष्टिसे शेष भाग पढ जाना। मुझे तो सब क्लिष्ट और अटपटा लगता है, दूसरा गीत है, उसमे भी मुझे कोई रस नही मिला। यो मैने उसे ध्यानपूर्वक नही पढा है। 'विधातरा' आँखोको खटकता जरूर है। नानावटीका कहना है कि वह गलत छप गया है। कविने 'विधात्रा' लिखा होगा। यदि ऐसा हो, तो शब्दकोषमे 'विधातरा' शब्द नही है, "विधाता" है, "विधात्री" है। काव्य-रचना करनेवालेको बिना आवश्यकताके शब्दोंकी वर्तनीको बदलनेका अधिकार नही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से। सी० डब्ल्यू० ८५१६से भी; सौजन्य नारणदास गांधी।

४४४. पत्र : जेठालाल जी० सम्पतको

११ मार्च, १९३७

चि० जेठालाल,

तुम खादीके सम्बन्धमे कुछ लिख रहे थे, उसका क्या हुआ? तुम्हारा काम कैसा चल रहा है? चमड़ेके मामलेमें कैसी स्थिति है?

केशवलाल नामक कोई व्यक्ति बम्बईमे है, वह लिखता है कि "जेठालालकी कन्या इन्दु २२ दिनतक बीमार रहनेके बाद गुजर गई।" उक्त पत्रमें पता-ठिकाना नही दिया गया है। क्या तुम इसपर कुछ प्रकाश डाल सकते हो?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९८६०)से; सौजन्य : नारायण जे० सम्पत।

४४५. पत्र : विट्ठल ल० फड़केको

सेगाँव

१२ मार्च, १९३७

चि० मामा,

तुमने मेरे पत्र[1]मे क्रोध देखा, यह तो बड़ा गजब हुआ। यह हो सकता है कि मात्र दोष दिखाना ही क्रोध माना जाता हो। किन्तु दोष न दिखाया जाये तो मनुष्य जाग्रत न हो, यह भी भय है। दोष दिये बिना केवल अपने अभिप्रायको ही मधुर भाषामे व्यक्त करनेकी भी कला होती अवश्य है, किन्तु वह कला मै साध नही पाया। यह अहिंसाका विषय है, यह भी मै जानता हूँ। तुम्हें लिखा पत्र पढ़ूँ तो मेरी समझमे आये कि उसमें अहिंसा है अथवा हिंसा। विनोबा और किशोरलालके विचार मै नही जानता। उनसे मिला तो हूँ ही नही। अपने पत्रकी नकल मैंने उन्हें भेजी हो, यह याद नही है। खैर, होगा। रायजीका पत्र पढ़ लेनेके बाद भी मै अपने विचार पर जमा हूँ। एक ही आघातसे टुकडे कर डालनेका लोभ नही करना चाहिए, ऐसी मेरी मान्यता है। अधिक लोग जिन बाह्य आचारोका अनुकरण न कर सके, उनका त्याग कर देना ही उचित है। रायजीको लिखा पत्र[2] भी इसके साथ ही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८३९)से।

१. देखिए पृ० ४६२।
२. देखिए अगला शीर्षक।

४४६. पत्र : रायजीको

१२ मार्च, १९३७

भाई रायजी,

तुम्हारा पत्र मिला। पत्र लिखकर तुमने अच्छा किया। तुम्हारे तर्कका घूँट मेरे गले नही उतरा। मन्दिरमे अनेक प्रकारकी सहूलियते इकट्ठी करनेका विचार मुझे ठीक नही लगता। इन सब विचारोपर धीरे-धीरे अमल किया जाये, इसमें मुझे भलाई मालूम होती है। जिस आदमीको हम अपने घरमे नही रखना चाहते, उसका मन्दिरमे क्या काम? मन्दिरकी भूमि लफंगोका अखाडा कभी नही बननी चाहिए। मन्दिरके प्रांगणमे साधु पुरुष ही शोभा देते है। यदि तुम सब भाई मन्दिरको भगवानका वास बनानेकी धारणा मनमें सँजो रहे हो तो यह आवश्यक है कि उसे स्वार्थ साधनेका स्थल न बनाओ। यदि तुम्हारी धारणाओको कार्यान्वित किया गया तो उस स्थानका नाम मन्दिर होते हुए भी वहाँ ईश्वरका दम घुट जायेगा। मेरी तो यह इच्छा है कि जो अपनेको सवर्ण मानते है, उन हिन्दुओका तुम कभी अनुकरण न करो। क्या मै तुम्हे याद दिलाऊँ कि मेरे सामने भंगी भाइयोने शराब छोडनेकी दो बार प्रतिज्ञा की और दोनो बार तोड दी? लेकिन मै भी तो तुम्हारे समान मिट्टीका पुतला हूँ। इसलिए मुझसे जो ज्ञान लिया जा सकता है उसकी कीमत चाहे तुम नगण्य ही आँको, फिर भी मन्दिरको यदि तुम सचमुच ईश्वरका स्थान बनाना चाहते हो तो उसे, जिनके बारेमे सन्देह हो ऐसे आदमियोंके रहने अथवा जातिके वर्तन आदि सहेजकर रखनेका घर मत बना बैठना। बल्कि यदि इसके बदले, मन्दिर खुलते ही उसमे बैठे भगवानके सामने शराब न पीनेकी प्रतिज्ञा करो और उसपर अडे रहो तो वह मन्दिर, चाहे पाँच हजारकी जगह पाँच रुपयेमें बना हो, यात्रा-धाम बन जायेगा। जहाँ मामा बसते है, वहाँ मै तो ऐसा ही धाम चाहूँगा। किन्तु ऐसा धाम रुपये खर्च करनेसे नही बन सकता। अब तुम्हे और मामा साहबको जो समझमें आये, सो करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८४०)से।

४४७. गाय

हिन्दुस्तानमे करोड़ो लोग गायको श्रद्धा और भक्तिकी दृष्टिसे देखते है। खुद मै भी उनमे से हूँ। सेगाँवमे मैने गोशाला ठीक अपनी बैठकके सामने रखी है। इसलिए उसमे बँधी हुई गायें सदा मेरी नजरके सामने रहती है। और अभी कुछ दिन पूर्व जब मै हरिजनोके [धर्मान्तरणके] विषयमे कुछ ईसाई मित्रोसे बातचीत कर रहा था, तो मैने उनसे कहा था कि अगर सामने खडी हुई इन गायोको आप ईसाई-धर्मका तत्त्व समझाना चाहे तो ये क्या समझेगी? ठीक इसी तरह अधिकाश हरिजन भी उसे नही समझ सकते। यह उपमा सुनकर मेरे वे मित्र तो अवाक् रह गये। आघात इतना तीव्र था कि वह ठेठ अमेरिकातक जा पहुँचा। और अब अमेरिकासे मेरे पास इस आशयकी चिट्ठियाँ आने लगी है कि किस तरह वहाँ लोग मुझे और हरिजनोकी सेवा के मेरे दावेको अप्रतिष्ठित करनेमें इस कथनका दुरुपयोग कर रहे है। मालूम होता है, टीकाकारोका यह कहना है कि जब आप हरिजनोकी तुलना गाय-जैसे पशुसे कर रहे है तो इससे स्पष्ट हो जाता है कि आपके मनमे उनके प्रति कोई ममता नही है।

पर मुझे तो अपनी इस तुलनापर जरा भी अफसोस नही है। इस पहले और छोटे-से आघातसे ही अगर अमेरिकाकी जनताकी नजरोमे मेरी सारी साख मिट्टीमें मिल सकती है, तो ऐसी साखका मूल्य ही क्या है? पर मै तो यही मानता हूँ कि मेरी उपमा केवल निर्दोष ही नही, बिलकुल उपयुक्त भी है। इस उपमाकी निर्दोषता फौरन समझमें आ जायेगी यदि कोई यह समझ ले कि हिन्दुस्तानमें गायको कैसा अपूर्व स्थान प्राप्त है। और युक्तिसगत यह इसलिए है कि जहाँतक ईसाईधर्मका तत्त्व समझनेकी बात है, सामान्य हरिजनकी स्थिति गायसे भिन्न नही है। यहाँ यह कहना अप्रस्तुत होगा कि मूर्ख-से-मूर्ख हरिजनको धीरे-धीरे इस योग्य बनाया जा सकता है कि वह इसे समझ सके, किन्तु गाय इस योग्य कभी नही बन सकती। कारण, चर्चा उनकी वर्तमान स्थितिके विषयमें हो रही थी, न कि भावी सम्भावनाओं के विषयमें। अपनी बातको स्पष्ट करनेके लिए मै इस उपमाको जरा और विशद करके कहूँगा। मै कहूँगा, मेरा पाँच वर्षका नाती अथवा अडसठ वर्षकी वृद्धा पत्नी ईसाई-धर्मकी व्याख्याको समझनेमे उतनी ही असमर्थ है जितनी कि मेरी गायें — हालाँकि मेरी पत्नी और नाती, दोनो मुझे अत्यन्त प्रिय है और मै उनका बहुत ध्यान रखता हूँ। अपने ही बारेमें मै यह तो कह ही सकता हूँ कि चीनी वर्णमाला पढ़नेमें मै खुद आज उतना ही असमर्थ हूँ जितनी कि मेरी पूज्य गाय! हाँ, अगर कोई हम दोनोको — मेरी गायको और मुझे — वह मुश्किल वर्णमाला पढ़ाने लगे और क्षण-भरके लिए यह मान ले कि वह गरीब गोमाता इस होड़मे भाग लेना स्वीकार कर लेगी तो जाहिर है कि मैं बात-की-बातमे उससे आगे निकल जाऊँगा। पर इससे मेरे उस कथन

की सचाईमे जरा भी फर्क नही पड़ सकता। मेरे आलोचकों और इन भोले मित्रोंको समझ लेना चाहिए कि मैं जो कह रहा हूँ उसकी सचाईके लिए इस तुलनाके सहारे की जरूरत नहीं है, उसकी सचाई अपने-आपमे निर्विवाद है। मेरा कहना यह है कि इन सरलचित्त हरिजनोके हृदयमे अपने पूर्वपुरुषोके धर्म प्रति जो श्रद्धा है उसे उखाड़कर जब कोई उन्हे किसी दूसरे धर्ममे ईमान लानेके लिए कहता है—चाहे वह दूसरा धर्म गुणोमे उतना ही अच्छा और समान हो जितना कि उनके पूर्वजोका धर्म है—तो मैं कहूँगा कि यह धर्मकी विडम्बना है। यद्यपि सभी जगहोकी जमीनमें न्यूनाधिक परिमाणमे मुख्य गुण समान होते है, तो भी हम जानते है कि एक ही प्रकारके बीज सब जगह समान रूपसे नही फूलते-फलते। मेरे पास कुछ उत्तम प्रकारके देव कपासके बीज हैं। बगालके कुछ हिस्सोमें वे खूब अच्छी तरह लगते और फूलते-फलते हैं। पर वरोडाकी जमीनमे मीराबहनने इन बीजोका जो प्रयोग किया उसमे उन्हें अभीतक सफलता नही मिली। पर इसके आधारपर अगर कोई यह नतीजा निकाले कि वरोड़ाकी जमीन बंगालकी जमीनसे हलकी है, तो मैं उससे सहमत नहीं हूँगा। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यद्यपि आजकल ईसाई मित्र अपने मुँहसे तो ऐसा नही कहते या स्वीकार नही करते कि हिन्दू-धर्म झूठा धर्म है, तो भी उनके दिलमे अब भी यही भाव जड़ जमाये हुए है कि हिन्दू-धर्म सच्चा धर्म नही है और ईसाई-धर्म ही—जैसा उन्होंने उसे समझ रखा है—एकमात्र सच्चा धर्म है। उनकी यह मनोवृत्ति उन उद्धरणोसे प्रकट होती है जो मैंने कुछ समय पहले सी० एम० एस०की अपील'[1] मे से 'हरिजन' में दिये थे। जबतक यह न मान लिया जाये कि उक्त अपीलके पीछे यही मनोवृत्ति काम कर रही है तबतक उसकी कद्र करना तो दूर, उसे समझा भी नही जा सकता। हिन्दू-समाजमे घुसी हुई छुआछूत या ऐसी ही अन्य भूलोंपर अगर कोई प्रहार करे तो वह तो समझमे आ सकता है। अगर इन मानी हुई बुराइयोको दूर करने और हमारे धर्मकी शुद्धिमे वे हमारी सहायता करें तो यह एक ऐसा रचनात्मक कार्य होगा जिसकी बडी जरूरत है और उसे हम कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार भी करेंगे। पर आज जो प्रयास हो रहा है उससे तो यही दिखाई देता है कि यह तो हिन्दू-धर्मको जड़मूलसे उखाड़ फेकने और उसके स्थानपर दूसरा धर्म कायम करनेकी तैयारी है। यह तो ऐसी बात है मानो किसी पुराने मकानको, जिसमे मरम्मतकी बड़ी जरूरत है, पर जो रहनेवालेको अच्छा और काम देने लायक मालूम होता है, कोई जमीनमे मिला देना चाहे। अगर कोई जाकर उस गृह-स्वामीको यह वताये कि उसमे क्या-क्या सुधार और मरम्मत करनी है, तो इसमे जरा भी आश्चर्य नही कि वह उनका स्वागत करेगा। पर अगर कोई उस मकानको ही गिराने लगे जिसमे वह और उसके पूर्वज पीढ़ियोंसे रहते आये है, तो वह जरूर ऐसा करनेवालोका प्रतिकार करेगा। हाँ, उसे खुद ही यह विश्वास हो जाये कि मरम्मतसे काम नही चलेगा, वह आदमीके रहने-लायक ही नही रहा, तो वात दूसरी है। सो अगर

१. देखिए "एक ईसाईका पत्र", पृ० ३६३-६४।

हिन्दू-धर्मके विषयमे ईसाई-संसारका यही मत है, तो 'सर्व धर्मसम्मेलन' और 'अन्तर्राष्ट्रीय विश्वबन्धुत्व' आदि शब्द निरर्थक हो जाते है। क्योकि ये दोनो शब्द समानताके सूचक है और, एक ऐसा मंच सूचित करते है जहाँ सब समान भावसे इकट्ठे हो सकते है। जहाँ ऐसी मान्यता हो कि कुछ धर्म ऊँचे है और कुछ नीचे, कुछके पास ज्ञानका प्रकाश है और कुछ उससे वंचित है, कुछ सुसस्कृत है और कुछ असंस्कृत, कुछ अभिजात है और कुछ कुजात, कुछ जातिमे शामिल है और कुछ उससे बाहर, वहाँ सबके लिए सुलभ कोई एक मच कैसे हो सकता है? मेरी तुलना भले ही सदोष हो, शायद अपमानजनक भी मालूम हो, मेरी युक्तियाँ भी चाहे निर्दोष न हो, पर मैं जो बात कह रहा हूँ वह अकाट्य है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-३-१९३७

४४८. त्रावणकोरके समाचारपर एण्ड्रचूजके उद्‌गार

दीनबन्धु एण्ड्रयूजने मुझे लिखा है:

यहाँ कैम्ब्रिजमें, जहाँ अपने पुराने कालेज-कक्षोंमें मैं इस सत्रमें व्याख्यान देनेमें व्यस्त रहा हूँ, 'हरिजन' के प्रत्येक अंकका आना मेरे लिए सप्ताहकी आह्लादकारी घटनाओंमें से होता है। लेकिन आज सुबह जो अंक प्राप्त हुआ वह तो मेरी ऊँची-से-ऊँची अपेक्षाको भी पार कर गया। कारण, यह मेरे लिए आपकी त्रावणकोरकी यात्राका और मन्दिरोमें निर्बाध प्रवेश करके आपसे मिलने तथा उनकी चारदीवारीके अन्दर आपकी प्रार्थना-सभाओंमें शामिल होनेके हरिजनोंके अपार हर्षका समाचार लेकर आया है। कई साल पहले आपके अनुरोध पर मैं त्रावणकोर गया था। तब मै वाइकोम भी पहुँचा था जहाँ मैंने महान् सत्याग्रह आन्दोलन अपनी आँखो देखा था, और उसी तरह कोट्टयम भी गया था। कोट्टयमके बाहर देहाती क्षेत्रोंमें बहुत-से अवर्ण मुझसे मिलने और मेरे मुँहसे आपका सन्देश सुनने आये थे। एक स्थानपर तो लगभग दो हजार लोग एकत्र हुए थे। बादमें उनके दुःख-दैन्यको याद करके मेरा मन परेशान होता रहा था और मैं किसी और बातके सम्बन्धमें सोच ही नहीं पाता था। और उसके बाद वाइकोममें, जहाँ मै सत्याग्रहियोंके साथ ठहरा था, मैंने एकबार फिर उन लोगोंकी दुरवस्था और कष्ट देखा जिन्हें मन्दिरके बाहरकी सड़कोपर चलनेकी इजाजत नहीं थी। उस अवसरपर मैंने नम्बूदिरी ब्राह्मणोंसे मिलकर बहुत अनुनय-विनयकी, लेकिन सब बेकार। और अब जब यह समाचार पढ़नेको मिला कि बहादुरी और सहिष्णुताका आदर्श उपस्थित करनेवाला वह पुराना सत्याग्रह किस प्रकार अन्ततः फलीभूत हुआ, तो मुझे इतनी प्रसन्नता हुई जिसकी कोई

सीमा नहीं है। कारण, केवल सड़कोंपर ही नहीं, बल्कि मन्दिरोंमें भी सवर्णों और अवर्णों दोनोंने मिलकर प्रवेश किया। अब मेरा मन यह समाचार सुननेको लालायित है कि जिन नम्बूदिरी ब्राह्मणोंने अतीतके अन्यायोंका निराकरण करनेके लिए इतनी ईमानदारीके साथ यह कदम उठाया है, उनमेंसे कम-से-कम कुछमें ऐसा विवेक जगे कि वे हरिजनोंको, जिनका उन्होंने यह कदम उठाकर भाइयोंकी तरह स्वागत किया है, भाईकी तरह पूरे कामके बदले अच्छी मजदूरी भी दें। ऐसे भाईचारेके द्वारा ही वह विजय पूर्णता प्राप्त कर सकती है।

मेरे सुननेमें जो-कुछ आता है उससे लगता है कि इस घोषणापर इतने प्रभावकारी ढंगसे अमल किया जा रहा है कि जिस आर्थिक उद्धारका समाचार सुननेको दीनबन्धु उत्सुक हैं वह निश्चय ही सम्पन्न होनेवाला है और सो भी अपेक्षासे पहले ही। कारण, खबर है कि इसी महीनेकी पहली तारीखको त्रिवेन्द्रम्में पुलयों, परयो तथा अन्य लोगोंकी एक सभामें भाषण करते हुए दीवान सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरने कहा:

> महाराजा साहब मन्दिर-प्रवेश घोषणाको अपने-आपमें कोई स्वतन्त्र लक्ष्य नहीं, बल्कि इस राज्यको खुशहाल बनानेकी दिशामें पहला कदम मानते हैं। आवश्यकता है शैक्षणिक उत्थान, आर्थिक उत्थान, सामाजिक एकता और मेल-जोलकी। इसके लिए राजा-प्रजाका पारस्परिक सहयोग जरूरी है। जिन लोगोंके वर्गके उन्नयनके लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं, उनका खयाल करके यह तय किया गया है कि सरकारी कागजों और प्रकाशनोंमें "दलित" शब्दको स्थान न दिया जाये। मैं यह कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि एक समय ऐसा आयेगा जब दलित वर्गोंके लोग इस नामको खुद ही भूल जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-३-१९३७

४४९. ब्रह्मचर्य

एक सज्जन लिखते हैं:

> आपके विचारोंको पढ़कर मैं बहुत समयसे मानता आया हूँ कि सन्तति-निरोधके लिए ब्रह्मचर्य ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ उपाय है। सम्भोग केवल सन्तानेच्छासे प्रेरित होकर ही होना चाहिए; बिना सन्तानेच्छाका भोग पाप है। इन बातोंको सोचते हैं तो कई प्रश्न उपस्थित होते हैं। सम्भोग सन्तानके लिए किया जाये यह ठीक है, पर एक-दो बारके सम्भोगसे सन्तान न हो तो? ऐसे मनुष्यको मर्यादापूर्वक किस सीमाके अन्दर रहना चाहिए? एक-दो बारके सम्भोगसे सन्तान चाहे न हो, पर आशा कहाँ पिण्ड छोड़ती है? इस प्रकार वीर्यका

बहुत-कुछ अपव्यय अनचाहे भी हो सकता है। ऐसे व्यक्तिसे क्या यह कहा जाये कि ईश्वरकी इच्छाके विरुद्ध होनेके कारण उसे भोगका त्याग कर देना चाहिए? ऐसे त्यागके लिए तो बहुत आध्यात्मिकताकी आवश्यकता है। प्रायः ऐसा भी देखनेमें आया है कि सन्तान सारी उम्र न होकर उत्तरावस्थामें हुई है, इसलिए आशाका त्याग कितना कठिन है! यह कठिनाई तब और भी बढ़ जाती है, जब दोनों स्त्री व पुरुष रोगसे मुक्त हों।

यह कठिनाई अवश्य है, लेकिन ऐसी बाते मुश्किल तो हुआ ही करती है। मनुष्य अपनी उन्नति बगैर कठिनाईके कैसे कर सकता है? हिमालयपर चढ़नेके लिए जैसे-जैसे मनुष्य आगे बढता है, कठिनाई बढती ही जाती है—यहाँतक कि हिमालयके सबसे ऊँचे शिखरपर आजतक कोई नही पहुँच सका है। इस प्रयत्नमे कई मनुष्योने मृत्युसे भेंट की है। हर साल चढाई करनेवाले नये-नये पुरुषार्थी तैयार होते है और निष्फल भी होते है, फिर भी वे इस प्रयासको छोडते नही। विषयेन्द्रियका दमन हिमालय पहाडपर चढनेसे तो कठिन है ही, लेकिन उसका परिणाम भी कितना ऊँचा है! हिमालयपर चढनेवाला कुछ कीर्ति पायेगा, क्षणिक सुख पायेगा; इन्द्रियजित मनुष्य आत्मानन्द पायेगा और उसका आनन्द दिन-प्रति-दिन बढता जायेगा। ब्रह्मचर्य-शास्त्रमे तो ऐसा नियम माना गया है कि पुरुष-वीर्य कभी निष्फल होता ही नही, और होना ही नही चाहिए। और जैसा पुरुषके लिए ऐसा ही स्त्रीके लिए भी, इसमे कोई आश्चर्यकी बात नही। जब मनुष्य अथवा पुरुष निर्विकार होते हैं तब वीर्यहानि असम्भव हो जाती है, और भोगेच्छाका सर्वथा नाश हो जाता है। जब पति-पत्नी सन्तानकी इच्छा करते है, तभी एक-दूसरेका मिलन होता है। यही अर्थ गृहस्थाश्रमी-के ब्रह्मचर्यका है। अर्थात् स्त्री-पुरुषका मिलन सिर्फ सन्तानोत्पत्तिके लिए ही उचित है, भोगतृप्तिके लिए कभी नही। यह हुई कानूनी बात, अथवा आदर्शकी बात। यदि हम इस आदर्शको स्वीकार करें तो हम समझ सकते है कि भोगेच्छाकी तृप्ति अनुचित है, और हमें उसका यथोचित त्याग करना चाहिए। यह ठीक है कि आज कोई इस नियमका पालन नही करता। आदर्शकी बात करते हुए हम शक्तिका खयाल नही कर सकते। लेकिन आजकल भोगतृप्तिको आदर्श बताया जाता है। ऐसा आदर्श कभी हो ही नही सकता। यह स्वयसिद्ध है। यदि भोग आदर्श है तो उसकी मर्यादा नही होनी चाहिए। अमर्यादित भोगसे नाश होता है, यह सभी स्वीकार करते है। त्याग ही आदर्श हो सकता है और यह प्राचीन कालसे रहा है। मेरा कुछ ऐसा विश्वास बन गया है कि ब्रह्मचर्यके नियमोको हम नही जानते इसलिए बडी मुश्किल पैदा होती है, जिससे ब्रह्मचर्य-पालनमे अनावश्यक कठिनाई महसूस करते है। अब जो आपत्ति मुझे पत्र-लेखकने बताई है वह आपत्ति ही नही रहती, क्योकि सन्तति के कारण तो एक ही बार मिलन हो सकता है, अगर वह निष्फल गया तो दोबारा उन स्त्री-पुरुषोका मिलन होना ही नही चाहिए। इस नियमको जाननेके बाद इतना ही कहा जा सकता है कि जबतक स्त्रीने गर्भ धारण नही किया, तबतक प्रत्येक ऋतुकाल के बाद जबतक गर्भधारण नही हुआ है तबतक प्रतिमास एक बार स्त्री-पुरुषका मिलन

क्षतव्य हो सकता है, और यह मिलन भोगतृप्तिके लिए न माना जाये। मेरा यह अनुभव है कि जो मनुष्य वचन और कार्यसे विकाररहित होता है, उसे मानसिक अथवा शारीरिक, किसी प्रकारकी व्याधिका डर नही रहता। इतना ही नही, बल्कि ऐसे निर्विकार व्यक्ति व्याधियोसे मुक्त होते है और इसमे कोई आश्चर्यकी वात नही है। जिस वीर्यसे मनुष्य-जैसा प्राणी पैदा हो सकता है, उसके अविच्छिन्न सग्रहसे अमोघ शक्ति पैदा होनी ही चाहिए। यह वात शास्त्रोमे तो कही गई है, लेकिन हरएक मनुष्य इसे अपने लिए यत्नसे सिद्ध कर सकता है। और जो नियम पुरुषोके लिए है वही स्त्रियोके लिए भी है। आपत्ति सिर्फ यह है कि मनुष्य मनसे विकारमय रहते हुए शरीरसे विकाररहित होनेकी व्यर्थ आशा करता है और अन्तमे मन और शरीर दोनोको क्षीण करता हुआ, 'गीता' की भाषामे, मूढात्मा और मिथ्याचारी बनता है।

हरिजन सेवक, १३-३-१९३७

४५०. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव
१३ मार्च, १९३७

प्रिय विद्रोहिणी,

तुम्हारे दो पत्रोको पढते ही फाड़ डाला। यह जानकर खुशी हुई कि तुम स्वस्थ चल रही हो। अगर कही संयोगसे वह नापनेवाला फीता मिल जाये तो दिल्ली भेज देना।

जालन्धर पहुँचनेपर शम्मीका पूरा हाल लिखना।

फील्डेन[1]से तो मै मिलूँगा ही। रा०[2] मेरे साथ है।

सस्नेह,

अत्याचारी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७६६)से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६९२२ से भी।

१. लॉयनेल फील्डेन।
२. रामचन्द्रन्; देखिए पृ० २४६

४५१. पत्र : जे० सी० कुमारप्पाको

१३ मार्च, १९३७

प्रिय कु[मारप्पा],

साथमे डॉ० गो०[1] से प्राप्त दो पत्र भेज रहा हूँ। उन्होने जो प्रयोजन बताया है, वैसे प्रयोजनोके लिए छुट्टीकी व्यवस्था तो नही है। लिहाजा, हमे त्यागपत्र स्वीकार कर लेना चाहिए। दो-चार क्षणके लिए मगनवाड़ी भी आनेकी उम्मीद करता हूँ।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०११३) से।

४५२. पत्र : परीक्षितलाल एल० मजमुदारको

सेगाँव
१३ मार्च, १९३७

भाई परीक्षितलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। एदरपुराकी हरिजन-शालाका वर्णन तो अच्छा लगता है, लेकिन उसे प्रकाशित करनेका विचार छोड़ दिया है। अनुभव ऐसा हुआ है कि जिस शाला अथवा सस्थाके सम्बन्धमे कोई अच्छा विवरण आता है और हम उसे प्रकाशित करते है, तो बादमे उसके सम्बन्धमें ऐसा कटु अनुभव होता है जिसे प्रकाशित करनेकी या तो हमारी हिम्मत नही होती या फिर प्रकाशित करना अनुचित मालूम होता है। किन्तु जैसा विवरण तुमने दिया है यदि ऐसा विवरण नजरमे पड़ जाये तो उससे जो आनन्द लिया जा सके वह ले ले और उसे भुला दे, तो जैसी विषम परिस्थिति ऊपर बताई गई है, उससे बचा जा सकता है। सचमुच अच्छी शाला होगी तो आगे उसकी उन्नति अवश्य होगी। उसकी तारीफ करनेकी जरूरत नही है। हमारा विवरण पढकर दूसरे तत्काल वैसा ही करेंगे, ऐसी आशा करनेके तो बहुत कारण मैंने देखे नही। इस प्रकारके विवरण कदापि प्रकाशित नही करना है, मैंने ऐसा भी स्थिर नही किया है। अतः जब तुम्हे कोई विवरण प्रकाशित करने-योग्य जान पड़े, तो मुझे लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९५६) से।

१. डॉ० गोपीचन्द भार्गव।

४५३. हाथकरघेका प्रश्न

हिन्दुस्तानमे स्वदेशी और विदेशी मिलोके सूतसे हाथकरघेपर जितना कपड़ा बुना जाता है, उसके आँकड़े इस प्रकार है:

सन्	१९११–१४	की	औसत	वार्षिक	उपज	१०१	करोड़	गज
"	१९२१–२४	"	"	"	"	११७	"	"
"	१९२५–२८	"	"	"	"	१२४	"	"
"	१९३०	"	"	"	"	१३४	"	"
"	१९३१	"	"	"	"	१३४	"	"
"	१९३२	"	"	"	"	१४०	"	"
"	१९३३	"	"	"	"	१७२	"	"
"	१९३४	"	"	"	"	१७०	"	"

ये आँकड़े कितने विश्वासयोग्य है, यह कहना कठिन है। पर इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि आँकडे जितना बताते हैं उतना कपडा तो हाथकरघेसे बना ही है। ये आँकड़े सम्पूर्ण नही है। इससे अधिक कपडा बना होगा, कम तो नही ही, ऐसा कहा जा सकता है। हाथके सूतसे इन करघोको चलानेकी शक्ति हम लोगोमे आनी चाहिए, पर वह नही है। इसके दो कारण है। एक तो हमारा सूत कच्चा होता है, दूसरे इतना सूत, कच्चा या पक्का, आजतक हम पैदा ही नही कर सके। जबतक हम मिलके सूत-जैसा ही मजबूत और समान सूत नही निकाल सकते, तबतक उसे सामान्य बुनकर लेगा ही नही। ले भी क्यो? हाथका सूत कच्चा और असमान होनेसे वे पूरी-पूरी कमाई नही कर सकते। इसके सिवा, हाथकरघेपर कारीगर ज्यादातर बारीक सूत ही बुनते है; और हाथका काता हुआ बहुत बारीक सूत कम ही निकलता है, और वह आन्ध्र प्रदेशमे ही मिलता है। जबतक हम खादी-विज्ञान पर पूरा अधिकार नही कर लेते, तबतक इस सवालको हल कर नही सकते। इसे हल करनेके पीछे पड जानेकी मै अभी किसीको सलाह भी नही दे सकता, क्योकि इसे हल करनेके पहले दूसरे बहुत-से प्रश्नोंको हल करना जरूरी है। इसलिए करघेका प्रश्न अभी हमारी शक्तिसे बाहर है। पर खादीको सर्वव्यापक बनाते समय हमे इस प्रश्नको हल करना ही होगा।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, १४-३-१९३७

४५४. टिप्पणियाँ[1]

[१४ मार्च, १९३७ या उसके पश्चात][2]

पीछले वर्षोंका हिन्दी प्रातोके बहारके आंदोलनका इतिहास।
इस कार्यका ओरसे सम्मेलनमें महत्त्व।
दक्षिणमें प्रचार-कार्यकी विशेषता और अन्य अहिंदी प्रातोसे भेद।
हिंदी और उर्दुका ऐक्य। दोनो पक्षके विद्वानोंसे प्रार्थना की वे अन्तर न बढ़ावे।
लिपि-शास्त्रकी दृष्टिसे देवनागरी लिपिकी शास्त्रीयताका स्वीकार करते हुए हिन्दू विद्वानोका उर्दु लिपि पढनेका धर्म और मुसलमान विद्वानोका देवनागरी सीखनेका धर्म।
वर्धामे चलता हूआ कार्य पर दृष्टिपात।
उक्त दृष्टिसे भविष्यकी एक वर्षके कार्यकी रूपरेखा, उसका बजेट।
राजाजी इ०की सूचनाका समावेश इस रूपरेखामें हो जाता है।
मैंने तो विषयोंकी यादि ही दी है। इस पर विवेचन हो सकता है।

पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० ३८०।

१. गांधीजीने ये टिप्पणिया जमनालाल बजाज द्वारा मद्रासके हिन्दी साहित्य सम्मेलनमें दिये जानेवाले अध्यक्षीय भाषणके लिए तैयार की थी।

२. जमनालाल बजाजने अपनी डायरीमें १४-३-१९३७ की प्रविष्टिमें लिखा है कि उन्होने गांधीजी से इस विषयपर चर्चा की थी। ये टिप्पणियाँ सम्भवतः इसी चर्चाके बाद लिखी गई होगी।

अवशिष्टांश

१. पत्र : क्राउजको

सेगाँव, वर्धा
११ फरवरी, १९३७

प्रिय क्राउज,

मै अपने ऊपर लज्जित हूँ। यदि हम लोगोकी भेंट हुए बिना ही तुम्हे चला जाना पडा तो मुझे अपनेको माफ करना कठिन हो जायेगा। इसलिए मै तो तुमसे यही कहूँगा कि किसी भी प्रकार सम्भव हो तो तुम वर्धा आओ। यदि तुम रेलमार्गोंके नक्शेपर नजर डालो तो देखोगे कि वर्धा एक केन्द्रीय स्टेशन है। तुम कलकत्ता वर्धा होकर जा सकते हो। कलकत्तेके लिए बम्बईसे यह सबसे सीधा रास्ता है। तुम कलकत्तेसे मद्रास भी वर्धाके रास्ते जा सकते हो, यद्यपि यह सीधा नही ज्यादा दूरीवाला रास्ता होगा। इसी प्रकार तुम कलकत्तेसे दिल्ली भी वर्धा होकर जा सकते हो।

लेकिन यदि तुम्हे लगे कि तुम ऐसा कुछ भी कर ही नही सकते तो म तुम्हे दोष नही दूंगा।

तुम मेरे लिए जो बहुत-सारे सन्देश लाये हो उन्हे पाकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। उनसे पुरानी यादें ताजा हुई हैं। यदि तुम नही ही आ पाओ तो पत्र लिखना और यहाँ तुमने जो देखा है उसके बारेमें अपनी राय लिखना मत भूलना। मेरा खयाल है, तुम दिल्ली तो जाओगे ही; यदि जाओ तो जो लोग तुम्हे दिल्ली घुमाये उनसे कहना कि तुम्हें किंग्जवेकी हरिजन कालोनी दिखा दे। वहाँ तुम्हे मेरा सबसे छोटा लड़का मिलेगा। लेकिन असलमे तो तुम वहाँ तथाकथित अस्पृश्योके बीच जो काम किया जा रहा है उसे देखना।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० १०८५८) से।

२. पत्र : क्राउजको

सेगाँव, वर्धा, सी० पी०
२ मार्च, १९३७

प्रिय क्राउज,

तुम मेरे प्रति बहुत उदार हो—इतने सारे पत्र लिख रहे हो। मेरी चिट्ठी बम्बईमे तुम्हारे पास समयसे नही पहुँची, इसके लिए मै अपनेको कभी माफ नही करूँगा। तुम वर्धा नही आ सकते, यह तो समझ गया। तुम्हारे मनपर तुमने यहाँ जो देखा है उसकी क्या छाप पडी, इसके विषयमे तुम्हारे विस्तृत पत्रकी राह देखूँगा। यहाँकी परिस्थितिके सम्बन्धमें तुमने जो प्रारम्भिक राय जाहिर की है उसपर मै अभी कोई टिप्पणी नही करता। आशा है तुम्हारी समुद्री यात्रा सुखद होगी।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० १०८५९) से।

परिशिष्ट

परिशिष्ट – १

त्रावणकोर राज्यमें मन्दिर-प्रवेशके नियम

मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमे त्रावणकोरके महाविभव महाराजके हस्ताक्षरसे निम्नलिखित नियम तथा विनियम जारी किये गये है :

१२ नवम्बरको जारी किये गये घोषणा-पत्रमे हमने यह ऐलान किया था और आदेश दिया था कि हमारे और हमारी सरकारके नियन्त्रणमे चल रहे मन्दिरोमे किसी भी हिन्दूके प्रवेश और पूजा करने पर कोई प्रतिबन्ध नही लगाया जायेगा, बशर्ते कि इस सम्बन्धमे हम जो नियम और शर्तें लागू करे उनका हर प्रवेशार्थी पालन करे। अतः अब हम निम्नलिखित नियम बना रहे हैं :

१. इन नियमोंमें प्रयुक्त 'मन्दिर' शब्दमे न केवल मन्दिर और उसके अन्य छोटे देवस्थानोका समावेश होगा, बल्कि मण्डपो और अन्य इमारतों तथा मन्दिरसे सम्बद्ध तालाबो या कुँओका भी समावेश होगा।

२. इन नियमोमे प्रयुक्त 'देवस्वम्‌का मुख्य अधिकारी' शब्द-प्रयोगका अर्थ होगा – देवस्वम्‌की देखरेख करनेवाला अधिकारी। इसमे उससे ऊपरके ऐसे प्रत्येक अधिकारीका भी अन्तर्भाव होगा जिसका कि यह अधिकार-क्षेत्र हो और जो उस समय देवस्वम्‌के मुख्य अधिकारीके अधिकारोका प्रयोग कर रहा हो।

३. महाविभव महाराज और सरकार द्वारा नियन्त्रित मन्दिरोमे पूजा, नैवेद्यम्, वलिवाडु (चढ़ावा), नित्यनिधानम्, मासविशेषम्, अत्तविशेषम्, उत्सवम् और अन्य साधारण तथा विशेष धार्मिक विधियोसे सम्बन्धित रीति-रिवाज उसी तरह चलते रहे जैसे कि वे अब तक चलते रहे हैं। इसके लिए देवस्वम्‌के मुख्य अधिकारीको, घोषणाके उद्देश्यसे संगति रखते हुए, ऐसे निर्देश देनेका हक होगा जो समय-समय पर प्रवेश व पूजाका समय नियमित करनेके लिए, पूजार्थ एक बारमे प्रवेश करनेवालोकी सख्या सीमित करनेके लिए, या उन विशेष प्रथाओको, जो विशेष प्रयोजनोके लिए कुछ व्यक्तियों और समुदायो पर लागू होती हैं, बनाये रखनेके लिए जरूरी हों।

४. मन्दिरोमें प्रवेशकी अनुमतिको इस प्रकार प्रयोगमें नही लाया जायेगा कि उससे श्रीकोइल (गर्भ-गृह), तिडपल्लि (रसोईघर) तथा मन्दिरके उन अन्य भागोमें भी जानेका हक मिल जाये जहाँ कि ऐसे लोगोंके सिवा जिन्हें प्रथाके अनुसार वहाँ जानेकी इजाजत है, शेष सब लोगोके लिए अभी भी प्रतिबन्ध लगे हुए हैं।

५. सभी पूजा करनेवालोंको देवस्वम्‌के मुख्य अधिकारीके उन निर्देशोंका पालन करना होगा जो उक्त घोषणा-पत्र तथा इन नियमोके उद्देश्योको अमलमे लानेके लिए दिये जाये और उन स्थानोंके बारेमे दिये जाये जिन्हे मन्दिरकी धार्मिक विधियोके समुचित अनुष्ठानके लिए, या जैसे कि अभी तक होते रहे है वैसे भोजादिके सम्पादनके लिए कुछ काल आरक्षित करनेकी जरूरत होती है।

६. निम्नलिखित वर्गोंके लोग मन्दिरकी चारदीवारीके और यदि चारदीवारी न हो तो उसके भू-क्षेत्रके अन्दर प्रवेश नही करेगे:

(क) वे लोग जो हिन्दू नही है (ख) परिवारमे जन्म या मृत्युके कारण जो लोग अशौचकी अवस्थामें हो। (ग) स्त्रियाँ, उन दिनो जब रीति-रिवाजोके अनुसार मन्दिरमे उनका जाना निषिद्ध होता है (घ) वे लोग जो मद्य-पानके कारण नशेकी हालतमे हो या उपद्रव कर रहे हो (ङ) जो लोग किसी घृणित या छूतकी बीमारी से पीडित हो। (च) ऐसे लोग जिनका दिमाग ठीक नही है — उस समयके सिवा जब वे उचित नियन्त्रणमे और देवस्वम्‌के मुख्य अधिकारीकी इजाजतसे ले जाये जाये (छ) पेशेवर भिखारी।

७. कोई भी व्यक्ति तबतक किसी मन्दिरके क्षेत्रमे प्रवेश नही करेगा जबतक कि वह स्वच्छ वस्त्र न पहने हो, और ये वस्त्र ऐसा कपडेके होने चाहिए और ऐसे ढगसे पहने जाने चाहिए जैसी कि रीति है। इस विषयमें देवस्वम्‌के मुख्य अधिकारीके निर्देश तबतक बने रहेगे जबतक कि उससे बडा अधिकारी उन्हे रद्द न कर दे। मन्दिरके अहातेके अन्दर कोई भी आदमी पाँवोमे जूते आदि पहनकर नही जा सकेगा। अलबत्ता, जिन्हे मन्दिरमे प्रचलित रीति-रिवाजोके अनुसार वैसा करनेकी इजाजत है, उन्हे इसकी छूट होगी।

८. मन्दिरमे और उसके अहातेमे कोई भी व्यक्ति थूकेगा नही, पान, तम्बाकू या ऐसी कोई दूसरी चीज नही चबायेगा, धूम्रपान नही करेगा, अपने साथ धूम्रपानकी चीज नही ले जायेगा, मछली, अडे, मास, ताड़ी, अरक या अन्य मादक द्रव्य या ऐसी अन्य वस्तु या जानवर नही ले जायेगा जो रीति-रिवाजोके अनुसार मन्दिरमे ले जाने योग्य नही है।

९. कोई भी व्यक्ति बेलीक्कलपुर (मण्डप जहाँ मुख्य वेदीका पत्थर स्थापित किया जाता है), वलिअम्बलम् (केन्द्रीय देवस्थान), नालम्बलम् (चारो ओरके मडप), या जहाँ नालम्बलम्‌की जगह एलामतिल हो वहाँ एलामतिलमे कोट, कमीज, गजी या ऐसा कोई कपडा पहनकर नही जायेगा। सिर्फ स्त्रियाँ अपनी साधारण पोशाक पहनकर जा सकती है। इसी प्रकार उन लोगोको छोडकर जिन्हे मन्दिरमे प्रचलित रीति-रिवाजोंके अनुसार सिर पर कपडा पहननेका अधिकार है, अन्य कोई व्यक्ति सिर पर कोई कपडा पहनकर नहीं जायेगा। कोई भी कपड़ेका छाता, मिट्टीके तेलकी ढिबरी या ऐसी कोई चीज अन्दर नही ले जायेगा जिसका कि रीति-रिवाजोके अनुसार ऐसे स्थान पर ले जाना उचित नही है। जिन मन्दिरोमे उपर्युक्त प्रतिबन्ध है उनकी चारदीवारीके अन्दर भी वे प्रतिबन्ध माने जायेंगे।

१०. (१) मन्दिरके पूर्व-निर्दिष्ट हिस्सोमे कोई भी व्यक्ति प्रथा व रीति-रिवाजोके अनुसार स्नान किये बिना, प्रथागत जाति-चिह्नके बिना और सम्बद्ध मन्दिरकी प्रचलित प्रथाके अनुसार निर्धारित कपडेके साफ वस्त्र निर्धारित विधिसे पहने बिना, प्रवेश नही करेगा।

(२) हिन्दूके सिवा और कोई व्यक्ति मन्दिरके तालावमे प्रवेश नही करेगा और हर व्यक्ति, जिसे तालावमे जानेकी अनुमति दी जायेगी, उन निर्देशोका पालन करेगा जो सम्बद्ध देवस्वम्के मुख्य अधिकारीने दिये हो। देवस्वम्के मुख्य अधिकारीके निर्देश तव तक लागू रहेगे जबतक कि उससे बडा अधिकारी उन्हे रद्द न कर दे।

(३) जो तालाव मन्दिरके विशिष्ट कर्मचारियोके लिए सुरक्षित है वे सुरक्षित ही रहेगे।

११. प्रवेश और पूजाके सम्बन्धमे जो प्रतिबन्ध प्रथा व रीति-रिवाजोके अनुसार सभी जातियो पर समान रूपसे लागू होते है वे बने रहेगे।

१२. कोई भी व्यक्ति किसी मन्दिरमे ऊँचे स्वरसे बातचीत करके या अन्य किसी ऐसे प्रदर्शन द्वारा जो मन्दिरके वातावरणकी पवित्रता और गम्भीरताको क्षति पहुँचाता हो, किसी प्रकारका व्यवधान नही डालेगा।

१३. मन्दिरकी इमारतों और अहातेका ऐसा उपयोग जो पूजासे या मन्दिरकी प्रथा व रीति-रिवाजोसे सम्बन्ध न रखता हो, कानूनके विपरीत होगा।

१४. कोई भी व्यक्ति ऐसा कोई काम नही करेगा जो मन्दिर और उसके अहातेकी स्वच्छता व पवित्रताको क्षति पहुँचानेवाला हो।

१५. किसी प्रसगमे इन व्यवस्थाओके लागू होने या पालनके विषयमे यदि कोई सन्देह हो तो इस विषयमे सम्बद्ध देवस्वम्के मुख्य अधिकारीका निर्णय ही तबतक माना जाता रहेगा जबतक कि उससे बडा कोई अधिकारी उसे रद्द न कर दे।

१६. सम्बद्ध देवस्वम्के मुख्य अधिकारीको यह कानूनी अधिकार होगा कि वह ऐसे किसी भी व्यक्तिको जो इन व्यवस्थाओका उल्लघन करता है, या जिसके विषयमे मुख्य अधिकारीको सन्देह है कि उसने वैसा किया है, या जो उसको दिये गये किसी कानून-सम्मत निर्देशका पालन नही करता है, मन्दिरसे हट जानेका आदेश दे और, यदि वह स्वय नही हटता तो उसे मन्दिरसे हटाये जानेकी आज्ञा दे। यदि वह इस प्रकार हटाये जानेका विरोध करता है, या अपना नाम-पता पूछे जाने पर बतानेसे इनकार करता है, या ऐसी जानकारी देता है जो गलत समझी जाती है, तो वह गिरफ्तार किया जा सकता है और हटाया जा सकता है। गिरफ्तारी और हटानेका काम ऐसा पुलिस अधिकारी करेगा जो कमसे-कम हेड कान्सटेबल हो। और इस स्थितिमे उस व्यक्तिके साथ ऐसा सलूक किया जायेगा मानो वह फौजदारी कानूनकी धारा ३८ के अधीन गिरफ्तार किया गया हो।

१७. यदि कोई व्यक्ति इन नियमोकी किसी भी व्यवस्थाका उल्लघन करता है, या इनको अमलमे लानेके लिए दिये गये किसी भी न्यायसम्मत निर्देशका पालन नही करता है और इस तरह किसी शुद्धीकरणकी क्रियाका अनुष्ठान जरूरी बना देता

है, तो मन्दिरकी प्रथा व रीति-रिवाजोके अनुसार ऐसा व्यक्ति उक्त क्रियाका खर्च निश्चित दरो पर देनेके लिए जिम्मेदार होगा, और वह खर्च उससे उसी प्रकार वसूल किया जा सकेगा जैसे कि सरकारी जमीनके करका बकाया वसूल किया जाता है। जो व्यक्ति इस तरह नियमोका उल्लघन करता है या निर्देशोका पालन नही करता है, वह अन्य किसी कानूनके अधीन जिस अर्थदण्डका भागी होगा वह तो होगा ही, उसके सिवा अभियोग चलने पर यदि मजिस्ट्रेट उसे दोषी ठहराता है तो उसे तीन माह तककी सादी या सख्त कैदकी सजा दी जा सकेगी, या जुर्माना किया जा सकेगा, या कैद और जुर्माना दोनो ही किये जा सकेंगे।

१८. इन नियमोंके अधीन अभियोग ऐसे राजपत्रित अधिकारीकी शिकायत पर ही चलाया जा सकेगा जिसका मन्दिरके सम्बन्धमे अधिकार-क्षेत्र होगा, अन्यथा नही।

१९. किसी भी देवस्वम् अधिकारी या सरकारी कर्मचारीके खिलाफ, जो इन नियमोके पालनके सिलसिलेमे ईमानदारीसे कोई काम करता है, कोई कार्यवाही नही हो सकेगी और सरकारकी सम्मतिके बिना उनपर फौजदारी अदालतमे कोई मुकदमा नही चलाया जा सकेगा।

२०. इन नियमोकी किसी व्यवस्थाके पालन अथवा उसकी व्याख्याके विषयमे कोई सन्देह या विवाद हो तो उस पर दीवानका निर्णय अन्तिम होगा।

२१. घोषणा-पत्रके उद्देश्यो और उसकी व्यवस्थाओ अथवा इन नियमोके कार्यान्वयनके दौरान अनपेक्षित कठिनाइयाँ या किसी तरहकी आपात स्थिति उत्पन्न होने पर दीवानको अधिकार होगा कि वह ऐसे आदेश दे जो वह उपयुक्त समझे।...

सामग्रीके साधन-सूत्र

गाधी स्मारक सग्रहालय, नई दिल्ली : गाधी साहित्य और तत्सम्वन्धी कागजातका केन्द्रीय सग्रहालय तथा पुस्तकालय।

नेहरू स्मारक सग्रहालय और पुस्तकालय, नई दिल्ली।

राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

सावरमती सग्रहालय, अहमदाबाद : पुस्तकालय तथा आलेख सग्रहालय, जिसमे गाधीजीसे सम्वन्धित कागजात रखे है।

'वॉम्बे क्रॉनिकल' : वम्वईसे प्रकाशित अग्रेजी दैनिक।

हरिजन (१९३३-५६). रामचन्द्र वैद्यनाथ शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा हरिजन सेवक सघके तत्त्वावधानमे प्रकाशित अग्रेजी साप्ताहिक, आरम्भमे १ फरवरी, १९३३ से पूनासे प्रकाशित हुआ था, २७ अक्टूवर, १९३३ से मद्राससे प्रकाशित होने लगा, १३ अप्रैल, १९३६ को पुनः पूना आ गया और वादमे अहमदावादसे प्रकाशित होता रहा।

हरिजन सेवक (१९३३–५६) : वियोगी हरि द्वारा सम्पादित तथा हरिजन सेवक संघके तत्वावधानमे प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक; आरम्भमे २३ फरवरी १९३३ से नई दिल्लीसे प्रकाशित हुआ था।

हरिजनवन्धु (१९३३-५६). चन्द्रशकर शुक्ल द्वारा सम्पादित तथा हरिजन सेवक सघके तत्त्वाववानमे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक, आरम्भमे १२ मार्च, १९३३ से पूनासे प्रकाशित हुआ था।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' : नई दिल्लीसे प्रकाशित अग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू' : मद्राससे प्रकाशित अग्रेजी दैनिक।

'प्यारेलाल पेपर्स' : श्री प्यारेलालके पास प्राप्त कागज-पत्र।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी : स्वराज्य आश्रम, बारडोलीमें सुरक्षित।

'इन्सीडेंट्स ऑफ गाधीजीज़ लाइफ' (अग्रेजी) : सम्पादक : चन्द्रशकर शुक्ल, वोरा एण्ड कं० पब्लिशर्स लिमिटेड, वम्वई, १९४९।

'एपिक ऑफ ट्रावनकोर' (अग्रेजी) : महादेव देसाई, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९३७।

'ए वंच ऑफ ओल्ड लेटर्स' (अग्रेजी) : सम्पादक : जवाहरलाल नेहरू, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्वई १९५८।

'कान्टेम्परेरी इडियन फिलॉसफी' अग्रेजी. सम्पादक : स० राधाकृष्णन् और जे० एच० म्यूरहेड, जॉर्ज एलेन एण्ड अनविन लिमिटेड, लन्दन, १९५२।

'पाँचवे पुत्रको बापूके आशीर्वाद' : सम्पादक : काका कालेलकर, जमनालाल बजाज ट्रस्ट, वर्धा, १९५३।

'बापुना पत्रो–६ : गं० स्व० गंगाबहनने' (गुजराती) : सम्पादक : काकासाहेब कालेलकर, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६० ।

'बापुना पत्रो–२ : सरदार वल्लभभाईने' (गुजराती) : सम्पादिका : मणिबहन पटेल, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५२ ।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती) : मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८ ।

'महात्मा : लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी', भाग-४ (अंग्रेजी) : डी० जी० तेंदुलकर, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, नई दिल्ली ।

'मेमोरीज़ एण्ड रिफ्लेक्शंस' (अंग्रेजी) : सम्पूर्णानन्द, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई-१, १९६२ ।

'मोटाना मन' (गुजराती) : सम्पादक : कल्याणजी वी० देसाई, ईश्वरलाल आई० देसाई और हकुमत देसाई, दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय, सूरत, १९७२ ।

'रिलीजन्स ऑफ दि वर्ल्ड' (अंग्रेजी) : रामकृष्ण मिशन इन्स्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित, १९३८ ।

'हिस्ट्री ऑफ वेज ऐडजस्टमेंट इन दि अहमदाबाद इन्डस्ट्री' भाग-४ (अंग्रेजी) : टैक्सटाइल लेबर एसोसिएशन, मिर्जापुर, अहमदाबाद ।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(३ नवम्बर, १९३६ से १४ मार्च, १९३७ तक)

३ नवम्बर, १९३६ : गांधीजी सेगाँव जानेके लिए बड़ौदासे सूरतके लिए रवाना हुए।

४ नवम्बर : सेगाँव पहुँचे।

९ नवम्बर : सी० एफ० एन्ड्र्यूज गांधीजीसे मिलनेके लिए सेगाँव आये।

१२ नवम्बर : त्रावणकोरके महाराजने राज्यके सारे मन्दिर सभी हिन्दुओंके लिए खोलनेकी घोषणा करते हुए एक घोषणा-पत्र जारी किया।

१७ नवम्बर : सेगाँवमें गांधीजीने त्रावणकोरके महाराजको हरिजनोंके लिए मन्दि खोलने पर बधाई देते हुए एक वक्तव्य जारी किया।

२-४ दिसम्बर : अहमदाबादके मिल-मालिकों तथा मजदूर संघके प्रतिनिधियोंसे बातचीत की।

४ दिसम्बर : अहमदाबाद मिल-उद्योगके वेतन-सम्बन्धी झगड़ेके बारेमें समाचारपत्रोंको वक्तव्य जारी किया।

५ दिसम्बर : सी० एफ० एन्ड्र्यूज, अगाथा हैरीसन और कार्ल हीथ सेगाँव पहुँचे।

६ दिसम्बर : गांधीजीने ग्राम-सेवक प्रशिक्षण विद्यालय, वर्धाके विद्यार्थियोंसे बातचीत की।

१९ दिसम्बर : कांग्रेस अधिवेशनमें शरीक होनेके लिए सेगाँवसे फैजपुरके लिए रवाना हुए।

२० दिसम्बर : फैजपुर पहुँचे।

२१ दिसम्बर : कांग्रेसके स्वयंसेवकोंकी एक सभामें भाषण दिया।

२२ दिसम्बर : किरोडामें एक सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

२४ दिसम्बर : अखिल भारतीय गोरक्षा संघके सभापति-पदसे त्यागपत्र दिया और इस कदमको समझाते हुए समाचारपत्रोंके लिए एक वक्तव्य जारी किया।

२५ दिसम्बर : खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शनी, फैजपुरका उद्घाटन करते हुए भाषण दिया।

२६ दिसम्बर : अहमदाबाद मिल-उद्योगके वेतन-सम्बन्धी झगड़े पर निर्णय दिया। विद्यार्थी सम्मेलनको सन्देश भेजा।

२७ दिसम्बर: प्रदर्शनी मैदान, फैजपुरमें एक सार्वजनिक सभामें भाषण दिया। अ० भा० का० कमेटीकी बैठकमें भाषण दिया।

२८ दिसम्बर. फैजपुरमें हुए राष्ट्रभाषा सम्मेलनको सन्देश भेजा।

२९ दिसम्बर: कांग्रेसके स्वयंसेवकोंके समक्ष भाषण दिया। फैजपुरसे सेगाँवके लिए रवाना हुए।

३१ दिसम्बर: सेगाँव पहुँचे।

३ जनवरी, १९३७ हेनरी पोलक और अगाथा हैरीसन सेगाँव पहुँचे।

६ जनवरी: गांधीजी अहमदाबाद मिल-उद्योगके वेतन-सम्बन्धी झगड़ेके निर्णायक थे, जी० डी० मडगाँवकरसे, मिलनेके लिए सेगाँवसे पूनाके लिए रवाना हुए।

७ जनवरी. पूना पहुँचे। अहमदाबादके मिल-मालिकों और मजदूरोंसे बातचीत की।

८ जनवरी. बातचीत जारी रही।

९ जनवरी: बातचीत जारी रही।

१० जनवरी: जस्टिस मडगाँवकरके निवास-स्थान पर हुए स्वागत-समारोहमें शरीक हुए। मद्रासके रास्ते त्रिवेन्द्रमके लिए रवाना हुए।

११ जनवरी: मद्रास पहुँचे। त्रिवेन्द्रमके लिए रवाना हुए।

१२ जनवरी: त्रिवेन्द्रम पहुँचे।
त्रिवेन्द्रममें एक सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

१३ जनवरी: त्रिवेन्द्रममें दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभाके दीक्षान्त-समारोहकी अध्यक्षता की।
पद्मनाभ मन्दिर गये।
एक सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

१४ जनवरी. त्रावणकोरकी घोषणा पर नैय्याटिङ्करा, वैंगनूर, तकली, तिरुवत्तर और नागरकोइलकी सार्वजनिक सभाओंमें भाषण दिये।
कन्याकुमारी पहुँचे।

१५ जनवरी: कन्याकुमारीसे रवाना हुए और त्रिवेन्द्रम पहुँचे।

१६ जनवरी: त्रावणकोर घोषणाकी भावना पर अमल करनेकी सलाह देते हुए वर्कला, परिपल्ली और क्विलोनकी सार्वजनिक सभाओंमें भाषण दिये।

१७ जनवरी: लोगोंको हिन्दी सीखनेकी सलाह देते हुए तत्तरनपल्लीकी एक सभामें भाषण दिया।
हरिपदमें हिन्दूधर्मके सार पर भाषण दिया।

१८ जनवरी. चैर्तला और वाइकोममें सार्वजनिक सभाओंमें भाषण दिया।
वाइकोममें मन्दिरके न्यासीसे भेंट-वार्ता।
तकजी गये।

१९ जनवरी: ऐट्टुमानूर, कुमारनेल्लूर, तिरुवारप्पु, कोट्टयमकी सार्वजनिक सभाओंमें भाषण दिये।
कोट्टयममें विशप मूर और विशप अब्राहमसे बातचीत की।

२० जनवरी: कोट्टयम, चगनाचेरी, तिरुवल्ला, चेंगन्नूर, आरनमुला, एलन्तूर और पदलममें सार्वजनिक सभाओंमें भाषण दिये।

२१ जनवरी. कोट्टारक्करामें हरिजनोंके लिए एक निजी मन्दिर खोला।
एक सार्वजनिक सभामें भाषण दिया। मद्रासके लिए रवाना हुए।

२२ जनवरी: मद्रास पहुँचे। हरिजन उद्योगशाला, कोडम्बकम के विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण दिया।
कोडम्बकमकी एक प्रार्थना-सभामें भाषण दिया। एक मिस्र-निवासीसे भेंट-वार्ता।

२३ जनवरी: गुंटूर और विजयवाडाके तूफानग्रस्त क्षेत्रोंका दौरा किया। पीड़ितोंके लिए चन्दा भी एकत्र किया। सेगाँवके लिए रवाना हुए।

२४ जनवरी: सेगाँव पहुँचे।

२६ फरवरी: जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य कांग्रेसी नेता सेगाँव पहुँचे।

२७–२८ फरवरी: गांधीजीने वर्धामें कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें भाग लिया।

३ मार्च: मिस्रके एक शिष्टमण्डलसे भारत व मिस्रके सम्बन्धों पर बातचीत की।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

आ

इ

ई

उ

ऊ

ऋ

ए

ओ

औ

क

ख

घ

च

ज

प

फ

ब

भ

म

ह